UNIVERSAL
LIBRARY
OU_182368
UNIVERSAL
LIBRARY

करुण रस

[मध्ययुगीन हिन्दी-रामकाव्य के परिवेश में]

आगरा विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच० डी० के लिए स्वीकृत शोध-प्रबन्ध

लेखक

डा० व्रजबासीलाल श्रीवास्तव एम० ए०, पी-एच० डी०

हिन्दी-विभाग

राजकीय हमीदिया कालेज, भोपाल (म० प्र०)

प्रकाशक

हिन्दी साहित्य संसार

नई सड़क, दिल्ली-६

प्रथमावृत्ति] १९६१ [मूल्य १२॥)

प्रथम संस्करण

जनवरी, १९६१

मूल्य

१२-५० (साढ़े बारह रुपये)

प्रकाशक

रामकृष्ण शर्मा बी० ए०

हिन्दी साहित्य संसार दिल्ली—६

मुद्रक

हरिहर प्रेस

चावड़ी बाजार, दिल्ली।

जिनकी अपार करुणा का सतत चिन्तन मेरी साधना बन जाय,
उन्ही परम श्रद्धेय पूज्यपाद साक्षात् परब्रह्म श्री गुरुदेव
की
सेवा में
यह लघु प्रयास
सादर
समर्पित है !

प्रक्कथन

भारतीय काव्य-शास्त्र में रस का विशेष महत्त्व है। उसे काव्य की आत्मा का स्थान मिला है। रसों में शृंगार को रसराज माना है, किन्तु स्थायीभाव की अनुभूति की व्यापकता और तीव्रता मे यदि कोई रस खड़ा हो सकता है तो वह करुणरस है। वह कविता का आदि स्रोत है। क्रौंच-वध का हृदयगत् शोक महर्षि वाल्मीकि की वाणी मे श्लोक-रूप से प्रस्फुटित हुआ। कविवर पंत ने इसी बात को स्वीकार करते हुए कहा है—

"वियोगी होगा पहला कवि,
आह से उपजा होगा गान।
उमड़कर आँखो से चुपचाप,
बही होगी कविता अनजान ॥"

कविवर भवभूति ने तो एक ही करुणरस को रस माना है "एको रसः करुण-एव" और सब रसों को उसके आवर्त, बुद्‌बुद् और तरग का रूप दिया है। करुणरस को इतना महत्त्व मिलना अकारण नही है। रसानुभूति का मर्म व्यापक सहानुभूति और हृदय की आर्द्रता में है। जितनी सहानुभूति और आर्द्रता करुणरस मे है उतनी और किसी में नहीं है। शोक में जो भावो का परिष्कार होता है वह और किसी स्थायी-भाव में नही है।

डा० व्रजबासीलाल ने अपने शोध-प्रबन्ध का विषय करुणरस लेकर बडी साहित्य-मर्मज्ञता और मनोवैज्ञानिक सूझबूझ का परिचय दिया है। इसके सहारे रस का असली स्वरूप प्रकट होता है। शोक में भी रसरूप आनन्द का किस प्रकार आविर्भाव हो जाता है इस समस्या के विवेचन मे यूनानी त्रासदी (Tragedy) का भी महत्त्व प्रकाश में आ जाता है तथा रस और भाव का अन्तर भी स्पष्ट हो जाता है। रस भाव नही है, वरन् भाव का आस्वाद है। रस भाव का आस्वाद होने के कारण अपनी सामग्री के सम्बन्ध में मनोविज्ञान का विषय बन जाता है। डाक्टर साहब ने करुणरस के स्थायीभाव का मनोवैज्ञानिक और शरीर क्रिया-विज्ञान सम्बन्धी विवेचन बड़े मार्मिक ढंग से किया है। यद्यपि आजकल के पाश्चात्य मनोविज्ञान मे विभिन्न मत प्रचलित हैं तथापि उनमें जो प्रारम्भिक सिद्धान्त है वे प्रायः एक से है। किसी एक आचार्य का मत देने से भी पश्चिमी विचार-धारा का दिशा-निर्देश हो जाता है। उस

दिशा-निर्देश से हमारे ज्ञान का क्षितिज विस्तृत होता है और हमारे शास्त्रीय ज्ञान की पूर्ति हो जाती है। जहाँ तक शास्त्रीय ज्ञान का प्रश्न है प्राचीन ग्रन्थकारों दण्डी, विश्वनाथ, वाग्भट्ट आदि के ग्रन्थों मे करुणरस का विवेचन किया गया है जो सर्वथा स्तुत्य है।

करुणरस के सिद्धान्तों को उदाहरणो से पुष्ट करने के लिए डाक्टर साहब ने मध्यकाल के राम-साहित्य को ठीक ही चुना है। उत्तररामचरित में भगवान रामचन्द्र ने बडे मर्मभेदी शब्दो मे कहा है—दुःख का अनुभव करने के लिए ही राम को चेतना मिली है—"दु ख सवेदनायैव रामे चैतन्यमाहितम्"। भगवान राम का पूर्व और उत्तर जीवन करुणाप्रधान है। अभिषेक की तैयारी होते-होते वनवास मिल गया लेकिन वे सच्चे धीरवीरों की भाँति अविचलित रहे—

"प्रसन्नता या न गताभिषेकतस्तथा न मम्ले वनवासदु खत:
मुखाम्बुजश्री रघुनन्दनस्य मे सदास्तु सा मञ्जुलमङ्गलप्रदा···।"

करुणरस का एक और महत्त्व यह है कि उसमे धैर्य की परीक्षा हो जाती है और कष्ट-सहिष्णुता में मानव आत्मा की ऊँचाई और गहराई का पता चल जाता है। मर्यादा पुरुषोत्तम राम का उत्तरकालीन जीवन भी बडा करुणामय रहा। भवभूति ने उस पर सान चढा दी थी। तभी तो उसके सम्बन्ध मे कहा गया है कि "अपि ग्रावा रोदित्यपि दलति बज्रस्य हृदयम्"। करुणरस के सम्बन्ध मे रामकाव्य का बड़ा सुन्दर पर्यवेक्षण हुआ है उसमे संस्कृत अपभ्रंश और हिन्दी के मुख्य-मुख्य ग्रन्थो का सहारा लिया गया है। इस पर्यवेक्षण के लिए डा० व्रजबासीलाल श्रीवास्तव और उनके निर्देशक डाक्टर रामकुमार वर्मा दोनों ही बधाई के पात्र है। आशा है यह ग्रथ हिन्दी के बढ़ते हुए आलोचना-साहित्य मे अपना उचित स्थान प्राप्त करेगा।

इ १८६/४ बानगगा,
भोपाल
२६—१—६१

—गुलाबराय

भूमिका

जनजाग्रति के लिए काव्य का प्रयोग विश्वव्यापी प्रवृत्ति रही है। किन्तु प्राचीन काल ही मे इस प्रकार के प्रयोग हुए और वे भी वीररस तक सीमित रहे। तत्कालीन युद्ध की सीमा तथा परिस्थितियों मे वीररस काव्य वीरो के उत्साह-वर्द्धन का साधन था और इस प्रकार वीररस की रचना समय की आवश्यकता के रूप मे प्रकट हुई। अन्य रसों के संबंध मे इस प्रकार के प्रयोगों के अवसर नही आए तथा उनका प्रयोग नही हो सका। किन्तु यह निश्चित है कि यदि अन्य रसों के भी इस प्रकार के प्रयोग उनके उपयुक्त क्षेत्रो मे किए जाते तो सफलता अवश्य मिलती।

जहाँ तक चरित्रनिर्माण तथा सदाचार की प्राप्ति का प्रश्न है करुणरस के विशेष अध्ययन से इस कार्य मे पूर्ण सफलता प्राप्त हो सकती है। इस दिशा मे यद्यपि मुझे अधिक खोज करने का अवसर नही मिल सका तथापि अपने **एक दो** छात्रो पर किए गए प्रयोगो में मुझे पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। किसी विशेष उपचार के स्थान मे करुणरस-काव्य का पारायण, करुणरस की कविताओ की रचना तथा करुणरस के आलबनों का पर्यवेक्षण एव उनके सबंध मे अपने भावो की अभिव्यक्ति आदि मेरे प्रयोग की स्थूल रूपरेखा थी जिसके निर्धारित समय के प्रयोग से व्यक्तित्व की विषमता, अनिच्छित अपशब्दों की बरबस स्मृति, स्वार्थपरता आदि मानसिक विकारो का आशिक शमन संभव हो सका। मैं समझता हूँ हेगल के निम्नलिखित विचार अक्षरश: सत्य हैं—

"मानव शोक में देवताओं की सृष्टि होती है तथा शोक अपने अधिक ठोस रूप मे मानव चरित्र है……।"

जिस प्रकार युद्ध के समय जनजाग्रति तथा देश की रक्षा के लिए वीररस काव्य के प्रयोग से सफलता मिली उसी प्रकार मेरा विश्वास है कि शान्ति के समय मे करुणरस-काव्य का प्रयोग चरित्रनिर्माण, समाजोत्थान तथा शान्ति को स्थायी बनाए रखने के लिए अमोध सिद्ध होगा।

मध्ययुगीन हिन्दी साहित्यगत रामकथा के कवियो मे निम्नलिखित तीन मुख्य

कवि है जिनकी कृतियों से अपेक्षित सामग्री लेकर प्रस्तुत पुस्तक में विषय का विवेचन किया गया है—

सूर की रामकथा— सूरसागर नवम स्कध।
तुलसी की रामकथा— रामचतिमानस।
केशव की रामकथा— रामचन्द्रिका।

मध्ययुगीन हिन्दी-साहित्यगत रामकथा के विवेचन के अतिरिक्त रामकथा की पृष्ठभूमि मे वाल्मीकि रामायण तथा भवभूति के उत्तररामचरित का पृथक् से अध्ययन भी प्रस्तुत किया गया है जो उपर्युक्त विवेचन को करुणरस की प्रारभिक एवं मूल अभिव्यक्तियो के सदर्भ मे समझने मे महत्वपूर्ण योग देगा ! लोक-साहित्यगत करुणरस की अभिव्यक्ति का विवेचन एक पृथक् प्रकरण के अन्तर्गत करके लोकमानसगत करुण रस की अनुभूतियो का दिग्दर्शन कराया गया है। हिन्दी रामकथा मे प्रकट जीवन-दर्शन का विवेचन एक पृथक् प्रकरण मे करके अनुभूति के साथ मान्यताओ पर भी विचार किया गया है। इस लघुप्रयास मे इस प्रकार मध्ययुगीन हिन्दी साहित्यगत रामकथा मे प्राप्त करुणरस की सामग्री तथा प्रवृत्तियो का समुचित अध्ययन किया गया है तथा साथ में रामकथा का मार्मिक पक्ष भी पाठको के समक्ष प्रस्तुत किया गया है।

विषय की दृष्टि से पुस्तक दो खण्डो मे विभक्त है—

खण्ड 'क'—करुणरस का मनोविज्ञानाश्रित शास्त्रीय विवेचन।

खण्ड 'ख'—मध्ययुगीन हिन्दी साहित्यगत रामकथा मे करुणरस की अभिव्यक्ति।

इस प्रकार रस के शास्त्रीय विवेचन को प्रयोग के रूप में समझने के लिए करुणरस की अभिव्यक्ति का खण्ड विशेष उपयोगी होगा, ऐसा मेरा विश्वास है। साथ ही इस रूप मे अध्ययन का एक विशेष दृष्टिकोण भी प्रस्तुत किया गया है जो करुण रस के पूर्ण विवेचन को उसके सम्पूर्ण परिप्रेक्ष्य मे उपस्थित कर देता है।

इस पुस्तक के प्रस्तुत करने में मुझे निम्नलिखित महानुभावो से विशेष सहायता मिली है जिसके लिए मैं उनका अति आभारी हूँ तथा उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

श्रद्धेय डा० रामकुमार वर्मा अध्यक्ष हिन्दी-विभाग प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग से इस प्रयास के लिए प्रेरणा प्राप्त हुई है और उन्होने इस दिशा में मेरा पथ-प्रदर्शन किया है। उनके प्रति कृतज्ञतापन मात्र से संतोष नही हो सकता। उनके निर्देशन में साहित्य की कुछ सेवा कर सका तो उनकी प्रसन्नता एवं प्रशंसा का भाजन होकर आत्म-संतोष प्राप्त कर सकूंगा। उनके चरणों में नतमस्तक होने का सौभाग्य मिलता रहे, मेरी तो यही लालसा है।

आदरणीय आचार्य श्री विश्वेश्वर जी गुरुकुल वृन्दावन से संस्कृत के शास्त्रीय

ग्रन्थों का विवादास्पद अंश मैंने समझा है तथा समय-समय पर उनसे अमूल्य सुझाव प्राप्त किए हैं।

श्री हाकिमसिंह शर्मा बी० ए०, एल० टी० इंचार्ज जे० टी० सी० विभाग एस. आर. के. कॉलेज फीरोजाबाद, श्री जीवनलाल शास्त्री अध्यापक रत्नमोती संस्कृत पाठशाला गोकुल तथा मेरे छात्र श्री द्वारिकाप्रसाद अग्रवाल तथा श्री जगदीशप्रसाद श्रीवास्तव एम० ए० (अन्त्य) गोकुल से अनुक्रमणिका प्रस्तुत करने, उद्धरणों आदि का मिलान करने आदि मे विशेष सहायता प्राप्त हुई है।

मैं श्रद्धेय डा० गुलाबराय जी का भी अति आभारी हूँ। उन्होने अनुग्रहपूर्वक इस पुस्तक की भूमिका लिखकर मुझे प्रोत्साहित किया है। श्रद्धेय बाबू जी के परम स्नेह और सौजन्य के लिए धन्यवाद देना मेरी धृष्टता होगी। मैं उनके आशीर्वाद का पात्र बना रहूँ, यही मेरी विनम्र प्रार्थना है।

इस पुस्तक के प्रकाशन मे श्री रामकृष्ण शर्मा व्यवस्थापक 'हिन्दी साहित्य संसार' के सौजन्य, सौहार्द्र एवं स्नेह का परिचय प्राप्त हुआ है। उनको धन्यवाद देना अपने को ही धन्यवाद देना होगा क्योकि पुस्तक के लेखक और प्रकाशक एक दूसरे से अभिन्न होते है।

अन्त मे, मैं उन समस्त लेखको के प्रति आभार प्रकट करता हूँ जिनकी कृतियों से इस कार्य मे सहायता ली गई है तथा उद्धरण आदि के रूप मे जिनकी सामग्री का उपयोग किया गया है। साहित्य के क्षेत्र मे मेरा यह प्रथम प्रयास कहाँ तक सफल है, इसका निर्णय तो सुधीर पाठक ही कर सकेंगे।

२६ जन० १९६१ —व्रजबासीलाल

विषयानुक्रमणिका

खण्ड—क

विषय-प्रवेश

मानव जीवन के द्वन्द्व मे मनोभावो की सृष्टि, मनोभावो में करुण भावना का विकास, करुण भावना के बाह्याभिव्यंजकों का विकास, करुण भावना के प्रकाशन की रीति मे अन्तर, जीवन की विवश एवं असहाय परिस्थितियाँ, विवश एवं असहाय परिस्थितियों मे दूसरों की सहानुभूति, भाग्यवाद, धार्मिक रूप मे भाग्यवाद भाग्यवाद का मनोवैज्ञानिक आधार एवं भाग्यवाद का क्षेत्र ।

१७—२४

१. करुणरस की मनोविज्ञानाश्रित शास्त्रीय समीक्षा

करुणरस की परिभाषा, विभिन्न मत, परिभाषा का विकास, करुणरस के देवता और रग, करुणरस के भेद, करुणरस की उत्पत्ति, उत्पत्तिमूलक सिद्धान्त, अहं का मनोवैज्ञानिक अध्ययन, करुणरस के आलंबन, उद्दीपन, अनुभाव, संचारीभाव, स्थायीभाव, शोक, शरीर-विज्ञान के अनुसार स्थायीभाव का विश्लेषण, स्थायीभाव शोक के सबंध मे पाश्चात्य मत, करुणरस के दोष, रस-निष्पति, करुणरस की अभिव्यक्ति, मनोविज्ञान की समीक्षा मे करुणरस, करुणरस तथा अन्य रस—१. आध्यात्मिक शोक तथा भक्तिरस, २. करुणरस एव शान्त रस, ३. करुणरस एव विप्रलभ शृङ्गार, ४. करुणरस एवं रौद्र रस तथा ५ करुणरस एव त्रासदी । २५—८३

२. परिशिष्ट

क—करुणरस की अनुभूति सुखात्मक अथवा दुखात्मक ८५

ख—करुणरस की परिभाषा का विकास ९३

घ—करुणरस का प्रदर्शन (चित्र) ९९

१—शोक का प्रदर्शन ।

२—आध्यात्मिक शोक का प्रदर्शन

खण्ड—ख

१. मध्ययुगीन हिन्दी रामकाव्य की पूर्वपीठिका

संस्कृत साहित्यगत रामकाव्य, संस्कृत-साहित्य की रामकथा मे करुण रस, **वाल्मीकि रामायण**—कवि का दृष्टिकोण, दशरथ-मरण, सीता-हरण तथा रामविलाप, अशोक वनस्थित सीता की करुण दशा, मायानिर्मित राम के कटे हुए सिर को देखकर सीता का विलाप, मायानिर्मित सीता का वध तथा राम का शोक, लक्ष्मण-शक्ति, सीता-निर्वासन, विपक्षी पात्र, बालिवध, कुंभकरण और मेघनाद वध पर रावण का विलाप, रावण-वध पर मंदोदरी का विलाप। **अध्यात्म रामायण**—कवि का दृष्टिकोण, राम-वनगमन, दशरथ का शोक, भरत का शोक, रनिवास का शोक, राम वनवास, गुह का शोक, महाराज दशरथके निधन की सूचना पर राम का शोक, सीता-हरण पर राम का शोक, लक्ष्मण-शक्ति, सीता की निन्दा तथा सीता का शोक, सीता का पृथ्वी-प्रवेश तथा राम का शोक, बालिवध पर तारा का शोक, कुंभ-कर्ण-मेघनादवध पर रावण का शोक, रावणवध पर मदोदरी का शोक। **उत्तररामचरित**—कवि का दृष्टिकोण, प्रथम अक मे करुण प्रसग, द्वितीय अक मे करुण प्रसंग, तृतीय अक मे करुण प्रसग, चतुर्थ अक मे करुण प्रसग, पचम अक मे करुण प्रसग, षष्ठ अक मे करुण प्रसग, सप्तम अक मे करुण प्रसग, सस्कृत साहित्यगत करुणरस की सक्षिप्ति। **अपभ्रंश साहित्यगत रामकाव्य**—पात्रगत परपरा, प्रकृति के व्यापारो की सहेतुक कल्पना, आलंबन की क्षतिपूर्ति असभव, आलबन की क्षति का आत्यातिक रूप मे प्रकाशन, आलंबन से सबधित सभी वस्तुएँ विनष्टप्राय, अन्य पात्रों की शोका-नुभूति, पात्र की अनुभाव दशा, अश्रुमोचन, मानवीकरण, आलबन के अभाव की अनुभूति, गुणकथन, वर्णनगत परपरा, उपसहार, चारणकाल मे करुणरस, रामकथा की पृष्ठभूमि मे करुणरस, बाल्मीकि रामायण का प्रारम्भ, हिन्दी-साहित्य की परिस्थितियाँ, जनवेदना के कारण धार्मिक चेतना का परिर्वातन, दृष्टिकोण, आलबन की विभिन्नता, मध्यकालीन हिन्दी साहित्य के प्रेरणास्रोत।

१०३—१६९

२. मध्ययुगीन हिन्दी-रामकाव्य में जीवन-दर्शन

जीवनदर्शन तथा साहित्य, वर्णाश्रम व्यवस्था का विकास एवं विकृत रूप, आश्रम का आदर्श, धर्म की द्वन्द्वात्मक स्थिति, कर्मकाण्डगत क्षोभ, धार्मिक एकता का अभिन्न रूप, धर्म का मूल रूप, जीवन का दुःखवादी दृष्टिकोण, समाज—शोकानुभूति-गत बाह्यव्यंजक, नारी की स्थिति, दुष्टमित्र के प्रति क्षोभ, राजा का आदर्श, शूद्रों का स्थान, दर्शन—भाग्यवाद एवं रामकृपा। १७०—१९०

३. लोकगीतों में करुणरस

लोकगीतों की रचना, नारी जीवन सम्बन्धी लोकगात—पुत्री का विदा, सास के अत्याचार, निपुत्रत्व, विदेशी शासकों की अनीति, वैधव्य, लोक की प्रार्थना, दरिद्रता, गोपीचन्द राजा पर विपत्ति, सर्पदंश-चिकित्सा में करुण रस, रामकथा से संबधित लोकगीत—लोक की अनुपम कल्पना (राम की छठी), सास के अत्याचार, राम-वनगमन तथा माता कौशल्या की वेदना, वनवासी राम के लिए माता की चिन्ता, ननदभावज का द्वेष तथा भावज को यातना, राम की आत्मग्लानि । १९१—२१५

४.सूर की रामकथा में करुणरस

रामवनगमन, महाराज दशरथ का क्षोभ, विलाप, पश्चाताप एवं मरण, भरत-विलाप, दशरथमरण पर रामसीता का शोक । **सीताहरण**—राम-विलाप, अशोकवाटिका में सीता का परिताप । **लक्ष्मण-शक्ति**—रामविलाप, कौशल्या-सुमित्रा का विलाप । **रामसीता का मिलन**—राम के कटु व्यवहार, विपक्षी पात्रो की शोका-नुभूति । **बंधन**—रामलक्ष्मण का नागपाश बधन, पराभव—रावण-पराभव ।

२१६—२३१

५. तुलसी का मानस तथा गीतावली

कवि का दृष्टिकोण, काव्यकुशलता, शैली, करुण प्रसंगों की योजना, रामवनवास प्रसंग, दशरथमरण, भरत की आत्मग्लानि, सुमंत्र की शोकानुभूति, पुरजनों की शोकानुभूति, मार्ग के नरनारियों का क्षोभ । **सीताहरण**—सीता का करुणक्रन्दन-सीता की करुणदशा । **लक्ष्मण शक्ति**—भाई का उपकार, राम का विलाप । **विपक्षीपात्रों की शोकानुभूति**—तारा-विलाप, रावण की शोकानुभूति, मंदोदरी विलाप, विभीषण का शोक । **पराभव**--वन्धन, वध आदि । धर्मअपघात एव शाप, सती-सदेह, नारद-मोह, प्रतापभानु का आख्यान, शाप, काकभुशुण्डि के लिए शिव-शाप, लोमश-शाप, तुलसी की आर्त-प्रार्थना, क्लेश—प्राप्ति एवं दुःख ।

२३२—२८०

६. केशव की रामकथा में करुणरस

कवि का दृष्टिकोण, कथावस्तु, शैली । **करुणरस के प्रसंग**—रामवनगमन, **दशरथ-मरण**, चित्रकूट-प्रसंग, सीताहरण, लक्ष्मण-शक्ति, विपक्षीपात्रों की **शोकानुभूति**, **पराभव—छत्रमुकुट-प्रसंग, मंदोदरी-पराभव**, **बन्धन—नागपाश द्वारा रामलक्ष्मण बन्धन**, वध । **सीता-निर्वासन**—राम का शोक, भरत का शोक,

सीता की आशंका, लक्ष्मण का शोक, सीता का शोक। **पराभव**— अंगद व राम का पराभव। २८१—३०५

७· मध्ययुगीन हिन्दी रामकथा में करुणरस

मध्ययुगीन हिन्दी रामकाव्य की पूर्वपीठिका तथा हिन्दी रामकाव्य, करुण-प्रसंगगत मध्ययुगीन हिन्दी रामकथा, मध्ययुगीन हिन्दी रामकाव्य के अन्तर्गत करुणरस का विकास—दशरथमरण, भरत का शोक, चित्रकूट में दशरथ-मरण की सूचना, सीता-हरण, अशोकवाटिका में सीता, लक्ष्मण-शक्ति, बालि-वध पर तारा-विलाप, रावण का शोक, रावण-वध पर मंदोदरी का शोक, अन्य प्रसग। **रामकाव्य में करुणरस**—१. रामकाव्यगत करुणरस के आलम्बन विभाव, २. रामकाव्यगत करुणरस के उद्दीपन विभाव, ३. रामकाव्यगत करुणरस के अनुभाव, ४. रामकाव्यगत करुणरस के प्रतीक तथा शोक की समकक्ष अनुभूतियाँ, ५· रामकाव्यगत करुणरस की विशेष अभिव्यक्तियाँ, ६. रामकाव्यगत करुणरस की अभिव्यक्तियों का शब्दकोष एवं ७. करुणरस के प्रसंगो की परिसमाप्ति। ३०६—३४४

परिशिष्ट

१—करुणरस तथा सुन्दरकाण्ड का पारायण। ३४५

२—संस्कृत रामसाहित्य, प्राकृत एवं अपभ्रंश रामसाहित्य, मध्ययुगीन हिन्दी रामसाहित्य। ३५०

३—सहायक गन्थो की सूची। ३५३

खण्ड—क

विषय-प्रवेश

करुणारस की मनोविज्ञानाश्रित शास्त्रीय समीक्षा

विषय-प्रवेश

मानव-जीवन के द्वन्द्व में मनोभावों की सृष्टि

मानव-जीवन—मानव-जीवन की सार्थकता तथा मानव-जीवन के उद्देश्य से अवगत होने की मानव-लालसा चिरकाल से एक समस्या बनी हुई है। मनोविज्ञान के आचार्यों ने मानस-शास्त्र के सूक्ष्मतर तत्वो पर प्रकाश डाला, आदर्श मानस की कल्पना की तथा मानस परिष्कार के लिए अपेक्षित सिद्धान्तो की उद्भावना की। अतएव मनोविज्ञान के इन आचार्यो के समक्ष इस समस्या का रखा जाना स्वाभाविक था। इन तत्वान्वेषी आचार्यो ने अपनी अनवरत खोज के पश्चात् कहा—

"मानव-जीवन की सार्थकता किसमे है—यह प्रश्न अनेक बार पूछा जा चुका है किन्तु इसका सतोषजनक उत्तर कभी नही दिया जा सका। केवल धर्म ही इस प्रश्न का उत्तर दे सकता है। घोर अन्धकार के बीच जीवन की जो कुछ भी ज्योति दिखलाई देती है वह केवल आध्यात्मिक एव धार्मिक जीवन का प्रकाश है।"[1]

मनोविज्ञान के दूसरे आचार्य जुग ने बार-बार स्वीकार किया कि अपने अथवा साधारणतया जीवन के तात्पर्य के सबध मे उनके पास कोई उत्तर नही है। उन्हे विश्वास है कि प्राचीन प्राच्य ज्ञान के पास इसका उत्तर है तथा वह इसका उत्तर दे सकता है।[2]

1. "The question, what is the purpose of hnman life, has been asked times without number, it never recieved a satisfactory answer · only religion is able to answer the question The only gleam of life which he sees in the deep gloom is again, a gleam of the metapysical and religious light." Ancient Psyco-synthesis versus Modern Psycoanalysis" —Dr. Bhagwan Das

2 "Jung confesses repeatedly that he himself has no answer to give to that most frequent of question, what is the meaning of my life or life in general ? ... But he feels that ancient eastern wisdom has and can give the answer." Complete Essays of Schopenhauer translated by T. Baily Saunders M. A. Suffering of the World V– 5.

आधुनिक युग की वैज्ञानिक अभिरुचि ने ससार की प्रत्येक समस्या का हल विज्ञान के द्वारा खोज निकालने का प्रयास किया किन्तु मानव-जीवन की समस्या इस खोज के लिए अपवाद सिद्ध हुई यह स्पष्ट है। इस समस्या को धार्मिक क्षेत्र की वस्तु कहकर विज्ञान मौन हो गया।

साधना क्षेत्र की विभिन्नता के फलस्वरूप धार्मिक विधि-विधान मे विभिन्न धर्मों की उद्भावना हुई। यही नही, धर्मानुयायी अपनी अनन्यता मे धर्मान्ध भी बन गए जिसके फलस्वरूप विश्वव्यापी धार्मिक युद्धो का श्रीगणेश हुआ। इस प्रकार धर्म के बाह्य क्षुब्ध वातावरण को देखकर धर्म से इस समस्या का हल प्राप्त करने की आशा मे निराशा प्रतिगोचर होने लगी। इसीलिए सभवत धर्म द्वारा दिए गए सरल एवं सुलझे हुए उत्तर से मानव को सतोष न हुआ।

मूलतः सभी धर्मो ने स्वीकार किया कि मानव जीवन का उद्देश्य ईश्वर प्राप्ति है। उपर्युक्त समस्या का यह निश्चित उत्तर है किन्तु इसकी सत्यता मे मानव-विश्वास सदा सन्देहशील रहा। यही नही, कुछ लोगो ने तो ईश्वर की सत्ता को ही अस्वीकार कर दिया किन्तु इस समस्या का कोई दूसरा उत्तर न दिया जा सका।

ईश्वर-प्राप्ति के सम्बन्ध मे विस्तृत विवेचन हुआ तथा अनवरत खोज के पश्चात् यह मान्य हुआ कि ईश्वर सत्-चित्-आनन्द स्वरूप है और मानव-जीवन केवल सत्चित् स्वरूप। अतएव मानव-जीवन का उद्देश्य आनन्द-प्राप्ति है। इस तथ्य से मनोवैज्ञानिक भी सहमत हुए। उनको मानव की स्वाभाविक जिज्ञासा के रूप मे मानव-जीवन का उद्देश्य आनन्द-प्राप्ति प्रतिलक्षित हुआ।

आनन्द अन्त करण का विषय है तथा सुख इन्द्रियो का। आनन्द एव सुख को पर्याय समझने की भूल से आनन्द के स्थान मे सुखवाद का जन्म हुआ तथा इन्द्रियजन्य सुखो के लिए ही जीवन की सार्थकता निर्धारित हो गई। किसी ने कहा "ऋण कृत्वा घृत पिबेत्" तो दूसरे ने आलस की अँगडाई मे "सब के दाता राम" को पुकारा।

सुखवाद तृष्णा तथा असतोष की आग मे विचलित हो उठा। वास्तविकता का भान हुआ। सूक्ष्म निरीक्षण के फलस्वरूप दु ख मूल सत्य के रूप मे प्रकट हुआ।

महात्मा बुद्ध ने चार आर्य सत्यो की कल्पना की, दु ख, दु.ख समुदाय (हेतु) दु.ख निरोध तथा दु.खनिरोध गामी मार्ग। इनको बुद्ध ने आर्य सत्य कहा। दु ख सत्य की व्याख्या करते हुए उन्होने कहा—

"जन्म भी दुःख है, बुढापा भी दुःख है, मरण······शोक रुदन मन की खिन्नता दु ख है। अप्रिय से सयोग, प्रिय से वियोग भी दु ख है। इच्छा करके जिसको नही पाता वह भी दु ख है। सक्षेपतः पाचो उपादान स्कन्ध दु.ख है।"

कबीर को भी कोई शरीरी सुखी नही दिखलाई दिया। उन्होंने योगी, जगम, तापस सभी को दुःखी देखा। आशा एव तृष्णा सभी शरीरो मे व्याप्त है जो दु ख का मूल कारण है।

शापनहॉअर के विचारो का भाव भी इसी तथ्य की पुष्टि करता है। उनके अनुसार क्षेम की प्रत्येक दशा, सतोष की प्रत्येक अनुभूति अपने रूप मे निषेधात्मक है। कहने का तात्पर्य यह है कि यह पीडा से मुक्त है जो (पीडा) अस्तित्व का धनात्मक तत्व है। फलत: किसी जीवन की प्रसन्नता का माप उस जीवन के मोद एवं प्रसन्नता से नही हो सकता, प्रत्युत् उस परिमाण से जहाँ तक वह वेदना से मुक्त हो चुका है।[1]

सक्षेपत कहा जा सकता है कि मूलानन्द की प्राप्ति इन्द्रियजन्य सुख से परे है। इन्द्रियजन्य सुख उस परमानुभूति मे बाधक है। परिणाम मे इन्द्रियजन्य सुख दु:ख की भावना से त्राण पाना ही आनन्द है।

इद्रिय सुख का प्रबल आकर्षण तथा तज्जन्य दु:ख के कारण विरक्ति मानव-जीवन की द्वन्द्वात्मक स्थिति को जन्म देती है। आकर्षण एव विकर्षण के बीच मानव-मानस प्रगतिशील हो उठता है। मन चचल तथा पर्मार्थी कहा गया है। मन की चचलता ही मनोभावो को जन्म देती है।

मनोभावों के तीन रूप--मनोभाव तीन रूपो मे प्रकट होते है– १–ज्ञानात्मक, २–भावात्मक और ३–क्रियात्मक।

ज्ञानात्मक मनोभाव किसी वस्तु का परिज्ञान कराते है। भावात्मक उस वस्तु के ज्ञान के आधार पर रति या विरति उत्पन्न करते है तथा क्रियात्मक इस रति या विरति के अनुसार पात्र को (आकर्षण विकर्षण उत्पन्न कर) आगे बढने या पीछे हटने के लिए उद्यत कर देते है। प्रत्येक कार्य इन तीनो के समूहालम्बनात्मक रूप मे प्रकट होता है। इनका समूहालम्बनात्मक रूप एक दूसरे के लिए सहयोगी होता हो ऐसा समझना सगत नही है। प्राय प्रत्येक कार्य मे इनकी द्वन्द्वात्मक स्थिति ही प्रकट होती है। किसी कार्य के लिए ज्ञान बाध्य करता है तो भावना अनिच्छा प्रकट करती है तथा किसी कार्य मे भावना की प्रबल गति पर ज्ञान आदर्श का अकुश लगा देता है। इस प्रकार प्रत्येक कार्य प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्षरूप मे किसी अश तक द्वन्द्वात्मक होता है।

मनोभावों में करुण भावना का विकास

करुण भावना की प्रारम्भिक अनुभूति नवजात शिशु की प्रथम अभिव्यक्ति मे प्रकट होती है। डा० श्रीमती ब्रिजेज ने करुण मनोभावो के विकास का अध्ययन

---

1. ......that every state of welfare, every feeling of satisfaction is **negative** in its charcter, that is to say, it consists in freedom from pain which is the positive element of existence It follows, therefore, that happiness of any given life is to be measured, not only by its **joys** and pleasures, but the extent to which it has been free from suffering-- from positive evil. "...Complete Essays of Schopenhauer translated by T. B. Saunders. V--5

किया है। उनके विचारों का भाव निम्नलिखित है—

"प्रथम विभिन्न विशेष मनोभाव संश्लिष्ट एवं मिश्रित भावात्मक उत्तेजना या विकलता से धीरे-धीरे प्रगति सहित निकलते हुए दिखलाई देते है। सबसे आदि (संभवत: जन्म समय या उसके शीघ्र बाद) करुणभावना उत्तेजना से पहिचानी जा सकती है।[1]

इस प्रकार मनोभावो का प्रारम्भिक रूप जो मानव शिशु मे प्रतिलक्षित होता है उत्तेजना अथवा विकलता के रूप मे प्रकट होता है। यह विकलता करुण भावना की द्योतक है। इसका विकास अन्यान्य मनोभावो को जन्म देता है। इस सम्बन्ध मे डा० ब्रिजेज ने एक पूरा रेखाचित्र उपस्थित किया है जिसके अन्तर्गत इस मूल विकलता से करुण भावना तथा इसकी सहचरी अन्य आनन्दमूला भावनाओ का उदय दिखलाया गया है।[2]

करुण भावना के बाह्याभिव्यंजकों का विकास—करुणभावना के बाह्याभिव्यंजको का अध्ययन करने से ज्ञात होगा कि शिशु की प्रथम बाह्याभिव्यंजना अश्रुरहित होती है। दो या तीन माह तक अश्रुमोचन प्रारम्भ नही होता। इन दिनो मे उसकी "चीख पुकार तथा चिल्लाना" ही प्रतिलक्षित होता है। मुखाकृति मे विषाद की रेखाएँ भी दृष्टिगोचर होती है किन्तु अश्रुमोचन के साथ "आँखे मीडना" प्रारम्भ मे प्रकट नही होता। शिशु मे यह प्रवृत्ति ६ से १० मास के बीच आती है।

---

1. —"First, the different specific emotions are seen to emerge gradually, with growth, out of diffuse, undifferentiated emotional excitement of agitation very early (perhaps at birth or soon thereafter) distress can be distinguished from excitement... "(She) Bridges, Genratic theory of emotion-- Emotion in Man & Animal 47, page 163

2. **Early Emotional Development,**
(Bridges)

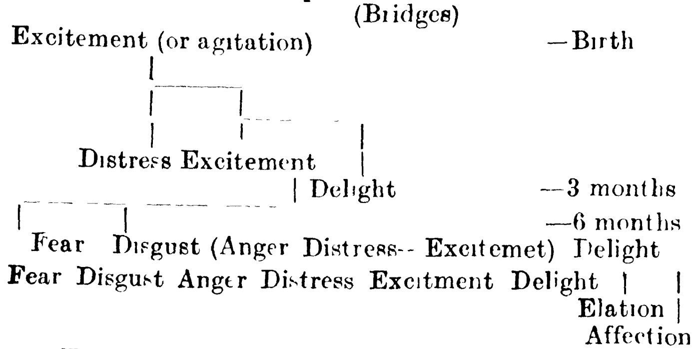

——Emotion in Man & Animal. 1947 Page 163

करुणाभिव्यक्ति का दूसरा रूप बालक के "सिसकने" मे प्रकट होता है जिसके अन्तर्गत प्रबल अश्रुमोचन भी दिखलाई देता है। इस समय तक भी अश्रुमोचन के साथ विषादपूर्ण उद्‌गार की प्रवृत्ति प्रकट नही होती। यह प्रवृत्ति वयस्को मे अनुभव एवं सामाजिक दीक्षा के फलस्वरूप कालान्तर मे प्रकट होती है। सहनशील व्यक्तियो मे यही दशा उदासीनता के रूप मे दिखलाई देती है जो समय-समय पर प्रलाप मे बरबस फूट पडती है।

करुण भावना के प्रकाशन की रीति में अन्तर—करुण भावना के प्रकाशन की प्रारम्भिक दशा में प्राय. सम्पूर्ण शरीर क्रियाशील रहता है। "आँखे सिकुड जाती हैं, चेहरा चमकने सा लगता है, मुट्ठियाँ प्राय बध जाती है, बाँहे तन जाती है, पैर कड़े हो जाते है या उनका फेकना प्रारम्भ हो जाता है, मुँह खुला हुआ तथा वर्गाकार बन जाता है तथा उसके कोने नीचे को खिचे रहते है।"[1]

इस प्रारम्भिक दशा के पश्चात वयस्को की दशा का प्रकटीकरण होता है जो प्राय समय के साथ परिवर्तनशील रहती है। भिन्न-भिन्न देशो एव जातियो की रीतियो मे भी अन्तर पाया जाता है। यही नही, एक ही देश अथवा एक ही जाति में प्राचीन तथा अर्वाचीन दशाओ मे भी विकास-क्रम प्रतिलक्षित होता है। मध्य विक्टोरिया युग से आज रोने का ढग परिवर्तित हो चुका है, यग ने इस बात को स्वीकार किया है[2]। अपने यहाँ भी सिद्ध-साहित्य के अन्तर्गत शोक के समय 'हाथ उठाने" की एक दो प्रसगो मे चर्चा हुई है किन्तु इस प्रकार की कोई प्रवृत्ति धार्मिक काल मे प्रतिलक्षित नही होती। धार्मिक काल मे "छाती पीटने" का वर्णन हुआ है।

स्त्री और पुरुषो की प्रकाशन रीति मे भी अन्तर पाया जाता है। पुरुष प्राय: सिर पीटते है तो स्त्रियाँ प्राय. छाती पीटती है। पुरुष अश्रुमोचन के समय आँखे मीडते तथा आँखे वस्त्रादि से पोछते भी जाते है किन्तु स्त्रियाँ प्राय. इन क्रियाओ को नही करती। पुरुष शोक मे इधर-उधर घूमता है तो स्त्रियाँ स्थान बदलना सभवत. उचित नही समझती।

---

1. "The cry of distress recognizable in the month-old baby, is irregular. There are short intakes of breath and long cries on expiration . The eyes are 'Screwed Up' tight, the face flushed, the fists often clenched, the arms tense, and legs still or kicking spasmodically, the mouth is open and square in shape or more usually kidney-shaped with the corners pulled down The pitch of the cry is high and somewhat discordent and sounds something like—'ah-ah-eu ah-eu". Emotion in Man and Animal, 47 Page 165.

2. "In the mid-Victorian era and even later the Englishman at times would weep openly and conspicuously at Theatrical performances, sermon and other gatherings, this was accepted as socially correct. To day the styles in weeping have changed." P. T. Young: Emotion in Man and Animal '47, Page 184

जीवन की विवश एव असहाय परिस्थितियाँ—जीवन की विवश एव असहाय परिस्थितियों का कटु अनुभव मनुष्य अपनी शक्ति एव सामर्थ्य की परिमिति मे करता है। जब वह देखता है कि अपनी सम्पूर्ण शक्ति एव सामर्थ्य को लगाकर भी वह इष्ट नाश अथवा अनिष्ट प्राप्ति के अन्तर्गत कोई व्यतिक्रम नही कर पाता है वह अपनी विवशता एव असहायावस्था पर कातर हो उठता है। ऐसे अवसरो पर उसको भान होता है कि उसकी शक्ति कितनी परिमित है।

इन विवश एव असहाय परिस्थितियो के अन्तर्गत प्रारम्भ मे अमर्ष प्रकट होता है। प्राय: व्यक्ति दाँत पीसते तथा हाथ मलते रह जाते है। अमर्ष की विफलता आत्मग्लानि तथा मानसिक असह्य वेदना को जन्म देती है। प्राय. मनुष्य इसी कारण अपनी असहाय परिस्थितियो मे मानसिक सतुलन खो बैठते है।

आज वर्षों एव युगो की पिष्टपेषित एव असख्य बार अनुभूत अनुभूतियो के फलस्वरूप अपनी विवश एवं असहाय परिस्थितियो में मानव प्रारम्भिक मनोभाव अमर्ष, घृणा आदि के स्थान मे परिष्कृत मनोभाव दु.ख, आत्मग्लानि, आदि का अनुभव करता है जिनके अन्तर्गत करुणानुभूति प्रमुख एव प्रधानरूप से रहती है।

विवश एवं असहाय परिस्थितियों में दूसरो की सहानुभूति—इन विवश एव असहाय परिस्थितियो मे इसलिये समाज मे सहानुभूति प्रकट करने की प्रथा है जिसके द्वारा सतप्त प्राणी दारुण अनुभूति के अन्तर्गत अपने नाडी-सस्थान को विशृ खल होने से बचा लेता है। पाश्चात्य मनोवैज्ञानिको के अनुसार समाज द्वारा प्रदर्शित सहानुभूति सतप्त प्राणी के लिए उसके महत्व की प्रदर्शिका बन जाती है। वह देखता है कि उसके हित मे कितने व्यक्ति उपस्थित हुए है। इस प्रकार सहानुभूति प्रदर्शन मे प्रकट उसका महत्व उसकी अहवृति की सतुष्टि का कारण होता है जिसके फलस्वरूप वह शान्ति प्राप्त कर लेता है। ऐसे अवसरो पर प्राय मनुष्य भाग्यवाद का सहारा लेते है जिसे करुण मनोभावो को सह्य बनाने का एक साधन कहा जा सकता है। अपनी विवश एव असह्यावस्था को वह भाग्य का विधान समझ कर सतोष कर लेता है।

पश्चिमी विद्वानो ने भी ऐसी ही परिस्थितियो के अन्तर्गत भाग्यवाद का उदय निश्चित किया है। उनके विचारो का भाव इस प्रकार है —

"जबतक प्रकृति-विजय के साधन एव यत्र अपूर्ण है तथा जबतक दरिद्रता योनि-अनाचार, विक्षिप्त दशा, पाप तथा युद्ध जैसे सामाजिक समस्याओ के लिए प्रभावशाली समाधान नही मिलता तबतक त्याग की भावना चाहे वह भाग्य के लिये हो अथवा ईश्वर की इच्छा के प्रति मानसिक शान्ति के लिये निकटतम मार्ग है।"[1]

1. "So long as tools and technique for the mastery of nature are lacking so long as there is no effective solution for the social problem of poverty, injustice, insanity crime and power, the attitude of resignation be it to fate or the will of God is the shortest way to peace of mind" Ency. of the Social Sc's--Macmillon & Co N. York Edn. 1935.

धार्मिक रूप में भाग्यवाद—भाग्यवाद का सिद्धान्त उपनिषद्काल से पूर्वजन्मवाद के सम्पर्क में सम्पुष्टि प्राप्त करता है अथवा यह कहा जा सकता है कि भाग्यवाद ही पूर्वजन्मवाद के रूप मे प्रकट हुआ। इस जन्म के सुख-दुःख पूर्वजन्म मे किये गये शुभाशुभ कर्मों के फल है। परोक्ष में उनका लेखाजोखा है। यही लेखाजोखा भाग्य कहलाता है।

भाग्यवाद का मनोवैज्ञानिक आधार—असफलता, निराशा, शोक आदि की अति मार्मिक अनुभूति के समय मानव नाडी-सस्थान विशृंखल होने लगता है। साधारण मनोभावो को सहने की परिमित शक्ति नाडी-सस्थान में होती है। अतएव शोक एव सताप की आत्यतिक दशा नाडी-सस्थान के लिये असह्य हो जाती है। ऐसे अवसर पर यदि कोई सुगम प्रवाह नही मिलता तो प्राय घातक परिणाम दृष्टिगोचर हो सकते है। इस दृष्टि से भाग्यवाद मानव-स्वभाव एव मानव-प्रकृति पर आधारित एक सफल प्रयत्न है जिसके द्वारा शोक-शमन सभव हो जाता है।

भाग्यवाद के अन्तर्गत मानव-क्रियाकलापो मे एक अप्रत्यक्ष प्रेरक शक्ति अथवा प्रभु-इच्छा की कल्पना की गई है। अतएव साधनपूर्णता की आशा तथा अपनी शक्ति पर विश्वास होते हुए भी असफलता एव निराशा की आशका बनी रहती है। कर्ता अपनी शक्ति एव समार्थ्य की परिमति अप्रत्यक्ष सत्ता मे खोज लेता है जो शक्ति उसके कार्यों को एक विशिष्ट मार्ग की ओर उन्मुख कर सफलता अथवा असफलता का विधान करती है। इस अवस्था मे सघातिक रूप मे प्रकट न होकर सभावित रूप मे ही प्रकट होती है। इसीलिये कटु एव अप्रिय होते हुए भी दारुण एव घातक सिद्ध नही हो पाती।

पश्चिमी विद्वानो के अनुसार, "नैतिक पतन कुचल डालने की अपनी शक्ति खो देता है, भौतिक क्षति सह्य हो जाती है यदि दोनो को किसी शक्ति से सम्बोधित कर दिया जाय जो शक्ति मानवी नियत्रण के परे हो।"[1]

"... सामाजिक प्रगति के लिये भाग्यवाद का महत्व उस सरलता मे है जो सामाजिक विषय परिस्थितियो के उत्तरदायित्व से बचने के लिये उपयोगी सिद्ध हो सकती है।"[2]

एलफ्रेड एडलर के अनुसार भाग्यवाद मानव की हीन भावना ग्रन्थि का प्रकाशन मात्र है। भाग्यवाद के स्वर मे वह यह दिखलाना चाहता है कि समाज मे वह भी किसी प्रकार किसी से कम न था यदि भाग्य मे ऐसा प्रतिकूल विधान उसके लिये निर्धारित न होता। अतएव कहा जा सकता है कि "उसके अभाग्य के मूल मे गर्व रहता है।

---

1. "Moral failure loses its power to crush, material loss becomes tolerable, if both can be attributed to a force behind human control"
2. "For the social process the importance of fatalism lies in the ease with which it may serve as a way of escape from responsibilities for social mal-adjustments."

—Ency. of Social Scs. Macmillon—1935 Page 147

अभाग्यशाली होना महत्वपूर्ण होने का एक ढंग है।"[1] मनोविज्ञान की यह बात तीखी होते हुये भी सत्य है किन्तु इस गर्व तथा महानता मे ही पीड़ित व्यक्ति की प्राण-रक्षा निहित है यह भी निर्विवाद है ।

भाग्यवाद का क्षेत्र—भाग्यवाद को अशिक्षित, अर्द्धशिक्षित अथवा मूर्खों तक सीमित समझ लेना भूल होगी । वास्तव मे प्रत्येक व्यक्ति के लिए चाहे वह विद्वान हो या मूर्ख, धनी हो या निर्धन, स्वस्थ हो अथवा अस्वस्थ ऐसे अवसर आते है जब उसको अपनी विवशता का भान होता है तथा किसी अप्रत्यक्ष सत्ता द्वारा वह अपनी परिस्थितियो को सचालित समझ कर परितोष करने के लिए बाध्य होता है । इस अवसर पर ही भाग्यवाद की प्रवृत्ति क्रियाशील होती है । धर्म एव नैतिक आचार के विश्वकोष मे यह विचार निम्नलिखित रूप मे प्रकट हुए है—

" · आगे चलकर मनुष्य की भाग्यवाद के विचार पर पुन वापिस होने की संभावना रहती है जब मानसिक विकास के एक उच्च स्तर पर वह सृष्टि के सकारणत्व क्रम एव अन्त पर सदेह करना प्रारम्भ कर देता है।"[2]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि भाग्यवाद मानव जीवन में करुण रस के उन प्रसंगों में अपेक्षित रूप से प्रकट होता है जिनके अन्तर्गत मानव की विवश एव असहाय परिस्थितियाँ परम निराशा का सृजन करती है । भाग्यवाद की इस प्रवृत्ति से निस्सदेह असह्य शोकानुभूति सह्य बन जाती है । इसीलिए भाग्यवाद परपरागत रूप में प्रत्येक देश एव जाति की सस्कृति का अग बना हुआ है ।

उपर्युक्त धार्मिक एव सामाजिक परिस्थितियो के अन्तर्गत जिस प्रकार जीवन का लक्ष्य आनन्द प्राप्ति निश्चित हुआ तथा दु.ख की परिस्थितियो मे भी इस लक्ष्य की ओर मानव समाज की दृष्टि रही जिसका रूप भाग्यवाद मे प्रतिलक्षित हुआ, ठीक उसी प्रकार साहित्य के रस का लक्ष्य भी आनन्द-प्राप्ति माना गया । **'रस्यते इति रस.'**—जिससे आनन्द प्राप्त हो वही रस है, रस की यह परिभाषा भी इस तथ्य का उद्‌घाटन करती है ।

●

1. "Vanity is at the root of their misfortune. Being unlucky is one way of being important." Alfred Adler—Understanding Human Nature—1937, Page 262.
2. "Further men tend to fall back on the idea of fate, when at a higher level of intellectual development, they begin to doubt of a rational order or a rational end in the universe"

—Enc. of the Religion and Ethics V.6,1912.

: १ :

करुण रस की मनोविज्ञानाश्रित शास्त्रीय समीक्षा

करुण रस

खाद्य रस जिस प्रकार शरीर का पोषण तथा रसना की तृप्ति का साधन होता है उसी प्रकार काव्यरस आभ्यंतर मानस का पोषक तथा हृदय की रसना की तृप्ति करता है ।[1] इस प्रकार भौतिक खाद्य सामग्री के साथ मानसिक भाव-सामग्री मानव-जीवन के लिए समान रूप से अपेक्षित है । भाव-सामग्री मानस की आनन्दानुभूति का साधन है जिसे जीवन की झलक, जीवन का आधार, जीवन की पूर्णता आदि नामो से प्रकट किया जा सकता है । जीव सच्चित् स्वरूप है और सच्चिदानन्द स्वरूप होने की उसकी लालसा है । इस आनन्द-प्राप्ति को ही यदि जीवन का लक्ष्य कह दिया जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी । रसानुभूति के समय मन लौकिक राग-द्वेष से विरत होकर सत्त्व स्थिति को प्राप्त कर लेता है जिसे शास्त्रकारो ने रजोगुण और तमोगुण से अस्पृष्ट मन की स्थिति कहा है ।[2] आचार्य शुक्ल ने इसी को हृदय की मुक्तावस्था नाम दिया है ।

"मैं इस दशा को हृदय की मुक्त दशा मानता हूँ—ऐसी मुक्त दशा जिसमे

१. "यथा हि गुडादिभिर्द्रव्यैर्व्यञ्जनैरौषधिभिश्च षाडवादयोरसा निर्वर्त्यन्ते, तथा नानाभावोपगता अपि स्थायिनो भावा रसत्वमाप्नुवन्ति··· यथा हि नाना व्यञ्जनसस्कृतमन्न भुञ्जाना रसानास्वादयन्ति सुमनस. पुरुषा हर्षादीश्चाप्यधिगच्छन्ति तथा नाना भावाभिनयव्यञ्जितान् वागङ्ग सत्त्वोपेतान् स्थायिभावानास्वादयन्ति सुमनस. प्रेक्षका: ।"—नाट्य शास्त्र छठा अध्याय, श्लोक ३१ के बाद उद्धृत, पृष्ठ २८७–२८६, गायकवाड स०५६

२. "रजस्तमोभ्यामस्पृष्ट मन. सत्त्वमिति स्मृतम्"—साहित्य दर्पण तृतीय परिच्छेद श्लोक २१ के बाद उद्धृत, पृष्ठ ८७, क्षेमरान सं० १९७३

व्यक्ति बद्ध घेरे से छूट कर अपनी स्वच्छंद भावात्मिका क्रिया में तत्पर रहता है।"[1]

आनन्दानुभूति मूल रूप मे अविभाज्य होती है। अतः रस के विभेद—शृंगार, हास्य, करुण आदि उस आनन्दानुभूति के प्रकारान्तर मात्र है। जिस प्रकार लौकिक षट् व्यजनो की आस्वादजन्य भिन्न-भिन्न नामरूपात्मकता है किन्तु मूलत· उनके द्वारा उनके उपभोक्ता को एक रस अथवा एक आनन्द की प्राप्ति होती है, ठीक उसी प्रकार साहित्य के रसो की विभिन्नता भी एक रस या एक आनन्द की प्राप्ति कराती है। यहाँ भी लक्ष्य आनन्द-प्राप्ति है। अतएव करुणरस के द्वारा रस-निष्पत्ति के साधनो मे अन्य रसो के साधनो से स्पष्ट भेद मिलेगा किन्तु करुण रस के साधनो द्वारा जो आनन्दानुभूति सभव होगी वह अन्य रसो से प्राप्त आनन्दानुभूति से किसी प्रकार भी भिन्न नही हो सकती। अस्तु, करुण रस के इन साधनो की व्याख्या ही करुण रस की परिभाषा का क्षेत्र है।

करुण रस की विभिन्न परिभाषाएँ आचार्यों द्वारा समय-समय पर दी गई है। ऐतिहासिक कालक्रम मे उनका अवलोकन यहाँ अप्रासगिक न होगा।

भरत के पश्चात् विक्रम की प्रथम शताब्दी के ग्रन्थ 'जैनागम अनुयोग द्वार सूत्र' के अनुसार करुण रस का विवरण इस प्रकार है—प्रिय के वियोग, गिरफ्तारी, प्राणदण्ड, रोग, पुत्र आदि का मरण, शत्रुओ से भय आदि कारणो से करुण रस उत्पन्न होता है। शोक करना, विलाप करना, उदासी तथा रोना इसके चिह्न है।[2]

अत. भरत के अनुसार इष्टवध दर्शन से अथवा प्रतिकूल वचनो के श्रवण आदि विशेष भावो से करुण रस उत्पन्न होता है।[3]

अश्रुमोचन, रोदन मोह प्राप्ति, विलाप, दैवनिन्दा आदि के द्वारा करुण रस का अभिनय होना चाहिए।[4]

भरत ने व्याख्या करते हुए आगे लिखा है—

शोक स्थायीभाव से करुण रस उत्पन्न होता है। यह शाप, क्लेश, इष्ट नाश, वियोग, वैभवनाश, वध, बन्धन, विप्लव, विनाश, दुख-प्राप्ति आदि विभावो से उत्पन्न होता है। अश्रुपात, विलाप, मुख सूखना, विवर्णता, अग-शिथिलता, दीर्घ श्वास-प्रश्वास, स्मृति लोप आदि अनुभावो द्वारा अभिनय करना चाहिए। निर्वेद, ग्लानि, चिन्ता, औत्सुक्य, आवेग, भ्रम, मोह, श्रम, भय, विषाद, दैन्य, व्याधि, जडता, उन्माद

---

१. चितामणि दूसरा भाग प्रथम सस्करण, पृष्ठ २०५
२. 'नव रसो का एक प्राचीन विवरण'—श्री नाहटा, सरस्वती, मई ५६
३. "इष्टवधदर्शनाद्वा विप्रियवचसा सश्रवाद्वापि।
एभिर्भावविशेषै. करुणरसो नाम सभवति॥—नाट्य शास्त्र ६/६२, पृष्ठ ३१८
४. "सस्वन रुदितैर्मोहागमैश्च परिदेवितैर्विलपितैश्च।
अभिनेयः करुण रसो देहायासाभिधातैश्च॥—नाट्य शास्त्र ६/६३, पृष्ठ ३१८

अपस्मार, त्रास, आलस्य, स्तम्भ, वेपथु, विवर्णता, अश्रु, स्वरभेद आदि इसके व्यभिचारी है ।[१]

काव्यादर्शकार दण्डी के अनुसार इष्टनाश आदि के कारण चित्त की व्याकुलता ही शोक कहलाती है ।[२]

दशरूपककार धनंजय के अनुसार इष्टनाश अथवा अनिष्ट की प्राप्ति से शोक संतत आत्मा करुण रस अनुभव करती है । निश्वास, उच्छ्वास, रोदन, स्तम्भ, प्रलाप अपस्मार, दैन्य, व्याधि, मरण, आलस्य,सभ्रम, विषाद, जडता, उन्माद, चिन्ता आदि व्यभिचारी होते है ।[३]

सरस्वती कण्ठाभरणकार श्री भोज के अनुसार रस जो मूर्च्छा को उत्पन्न करता है, विलाप को उत्पन्न करता है, मृत्यु के लिए मन को प्रेरित करता है तथा चित्त मे दु ख उत्पन्न करता है करुण कहलाता है ।[४]

काव्यानुशासनकार श्री हेमचन्द्र के अनुसार इष्टनाशादि विभाव, दैवनिन्दा आदि अनुभाव तथा दु खमय व्यभिचारियो से उत्पन्न शोक करुण है ।[५]

साहित्यदर्पणकार श्री विश्वनाथ कविराज के अनुसार इष्टनाश एव अनिष्ट प्राप्ति से करुण नामक रस होता है । इसका वर्ण कपोत तथा इसके देवता यम कहे गए है । शोक स्थायी भाव है । शोच्य आलबन, दाहादि उद्दीपन, दैवनिन्दा, भूमि पतन क्रन्दन आदि अनुभाव, वैवर्ण्य, उच्छ्वास, निश्वास, स्तम्भ, प्रलाप, निर्वेद, मोह, अपस्मार, व्याधि, ग्लानि, स्मृति, श्रम, विषाद, जडता, उन्माद, चिन्ता आदि

१ "अथ करुणो नाम शोकस्थायिभाव प्रभव । स च शापक्लेशविनिपतितेष्टजन विप्रयोगविभवनाशवधबन्धविद्रवोपघातव्यसनसयोगादिभिर्विभावै समुपजायते । तस्याश्रुपातपरिदेवनमुख शोषणवैवर्ण्यस्रस्तगात्रतानिश्वासस्मृतिलोपादिभिरनुभावैरभिनय: प्रयोक्तव्य । व्यभिचारिणश्चास्य निर्वेदग्लानिचिन्तौत्सुक्यावेग भ्रममोहश्रम भयविषाद दैन्यव्याधिजडतोन्मादापस्मार त्रासालस्य मरणस्तम्भ-वेथुवैवर्ण्याश्रुस्वर भेदादय: ।"—नाट्य शास्त्र ६/६३ पृष्ठ ३१७

२. "इष्टनाशादिभिश्चेतोवैक्लव्य शोक उच्यचे"—पृष्ठ २६८ भण्डारकर ३८

३ "इष्टनाशादनिष्टाप्तौ शोकात्मा करुणोऽनुतम्
नि:श्वासोच्छ्वासरुदितस्तम्भप्रलपितादय ।" ४/८१ पृष्ठ १०९ पाण्डुरग' ४१

४. "मूर्च्छा विलापौ कुरुते कुरुते साहसे मन
करोति चित दु:खेन योऽसौ करुण उच्यते ।।" पचम परि०, पृष्ठ ७६

५. "इष्टनाशादि विभावो दैवोपालम्भाद्यनुभावो दु खमय व्यभिचारी शोक, करूण:" अ० २ सू० १२

व्यभिचारी होते है।[1]

रसगगाधर प्रणेता पण्डितराज जगन्नाथ कहते है कि पुत्र आदि के वियोग या मृत्यु आदि से उत्पन्न चित्त की व्याकुलता शोक कहलाती है।[2]

वाग्भटालकारकार वाग्भट्ट के अनुसार करुण रस शोक से उत्पन्न होता है। भूपात, रोदन, वैवर्ण्य, मोह, निर्वेद, प्रलाप, अश्रु व्यभिचारी होते है।[3]

रामचन्द्र तथा गुणचन्द्र नाट्यदर्पणकारों के अनुसार मृत्यु, बन्धन, धन-भ्रंश, शाप और आपत्ति से करुण उत्पन्न होता है। अश्रु विवर्णता, दैवनिन्दा आदि से उसका अभिनय होता है। अश्रु विवर्णता, निश्वास, मुख सूखना, स्मृतिनाश, शरीर-शिथिलता आदि अनुभाव होते है। दैवनिन्दा, निर्वेद, ग्लानि, चिन्ता, औत्सुक्य, मोह, श्रम, भय, विषाद, दैन्य, व्याधि, जड़ता, उन्माद, अपस्मार, आलस्य, मरण, स्तम्भ, कम्प, वैवर्ण्य, स्वर-भेद आदि व्यभिचारी भाव होते है।[4]

आचार्य केशव कहते है कि सुख के सब उपाय जहाँ छूट जाते है, वहाँ

---

१. "इष्टनाशादनिष्टाप्ते· करुणाख्यो रसो भवेत।
धीरै कपोत वर्णोऽय कथितो यमदैवतः॥ ··· २५२ पृ० २६७
शोकोऽत्र स्थायिभाव. स्याच्छोच्यमालम्बन मतम्।
तस्य दाहादिकाऽवस्था भवेदुद्दीपन पुन॥ ··· २६३
अनुभावा दैवनिन्दा भूपातक्रन्दितादय।
वैवर्ण्योच्छ्वासनि.श्वास स्तम्भप्रलपनानि च॥ २५४
निर्वेदमोहोपस्मार व्याधिग्लानिस्मृतिश्रमा.।
विषादजडतोन्माद चिन्ताऽऽद्याव्यर्भिचारिण.॥ २५५

२. "पुत्रादिवियोगमरणादिजन्मा
वैक्लव्याख्यश्चित्तवृत्ति विशेष. शोक.।—"पृष्ठ १३० विद्याभवन बनारस' ५५

३. "शोकोत्थः करुणो ज्ञेयस्तत्र प्रणतरोदने।
वैवर्ण्यमोहनिर्वेदप्रलापाश्रुणि कीर्तयेत्॥ ५/२१ खेमराज सं० १६६२

४. "मृत्यु बन्ध धनभ्रशशाप व्यसन सभव
करुणोऽभिनयस्तस्य वाष्प वैवर्ण्य निन्दनैः।" तृ० विवेक/११६

शापोऽभिमत वियोगहेतुर्दिक प्रभाववत आक्रोश· व्यसनमर्थ.। अनेन देशोच्चाटनादेर्जात विप्लवजात संग्रह्यते। एभ्यो विभावेभ्य शोक स्थायी करुणो रस सम्भवति। वाष्पवैवर्ण्याभ्या नि श्वासमुखशोष स्मृतिलोपस्रस्त-गात्रताऽऽदयोऽनुभावा सूचिता.। निन्दनमात्मनोर्दैवस्यान्यस्य चोपालम्भः। अनेन रुदितप्रलपितोररताडनादि गृह्यते। व्यभिचारिणस्तस्य निर्वेदग्लानि-चिन्तौत्सुक्य मोह श्रम भय विषाद दैन्य व्याधि जडतोन्मादापस्मारालस्य मरणस्तम्भवेपथु वैवर्ण्याश्रु स्वरभेदादय इति।"—पृष्ठ ३४, स० १६२६ ओरियन्टल इंस्टीट्यूट बड़ौदा

करुणरस स्वतः ही आकुल होकर उत्पन्न होता है।[1]

देव कहते है कि इष्टनाश तथा अनिष्ट को सुनकर मन मे शोक उत्पन्न होता है, चार प्रकार से आशा छूट जाती है इस स्थिति को करुण कहते है।[2]

महाराजकुमार श्री बाबूसिह हिन्दूपति कहते है कि जिसके सुनने से शोक चित्त करुणामय हो जाता है उस कविता को कवि करुणारस की कविता कहते है।[3]

प्रवृत्तिवादी मैकडूगल के सिद्धान्तो के अनुकूल आचार्य शुक्ल ने रस का विवेचन निम्नलिखित रूप मे किया है—

१. भाव दशा, २. स्थायी दशा और ३ शील दशा।

शोक के सबध मे आचार्य शुक्ल के विचार इस प्रकार है।[4]

एक अवसर पर एक आलंबन के प्रति	अनेक अवसरो पर एक आलबन के प्रति	अनेक अवसरो पर अनेक आलबनो के प्रति
भाव दशा	स्थायी दशा	शील दशा
शोक	सताप	खिन्नता

आगे भावो के वर्गीकरण मे उन्होने दो प्रकार के भाव माने है— (अ) सुखात्मक, (आ) दु खात्मक।

सुखात्मक के अन्तर्गत राग, हास, उत्साह आश्चर्य तथा दु,खात्मक के अन्तर्गत शोक, क्रोध, भय एव जुगुप्सा रखे है। शोक के सबध मे दिया गया उनका विवरण निम्नलिखित है—

चेतन धारण (आलबन) (Cognition)	पीडित, गत या नष्ट इष्ट व्यक्ति या वस्तु अथवा कोई अत्यन्त अनिष्ट।
इच्छा या सकल्प (Conation)	दु ख के भार से मुक्त या हलके होने की।
गति या प्रवृत्ति (कायिक) (Tendency)	सिर छाती पीटना, भूमि पर गिरना, रोना।

---

१ "छूटि जात केशव जहाँ, सुख के सबै उपाय।
करुणारस उपजत तहाँ, आपुनते अकुलाय॥"
—रसिकप्रिया स० १९७१, खेमराज श्रीकृष्णदास, बनारस

२. "बिनसे ईठ अनीठि सुनि मन मे उपजत सोग।
आसा छूटे चारि विधि, करुन बखानत लोग॥"
—शब्द रसायन, हि० सा० स०, प्रयाग

३. "शोक चित्त जाके सुने करुणामय ह्वै जाय।
ता कविताई को कहै, करुणारस कविराय॥"—काव्यनिर्णय

४. रसमीमांसा स० २००६, भाव की दशाएँ, पृष्ठ १८६
रसमीमासा स० २००६,—भाव-वर्गीकरण, पृष्ठ १९३
रसमीमांसा सं० २००६,— संचारीभाव, पृष्ठ २००

लक्षण (सात्त्विक) (Symptom)	अश्रु, वैवर्ण्य, गद्गद् कण्ठ, उच्छ्‌वास, निश्वास ।
भाव (Emotion)	शोक
संचारीभाव (दुःखात्मक)	लज्जा, असूया, अमर्ष, अवहित्था, त्रास, विषाद, शका, चिन्ता, नैराश्य, उग्रता, मोह अलसता, उन्माद, असतोष, ग्लानि, अपस्मार मरण, व्याधि ।
(उभयात्मक)	आवेग, स्मृति, विस्मृति, दैन्य, स्वप्न, चित्त की चचलता

पाश्चात्य मनोवैज्ञानको मे से वन्डट का भाव विभाजन करुणरस की परिभाषा के अन्तर्गत आ सकता है । शोक का अध्ययन करते हुए वन्डट ने स्थायीभाव शोक का सभावित सचारीभावो सहित एक विभाजन-रेखाचित्र दिया है जो शोक के व्यापक क्षेत्र तथा अपेक्षित अँग-प्रत्यगो का प्रकटीकरण करता है । वन्डट द्वारा दिए गए रेखाचित्र के आधार पर शोक का निम्नलिखित रेखाचित्र प्रस्तुत किया जा सकता है ।

अ—शुद्ध स्वसवेद्य[1]

शोक

शुद्ध स्वसवेद्य — मध्यगत रूप — स्वसवेद्य-परसवेद्य

बाह्य भावात्मक विरत मुख उत्तेजक से सम्बन्धित उदास, निराश

शोक या शोकानुभूति

बाह्य भावात्मक क्रिया-शील उत्तेजक से सम्बन्धित वेदना, चिन्ता

आ—पर सवेद्य

विराग (जडता) — खेद (अप्रसन्नता)

अरुचि — विमुख, अनिच्छुक

दुःख, सताप व्याकुलता, पीडा, चिढाना, खिझाना

द्वेष, क्रोध अमर्ष

1 Wundtian Classification of Emotion-The Psychology of Feeling and Emotion Ed. 36, Page 117.

A—Subjective Forms

करुणरस की परिभाषा का विकास

उपर्युक्त परिभाषाओ के आधार पर एक सक्षिप्त सारणी बनाई जा सकती है जो समूहालम्बनात्मक रूप में करुण रस की शास्त्रीय परिभाषा कही जा सकती है। इस परिभाषा के अग-प्रत्यगो का विवेचन आगे किया जायगा।

करुण रस की परिभाषा—

देवता—यम।

रग—गृह कपोत के समान।

आलबन—इष्टनाश एव अनिष्ट प्राप्ति। प्रिय बन्धु बान्धव एव पुत्रादि का मरण एव वियोग। धन वैभव का नाश। पराजय, पराभव, बन्धन एव वध। धर्म अपघात एव शाप। क्लेश एव दुख प्राप्ति।

उद्दीपन—प्रिय जनो के दाह कर्म, वस्त्रादि के दर्शन, गुण-कथन, भूतकालीन वैभव का

Grief ✓

Purely Subjective (Relationship to an outwaid or external emotional stimulus retiring) Melancholy Dejection

Intermedi te Sorrow Sadness

Subjective-Objective (Relationship to external emotional stimuli Prevalent) Afflicion worry

B—Objective Forms

Aphathy

Oscillation about different point with tendency toward side of unpleasantness

Displeasure

Subjectively directed (with prevalent subjective fusions of feeling)

Objectively (directed with prevalent objective assimilation of feelings Anger, Wrag Wrath

Disgust Loathing

Annoyance Vexation Exasperation

स्मरण एव कथन, वर्तमान असहायावस्था, बन्धन के साधन, विजेता के आनन्द मगल ।

अनुभाव—भूमिपतन, रोदन, देव-निन्दा, आत्मनिन्दा, भाग्य-निन्दा आदि तथा विवर्णता, उच्छ्वास, स्तम्भ, प्रलाप, स्वरभग, अश्रु, मुखसूखना, कम्प आदि

सचारी—निर्वेद, व्याधि, ग्लानि, स्मृति, विषाद, जडता, उन्माद, चिन्ता, मोह, अपस्मार, श्रम, दैन्य, आलस्य, मरण, शका आवेग, त्रास, औत्सुक्य, भय, असूया, लज्जा, अमर्ष, अवहित्था, नैराश्य, असतोष, विस्मृति, स्वप्न, चित्त की चचलता आदि ।

स्थायी भाव—शोक

करुण रस के देवता और रग—किसी वस्तु की चित्रात्मक एव सुग्राह्य अभिव्यक्ति के लिए प्रतीक रूप मे रूप एव धर्म-साम्य के आधार पर समगुण धर्म स्वभाव वस्तुओ के उदाहरण दिये जाते है । रस के देवता तथा रग के निर्णय मे भी यह बात प्रतिलक्षित होती है । साथ ही देवता को किसी विषय के अधिष्ठाता के रूप मे भी मानते है । इस रूप मे भी देवता की तद्रूपात्मकता एव तदाकारवृत्ति की ओर सकेत रहता है । इस सबध मे उपाध्याय जी के भी ऐसे ही विचार है—

"जिस रस का जो गुण, स्वभाव और लक्षण होता है, उसका देवता प्राय. उन्ही गुणो और लक्षणादि का आदर्श होता है, क्योकि उसी के आधार से उस रस की कल्पना होती है ।"—(रसकलस, पृष्ठ ७)

अत: करुण रस के देवता यम है—इसका आशय यह है कि करुण रस के (आश्रय के) गुणकर्मस्वभाव यम के सदृश होगे । करुण रस का वर्ण कपोत चित्रत है, इसका तात्पर्य यह है कि करुण रस के आश्रय की बाह्य अभिव्यजना (अनुभाव) कपोत वर्ण के समान होगी ।

यम के दो रूप प्रसिद्ध है—

१—उपनिषद् काल के यम ।

२—पौराणिक काल के यम ।

उपनिषद् काल के यम एक आचार्य के रूप मे सम्मुख आते है । वे ब्रह्मज्ञान के प्रकाण्ड पण्डित है । नचिकेता उपाख्यान उनके इस व्यक्तित्व का प्रमाण है । यम को मृत्यु नाम से भी सबोधित किया गया है । नचिकेता के पिता उसे मृत्यु को देते है । कहना न होगा कि यह मृत्यु "मरण" का पर्याय ही है किन्तु इस मृत्यु मे निम्नलिखित विशेषताएँ है—

१—नचिकेता यम का अतिथि समझा जाता है ।

२—अपने आतिथ्य सत्कार स्वरूप नचिकेता वरदान प्राप्त करता है ।

३—नचिकेता पुन. भूलोक को लौट आता है ।

डा० मूर ने ऋगवेद के आधार पर यम का निम्नलिखित वर्णन दिया है—

"निरभ्र दिवस के क्षेत्र मे जहाँ यम प्रत्येक आनन्द को प्रदान करते है और प्रत्येक कामना संतुष्टि प्राप्त करती है वहाँ तुम्हारी आनन्दानुभूति कभी क्षीण न होगी [१] ।"

यम का दूसरा रूप पौराणिक काल से प्रारम्भ होता है तथा आज भी उसी रूप में प्रचलित है । इस काल के यम वैदिक काल के यम से नितान्त भिन्न है । जहाँ वैदिक काल के यम ब्रह्मज्ञानी है तथा पुण्यात्मा व्यक्तियो के लिये मगलदाता तथा उनकी श्रद्धा एव भक्ति के आधार है वहाँ परवर्ती काल के यम भयावह राक्षसेन्द्र है । वह नरयान मे आरूढ है तथा खड्ग-खेटक धारण किये हुए राक्षसो से आवृत्त है[२] ।

उपनिषद् काल के यम ब्रह्मज्ञानी है । ब्रह्मज्ञान के अन्तर्गत आत्मज्ञान मुख्य विषय है । आत्मज्ञान की प्राप्ति करुण रस से सभव है ।/भौतिक जगत मे मानव अपनी असहायावस्था तथा प्रकृति के नियमो के समक्ष अपनी कटु विवशता का अनुभव उस समय करता है जब वह देखता है कि इष्टनाश तथा अनिष्ट प्राप्ति के सबध मे वह कुछ भी व्यतिक्रम नही कर पाता । अपनी विवशता मे वह अति कातर हो उठता है । इस विवशता एव कातरता की स्वानुभूति के कारण अन्य प्राणियो के साथ उनके इष्टनाश तथा अनिष्टप्राप्ति के समय उसकी सहानुभूति हो उठना अति स्वाभाविक है ।/ उसकी यह दशा यम के इस प्रथम रूप मे पूर्ण मेल खाती है । साथ ही यहाँ यह स्पस्ट कर देना भी आवश्यक है कि घटना कालक्रम मे नाट्यशास्त्र की रचना पौराणिक काल से पूर्व हो चुकी थी । अतएव यम के उपनिषद् काल के रूप की ही प्रतिष्ठा नाट्यशास्त्र मे हुई होगी ।

कुछ आचार्यो ने (विशेष कर हिन्दी के) करुण-रस के द्रवीभूत हृदय तथा अश्रुपूर्ण नेत्रो को दृष्टिगत रख कर जल के देवता वरुण को ही करुण का देवता माना है ।

करुण रस का रग—कपोत वर्ण के समान माना गया है । कपोत से यहाँ गृह कपोत से तात्पर्य है जिसका वर्ण मलीन होता है । जैसा कि अन्य रसो के उदाहरणो से प्रकट है आचार्यो का अभिप्राय कपोत के रग मात्र से है—स्वय कपोत से नही है ।

१. In those faie realms of cloudless day.
Where Yama every joy supplies
And every longing satisfies
Thy bliss shall never know decay.
—Dr. Muir—Hindu Mythology by W J. Wilkins.

२. राक्षसेन्द्र प्रवक्ष्यामि निर्ऋत (ति)
नैर्ऋते (ती) स्थितम्) ।
नरयानसमारूढ रक्षोभिर्बहुभिर्वृ तम्
कालमेष (घ) समाभास खड्ग खेटक धारिणम्"
--सोमेश्वर-यानसोल्लास—८८४, १६३६ ई०

अतएव कपोत की भावभगिमा तथा सरलता से यहाँ कोई प्रयोजन नही है। मलिन स्वत: कोई रग नही होता। इसलिये कपोत के उदाहरण द्वारा मलिनता का प्रकटीकरण किया गया है।

भरत ने शोकदृष्टि का मनोवैज्ञानिक अध्ययन करते हुए लिखा है।

"शिथिल पलक, जलपूर्ण नेत्र, अवरुद्ध नेत्र तारे—इस प्रकार मन्द संचारिणी दीनता प्रकट करने वाली शोकदृष्टि कही जाती है।"[1]

शोक दृष्टि के उपर्युक्त वर्णन द्वारा करुण रस के आश्रय की मलिनवर्णता स्पष्ट है। इस प्रकार करुण रस के वर्ण का कपोतचित्रित कथन, शोकाकुल व्यक्ति का सजीव चित्र खीचने का प्रयास है तथा हमारी भावनाओ को शब्द के साथ रूप देने की व्यवस्था की गई है। प्राचीनो की सभवत. यही धारणा रही होगी कि वर्ण के प्रतीक द्वारा भाव-जगत के तथ्यो को सुग्राह्य रूप दिया जाय तथा कहना न होगा कि मलिनवर्ण कपोत तथा करुण-रस इस दृष्टि से कितने उपयुक्त बैठे है।

करुण रस के भेद—सस्कृत के आचार्यो मे भरत, भावप्रकाशकार तथा भानुदत्त आदि ने करुण रस के भेदो का विभिन्न दृष्टिकोणो को लेकर विवेचन किया है। इन भेदो से जैसा कि आगे दिये गए विवरण से प्रकट होगा, करुण-रस के सबध में किसी विशेष तथ्य का उद्घाटन नही होता। ये भेद तो करुण-रस के कारण, प्रभाव और मात्रा आदि की व्याख्या ही करते हैं।

भरत के नाट्यशास्त्र (अध्याय ६, ७८) मे करुण रस के तीन भेद दिये गये है जो करुण रस की उत्पत्ति के कारणो का उल्लेख मात्र करते हैं—१. धर्मोपघातज, २. अपचयोद्भव, ३. शोककृत।

भावप्रकाशकार ने करुण को मानसिक वाचिक और कायिक तीन प्रकार का माना है। ये भेद अनुभाव के सदर्भ मे करुण का विवरण प्रस्तुत करते है। भावप्रकाशकार की दृष्टि मन वचन और कर्म की ओर रही है। इस प्रकार इन भेदो से भी किसी विशेष तथ्य का उद्घाटन नही होता इनको करुण की अनुभावगत व्याख्या कहना उचित होगा।

भानुदत्त की रस-तरगिणी मे स्वनिष्ठ और परनिष्ठ नामक दो भेदो की कल्पना की गई है। जब स्वय आश्रय ही करुण का आलबन बन जाय तो स्वनिष्ठ करुण और जब आश्रय से पृथक आलंबन से करुण रस संबधित हो तो परनिष्ठ कहा जाय। दूसरे

---

१. अवस्रस्तोत्करपुटा
रुद्धतारा जलाविला
मन्द सञ्चारिणी दीना
सा शोकेदृष्टिरुच्यते"
—नाट्य-शास्त्र ८-५६ गायकवाड़' ३४ प० ६

शब्दों मे कह सकते है कि स्वनिष्ठ के अन्तर्गत आश्रय और आलंबन एक हो जाते है जबकि परनिष्ठ के अन्तर्गत दोनों की पृथक स्थिति बनी रहती है।

इसी प्रकार कारण को दृष्टिगत रखकर निम्निलिखित भेद भी किये गये हैं— इष्ट जन्य, स्मृत अनिष्ट-जन्य तथा श्रुत-अनिष्ट जन्य।

हिन्दी के आचार्यों में देव ने अपने काव्यरसायन मे करुण के पाँच भेदो की कल्पना की है।

/ "करुना, अतिकरुना अरुमहाकरुन लघु हेतु।
एक कहत है पाँच मे, दुख मे सुखहि समेत॥"

रस-निष्पति की दृष्टि से करुण रस के भेद करना सगत प्रतीत नही होता। एक ही रस का विभाजन करने का तात्पर्य अनुभूति के भेद-क्रम को स्थापित करना है जो असगत न होते हुए भी दुष्कर अवश्य है। साथ ही अनुभूति का भेदक्रम विषय-गत कम तथा व्यक्तिगत अधिक होता है। इसलिए सामाजिक की अनुभूति की दृष्टि से इस विभाजन का रूप निश्चित करना लगभग असभव है। इसलिये देव को छोडकर हिन्दी के अन्य किसी आचार्य ने इस प्रकार के विभाजन को प्रश्रय नही दिया। सूक्ष्म विवेचन से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि कवि का यह विभाजन वर्णन-प्रकारान्तर मात्र है। करुण, अतिकरुण तथा महाकरुण विषय की शोकसतापाक्रान्त प्रवृत्ति की उत्तरोत्तर वृद्धि को प्रकट करते है। महाकरुण तक पहुँच कर कवि मरण की पूर्ण सम्प्राप्ति करा देता है। लघुकरुण तथा सुखकरुण कारुणिक दिनों के स्मृतिरूप हैं। लघु करुण के अन्तर्गत महान आपत्ति से अभी त्राण मिला है तथा उस आपत्ति की स्मृति के सदर्भ मे वर्तमान सुरक्षित स्थिति संतोष का विषय है। सुख करुण में सुख के उपकरणो मे दु.ख के दिवसो की स्मृति होती है जो वर्तमान सुख को प्रियतर बना देती है।/

करुण रस की उत्पत्ति—करुण रस की उत्पत्ति के संबंध में मनीषियो के विभिन्न विचार है। उनका सक्षेप मे यहाँ अवलोकन कर लेना उचित होगा।

१. भरत मुनि ने नाट्यशास्त्र मे मूलत चार रस माने है—शृंगार रौद्र, वीर तथा वीभत्स। करुण रस की उत्पत्ति उन्होने रौद्र रस से मानी है।[1]

रसास्वाद के समय चित्त की निम्न चार दशाएँ होती हैं[2]—विकास, विस्तार, विक्षोभ तथा विक्षेप। यही चार दशाएँ साहित्य मे क्रमशः शृंगार, वीर, वीभत्स

१. "शृंगाराद्धि भवेद्हास्यो—रौद्राच्च करुणो रसः" ६—३९ ना० शा० गायकवाड ५६, पृ० २९५

२ स्वादः काव्यार्थसभेदादात्मानन्दसमुद्भवः।
विकाशविस्तरक्षोभविक्षेपैः स चतुर्विध॥ ४/४३
शृङ्गार—वीर—वीभत्स—रौद्रेषु मनसः क्रमात्। ४/४४
हास्याद्भुतभयोत्कर्षकरुणाना त एव हि॥"—दशरूपक

तथा रौद्र के नाम से प्रकट हुई है। इन मूल चार रसो से पुन: अन्य चार रसों की उद्‌भावना हुई। इस प्रकार इन आठ रसो का रेखा-चित्र निम्नलिखित रूप में दिया जा सकता है—

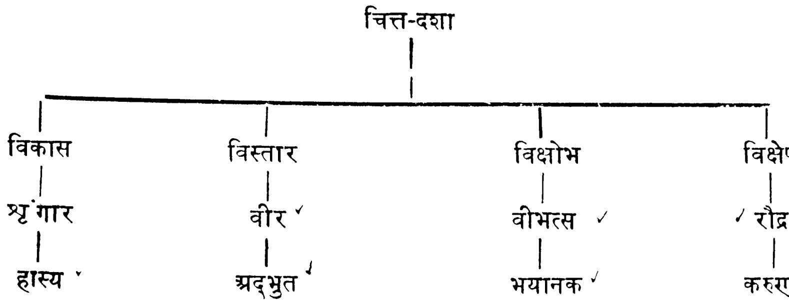

२. शारदातनय ने (भावप्रकाश मे) मूल चार रसो की उत्पत्ति वेदो से मानी है। उनके अनुसार सामवेद से शृंगार रस, ऋग्वेद से वीर रस, अथर्ववेद से रौद्र रस तथा यजुर्वेद से वीभत्स रस उत्पन्न हुए तथा रौद्र रस की जो क्रूर क्रिया है वही करुण रस है।[1]

३. महर्षि व्यास के अनुसार जगत सहार के पश्चात् शिव ने ब्रह्मा को बनाया तथा ब्रह्मा से सृष्टि रचना के लिए कहा। ब्रह्मा ने सृष्टि रचना के पश्चात् पिछले कल्प की भगवान् शिव की लीलाओ को देखना चाहा। नदिकेश्वर उनके सम्मुख प्रकट हुए। उन्होंने ब्रह्मा को सम्पूर्ण नाट्यवेद पढाया तथा अपनी बताई हुई विधि के अनुसार एक रूपक रचने तथा भारतो की सहायता से खेलने को कहा।

त्रिपुरवध रुपक बना और खेला गया। उसमे जब वीरभद्र ने दक्षयज्ञ विध्वस किया तथा देवताओ को भिन्न-भिन्न प्रकार से दण्ड दिया तब उन भिन्न कर्णनासा दीन तथा आर्त की भाँति रोते और विलाप करते हुए स्त्री-पुरुषो को देखकर करुण और रौद्र की उत्पत्ति हुई।[2]

४. रस-उत्पति के सम्बन्ध मे एक दूसरा सिद्धान्त निम्नलिखित है। शिव ने इसको सूर्य से कहा तथा योगमाला सहिता मे इसका वर्णन हुआ। (भरत के नाट्य-शास्त्र मे इसका विवरण नही दिया गया है किन्तु भोज ने अपने शृङ्गार-प्रकाश मे इसका उल्लेख किया है।)

'इस सिद्धान्त के अनुसार अहं अपनी अभिमान वृत्ति एव इन्द्रियो द्वारा बाह्य

१. "शृङ्गार उदभूत्सामो वीरोऽभूद्‌वितो ऋच:
अथर्ववेदतो रौद्रो वीभत्सो यजुष· क्रमात्।
क्रूर क्रिया या रौद्रस्य सैव स्यात्करुणाह्‌वया"—भावप्रकाश, तृ० अधि०

२. "रुद्रेण वीरभद्रेण दक्षस्य ध्वसिते मखे
दण्डितेषु च देवेष नाना प्रहरणै. पथक।"

वातावरण के सम्पर्क में आता है तब यह अहंकार सत रज तम तीन गुणों के अनुकूल जिस गुण से अह अभिभूत होता है उसी के अनुकूल विभिन्न प्रकटीकरण के साथ रस-रूप को प्राप्त होता है।

इस प्रकार रस केवल नायक और नायिका का अहकार है जो भावगुणो के साथ विभिन्न रूप धारण कर लेता है। जब रगमच पर एक नाटक खेला जाता है तब दर्शक जो नायक तथा नायिका के अहकार के समान अहकार से अभिभूत है मानसिक रूप मे अपने आपको उसी स्थिति मे ले जाते हैं जिसमे पात्र-भीम और हनुमान (जब द्रोपदी तथा सीता दु शासन तथा रावण द्वारा त्रासित थी) रगमच पर होते है।

जब दर्शक मण्डली आठ प्रकार के भावो शृङ्गारादि का अनुभव करती है तब यह समझना चाहिए कि अह अपने आठ प्रकार के भावो मे परिवर्तित कर रहा है जिनको आठ प्रकार के रस कहा जाता है।[1]

५. तैत्तिरीयोपनिषद् के ब्रह्मानन्द बल्ली के अन्तर्गत रस परमानन्द की अनुभूति के लिए प्रयुक्त हुआ है। श्रुति का तात्पर्य—

"यह पुण्यरूप भगवान ही रस कहे जाते है क्योकि यह आनन्दप्रद है। यह जीवात्मा इसी रस को पाकर आनन्दयुत होता है।[2]

६ करुण रस की उत्पत्ति इच्छा से भी मानी गई है। इच्छा के दो रूप होते है— राग और द्वेष या काम एव क्रोध। राग के प्रीति रूप का शृङ्गार से, सम्मानरूप का अद्भुत से तथा दया रूप का करुण रस से सम्बन्ध है।

७. इसी प्रकार प्रकृतियो से भी रस की उद्भावना की गई है। प्रकृति तीन है—सत, रज, तम।

तम से—रौद्र, वीर, भयानक उत्पन्न होते है।

उपर्युक्त सिद्धान्तो का विवेचन करने से ज्ञात होगा कि इनमे से कुछ उत्पत्ति-मूलक है, अन्य रस के गुणस्वभाव सम्बन्धी तथा दूसरे परम्परानुगत। इनका सक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है —

परम्परानुगत—क्रमाक १,२

---

१. अग्रेजी मे भूमिका-शारदातनय, भावपकाश, गायकवाड ओर० सीरिज के अन्त मे उद्धृत।

२. "यद् वै तत्सुकृतम्। रसो वैस "७/११

सत से—शान्त, वीभत्स तथा अद्भुत उत्पन्न होते है।

रज से—शृङ्गार, करुण एव हास्य उत्पन्न होते है।

"विलोक्य तान्प्रलपतश्छिन्नकर्णाक्षिनासिकान्
दीनान्देव्या सखीनां च करुणो यद्भून्महान्
तस्मात् प्रवृत्तः करुणो रौद्रादिति विभाव्यते...।"—भाव प्र० तृ० अधि०

रूप प्रकाशक—क्रमांक ३
उत्पत्तिमूलक—,, ,, ४, ६ और ७
समानधर्मी— ,, ,, ५

परम्परागत सिद्धान्तों में करुण रस की उत्पत्ति रौद्र से मानी गई है तथा रौद्र के समय चित्त की विक्षेप दशा बताई गई है। विक्षेप का अर्थ होता है—इधर-उधर भटकना, फेंकना। चित्त की यह दशा रौद्र में और विशेषकर करुण में अति स्वाभाविक है। आपत्ति के समय चित्त का इधर-उधर भटकना तथा आपत्ति-मुक्ति के लिए प्रयत्न करना प्रकृति की रक्षा योजना का एक मुख्य साधन है जिससे आपद्ग्रस्त मानव की रक्षा संभव हो जाती है। साथ ही चित्त की एकाग्रता के अभाव में दुःख का भार भी वाह्य हो जाता है। इस प्रकार चित्तदशा से सम्बन्धित यह सिद्धान्त मनोवैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित है। परम्परागत दूसरे सिद्धान्त मे रौद्र एव करुण की उत्पत्ति अथर्ववेद से बताई गई है। इस सिद्धान्त की कोई सहेतुक व्याख्या सभव प्रतीत नही होती। संभवतः उत्पत्ति की अलौकिकता सिद्ध करने के लिए इस सिद्धान्त की कल्पना की गई हो।

रूपप्रकाशक तथा समानधर्मी सिद्धान्त उत्पत्ति के सम्बन्ध मे कोई प्रकाश न डालकर करुण रस का वर्णन एवं अनुभूति मात्र उपस्थित करते हैं। अतः उनके सबंध में किसी विवेचन की आवश्यकता नही है।

उत्पत्तिमूलक सिद्धान्त—क्रमाक ४, ६, ७ मे अहकार का सिद्धान्त ही प्रमुख है। प्रकृति का सिद्धान्त इसके अन्तर्गत ही आता है। अहकार सत-रज और तम तीन गुणो के अनुकूल ही अभिभूत होता है। अतएव कहा जा सकता है कि रज या तम प्रकृति से अभिभूत अहं के द्वारा करुण की उत्पत्ति होती है। इच्छा सिद्धान्त के अन्तर्गत करुण के सामाजिक की करुणा एव दया की प्रवृत्ति की ओर सकेत किया गया है। इस प्रकार यह सिद्धान्त पृथक किसी अन्य तथ्य का उद्घाटन नही करता।

अतः अहंकार का सिद्धान्त प्रमुखत यहाँ विवेचन अपेक्षी है। अह का मनोवैज्ञानिक अध्ययन यहाँ इस प्रसग पर प्रकाश डालने के लिए आवश्यक होगा। फ्राइड द्वारा उसका जो अध्ययन प्रस्तुत किया गया है वह अगले पृष्ठों में स्पष्ट वर्णित है। अहं का मनोवैज्ञानिक अध्ययन अगले चित्र मे भी स्पष्ट हो जावेगा—

अहं का मनोवैज्ञानिक अध्ययन

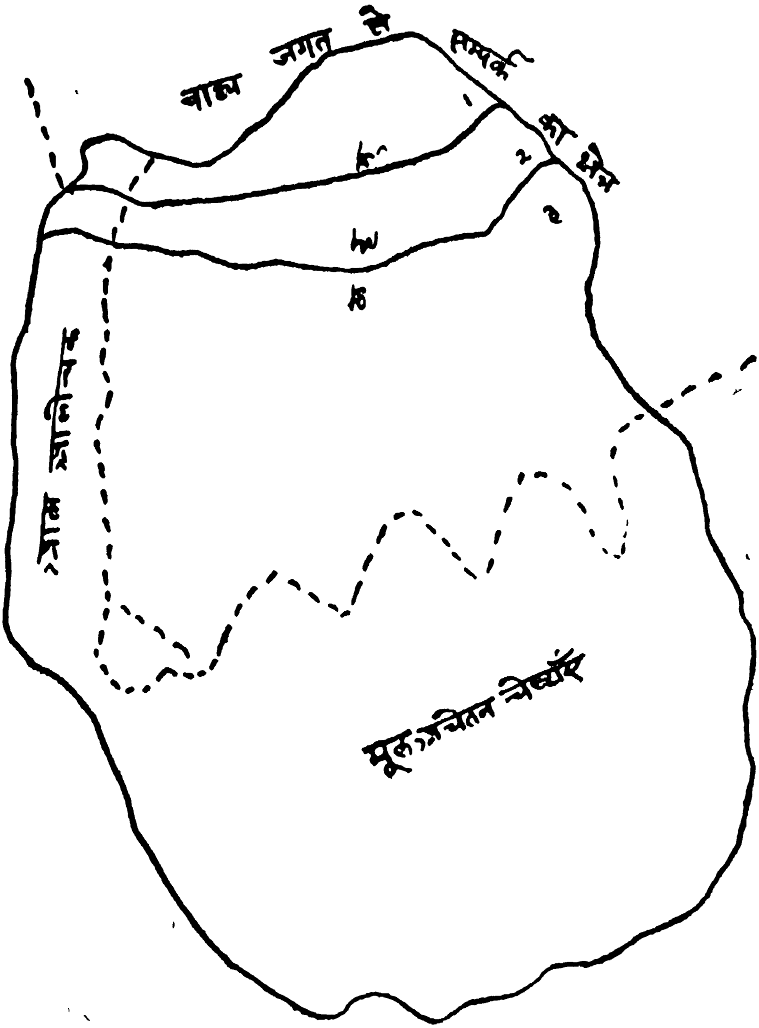

१ चेतन
२ अर्द्धचेतन
३ अचेतन

अहम् = Ego आत्म आलोचक = Super Ego
मूल अचेतन चेष्टाएँ = Id
After-Freud—"His Dream and Sex Theories" Page 85,86 Pocket Book. Inc. Rockefeller Center. N.Y.Septr 48 Edn

अहं का मनोवैज्ञानिक अध्ययन

मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के आधार पर मानव-मस्तिष्क के तीन रूप माने गये है—१. चेतन, २. अर्द्धचेतन और ३. अचेतन।

फ्राइड के अनुसार वे प्रवृत्तियाँ जो सामाजिक बन्धन अथवा अन्य किन्ही कारणो से वाह्य जगत में प्रकट नही हो पाती, अचेतन रूप धारण कर लेती है। इनको अचेतन चेष्टाएँ नाम दिया गया है। इन्ही मूल अचेतन चेष्टाओ के एक अश का नाम "अह" है। अह की पहुंच चेतन-स्तर तक रहती है। उसका कार्य चेतन और अचेतन जगत में समझौता कराने का होता है। अह साथ ही अचेतन चेष्टाओ की मागो को पूरा करने की चेष्टा भी करता है। किन्तु चेतन जगत के अधीन होने के कारण वह स्पष्ट एव प्रत्यक्ष रूप से यह कार्य नही कर पाता। उसके कार्यो एव क्रियाकलापों का निरीक्षण आत्मालोचक करता है। इस प्रकार अह को तीन ओर खिचना पडता है—अचेतन जगत की ओर, चेतन जगत की ओर तथा आत्म आलोचक की आदर्शनिष्ठा की ओर। अह मूल अचेतन चेष्टाओ की सतुष्टि के लिए भिन्न-भिन्न उपाय निकाल लेता है तथा आत्म-आलोचक को भी भुलावा देकर वह उनको सतुष्ट कराता है। इस प्रकार धूम्रपान, प्रसाधन एव शृगार तथा काव्यादि रचना मूल-अचेतन चेष्टाओ की सतुष्टि के प्रकारमात्र है। इस प्रसग के और स्पष्टीकरण के लिए पृष्ठ ३९ पर दिये गये अह के अध्ययन का चित्र द्रष्टव्य है।

एलैफ्रड एलडर ने फ्राइड की 'कामवासना' के स्थान पर 'विजय कामना' को अपनी मान्यता का आधार बनाया है। 'हीनता-ग्रन्थि' एडलर की अपनी खोज थी। एडलर की दृष्टि से करुणरस का मनोवैज्ञानिक विवेचन निम्नलिखित रूप मे किया जा सकता है।

रसानुभूति दो रूपों मे होती है—आलम्बन एव आश्रयगत तथा समाजिकगत। आलम्बन एवं आश्रयगत अनुभूति के अन्तर्गत दैव एव भाग्य निन्दा के अवसर प्राय उस समय आते हैं जब इष्टनाश तथा अनिष्ट प्राप्ति के समय मनुष्य अपनी विवशता तथा असहायावस्था का अनुभव करता है किन्तु अपने आपको अभाग्यशाली कहना भी दूसरे शब्दो मे अपना महत्व प्रकट करना है। यह प्रवृत्ति 'विजय कामना' से प्रेरित होती है। अल्फ्रेड एलडर ने इस सम्बन्ध मे स्पष्ट लिखा है कि—

"उनके अभाग्य के मूल मे उनका गर्व है। अभाग्यशाली बनना महत्वपूर्ण होने का एक ढंग है।"

सामाजिकगत अनुभूति के अन्तर्गत आर्त्त एव सतप्त प्राणी के प्रति सहानुभूति प्रदर्शन आता है। सामाजिक या दर्शक का करुणा प्रदर्शन 'विजय कामना' का ही रूप होता है। करुणाप्रदर्शको को इस प्रकार के अपने कार्यों द्वारा दीन एव आर्त्त प्राणियो पर (जिन पर करुणा प्रदर्शन का दिखावा वह किए हुए होते है) वास्तव में अपनी महत्ता तथा सरक्षित स्थिति के प्रदर्शन का अवसर मिल जाता है। इस प्रकार उनकी हीन

भावना ग्रन्थि सतुष्टि प्राप्त करती है ।[1] एडलर के यह विचार सूक्ष्म-दृष्टि से सार-पूर्ण प्रतीत होते है ।

फ्राइड ने जिसे अचेतन मन कहा है तथा महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है जुग ने उसकी दो रूपो मे कल्पना की—व्यक्तिगत अचेतन तथा जातीय अचेतन (Racial unconscious)। जुग ने जातीय अचेतन (समष्टि मन) की काव्य-कला तथा मानव की अन्य आदर्श कामनाओ तथा अध्यात्मिक साधना, ईश्वरत्व एव देवत्व की कल्पना एव उसमे आस्था तथा अन्यान्य अच्छाइयो का आधार माना है और इस प्रकार फ्राइड की भावनाओ को बिल्कुल नवीन रूप दिया है । कहना न होगा कि जुग का जातीय अचेतन भारतीय मनीषियो के वासना अथवा सस्कार सिद्धान्त के कितने समीप है। रस-निष्पत्ति का आधार ही सामाजिक की वासना अथवा उसके सस्कार होते हैं ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि प्राचीनो का उत्पत्तिमूलक ग्रह का सिद्धान्त मनोवैज्ञानिको की नवीनतम खोजो के अति समीप है । अवश्य ही प्राचीनो का यह सिद्धान्त मनोवैज्ञानिक तथ्यो पर आधारित रहा होगा । कालान्तर मे सिद्धान्त परम्परानुगत रूप मे चलता रहा तथा उसका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किसी प्रकार लुप्त हो गया ।

करुण रस का विवेचन—

आलबन—भिन्न-भिन्न मनीषियो की परिभाषा के आधार पर प्रस्तुत सारिणी के अनुकूल करुण रस के संभावित आलबन निम्नलिखित है ।

१—प्रिय वन्धुबान्धव एव पुत्रादि का मरण एव वियोग-इष्ट नाश ।

२—धन वैभव का नाश

३—पराजय एव पराभव तथा बन्धन एव वध ।

४—धर्म अपघात एव शाप ।

५—क्लेश एव दुख प्राप्ति; अनिष्ट प्राप्ति ।

उपर्युक्त आलबनो के अन्तर्गत मानव जीवन की प्राय सभी दुखात्मक परि-स्थितियाँ आ जाती है—

राजनीतिक—क्रमाक ३

सामाजिक—क्रमाक १, २ और ५

धार्मिक—क्रमाक ४

१. ' .. . Thus there are individuals who crowd to the scene of a disaster in order to be mentioned in the newspapers. and achieve a cheap fame without actually doing anything to help the sufferers

.. ..Professional sympathizers and alms-givers are not to be divorced from their activity for they are actually creating a feeling of their own superiority over the miserables and povetry-streiken victims whom they are alleged to be helping '

—Understanding Human Nature by A. Adler, 1937 Ed, Page 276.

✓ १—इष्टनाश जनित करुण रस के आलंबन के अन्तर्गत सभी रागात्मक संबन्ध आ जाते है। इसमें साधारणतया पुत्रनाश या पुत्रवियोग सबसे अधिक शोकप्रद होता है। इसीलिए सभवत: कलियुग के घोर पाप एवं यातनाओं का वर्णन करते हुए यह भी कहा गया कि पिता के सामने पुत्र की मृत्यु होगी। रसगंगाधर प्रणेता पण्डित-राज जगन्नाथ के द्वारा दी गई करुणरस की परिभाषा के अन्तर्गत भी पुत्रनाश या पुत्रवियोग का विशेष रूप से उल्लेख हुआ है। इस सम्वन्ध में यहाँ यह स्पष्टीकरण आवश्यक है कि पण्डितराज के जीवन-वृत्त में इस प्रकार की किसी घटना का निश्चित उल्लेख नही है जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि उनको पुत्रनाश अथवा पुत्र-वियोग की स्वानुभूति हुई तथा इसी कारणवश उन्होने इस आलंबन को परिभाषा के अन्तर्गत विशेष प्रश्रय दिया। अस्तु, निश्चय ही पण्डितराज की दृष्टि पुत्रगत शोक की गंभीरता की ओर रही होगी तथा इसी कारण उनकी परिभाषा में आलंबन के अन्त-र्गत पुत्रनाश एवं पुत्रवियोग का विशेष उल्लेख हुआ।

२—धनवैभवनाशजनित करुण रस के आलबन की असहायावस्था प्राय: प्रत्येक समाज मे प्रतिलक्षित होती है। जीवनयापन का साधन जीवन से भी अधिक महत्त्व-पूर्ण होता है इसलिए धनवैभवनाश के समय धनवान व्यक्ति को इष्टनाश के समान शोक का होना अति स्वाभाविक है किन्तु भारतीय सस्कृति ने आध्यात्मवाद से इतर भौतिक वैभव को महत्त्व नही दिया। इसीलिए हिन्दी साहित्य में धन-वैभवनाशगत आलबनो का प्राय अभाव रहा है।

पराजय, पराभव तथा बन्धन एव वध—के अन्तर्गत राजनीतिक क्षेत्र के आलंबन आते हैं। विजित पक्ष करुणरस का आलवन होता है। विजित पक्ष का शोक-सताप मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अनिच्छित परिस्थिति को अनुकूल बनाने के प्रयत्न कहे जा सकते है जिनमे अपनी पराजयादि के प्रमुख कारणो का वर्णन अपना महत्त्व प्रकट करता है।

धर्म अपघात तथा शापजनित करुणरस के आलबनो के अन्तर्गत धर्म का कर्म काण्डगत रूप आता है। शूद्र स्पर्श, अभक्ष्य पदार्थों का अनजान मे भक्षण, कर्मकाण्ड विधिनिषेध में व्यक्तिकर्म अथवा विलम्ब तथा धर्मरक्षण लालसा के समक्ष विधर्मी जनो का विरोधादि धार्मिक व्यक्ति के लिए मानसिक क्षोभ एव शोक के कारण होते हैं। धार्मिक व्यक्ति की आदर्श निष्ठा की पृष्ठभूमि में यह क्षोभ अति कष्टकर सिद्ध होता है जिसका चरम उत्कर्ष धर्मवीर के रूप में आत्मबलिदान तथा आत्मघात तक में प्रकट हुआ।

शाप के अन्तर्गत एक क्षुब्ध आत्मा किसी नैतिक अथवा धार्मिक वैषम्य को सहन न कर सकने के फलस्वरूप अशुभवाणी प्रकट करने के लिए विवश हो जाती है। करुण-रस का आलंबन होता है शापित व्यक्ति जो शापदाता की शक्ति के आगे अपनी असहायावस्था का अनुभव करता है तथा शाप के दुष्परिणाम का विचार कर परम कातर हो उठता है।

आज भी "बुरी भाखा" तथा "ऐसी वाणी" आदि शब्दों द्वारा श्राप की परम्परानुगत ध्वनि प्रकट होती है किन्तु शापदाता की शक्ति मे विश्वास एवं आस्था के अभाव में प्राय: करुण के स्थान मे रौद्र का दृश्य दिखलाई देता है।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से शाप "कुत्सित सवेदन" कहे जा सकते है तथा शापदाता जितना अधिक क्षुब्ध होगा उतना ही अधिक उसका शाप प्रभावशाली तथा क्रियाशील होगा। रामायण तथा महाभारत काल मे सम्पूर्ण घटनाओ का मूलकारण प्राय: कोई शाप रहा है। उस युग मे शाप सभवत. अनुशासन एव नियन्त्रण के प्रचलित साधन थे जिनके भय से समाज मे नैतिकता का अनुपालन होता था।

अनिष्टप्राप्तिजनक करुणरस के आलबनो के अन्तर्गत दैहिक, दैविक एव भौतिक कष्टो से दु खी तथा अन्यान्य विपत्तियो मे ग्रस्त व्यक्ति आते है। प्रत्येक व्यक्ति के लिए इस प्रकार के कष्ट सुपरिचित तथा प्राय अनुभूत होते है। अतएव अनिष्टप्राप्तिजनक आलबनों के साथ सामाजिक की सहज सहानुभूति सभव हो जाती है।

मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण के अनुकूल शोक-अभिव्यजना शोक-शान्ति का एक मनोवैज्ञानिक साधन है जिसके द्वारा इष्टनाशगत विषम परिस्थिति में शोकसतप्त प्राणी मानसिक सम-अवस्था प्राप्त कर लेता है। साथ ही मानव व्यवहार के अध्ययन से यह भी स्पष्ट है कि शोक की अभिव्यजना प्रत्येक आश्रय के साथ एक सी नही होती। पुत्र मृत्यु पर माता-पिता बन्धु बान्धव सभी रोते तथा शोक प्रकट करते है किन्तु माता के शोक तथा अन्य व्यक्तियो के शोक मे विशेष अन्तर होता है जिसका यद्यपि कोई भौतिक मापदण्ड सभव नही है तब भी यह अनुभवगम्य न हो ऐसी बात नही है।

करुण का प्रथम आलंबन—क्रौचवध आख्यान मे हत क्रौच को माना जा सकता है। काम समोहित क्रौच पक्षी के युग्म मे से एक का वध तथा दूसरे का आर्त्त चीत्कार आदि कवि बाल्मीकि के शोक को श्लोक का रूप दे देता है। वाल्मीकीय रामायण का समय ५०० ई० पू० माना गया है। उस समय की करुण भावना का रूप आदिकवि के श्लोक से स्पष्ट है। रामायण काल की शोकानुभूति का यह आदर्शरूप था जिसके अन्तर्गत मनुष्य पशु पक्षियो तक के दु:ख से दु खी हो उठता था।

महाभारत काल का समान आलंबन—महाभारत का समय २०० ई० पू० माना गया है। इस प्रकार रामायण तथा महाभारत काल मे ३०० वर्षों का अन्तर है। इस अवधि मे सभवत· पशु-पक्षियो के क्रौच आख्यान मे प्रकट मानव की करुण भावना मे विशेष उदासीनता आ चुकी थी। महाभारतमे आदि पर्व के अन्तर्गत सभव-पर्व मे एक आख्यान पाण्डुशाप का आया है। महाराज पाण्डु मृगया के लिए बन जाते है तथा कामचेष्टारत एक हरिण-युग्म पर बाण छोड़ते है जिससे हरिणी अविलम्ब मर जाती है। आहत हरिण कुछ क्षणो के लिए जीवित रहता है। यह हरिण कर्दम ऋषि थे जो सपत्नीक मृगरूप मे कामचेष्टारत थे। इस प्रकार की मृगया की निन्दा करते हुए ऋषि ने महाराज से कहा—इस प्रकार कामरत युग्म को तो कोई साधारण व्यक्ति भी न मारेगा फिर आप तो ज्ञानवान् है तथा राजा है। महाराज पाण्डु इस

प्रकार की मृगया को राजधर्म बतलाकर अपने कार्य को न्यायसंगत ठहराने का प्रयत्न करते है।

इस आख्यान से स्पष्ट है कि कालक्रम में मानव वासना परिवर्तित एव सशोधित होती रहती है जिसके साथ आलंबन के रूप में अपेक्षित परिवर्तन सभव हो सकता है।

उद्दीपन—विभाव का दूसरा भेद उद्दीपन विभाव है। इसके अन्तर्गत वह सब बाते आ जाती है जिनसे आलबन द्वारा प्रस्तुत पृष्ठभूमि उद्दीप्त हो उठती है। तथा सामाजिक रसनिष्पत्ति की ओर अग्रसर हो जाता है। आलबन एव उद्दीपन दोनो का अन्योन्याश्रित सबध है। आलबन के अनुकूल उद्दीपन विभावो की एक तालिका प्रस्तुत की जा सकती है—

विभाव

१—सामाजिक अ—इष्टनाश	अ—दाहकर्म, वस्त्रभूषणादि के दर्शन, गुणकथन
आ—धनवैभवनाश	आ—गतवैभवस्मरण, वर्तमान असहायावस्था
इ—दु ख-क्लेश	इ—असहायवस्था, दूसरो की सुरक्षित दशा
२—धार्मिक — धर्म अपघात	२—धार्मिक कृत्य एव पूजा-पाठ का समय
३—पराजय, पराभव, बन्धन, वध	३—विपक्षी के आन्दोल्लास, गर्वोक्तियाँ विजित का भूतकालीन वैभवस्मरण व कथन
	वातावरण एव प्रकृति—१,२,३, सब के लिए

उद्दीपन विभाव इस प्रकार तीन रूपो मे प्रकट होते है—१. वचनगत, २ क्रियागत, ३ वातावरणगत। साहित्य-रत्नाकर मे उद्दीपन के इन रूपो को निम्नलिखित प्रकार से चार भेदो मे विभाजित किया है (१) आलबन के गुण, (२) उसकी चेष्टाएँ (३) उसके अलंकार, (४) तटस्थ-प्रकृति आदि।

इन भेदो का समाहार उपर्युक्त विवेचन के अन्तर्गत निम्नलिखित रूप से हो जाता है—

१. **वचनगत**—आलबन के गुण-कथन तथा उक्तियाँ (आश्रय की तथा अन्य व्यक्तियो की)
२. **क्रियागत**—आलबन की चेष्टाएँ। करुण रस के आलबनो मे मृत व्यक्ति की चेष्टाएँ कुछ नही होती किन्तु अन्य व्यक्तियो द्वारा उसको उठाना, चिता पर रखना आदि उद्दीपन का कारण होता है।
३. **वातावरणगत**—अलकार तथा तटस्थ।

मानव प्रकृति मनोविज्ञानिक दृष्टि मे अपनी भावना के रग मे शेष जगत को रँगने का प्रयत्न करती है इसीलिए यदि हम प्रसन्न है तो हमको मानव समाज ही नही प्रत्युत प्रकृति भी पशु-पक्षियो सहित आनन्द मनाती प्रतीत होती है। इसके विपरीत हमारे शोक मे हमको अपना वातावरण शोकाकुल दिखलाई देता है। प्रिय-जन के वस्त्राभूषण तथा उसके उठने बैठने के स्थान जो अब तक सुखद थे शोक को उद्दीप्त करने वाले बन जाते है। उद्दीपन के अन्तर्गत इस प्रकार वचन तथा क्रिया के साथ वातावरण का विशेष महत्व है।

अनुभाव—इस के अन्तर्गत आलबन एव आश्रयगत वे बाह्य व्यंजक आते है, जिनके द्वारा अनुभूति का अनुमान होता है। भरत मुनि के अनुसार--वाणी से, शरीर से और सहजरूप में जो नाना अर्थों (वस्तुओ) का अनुभव करता है उसे अनुभव कहते है।[1]

अनुभाव चार प्रकार के होते है—(१) कायिक (२) वाचिक (३) आहार्य (४) सात्विक।[2] कायिक के पुन. तीन भेद बताए है—(१) शारीर (२) मुखज (३) शाखागोपॉग—सयुक्त चेष्टाकृत[3] मुखज चेष्टाओ मे सिर के तेरह प्रकार के कर्म तथा दृष्टि आदि के पच्चीसो भेद बताए गए है। फिर भी अन्त मे कह दिया है कि लोक स्वभाव के अनुसार बहुत से भेद होते है, जिन्हे प्रयोक्ता स्वय जोड लें।[4] इस प्रकार नाट्य-शास्त्र मे अनुभावो का अति विस्तार से विवेचन हुआ है। इन तथ्यो तक अभी पश्चिमी प्रगतिशील देशो के विद्वानो की पहुँच नही हो पाई है। यहाँ करुणरस से सबधित निम्नलिखित उन भावो को ले रहे है जिनके सम्बन्ध मे पाश्चात्य विद्वानो ने भी विचार किया है—

अश्रुमोचन, गुणकथन, प्रलाप, छाती पीटना, सिर ठोकना आदि तथा इनके आठ प्रकार के सात्विक भाव।

सत्त्व से उत्पन्न होने वाले भाव सात्विकभाव कहलाते है। सत्त्व से उत्पत्ति स्वीकार करते हुए भरत ने (शका समाधान करते हुए) यह भी स्वीकार किया है कि अन्य भाव-सत्त्व के बिना ही उत्पन्न होते है। समाहित मन सत्त्व की निष्पत्ति का कारण है। उदासीन अथवा अन्यमनस्क होने पर मनोविकारोद्भूत वैवर्ण्य, अश्रु आदि उत्पन्न नही हो सकते ‥ ·[5]

---

१. यदयमनुभावयति नानार्थनिष्पन्नान्वागङ्गसत्त्व कृताभिनयानिति।"— ना० शा० सप्तम अध्याय पृष्ठ ३४७ टिप्पणी गायकवाड' ५६

२. "आङ्गिको, वाचिकश्चैव ह्याहार्य: सात्त्विकस्तथा"—ना० शा० अ० ८ श्लोक १० गायकवाड (Vol. II, 31)

३. त्रिविधस्त्वाङ्गिको ज्ञेय: शारीरो मुखजस्तथा
तथा चेष्टाकृतश्चैव शाखाङ्गोपाङ्ग 'सयुत:"—वही अ० ८ श्लोक १२ गायकवाड पृष्ठ ३

४. -'एभ्योन्ये बहवो भेदा लोकाभिनय सश्रिया
ते च लोक स्वभावेन प्रयोक्तव्या प्रयोक्तृभि॥"—ना० शा० अ० ८ श्लोक ३९ गायकवाड पृष्ठ ६

५. भरत "किमन्ये भावा: सत्त्वेन विनाऽभिनीयन्ते यस्मादुच्यन्ते एते सात्विका इति,अत्रोच्यते एवमेतत् कस्मात्-इह हि सत्त्व नाम मन प्रभवम् तच्च समाहित मनस्त्वादुच्यते। मनस समाधौ सत्त्वनिष्पत्तिर्भवति तस्य च योऽसौ स्वभावो रोमाञ्चाश्रुवैवर्ण्यादिलक्षणो यथाभावोपगत स न शक्योऽन्यमनसा कर्तु मिति" ना० शा० पृ० ३७५ गायकवाड' ५६

काव्यानुशासनकार हेमचन्द्र के अनुसार—प्राण सत्त्व है। उससे उत्पन्न भाव सात्विक है। प्राण में जब पृथ्वी का भाग प्रधान होता है तो स्तम्भ जब जल का भाग प्रधान होता है तो अश्रु, जब तेज का भाग तीव्रता के साथ प्रधान होता है तो स्वेद और जब साधारणतया (तीव्रता रहित) प्रधान होता है तब वैवर्ण्य उत्पन्न होता है। जब आकाश का भाग प्रधान होता है तो प्रलय तथा वायु के मन्द, मध्य तथा तीव्र आवेश के अनुसार रोमाच, कम्प तथा स्वरभेद होते है। स्तम्भादिक शरीर धर्म जो अनुभाव रूप मे बाहर प्रकट होते है इन आन्तरिक रूपो की अभिव्यजनामात्र है।[1]

अनुभाव एव मनोभावो के सम्बन्ध मे पाश्चात्य मनोवैज्ञानिको के विचार यहाँ देख लेना उचित होगा। प्राचीनो के उपर्युक्त सिद्धान्त आधुनिक मनोवैज्ञानिक खोज के कितने समीप है—यह विशेष रूप से यहाँ अवलोकनीय है।

रुक्मिक ने इस प्रकार के अनुभाव—स्वेद, व्रीडा, कठ सूखना तथा गला भर आना आदि को **शरीर की (स्वस्थ अवस्था के गुणधर्म की) प्रतिक्रिया कहा है।** (इसी को भरत ने समाहृत मन की दशा बतलाया है जिससे सत्त्व की उत्पत्ति होती है।)

एच० एच० ब्रिटेन ने मनोभावो की उत्पत्ति **बाह्य की अपेक्षा केन्द्रीय कारणों से अधिक मानी है।** मनोभावो की नाडी सस्थान की शक्ति को बढाने के लिए प्रतीत होती है जिससे अविलम्ब शक्तिशाली क्रिया का विश्वास हो जाता है।[2] हेमचन्द्र का भी यही निष्कर्ष है कि स्तम्भादि शरीर धर्म आंतरिक रूपों की अभिव्यजनामात्र है।

शरीर-विज्ञान शास्त्र तथा मानस रोगचिकित्सा की नवीन खोज इधर यह निश्चित कर चुकी है कि स्वचालित नाड़ी-संस्थान तथा नाडीशून्य ग्रन्थि मनोभावो की प्रतिक्रिया में महत्वपूर्ण हाथ रखती है। यह खोज भी मनोभावो की आन्तरिक क्रिया-

---

१. "सीदत्यस्मिन्मन इति व्युत्पतेः सत्वगुणोत्कर्षात्साधुत्वाच्च प्राणात्मक वस्तु. सत्वम् तत्र भावाः सात्विकाः भावा इति वर्तन्ते। ते च प्राणभूमि प्रसृत मर्त्यादि-सवेदनवृत्तयो बाह्यजड़रूपभौतिकनेत्रजलादि विलक्षणा विभावेन रत्यादिगते नैवा-तिचर्वणागोचरेणाहृता अनुभावैश्चगम्यमाना भावा भवन्ति। तथा हि पृथ्वी भाग-प्रधाने प्राणे सक्रान्तश्चित्तवृत्तिगणः स्तभो विष्टब्धचेतनत्वम् जलभागे प्रधाने तु बाष्पः तेजसस्तु प्राणनैक्टयादुभयथा तीव्रत्वेन प्राणानुग्रह इति द्विधा स्वेदो वैवर्ण्यञ्च'।" अ—२, पृष्ठ १००

2. 'Emotions are due more to central factors than to peripheral ones. The particular function of emotions would seem to raise the 'nervous potentiality so that immediate and vigorous action is assured.'
—The Function of the Emotion by H. H. Britain (Indian Journal of Psychology Vol. I—1926.)

शीलता की ओर ही सकेत करती है।[1] यह स्पष्ट है।

अतएव कहा जा सकता है कि सात्विक भाव वास्तव मे मानसिक असम अवस्था के परिचायक है तथा मानसिक सम अवस्था प्राप्त कराने का प्रयत्न करते है। इस प्रकार मनोभावो की असाधारण अवस्थाओ मे भी शरीर-रक्षा के प्रयत्न चलते रहते है तथा नाडी सस्थान विश्रृखल होने से बच जाता है।

आचरणवादी मनोविज्ञान के सस्थापक वाटसन की बिहेवियर (Behaviour) पुस्तक १९१४ मे प्रकाशित हुई थी। उनके पश्चात् इस दिशा मे मनोविज्ञान की विशेष प्रगति हुई। मनोविज्ञान की परिभाषा भी 'मानव आचरण-अध्ययन-शास्त्र' के रूप मे परिवर्तित हो गई। विशेष दशाओ मे प्रति-लक्षित बाह्य व्यजको का विस्तृत अध्ययन मनोविज्ञानियो ने किया। भारतीय मनीषियो की दृष्टि अनुभावो के प्राय सभी सभव कारणो की ओर रही है जिनका समावेश उन्होने अपनी परिभाषाओ मे किया है। साथ ही महत्त्वपूर्ण प्रसंग यथा शोक—दृष्टि तथा अश्रु आदि की सहेतुक तथा बाह्य व्यजको के आधार पर विस्तृत व्याख्या भी की है।

स्तम्भ तथा प्रलय—संज्ञाशून्य खडा रह जाना, सुधबुध न रहना। (स्तम्भ मे शरीरगत चेष्टा होती रहती है किन्तु प्रलय की दशा मे चेष्टा बिल्कुल नही होती तथा स्थिति पूर्ण सज्ञा शून्य हो जाती है) प्रलय, तथा स्तम्भ के सभव कारणो का उल्लेख करते हुए भरत ने बताया—

"हर्ष, भय, शोक, विस्मय, विषाद तथा रोषादि से स्तम्भ उत्पन्न होता है"[2]

श्रम, मूर्च्छा, मद, निद्रा, प्रहार, मोह आदि से प्रलय उत्पन्न होता है"[3]

इन दशाओ का अध्ययन करते हुए एफ. ए. लण्ड ने बताया कि जनसाधारण के विश्वास के प्रतिकूल मानसिक गम्भीर उदासीनता अश्रुशून्य होती है।[4] प्रलय की दशा मे मनोवैज्ञानिक अध्ययन की यह विशेषता स्वाभाविक है।—यह स्पष्ट है।

वैवर्ण्य—के कारणो का अध्ययन करते हुए भरत ने बताया शीत, क्रोध, भय,

१. 'Much recent research in physiology and psychiatry has confirmed the familiar belief that the autonaumic nervous system and the ductless glands play important parts in emotional responses.'
—The Encyclopeadia of Psychology, 1946 Ed. Page 134.

२. "हर्षभयशोकविस्मयविषादरोषादिसंभवः स्तम्भ."—ना० शा० ७–९६ पृष्ठ ३७५ गायकवाड ५६

३. "श्रममूर्च्छामदनिद्राभिघातमोहादिभि. प्रलय"—ना० शा० ७–९९ वही

४. "Contrary to common belief, the deep depression of Psychotic individual is tearless."
Emotion in Men & Animal. Page. 258 Ed. 47

रोग, क्लमताप से उत्पन्न वैवर्ण्य होता है ।[1] मार्शल ने इस सम्बन्ध मे बाह्य व्यंजको का सूक्ष्म अध्ययन किया है । उन्होने लिखा है—

.... लेकिन जब क्षति पूर्ण न होने वाली होती है वास्तविक शोक उसी समय उत्पन्न होता है । इस अवसर पर रक्त संचार शिथिल पड जाता है, चेहरा पीला तथा स्नायु ढीले पड जाते है, पलके लटक जाती है, सिर संकुचित वक्ष पर लटक जाता है तथा ओठ, गाल एवं नीचे का जबडा स्वयं अपने भार से नीचे को झुक जाते है ... [2] ।

इस प्रसग मे रुक्मीक द्वारा किया गया अध्ययन और भी विस्तृत है । पीडा या शोक के अन्तर्गत मुख के सभावित बाह्य व्यजको का सूक्ष्म विवरण उनके अनुसार निम्न लिखित है— [3]

माता तथा भ्रू	उठी हुई, गाँठे पडी हुई, बाहर तथा नीचे की ओर वक्र ; समतल तथा खडी सिकुडन ।
नेत्र	अशत या पूर्ण बन्द (अश्रु) ।
नासिका	दबी हुई, फैली हुई ।
मुख	नीचा, खुला तथा टेढा (कराहने मे) ।

१. "शीतक्रोधभयश्रमरोगक्लमतापज च वैवर्ण्यम् ।"—ना० शा० ७–६८

२. But when the loss is felt to be irreparable then real sorrow comes upon us, then the circulation becomes linguid, the face pale, the muscles flacid, the eyelids droop, the head hangs on the contracted chest, the lips, cheeks lower jaw all sink downwards from their own weight.—Encyclopeadia of Psychology —1946 Ed. P. 138.

३. Outline of facial Expressions —Pain and Grief.

Brows and forehead.	Raised, knitted.—Oblique out & down wrinkles—Horizental and vertical
Eyes	Partly or fully closed. (tears)
Nose	Compressed (thinned) elogated.
Mouth	Lowered. open and skewed (ingroanning)
Lips	Depressed at corners. Lower lips trembling.
Lower jaw	Dooping.
Head	Sunk forward.

ओठ	किनारो पर झुके हुए, नीचे का ओठ काँपता हुआ ।
नीचे का जबड़ा	लटका हुआ, शिथिल ।
सिर	आगे की ओर झुका हुआ ।

अश्रु के सभावित कारणो पर प्रकाश डालते हुए भरत ने लिखा है—

"आनन्द, अमर्ष, धूम, अजन, जम्हाई, भय, शोक, अनिमेष देखने, शीत तथा रोग से अश्रु उत्पन्न होते है ।"[1]

उत्तररामचरित मे भवभूति ने अश्रु एव प्रलाप को जीवन धारण के लिए हितकर बताकर आधुनिक मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तो की ओर सकेत किया है ।[2]

आधुनिक-मनोवैज्ञानिको के अध्ययन के आधार पर कहा जा सकता है कि—

"शोक, वासनागत स्मृति के द्वारा कम होने पर, दया, किसी उत्तेजक तथ्य द्वारा सान्त्वना प्राप्त करने पर तथा दुखान्त सुखान्त के समन्वय के समय अश्रुमोचन सभव हो सकता है ।

यह केवल क्षति या शोक नही है जो अश्रुमोचन का कारण हो प्रत्युत दु खद दशा मे किसी सुखद परिस्थिति की उपस्थिति ही अश्रुमोचन का अविलम्ब अवसर होता है । उदाहरणस्वरूप दाहकर्म मे अश्रु उस समय आते है जिस समय मृत व्यक्ति का गुण-कथन किया जाता है—वह अपनी सतान के श्रेष्ठ पिता थे, एक उदार हृदय नागरिक थे, आदि-आदि ।[3]

---

१ "आनन्दामर्षाभ्या धूमाञ्जनजृम्भणाद्भयाच्छोकात् ।
अनिमेषप्रेक्षणात शीताद्रोगाद्भवेदश्रु" ॥—ना० शा०—७—६७, पृष्ठ ३७६ गायकवाड ५६

२. "पूरोत्पीडे तटाकस्य परीवाह प्रतिक्रिया ।
शोकक्षोभे च हृदय प्रलापैरेव धार्यते" ॥—उ० रा० ३—२६ वही
"स्वय कृत्वा त्याग विलपनविनोदोऽप्यसुलभ
स्तद्याप्युच्छ्वासो भवति ननु लाभो हि रुदितम्" ॥—उ०—रा० ३—३० वही
(स्वय, त्याग करके विलाप कर जी बहलाना ही दुर्लभ है, तो भी अभी तक प्राण धारण हो रहा है । निश्चय ही रोना भी जीवन धारण के लिए लाभ स्थानीय ही है ।)

३ ' . It is not merely loss or bereavement which brings tears. Rather it is the presence of some alevating or happy circumstances within an otherwise distressing situation which is the immediate occasion for tears.

At a funeral, for example, tears flow when the speaker eulogizes the deceased by saying that he was a fine father to his children, a great hearted citizen, and so on and so forth . .. . .'

—Emotion in Man & Animal by P. T. Young. 1947 Ed Page. 138

अश्रु मोचन के समय संभावित बाह्य व्यंजकों का अध्ययन डारविन द्वारा किया गया है। उन्होने निम्नलिखित तथ्यो की ओर सकेत किया है—

"भौहो की सिकुडने वाली स्नायु सिकुडती है जिससे भौहे अन्दर तथा नीचे की ओर खिचती है। इससे भ्रू भग-गत सीधी दरारे पड जाती है। साथ ही माथे के आरपार टेढी सिकुडन अदृश्य हो जाती है। भौहो के सिकुडने के साथ-साथ आँखो के चारो ओर के स्नायु भी सिकुडते है तथा आँख के चारो ओर सिकुडन पैदा करते हैं। तब नाक की पिरामिड जैसी स्नायु सिकुडती है तथा भौहे तथा माथे की त्वचा को और नीचे की ओर खीचती है जिससे नासिका के आधार पर काटती हुई सिकुडन पड जाती है। ऊपरी ओष्ठ के स्नायु भी सिकुडते है तथा ओठ को ऊपर उठा देते है। इस क्रिया से कपोलो का मास ऊपर को खिच जाता है जिससे कपोलो पर तह पड जाती है जो नथनो से मुख के किनारो तथा नीचे तक जाती है।"[१]

इस प्रकार अश्रुमोचन के सम्बन्ध मे कहा जा सकता है कि यह शोक-शमन का एक प्राकृतिक साधन है जिसके द्वारा शोकाकुल प्राणी की जीवन रक्षा सभव हो जाती है। मनोवैज्ञानिक खोज ने अश्रु मोचन के लिए दु खद एव सुखद परिस्थितियो का समन्वय अपेक्षित बतलाया है। समन्वय के इस सिद्धान्त को प्रसग मे नवीन प्रगति कह सकते है।

स्वर-भग—के अन्तर्गत गला भर आना, स्वर का गद्गद् होना तथा वाणी की अस्पष्टता आदि आते है। भरत ने स्वरभग के लिए सम्भावित कारणो का वर्णन करते हुए लिखा है कि यह भय, हर्ष, क्रोध, जरा, शोक, रोग, मद से उत्पन्न होता है।[२]

मनोवैज्ञानिक अध्ययन के अन्तर्गत बताया गया है कि ग्रीवा के समीप भोजन नली के सिकुडने के कारण स्वर-भग हो जाता है। वाणी का प्रकाशन शारीरिक अवयवो के साथ-साथ मानसिक सहयोग पर भी आधारित है। इन दोनो का सहज समन्वय ही वाणी के प्रकाशन की सफलता है। शोक-दशा मे इन दोनो अगो मे

---

१. The corrugator muscles of the brow contract, drawing the eye brows downward and inward to produce the vertical furrows of the frown and the simultaneous disappearance of the transverse wrinkles across the forehead The orbicular muscles contract at the same time as corrugator and produce wrinkles around the eyes The pyramidal muscles of the nose (procerus) contract and draw the eye brows and the skin of the forehead still lower down producing transverse wrinkles across the base of the nose. The muscles running to the upper lip contract and raise the lip. This action also draws upward the flesh of the cheeks producing a fold on each cheek from near the nostrils to the corners of the mouth and below.

—Emotion in Man and Animal, Ed. 1947, Page 256

२. "स्वरभेदो भयहर्षक्रोधजरारौक्षयरोगमदजनित:"।

विषमता उत्पन्न हो जाती है। इसलिए स्वरभग आवश्यक हो जाता है।[1]

रसानुभूति की दृष्टि से स्वरभग तथा प्रलाप विशेष महत्त्वपूर्ण है। अश्रुमोचन तथा अश्रुरहित गभीर शोक, स्तम्भ तथा प्रलय की स्थिति मे वाह्य अभिव्यजको के अभाव मे एक मूक-दृश्य उपस्थित हो जाता है जिसे सामाजिक चुपचाप देख सकता है किन्तु स्वर-भग तथा प्रलय के समय सामाजिक का हृदय सहज ही द्रवीभूत हो जाता है।

कम्प — इसके सभावित कारणो का उल्लेख करते हुए किसी प्रकार शोक छूट गया है। भरत ने केवल शीत, भय, हर्ष, रोष, स्पर्श तथा जरा को कम्प का कारण माना है।[2] शरीर-विज्ञान के अनुसार स्पष्ट है कि शारीरिक क्रिया के साथ मानसिक असहयोग के कारण कम्प उत्पन्न होता है तथा शोकाभिभूत मानव-मानस शारीरिक क्रियाओ के नियत्रण को खो बैठता है। इस प्रकार शोक निश्चित रूप से कम्प का एक कारण ठहरता है। इस सम्बन्ध मे मनोवैज्ञानिक अध्ययन के आधार पर कहा जा सकता है कि—

"ककाल सम्बन्धी स्नायु दुर्बल तथा शिथिल पड जाते है। शारीरिक आसन बदल जाते है। मोडने वाले स्नायु फैलने वाले स्नायुओ पर प्रधानता पा लेते है जिस रूप मे हम साधारणतया एक व्यक्ति को शोकाक्रान्त कहते है।"[3]

स्वेद — शरीर मे पसीना निकलना। स्वेद की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे छादोग्य उपनिषद् मे एक आध्यात्मिक कारण दिया हुआ है। "मै बहुत हो जाऊँ तथा अनेक प्रकार उत्पन्न होऊँ" इस भावना से तेज उत्पन्न हुआ। फिर तेज ने भी इसी प्रकार की इच्छा की तथा तेज से जल उत्पन्न हुआ। इसी कारण आन्तरिक रूप मे मनोवेग के कारण तेज के प्रताडित होने से स्वेद निकलने लगता है। वाह्य रूप मे सूर्य अथवा

१. "In grief there are other bodily changes as well—
'The lump in the throat'—can be referred to a contraction of smooth muscles in the alimentary canal at the level of throat.

—Emotion in Man and Animal, Ed. 47, Page 254.

२. "शीतभयहर्षरोषस्पर्शजरारोगजः कम्प"।—7-96 पृष्ठ 375 मा० शा० गायकवाड' 56

३. "The skeletal muscles are weak and flabby. The bodily posture is altered. The flexor muscles dominate the extensors so that we commonly speak of the person as being 'bowed over' with grief. The grief-stricken widow for example box with head and shoulders bent, her eyes fixed on the ground, her step falters".

—Emotion in Man and Animal Ed. 1947. Page 254

अग्नि का तेज भी स्वेद का कारण होता है।[1]

स्पष्ट है कि इस रूपक द्वारा शरीर विज्ञान के तथ्यो की ओर सकेत किया गया है। शरीर विज्ञान के अनुसार-वायु-कोष की गति के अनुसार रक्त-प्रवाह की गति मे अन्तर पडता है तथा चित्त का बाह्य जगत से सम्पर्क होने के परिणामस्वरूप अनुभूति (प्रवृत्यात्मक या निवृत्यात्मक) का भार वायुकोष पर पड़ता है। इस भार से वायुकोष तथा वायुकोष से रक्त-प्रवाह मे आधिक्य अथवा कमी आ जाती है जो वास्तव मे विशेष परिस्थिति के लिए शरीर को प्रस्तुत करने का उपक्रम होता है। इस प्रकार रक्त प्रवाह की साधारण सम-अवस्था मे व्यतिक्रम ही स्वेद का कारण है।

शोकानुभूति के अन्तर्गत स्वेद प्राय उसी समय प्रकट होता है जिस समय शोक प्रकटीकरण के अन्य साधन प्रलाप, अश्रु आदि किसी प्रकार क्रियाशील नही हो पाते।

संचारीभाव— रस के सहकारी कारण समझे जा सकते है। ये स्थायीभाव को बल देकर विलीन हो जाते है। जल के बुद्बुद् की भाँति यह प्रकट तथा विलीन होते रहते है तथा विद्युत् चमक की भाँति क्षणिक ज्योति प्रकाशित कर अदृश्य हो जाते है।

सचारीभाव मनोवैज्ञानिक विश्लेषण पर आधारित है।[2] अतएव सक्षेपत: कहा जा सकता है कि करुण रस के सचारी भाव—

अ— शोक के कारण उत्पन्न शारीरिक विषम अवस्था के शमन के उपकरण तथा अविलम्ब समअवस्था प्राप्त कराने के प्राकृतिक साधन है।

आ—भावावेश दशा मे— अतिरिक्त शक्तिप्रवाह के स्रोत हैं।

इ—स्थायीभाव शोक की निष्पत्ति के अपेक्षित कारण है।

सचारीभावो की गति, सप्राप्ति तथा प्रभाव के सम्बन्ध मे मनोवैज्ञानिक अध्ययन निम्नलिखित तथ्यो का उद्घाटन करता है।[3]

---

१. छांदोग्य उपनिषद् (६,२,३)
"तदैक्षत बहुस्या प्रजायेयेति तत्ते.जोऽसृजत
तत्तेज ऐक्षत बहुस्या प्रजायेयेति तदपोऽसृजत
तस्माद्यत्र क्व च शोचति स्वेदते वा पुरुषस्तेजस
एव तद्व्यापो जायन्ते।"

२. Emotional excitement is often free from disruption. Everyone has heard an account of some body who in the face of danger acted wisely and with a very high energy expenditure, thus saving the situation from total disaster. —P. T. Young. Emotion in Man and Animal, P. 32 Ed. 1947.

३. The thought processes move much more rapidly than under normal conditions. Ideas and possible courses of action occur to the subject in great number; some are accepted and others rejected.—P. T. young

अ—भावावेश दशा में मानसिक क्रियाशीलता अति तीव्र हो जाती है। सार्थक एवं निरर्थक संचारी वेग के साथ उदय तथा लय होते रहते है।

आ—सचारीभावों के उदय एवं अस्त मे किसी विशेष क्रम अथवा व्यवस्था को कोई स्थान नही मिलता।

इ—सचारी भावो की सप्राप्ति आलबन एव आश्रय के सस्कार, अनुभूति की गभीरता तथा विशेष वातावरण के प्रभाव के अन्तर्गत होती है। इसीलिए व्यष्टि को दृष्टिगत रखते हुए सचारी भावो की सप्राप्ति मे विभिन्नता भी सभव है।

ई—भावावेश दशा मे सयत विचार शक्ति तथा अध्ययन की प्रगति अवरुद्ध हो जाती है।

प्रकरण के अनुकूल यहाँ सक्षेपत करुणरस के सभावित सचारी भावो की शास्त्रीय व्याख्या पर दृष्टिपात कर लेना आवश्यक है। करुण रस के अन्तर्गत साधारणतया निम्नलिखित सचारीभाव आते है—[1] निर्वेद, ग्लानि, विषाद, चिन्ता, मोह, स्मृति, श्रम, दैन्य, आलस्य, शंका, औत्सुक्य, भय, आवेग, त्रास, व्याधि, अपस्मार, उन्माद, जडता, मरण, आदि।

निर्वेद—इष्टनाश तथा वियोगादि के कारण उत्पन्न होता है। इसके अन्तर्गत उदासीनता, दीनता, दीर्घोच्छ्वास, विवर्णता, अश्रु आदि अनुभाव होते है। निर्वेद

---

१. रस व्यापकता के आधार पर रसो मे उत्तम, मध्यम आदि विभाजन अथवा रसराज का निर्णय यहाँ अपेक्षित नही है। साथ ही इस द्वन्द्व में मेरी आस्था भी नही है। इस प्रसंग मे प्राय रस विशेष के अन्तर्गत अधिक से अधिक सचारी भावो की व्यापकता का दिग्दर्शन कराने के सफल-असफल प्रयास भी हुए है। ऐसा प्रयास भी यहाँ अभीष्ट नही है। साथ ही यहाँ यह स्पष्ट कर देना भी आवश्यक है कि किसी विशेष रस के लिए विशेष सचारियो की संख्या निर्धारित करना भी भूल है। प्रसगानुकूल सभी सचारी रस-विशेष के अन्तर्गत आ सकते है। कुछ विद्वानो ने प्रयुक्त या सभावित सचारी भावो की संख्या की दृष्टि से ६ रसो की स्थिति का दिग्दर्शन कराया है। आवृत्ति के सदर्भ मे इस प्रकार का कार्य स्तुत्य कहा जायगा अन्यथा केवल रसो की महत्ता प्रकट करने के लिए इस प्रकार का परिश्रम मै अनावश्यक ही समझता हूँ।

रस	प्रयुक्त या सभावित सचारी भाव	रस	प्रयुक्त या सभावित सचारी भाव
श्रृङ्गार	२६	वीर	६
करुण	११	वीभत्स	५
भयानक	१०	अद्भुत	४
रद्रौ	८	हास्य	३

शांत रस का स्थायीभाव भी होता है किन्तु उस दशा में निर्वेद वैराग्यजन्य होता है।

ग्लानि—शारीरिक कष्ट तथा मानसिक असह्य संताप के कारण उत्पन्न होती है। इसके अन्तर्गत विवर्णता, उत्साह आदि अनुभाव होते है।

विषाद—अनिष्ट प्राप्ति, पराभव एव पराजय, बन्धन आदि के कारण निरुत्साहित होना विषाद कहलाता है। इसमे सताप, दीर्घोच्छ्वास आदि अनुभाव होते है।

चिन्ता—अनिष्टप्राप्ति से उत्पन्न चित्तवृत्ति की व्याकुलता चिन्ता कहलाती है। चित्त की शून्यता, कृशता, अधोमुखता, निरर्थक विचारो मे लीन होना आदि अनुभाव होते है।

मोह—शोक सतप्त दशा मे चित्त का विक्षिप्त होना, वस्तु का यथार्थ ज्ञान न रहना मोह कहलाता है। इसके अन्तर्गत चेतनाहीनता, चित्त का भ्रमित होना आदि अनुभव आते है।

स्मृति— पूर्व अनुभूत दु ख तथा कष्टादि का स्मरण स्मृति के अन्तर्गत आता है। प्रियसुखानुभूति का अभाव भी करुण का स्मृति संचारी बन जाता है।

भ्रम—शोक के कारण वस्तु के यथार्थ ज्ञान का न होना, भ्रम है। भ्रमवश किसी वस्तु को कुछ और समझ लेना आदि इसके अनुभाव है।

दैन्य--अपनी हीन दशा का प्रकाशन तथा अपनी असहायावस्था के कारण अपनी विवशता पर कातर होना दैन्य कहलाना है। इसके अन्तर्गत विवर्णता, मनस्ताप आदि अनुभाव आते है।

आलस्य—दु ख एव कष्ट के कारण कार्य-विमुख होना आलस्य कहलाता है। इसके अन्तर्गत एक स्थान पर स्थिर रहना, कार्य-उपेक्षा आदि अनुभाव आते है।

शंका—अनिष्ट की आशका से उत्पन्न होती है। इसके अन्तर्गत विवर्णता, स्वरभग, कम्प आदि अनुभाव आते है।

औत्सुक्य—कष्टमुक्ति, प्रियजन की प्राणरक्षा आदि के लिए किए गए साधनो द्वारा उत्पन्न आशा के रूप मे औत्सुक्य का उदय होता है किन्तु इस रूप मे करुण रस की अनुभूति के स्थान मे विप्रलम्भ की अनुभूति को ही विशेषकर प्रश्रय मिलता है।

भय—शाप आदि से पूर्व भयभीत तथा त्रसित होना भय संचारी के अन्तर्गत आता है। इसमे कम्प, मुख पीला पडना आदि अनुभाव होते है।

आवेग—अप्रिय एव अनिष्टजन्य समाचार से उत्पन्न चित्त-विकलता आवेग कहलाती है। इसके अन्तर्गत विस्मय, स्वेद, विवर्णता, अनुभाव आते है।

त्रास—शापित व्यक्ति की चित्तव्यग्रता त्रास कहलाती है। इसके अन्तर्गत चित्तसंताप अगो की शिथिलता आदि अनुभाव आते है।

व्याधि— वियोगसंतप्त मन का संताप व्याधि कहलाता है। इसमे स्वेद, कम्प, ताप आदि अनुभाव होते है।

अपस्मार—शोक सतप्त होकर मृगी रोग की सी दशा होना—अपस्मार कहलाता है। इसके अन्तर्गत दीर्घश्वास, पृथ्वी पर सज्ञाशून्य गिरना, मुख से झाग आदि का निकलना आदि अनुभाव होते है।

उन्माद—शोकाकुल होकर चित्त का भ्रमित होना उन्माद कहलाता है। इसके अन्तर्गत निरर्थक रोना, गाना, हँसना आदि अनुभाव होते है।

जड़ता—इष्टनाश तथा अनिष्ट प्राप्ति की दशा मे किंकर्तव्य विमूढ होना जडता है। इसके अन्तर्गत मौन, निर्निमेष भाव से देखना आदि अनुभाव होते है।

मरण—मृत्यु से पूर्व की अति वेदना पूर्ण दशा का वर्णन मरण संचारी के अन्तर्गत आता है। प्रियजनो के आतुर एव शोकार्त्त होने से मरण की व्यजना होती है।

स्थायीभाव शोक

स्थायीभाव के सबध मे आचार्यो के निम्नलिखित विचार है—

अ—जिस प्रकार मनुष्यो मे राजा, शिष्यो मे गुरु श्रेष्ठ होना है उसी प्रकार सब भावो मे स्थायीभाव महान होता है।[1]

आ—सब भावो मे जिसका रूप व्यापक हो उसे स्थायी भाव मानना चाहिए तथा शेष भावो को सचारी।[2]

इ—स्थायीभाव आस्वादाकुर के मूल रूप हैं तथा अविरुद्ध अथवा विरुद्ध भाव इनको मिटा नही सकते। वे स्वय इनमे लय हो जाते है।[3]

ई—स्थायी भावो की यह बहुत बडी विशेषता है कि वे जिस रूप मे आश्रय मे प्रकट होते है उसी रूप मे सहृदय भी उनका अनुभव करता है।[4]

ई—जो विरुद्ध अथवा अविरुद्ध भावो मे नष्ट नही होते प्रत्युत अन्य सब भावों को अपने आप मे लय करके स्थित बने रहते है वे ही समुद्र के समान स्थायी, स्थायीभाव होते है।[5]

---

१ "यथा नराणा नृपति शिष्याणा च यथा गुरु
एव हिसर्व भावाना भाव स्थायी महानिह॥"—ना० शा० ७-८ पृ० ३५० गायकवाड' ५६

२ "बहूना समवेताना रुप यस्य भवेद्बहु
स मन्तव्यो रस स्थायी शेषा सचारिणो मता।"
"बहूना चित्तवृत्तिरुपाणा भावाना मध्ये यस्य बहुल रूप
यथोपलभ्यते स स्थायी भाव।"

३ "अविरुद्धा विरुद्धा वा य तिरोधातुमक्षमा
आस्वादाङकुर रूपोऽसौ भाव स्थायीति सम्मत।"—सा० दर्पण ३/७४ वही पृ० २३१

४ वाङ्मय विमर्श—आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र, प्रथम सस्करण, पृष्ठ १४७

५. "विरुद्धैरविरुद्धैर्वा भावैर्विच्छिद्यते न य
आत्मभावं नयत्याशु स स्थायी लवणाकर:।" दशरुपक ४/३४"

H3248

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि स्थायीभाव व्यापक एवं प्रभावशाली होते है।

आस्वादांकुर के मूल रूप है। वासनागत रूप मे सामाजिक के पास होते है तथा आश्रय से उनका तादात्म्य हो जाता है। अभिनवगुप्त ने स्थायीभाव को वासना (सहज प्रवृत्ति तथा क्षुधावासना)—सवि‍त् (जन्मजातवृत्ति) तथा चित्तवृत्ति (मनोवस्था)—इन तीन शब्दो से अभिहित किया है।

स्थायीभाव के व्यापक तथा प्रभावशाली रूप के सबध मे मनोविज्ञान का कोई तुलनात्मक अध्ययन उपलब्ध नही है। मनोविज्ञान ने भावो की व्यापकता तथा प्रभुविष्णुता के आधार पर मूल प्रवृत्तियो की उद्भावना अवश्य की है जिनके सबध मे भी सब एक मत नही है किन्तु उनसे यह तो स्पष्ट है कि भावो मे व्यापकता एव गभीरता के आधार पर अन्तर अवश्य होता है।

स्थायीभाव शोक मूलप्रवृत्तियो की दृष्टि से आर्त्त-प्रार्थना (Appeal) तथा आधीनता स्वीकृति (Submission) के अन्तर्गत आता है। यह प्रवृत्तियाँ सहज वृत्ति के रूप मे मानव स्वभाव मे जन्म से ही दृष्टिगोचर होती है। जन्म के पश्चात् आर्त्त-प्रार्थना ही प्रथम भाव होता है जिसका अनुभव नवजात शिशु करता है। जीवन के आपद्-ग्रस्त क्षणो मे आर्त्त-प्रार्थना सहजरूप मे प्रकट हो जाती है। अपनी शक्ति की परिमिति तथा अपनी असहायावस्था के अन्तर्गत आधीनता-स्वीकृति का उदय होता है। भौतिक जगत की परिस्थितियो के अन्तर्गत इस प्रवृत्ति का रूप इतना स्वाभाविक हो गया है कि यह भी सहज-वृत्ति के रूप मे प्रतिलक्षित होती है। अपने से शक्तिशाली की आधीनता स्वीकृति बिना किसी ननु नच के एक स्वाभाविक बात बन गई है।

पुनश्च आधुनिक मनोवैज्ञानिको ने भावो के दो भेद किए है—मूल और तद्भव। मूल भावो के अन्तर्गत वे भाव लिए है जिनकी अनुभूति किसी दूसरे भाव की पूर्वानुभूति के आश्रित न हो जैसे—क्रोध, भय, आनन्द, शोक, आश्चर्य। तद्भव भावों के अन्तर्गत वे भाव लिए है जिनकी अनुभूति दूसरे भाव की अनुभूति के आश्रय से उत्पन्न हो जैसे—दया, कृतज्ञता, पश्चाताप आदि। मूल भावो के उपर्युक्त वर्गीकरण मे शोक और आनन्द दोनो को स्थान दिया गया है किन्तु साहित्य मे केवल शोक को लिया गया है। इस अन्तर का स्पष्टीकरण आचार्य शुक्लजी ने निम्नलिखित शब्दो मे किया है जिससे स्थायी भाव शोक की व्यापकता स्पष्ट रूप से प्रकट होती है—

"आधुनिक मनोविज्ञानियो ने क्रोध, भय, आनन्द और शोक को मूल भाव कहा है। इसमे से साहित्य के 'भावो' की गिनती मे आनन्द को छोड़ और सब आ गए हैं। शोक के रखे जाने और आनन्द के न रखे जाने का कारण क्या है? इसका एकमात्र उत्तर यही हो सकता है कि 'रसविधान' की दृष्टि से ऐसा किया गया है। साहित्यिको का सारा भाव-निरूपण रस के विचार से किया गया है। आश्रय के जिस भाव की व्यंजना से श्रोता या दर्शक के चित्त मे भी आलम्बन के प्रति वही भाव

साधारण्याभिमान से उपस्थित हो सकता है उसी को रस का प्रवर्तक मान कर आचार्यों ने प्रधान भाव की कोटि में रखा है। इस बात को अच्छी तरह ध्यान मे रखना चाहिए। शोक का आलम्बन ऐसा होता है कि वह मनुष्य मात्र को क्षुब्ध कर सकता है पर आनन्द में यह बात नही है। किसी अज्ञात और अपरिचित व्यक्ति को भी प्रिय के मरण आदि पर विलाप करते सुन, सुनने वालों की आँखो मे आँसू आ जाते है पर किसी को पुत्र-जन्म पर आनन्द प्रकट करते देख राह चलते आदमी आनन्द मे नाच नही उठते। किसी-किसी आनन्दोत्सव मे उन्ही का हृदय पूर्ण योग देता है जिसमे उसका लगाव या प्रेम होता है, पर किसी के शोक मे योग देने के लिए मनुष्य-मात्र का हृदय प्रकृति द्वारा विवश है, इसीसे आनन्द को रस के प्रधान प्रवर्तक भावो में स्थान न देकर आचार्यो ने "हर्ष" को केवल सचारी रूप मे रखा है। इस युक्ति-पूर्ण विधान से उनकी सूक्ष्मदर्शिता का पता चलता है।"[1]

"शोक को लेकर विचार करने पर हमारा पक्ष बहुत स्पष्ट हो जाता। अपनी इष्ट-हानि या अनिष्ट प्राप्ति से जो 'शोक' नामक वास्तविक दुख होता है, वह तो रसकोटि मे नही आता, पर दूसरो की पीडा, वेदना देख जो 'करुणा' जगती है, उसकी अनुभूति सच्ची, रसानुभूति कही जा सकती है। 'दूसरो' से तात्पर्य ऐसे प्राणियो मे है जिनमे हमारा कोई विशेष सम्बन्ध नही। 'शोक' अपनी निज की इष्ट हानि पर होता है, और 'करुणा' दूसरो की दुर्गति या पीडा पर होती है। यही दोनो मे अन्तर है। इसी अन्तर को लक्ष्य करके काव्यगत पात्र (आश्रय) की शोकपूर्ण व्यजना द्वारा उत्पन्न अनुभूति को आचार्यो ने शोक-रस न कहकर 'करुण रस' कहा है। करुण ही एक ऐसा व्यापक भाव है जिसकी प्रत्यक्ष या वास्तविक अनुभूति सब रूपो मे और सब दशाओ मे रसात्मक होती है। इसीसे भवभूति ने करुण रस को ही रसानुभूति का मूल माना और अग्रेज कवि शेली ने कहा कि "सब से मधुर या रसमयी वाग्धारा वही है जो करुण प्रसग लेकर चले।" [2]

स्थायीभाव के वासनागत रूप के सम्बन्ध मे भारतीय आचार्यो के विचारो के समान ही पाश्चात्य विद्वानो के विचार है। भारतीय आचार्यो ने स्पष्ट शब्दो मे कहा है कि बिना रति आदि वासना के रस का आस्वादन ही सम्भव नही है।[3] महाकवि कालिदास ने भी वासना के सम्बन्ध मे यही विचार प्रकट किए है। वह वासना को जन्मजन्मान्तरगत बताते हैं।

"मधुर-शब्द सुनकर अथवा सुन्दर दृश्य देखकर मनुष्य व्याकुल हो उठता है। इसका कारण यही है कि वह निश्चय ही जन्मजन्मान्तर के प्रेमप्रसगो को अनजाने

---

१ रस मीमासा, पष्ठ १९७ स० २००७

२. चितामणि १९५६ पृष्ठ २५२

३. "न जायते तदास्वादो विना रत्यादिवासनाम्"।—३।३१ सा० दर्पण पृष्ठ ९५

ही भाव या वासना रूप मे स्थिर होने के कारण स्मरण करता है।[1]

वासना के सम्बन्ध मे पाश्चात्य विद्वानो के निम्नलिखित विचार है—

मार्शल—"कला की यह प्रवृत्ति किसी एक या दूसरे रूप मे साधारण पैत्रिक सम्पत्ति है। जो जाति के प्रत्येक सदस्य के लिए है—मैं समझता हूँ कि यह निर्विवाद सत्य है।"[2]

सले—"एक आलबन की उपस्थिति के माध्यम द्वारा हमारी भाव-दशा की शक्ति न्यून अशो मे पुनः सचेतन हो जाती है जो इसका अशत प्रकाशन है। इस प्रकार हमारी (भूतकालीन) स्वय अनुभूत पीडा अथवा दु ख के प्रकाशन के अश से सम्बन्धित आलबन की उपस्थिति के कारण एक मनुष्य को अश्रुपूर्ण नेत्र देखकर हमको भी मानसिक क्लान्ति हो उठती है।[3]

अब तक फ्राइड के सिद्धान्तो के प्रवर्तक अनुयायी मन के अचेतन भाग मे केवल दूषित प्रवृत्तियो का सघटन मानते थे। किन्तु जुग ने इससे आगे खोज कर सिद्ध किया कि हमारा अचेतन मन अमर बीज भूमि है जो प्राचीन प्रतीको से अपने आपको प्रकाशित करता है और इन प्रतीकोके द्वारा आत्मा की नवीनता को प्रकट करता है। तत्त्वत हमारे पूर्वजो के असख्य अनुभवो से उद्भूत यह एक पौराणिक मूर्ति है। इनमे से प्रत्येक मे मानव-मनोविज्ञान का एक अश तथा मानव भाग्य विधा है। पीडा एव आल्हाद का जो असख्य बार हमारे पूर्वजो की गाथा मे सभावित हुए है यह

---

१. रम्याणि वीक्ष्य मधुराश्च निशम्य शब्दान्
पर्युत्सुकी भवति यत्सुखितोऽपि जन्तु ।
तच्चेतसा स्मरति नूनमबोधपूर्व
भावस्थिराणि जननान्तर सौहृदानि" ।—शकु० ५।६

२. 'That this art impulse in one form or another is common heritage for all members of our race is, I think true without doubt.

—Pain Pleasure and AEsthetics by A. H. Marshal, Page 100

३. The process of sympathy in its most general form may be described as the revival in a lower degree of strength of a affective state through the medium of a presentation answering to a part of its reflex discharge or manifestation. Thus depression on seeing a person in tears is due to the presence of a presentation corresponding to a part of the manifestation of a pain and grief as experienced in our own case.

—Human Mind by James Sulley, Page 108, Ed 1892

एक अवशेष है। इसलिए सगृहीत अचेतन सब प्रकार की कला का मूलस्रोत है।[1]

शरीर-विज्ञान के अनुसार स्थायीभाव शोक का विश्लेषण

कालकिन ने भावानुभूति का अध्ययन शरीर-विज्ञान की दृष्टि से किया है। यह अध्ययन अनुभूति की शरीरगत आन्तरिक प्रगति एव क्रियाशीलता का विश्लेषण एव प्रकटीकरण करने के साथ अनुभूति के वैज्ञानिक रूप का भी उद्घाटन करता है।

पुत्र के मृत शरीर को आलबन मान लिया जाय तो सबसे प्रथम मूर्तिपट पर आलबन का प्रभाव पडेगा। मूर्तिपट से पश्चकपाल-खण्ड प्रभावित होता है। पश्च-कपाल-खण्ड का सम्बन्ध अन्य सवेदन केन्द्र तथा रोलेण्डिक क्षेत्र से है। इसलिए पश्चकपाल-खण्ड के पश्चात् अनुभूति का प्रभाव अन्य सवेदनकेन्द्र तथा रोलेण्डिक क्षेत्र पर पडता है। रोलेण्डिक क्षेत्र मस्तिष्क-पुच्छ से जुडा हुआ है। अतएव रोलेण्डिक क्षेत्र के पश्चात् अनुभूति मस्तिष्क-पुच्छ को प्रभावित करती है जहाँ एच्छिक तथा अनैच्छिक पेशियाँ सचालित हो उठती है तथा अनुभूति अन्ताग रोलेण्डिक क्षेत्र को प्रभावित करने लगती है जो अन्ताग ललाट खण्ड से जुडा हुआ होता है। अतएव अनुभूति ललाटखण्ड मे पहुँच कर बाह्य व्यजको का सृजन करती है तथा इन बाह्यव्यजको द्वारा ही अनुभूति का प्रकटीकरण गोचर हो जाता है।

कहना न होगा कि अनुभूति का आन्तरिक रूप अति गतिशील होता है तथा मूर्तिपट से ललाट-खण्ड तक अनुभूति क्षणमात्र मे पहुंच जाती है। इस प्रकार अनुभूति की आन्तरिक प्रगति के साथ सम्पूर्ण स्नायु-मण्डल जाग्रत एव सचेतन हो जाता है। इस रूप मे अनुभूति द्वारा उपस्थित विजातीय विषम अवस्था से क्षुब्ध स्नायुमण्डल अविलम्ब स्वस्थ एव सम अवस्था प्राप्त करने का स्वतः ही प्रयत्न करता है तथा अनुभूति को मूर्तिपट से प्राप्त कर अविलम्ब बाह्यव्यजको द्वारा निकाल देता है। इस प्रकार इन बाह्यव्यजको द्वारा विषम अवस्था का विरेचन होकर पुन सम अवस्था प्राप्त हो जाती है। जिसको प्राप्त करना शरीर का स्वाभाविक धर्म है।

कालकिन ने अपने इस अध्ययन द्वारा निश्चय ही अनुभूति के तथ्यो के

१. ....The unconscious is not only the receptacle of all unclean spirits, but is in particular the one ever living seed ground which manifest itself through ancient symbolical images, and yet by means of these images, points to a renewal of spirit. Essentially therefore it is mythological figure resultant of countless experiences of our ancestors. Each of these contains a piece of human psychology and human destiny, a relic, of suffering and delight that has happened countless time in our ancestoral story. So the "collective unconscious" is the main source of all types of arts."

—'Art Symbolism' Indian Journal of Psychology. Vol XXIV 1949, Page 122.

स्पष्टीकरण मे विशेष योग दिया है। कालकिन के इस अध्ययन का रेखाचित्र पृष्ठ ६१ पर दे दिया गया है।

स्थायीभाव शोक के सम्बन्ध में पाश्चात्य दृष्टि

हेगल ने स्थायीभाव शोक का सूक्ष्म अध्ययन किया है तथा अपने अध्ययन के आधार पर स्थायीभाव शोक से सम्बन्धित प्रायः सभी तथ्यो का विस्तृत विवरण दिया है। हेगल के इन विचारो को यहाँ देख लेना आवश्यक होगा। इन विचारो द्वारा शोक की व्यापकता, प्रभविष्णुता तथा चरित्र निर्माण के लिए आवश्यकता आदि तथ्यों पर अपेक्षित प्रकाश पड सकेगा। हेगल के विचारो का भाव निम्नलिखित है—

"..... कला मे किसी प्रकार हम उससे द्रवित हो सकते है जिसके अन्तर्गत शोक की प्रामाणिक अभिव्यक्ति होती है...निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि न तो सुखान्त और न दुःखान्त मे शोक वह हो जो केवल किसी की मूर्खता है अथवा व्यक्तिगत सनक है। उदाहरणत शेक्सपियर का टिमन शुद्ध भौतिक आधार पर मानव-द्रोही व्यक्ति है। उसके मित्रो ने उसको चूस लिया है, उसके सग्रह को समाप्त कर चुके है और जब उसको उनके धन की आवश्यकता हुई तो वे उसको छोडकर चले जाते है। परिणामत वह मानवता का कट्टर शत्रु बन जाता है। यह स्थिति प्रकृति के अनुकूल है तथा विचारणीय है किन्तु इसके अन्तर्गत शोक की अभिव्यक्ति नही हुई है जिसको सिद्धान्तो के अनुकूल सिद्ध किया जा सके।"[1]

दूसरी ओर यह टिप्पणी दी जा सकती है कि जहाँ तक वैज्ञानिक परिज्ञान मुख्य रूप से अपेक्षित है प्रत्येक वस्तु की शिक्षा, सत्य की प्रामाणिकता तथा अन्तर्दृष्टि पर आधारित है शोक की प्रामाणिक अभिव्यक्ति के लिए अनुकूल विषय सामग्री नही हो सकती। विज्ञान के तथ्य इस भौतिकवाद के एक भाग है और यही कारण है कि विज्ञान एक विशेष प्रकार की शिक्षा, वैज्ञानिक विशेषरूपो के ज्ञान तथा इस दिशा मे किए गए प्रयत्न एव उनके पारस्परिक असाधारण प्रकार तथा विस्तार से सम्बन्धित महत्त्व के प्रकटीकरण को चाहता है। इस प्रकार के अध्ययन मे रुचि किसी प्रकार भी सार्वजनिक रूप मे मानवहृदयो पर प्रभाव नही डाल सकती प्रत्युत यह सीमित है

१. In art however, only that ought to move us which contains in itself the real impart of pathos.
.. ...We may affirm that neither in comedy nor in tragedy ought pathos to be that which is only folly or personal idiosyncracy. Shakespear's Timon, for example is on purely material grounds a misanthrope, his friends have eaten him up, consumed his substance and when he himself requires their gold desert him. He consequently becomes a passionate enemy of mankind. The situation both conceivable and consistant with nature, but it contains no pathos that can be justified on principles.
—Hegal : Philosphy of fine arts. Page 310

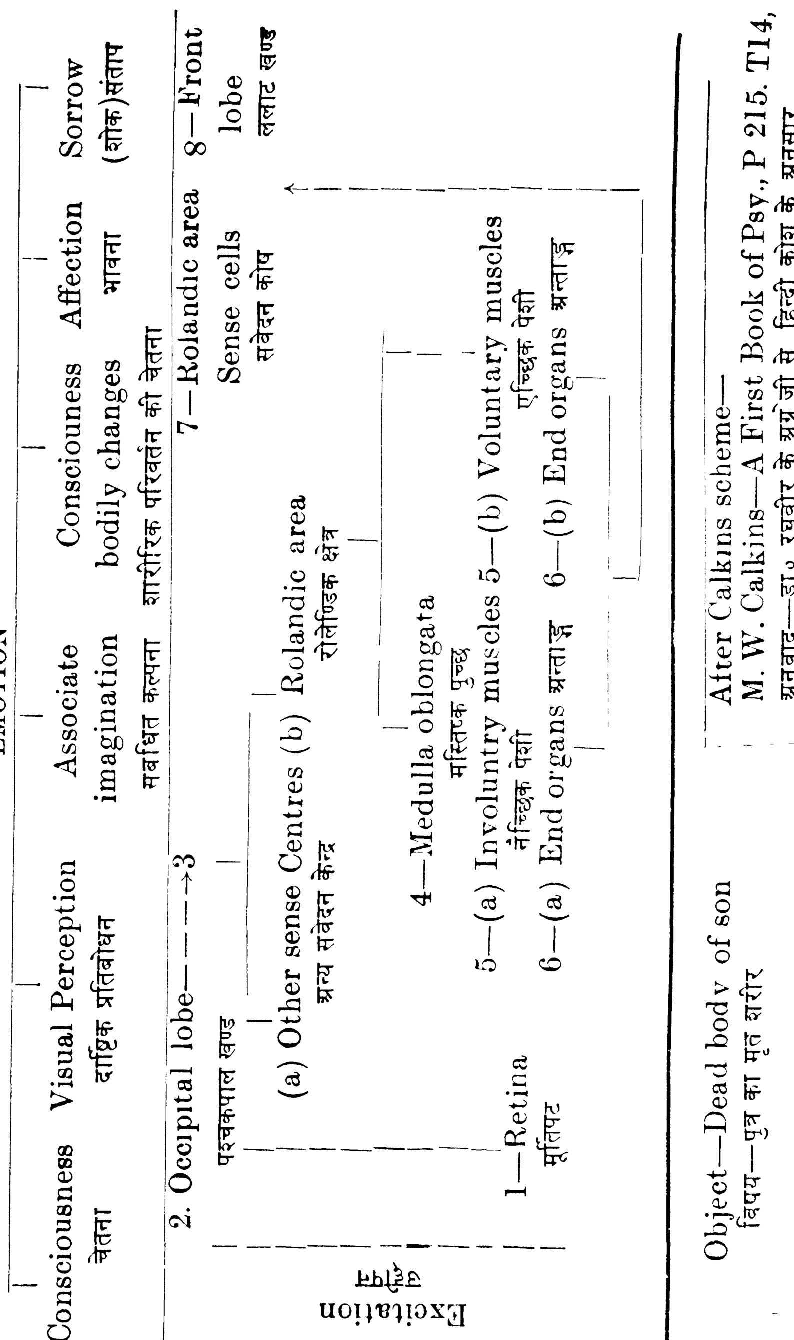

After Calkins scheme—
M. W. Calkins—A First Book of Psy., P 215. T14,
अनुवाद—डा० रघुवीर के अंग्रेजी से हिन्दी कोश के अनुसार

और सदा विज्ञान के भक्तो के संकुचित क्षेत्र मे सीमित रहेगी।[१]

यह और भी अधिक आवश्यक है कि कला द्वारा प्रत्येक प्रकार की शोकानुभूति आचार सम्बन्धी प्रत्येक तथ्य जो क्रियात्मक तथा अति आवश्यक रुचि के है मानव-हृदयो को सौप दिए जाँय।[२]

...अब इस आवश्यकता के लिए अपेक्षित शोक अपनी अभिव्यंजना के लिए अभिव्यंजना की शक्ति के प्रकाशन का ही नही प्रत्युत पूर्ण विस्तार का भी अपेक्षी है। सक्षेपत· (इसको) अपनी अभिव्यक्ति को बाह्याकार देने तथा उसकी सर्वांग पूर्णता तक उठने के लिए प्रस्तुत रहना चाहिए।[3]

...आत्मा जो शोक का प्रकाशन करती है वह आत्मा होनी चाहिए जो अमित प्रवाह के लिए पूर्ण हो तथा जो अपने आपको असीम रूप मे विस्तृत करने तथा अपने गुणो की अभिव्यंजना के योग्य हो।[४]

---

१. In another direction we may remark that everything which depends solely, that is to say, in so far as scientific appreh-ension is the main requirement, upon instruction, testimony to the truth, and insight of what is offered as such is no fit subject matter for the representation of a genuine pathos. The facts of scientific knowledge are a part of this material And the reason of this is that science demands a particular form of education and efforts towards and knowledge of the specific forms of science and their relative importance of exceptional variety and extention, a interest in this type of study is by no means an universally moving influence in the hearts of men, but is limited and must ever remain limited to a narrow circle of votaries

—Hegal Philosophy of Fine Arts, Page 310-311

२. It is all the more necessary that we should through art entrust every type of pathos to the human heart, every motive of ethical significance, which are of practical and vital interest.

—Hegel Philosophy of Fine Arts, Page 312.

३. Now a pathos of this need requires for its display not merely the power of exposition, but also that of perfect eleboration. And what is more, the soul which entrusts to its pathos the spiritual wealth it possesses must be one with real wealth to dispose of, ánd not one that can rest in a condition of purely intensive selfconcentration. It must in short be ready to give an outward semblance to its self expression and rise to the finished perfection of that.

—Hegal : Phiosophy of Fine Arts Page 312.

४. The spirit which is to reveal to us pathos must be a spirit which is full to running over, which is able to spread itself adroad and give expression to its virtue.

—Hegal : Philosophy of Fine Arts, Page 312.

.. तब यह आवश्यक है कि शोक इसलिए कि अपने आप मे ठोस हो जैसाकि आदर्शकला के लिए होना आवश्यक है अपनी कलापूर्ण अभिव्यक्ति मे प्रकाशित होना चाहिए जैसे मानो शोक ठोस तथा सम्पन्न आत्म–प्रकृति से प्रवाहित हो रहा हो।[१]

...मानव शोक मे देवताओं की सृष्टि होती है तथा शोक अपने अधिक ठोस एव क्रियात्मक रूप मे मानव-चरित्र है।[२]

हेगल के उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि शोक अति व्यापक तथा प्रभावशाली रूप मे क्रियाशील होता है। करुण रस की अभिव्यक्ति मानव-मानस को शुद्ध एव सात्विक बनाती है। इस प्रकार मानव-चरित्र निर्माण भी शोकानुभूति पर आधारित है। इसलिए शोक की आदर्श अभिव्यक्ति के लिए हेगल ने विशेष जोर दिया है।

हेगल के उपर्युक्त विचार भारतीय दृष्टिकोण के अन्तर्गत भी पूर्ण विकसित रूप मे प्रकट हुए है। करुणरस के अन्तर्गत आध्यात्मिक शोक इस अवस्था का मूल आधार है जिसके द्वारा मानव चरित्र-गठन ही नही प्रत्युत मानव-जीवन का ध्येय ईश्वर-प्राप्ति भी पूरा होता है।[३]

---

१. That it is necessary that pathos, in order to be in itself concrete, as it should be in ideal pathos issuing from a spiritual nature, rich and comprehensive

—Hegal · Philosophy of Fine Arts, Page 313

२. The Gods are born into pathos of man, and pathos in its more concrete form of activity is human character

— Hegel : Philosophy Of Fine Arts, Page 314

३. उपाध्याय जी ने वैदेही-वनवास के वक्तव्य मे तथा आचार्य शुक्ल ने चिन्तामणि मे हेगल के विचारो के समान ही निम्नलिखित शब्दो मे अपना मत प्रकट किया है—

"करुण रस द्रवीभूत हृदय का वह सरस प्रवाह है जिससे सहृदयता क्यारी सिंचित, मानवता फुलवारी विकसित और लोकहित का हरा-भरा उद्यान सुसज्जित होता है।" —(वैदेही-वनवास)

'मनुष्य की प्रकृति मे शील और सात्त्विकता का आदि सस्थापक यही (करुणा) मनोविकार है।'

"मनुष्य के अन्त करण मे सात्त्विकता की ज्योति जगाने वाली यही करुणा है।"—शुक्ल: चिन्तामणि—करुणा, ५६ पृ० ४३ व ४८

करुण रस की इसी द्रवीभूतता, सवेदना की तीव्रता तथा सहानुभूति की विशेषता को दृष्टिगत रखते हुए ही तो भवभूति ने कहा था—

एको रसः करुण एव निमित्त भेदा—
द्भिन्न पृथक् पृथगिव श्रयते विवर्तान्।
आवर्तबुद्बुदतरङ्गमयान्विकारा—
नम्भो यथा सलिलमेव हितत्समग्रम्॥ ३/४७ चौ०' ५३

अपने यहाँ प्रामाणिक एव अप्रामाणिक शोक का विभाजन नही हुआ किन्तु निर्विवाद है कि पाश्चात्य साहित्य के समान शोक के अप्रामाणिक चरित्रो को भी भारतीय साहित्य मे स्थान नही मिला। मानवता का प्रेमी भारतीय कवि कभी मानव-द्रोही पात्रो की कल्पना ही न कर सका। इसलिए इस प्रकार के विभेद की कभी आवश्यकता भी अनुभव नही हुई।

करुणरस के दोष – करुणरस के सभावित दोष निम्नलिखित है।

शब्द वाच्यता—स्वशब्द द्वारा रस, स्थायीभाव अथवा सचारीभावो का कथन दोष होता है क्योकि रस व्यग्यार्थ है। व्यजना द्वारा ही उसका आस्वादन होना चाहिए।[1]

विरोधी रस वर्णन—वर्णनीय रस की विरोधी सामग्री का प्रयोग है। करुण रस के विरोधी रस शृगार तथा हास्य है। अत. करुण रस के वर्णन मे इन रसो के विभावादि का वर्णन अनुचित होगा।

रस पुनर्दीप्ति—रस-परिपाक के पश्चात् उसी रस का पुन वर्णन मानव स्वभाव के अनुसार अरुचिकर होता है। इसीलिए यह भी एक दोष माना गया है।

अकाण्ड छेदन—असमय मे रस भग सामाजिक की जिज्ञासा को अधूरा छोडने के कारण असगत होता है। इसी लिए दोष गिना जाता है।

करुण रसाभास—रस का अनौचित्यरूप मे व्यजित होना रसाभास कहलाता है। विरक्ति मे शोक का वर्णन करुण रसाभास कहलायेगा।

रसदोषों का आधार मूलतः मनोवैज्ञानिक है—मानव—व्यवहार के अध्ययन के अन्तर्गत हुई खोज के आधार पर स्पष्ट है कि आत्मश्लाघा, प्रसग प्रतिकूल चर्चा, विषय समाप्ति के पश्चात् पुन· उसी का प्रारम्भ तथा बीच मे किसी प्रसग को अधूरा छोडना मानव-व्यवहार एव शिष्टाचार के नाते अवाच्छनीय है। व्यवहारमान्य आचार सबधी यही विचार साहित्य मे भी स्थान पा सके तथा क्रमश शब्दवाच्यता, विरोधी रस वर्णन, रस पुनर्दीप्ति तथा अकाण्ड छेदन आदि के रूप मे दोष गिने गए।

रस-निष्पत्ति—रस-निष्पत्ति के सबध मे भारतीय आचार्यो का सिद्धान्त "विभावानुभावव्यभिचारिसयोगाद्रसनिष्पत्ति " गेस्टाल्ट मनोविज्ञान की मान्यताओ के पूर्ण अनुकूल है जिसके अन्तर्गत प्रत्येक व तु-जात मे सपूर्णता की स्थिति मानी गई है। रस-निष्पत्ति का विवेचन करते हुए प्रपानक रस का उदाहरण दिया जाता है जिसकी सार्थकता ही सपूर्णता मे है। प्रपानक रस की वस्तुएँ पृथक्-पृथक् रहकर अपना पृथक् अस्तित्व भले ही रखे किन्तु प्रपानक रस की अनुभूति सभव नही हो

---

१. "व्यभिचारिरसस्थायिभावाना शब्दवाच्यता।" —काव्यप्रकाश ७/६०—६२

२. "विरोधिरस सम्वन्धिविभावादि परिग्रहः।" —ध्वन्यालोक ३—१८

"प्रतिकूल विभावादिग्रहो।"—काव्याप्रकाश ७/६१

"परिपन्थिरसाँगस्य विभावादेः परिग्रह.।" —साहित्यदर्पण ७—१३

सकती। यह पूर्णता भारतीय चिन्तनधारा का मूल आधार है। यहाँ कोई नई वस्तु नहीं है—

"ॐ पूर्णमद: पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥"

करुणरस की अभिव्यक्ति—करुणरस की अभिव्यक्ति शैलीगत किन रूपों मे श्रेष्ठ सभव होगी, इस तथ्य पर भी विद्वानो ने विचार किया है। यो तो कुशल कलाकार प्रत्येक शैली मे रसविशेष की श्रेष्ठ अभिव्यक्ति कर सकते है, फिर भी, शैली की अपनी विशेषता होती है। यहाँ एक-दो उदाहरण देकर इस बात को स्पष्ट किया जा रहा है।

डा० रामकुमार वर्मा के अनुसार राग केदारा करुणरस के लिए परम उपयुक्त साधन है। उनका मत निम्नलिखित शब्दो मे द्रष्टव्य है—

" केदारा के स्वर मे वह भावना है कि करुणा की समस्त मूर्छनाएँ एक बार ही हृदय मे जाग्रत हो जाती है। ऐसा ज्ञात होता है जैसे सारा ससार तरल होकर किसी की आँखो से आँसू बनकर निकलना चाहता है। तारिकाएँ आकाश की गोद में सिमिट कर पतली किरणो मे प्रार्थना करने लगती हैं। कलिकाएँ सुगधि की वेदना से फूल बन जाती है और बिन्दु मे डूबकर पृथ्वी के चरणो मे आत्मसमर्पण करना चाहती हैं।

—(डा० वर्मा : विभूति-समुद्रगुप्त पराक्रमाक पृ० ९३/९४ विद्यामदिर प्रकाशन)

यहाँ यह अवलोकनीय है कि सूर ने करुणरस के प्रसगो मे जहाँ केदारा के १३ पद रखे है वहाँ मारु के ७७ पद रखे है और इस प्रकार 'केदारा' के स्थान पर करुण रस की अभिव्यक्ति के लिए 'मारु' को प्राथमिकता दी है।

" है " का प्रयोग—"पतजी 'है' को कविता से निकाल देने के लिए कहते हैं। कहते है, इसे माया-मृग समझकर कविता की सीता के पास न आने देना चाहिए। परन्तु सब जगह यह बात नही। करुणा के स्थल पर 'है' ही एक हृदय तक धसकर उसे कमजोर करता और करुण को उभाडता है—

कहां है उत्कंठा का पार !!
इसी वेदना में विलीन हो अब मेरा संसार !
तुम्हें, जो चाहो, है अधिकार ?
टूट जा यहीं, यह हृदय हार !!!

—(निराला प्रबध पद्य से उद्घृत)

रस और राग के प्रसग मे यहाँ निम्नलिखित तथ्य उल्लेखनीय हैं जिनसे डा० वर्मा तथा सूर की मान्यताओ पर प्रकाश पडता है। सगीतरत्नाकर मे सरगम के 'ग' और 'नी' स्वर को करुण के अन्तर्गत माना है" स री वीरे ··

ग नी तु करुणे "

सितारमार्ग द्वितीय भाग (वाणी मदिर प्रकाशन'५७) के पृष्ठ ९८ तथा

११३ पर क्रमश: केदार और बिहाग के सम्बन्ध में दिया हुआ है—'केदारा मे दोनो मध्यमो का प्रयोग होता है। आरोह के स्वर मे 'रे' 'ग' वर्जित है। इसका वादी शुद्ध मध्यम तथा सवादी षड्ज है। इस प्रकार केदारा करुण के लिए प्रमुख राग सिद्ध नही हो सकता। डा० वर्मा का उपर्युक्त विवरण से कदाचित् कुछ और आशय रहा होगा। बिहाग का वादी गधार और निषाद है। इसलिए बिहाग करुण के लिए उपयुक्त होगा।

मनोविज्ञान की समीक्षा में करुणरस

मनोविज्ञान की समीक्षा के अन्तर्गत शोकानुभूति को जीवन रक्षा का एक प्राकृतिक साधन कहा जा सकता है जिसके द्वारा विशृ खल होने से पूर्व नाडीसस्थान सतुलन प्राप्त कर लेता है। मानसिक अथवा शारीरिक सतुलन प्राप्त करना ही मनोवैज्ञानिक दृष्टि से मानस-अन्तर्वृत्तियो का प्रमुख कार्य है। भौतिक जगत के सम्पर्क मे मानव इस सतुलन को विशेष परिस्थितियो के अन्तर्गत खो देता है। उसको पुन प्राप्त कराकर जीवन रक्षा के साथ जीवनयापन को सुलभ बनाना इन अन्तर्वृत्तियो का काम है। इसीलिए मनोविज्ञान-शास्त्रियो ने इनको अतिरिक्त शक्ति के प्रवाह की प्रवाहिका भी कहा है। करुणरस के सचारीभावो को इन अन्तर्वृत्तियो के साहित्यिक नाम समझने चाहिए। सचारीभाव रसनिष्पत्ति की ओर अग्रसर कराने के साथ अतिरिक्त शक्ति-प्रवाह को प्रवाहित भी कर देते है। इस निस्सरण विधान से मानसिक स्फूर्ति की प्राप्ति होती है। मध्ययुगीन कवियो ने इस मनोवैज्ञानिक तथ्य का विशेष अध्ययन किया तथा शास्त्रीय सचारीभावो से इतर अन्य प्रभावशाली अन्तर्वृत्तियो की भी खोज की। तुलसी एव सूर इस सम्बन्ध मे विशेष उल्लेखनीय है।

साहित्यिक आस्था के अनुकूल मनोविज्ञान भी इन अन्तर्वृत्तियो को वासनागत मानता है। जन्म-जन्मान्तरगत वासनाओ का बीजभूत अचेतन आज की नवीतम खोज है। रस-सिद्धान्त अनुभूति-क्षेत्र की वस्तु होने के कारण वासनागत तथ्यो पर विशेष रूप से आश्रित है। इसीलिए "अरसिकेषु कवित्वनिवेदनं" अनुपयुक्त समझा गया।

मनोवैज्ञानिक अध्ययन अन्तर्वृत्तियो के सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावो को प्रकट करने के साथ शोकानुभूतिगत बाह्यव्यजको के लिए भी उदसीन न रहा। शोकानुभूतिगत मुख की सूक्ष्म विवेचना की गई। आलबन की विशेष गतिविधि को सकारणता देने के प्रयत्न हुए। शास्त्रीय विवेचन के अन्तर्गत आदि आचार्य भरत ने तत्त्वत. मनोवैज्ञानिक अध्ययन को अपने विवेचन का आधार बनाया तथा सभव बाह्यव्यजको की सूक्ष्मातिसूक्ष्म समीक्षा का। पाश्चात्त्य मनोविज्ञान के विद्यार्थी के लिए अन्तर्वृत्तियो की नवीन खोज तथा बाह्य्य व्यजको का विस्तृत एव सूक्ष्म अध्ययन कुतूहल एव प्रशसा का विषय बन सकता है किन्तु भारतीय मनीषियो ने यह खोज आज से हजारो वर्ष पूर्व कर ली थी यह जानकर उसको दातो तले उँगली दबानी पड़ेगी। यही क्यो भारतीय मनीषियो का अनुसंधान आज भी कई दिशाओ मे आगे है तथा पाश्चात्य-

विद्वानो का पथप्रदर्शन कर सकता है।

यह जानकर हर्ष होता है कि यद्यपि भारतीय मनीषियो ने मनोविज्ञान के नाम से किसी विषय का पृथक् विवेचन नही किया तथापि उनका रससिद्धान्त मनोविज्ञान की अधुनातम खोज के पूर्ण समीप है।

आध्यात्मिक शोक और भक्तिरस

आध्यात्मिक शोक मानस की आन्तरिक वह व्याकुलता है जिसके अन्तर्गत उस परम सत्ता को जानने मे अपने ज्ञान की परिमिति तथा उस अज्ञात सत्ता को ज्ञात करने मे अपनी विवशता के समक्ष मानव कातर हो उठता है। ज्ञानपिपासा मानव की जन्मजात सहचरी है। उसने पार्थिव जगत को ज्ञात किया तथा इस सफलता पर वह मुग्ध हो गया किन्तु इस सम्पूर्ण पार्थिव ज्ञान के "इद इत्थ" के परे उसका द्वान्द्वात्मक जिज्ञासा "ऐसा क्यो नही है" उसको अपने इस ज्ञान की अपूर्णता के साथ एक अज्ञात सचालन-शक्ति की ओर सकेत कर मौन हो जाती है।

आध्यात्मिक शोक का आधार—ससार मे एक विशेष क्रम है जिसका परिपालन अक्षुण्ण रूप मे होता रहता है। इस सचालन- कुशलता के पीछे किसी अज्ञात शक्ति का हाथ है। इस प्रकार का विश्वास स्वाभाविक रूप से जिज्ञासु को हो जाता है। आज के वैज्ञानिक युग मे निरीश्वरवादी विचारो के अर्न्गत भी मानवी खोज का एक ऐसा स्थल आता है जहाँ विज्ञान को मौन रह जाना पडता है। इस अज्ञात शक्ति के प्रति जिज्ञासा का समाधान न होने के कारण सत्यान्वेषी को शोक होता है।

मृत्युभय मानव के आध्यात्मिक शोक का दूसरा कारण है जिस पर विजय पाने की लालसा मे उसके अनवरत प्रयत्न सदा अपूर्ण रहे है। अमरता प्राप्त करने की मानव लालसा सदा कल्पनासभावित सुखस्वप्नो को जन्म देती रही जो कभी सत्य न हो सकी। इस मृत्युभय से मुक्ति पाने का एकमात्र साधन ब्रह्मविद्या का ज्ञान समझा गया। इसीलिए मानव जीवन मे अध्यात्म मार्ग की जिज्ञासा कभी न कभी उदय होती रही।

अध्यात्मिक शोक के प्रसंग—अध्यात्मिक शोक के प्रसगो का स्पष्टीकरण करने के लिए यहाँ एक दो उदाहरण देख लेना आवश्यक होगा जिससे आध्यात्मिक, शोक की मूल अनुभूति पर प्रकाश पड सके।

ब्रह्मविद्या के जिज्ञासु नारद अध्यात्मिक शोक का अनुभव करते है इस प्रकार का एक आख्यान छान्दोग्य उपनिषद् प्रपाठक ७ खण्ड के अन्तर्गत आया है।

एक समय महात्मा नारद सनत्कुमार के पास पहुँचे तथा कहा, 'हे भगवन् मुझे ब्रह्मविद्या पढाइए"। सनत्कुमार ने कहा, "जो कुछ तुम जानते हो उसको मेरे समीप बैठकर सुनादो जिससे उससे आगे की बात मै बताऊँ।"

नारद ने कहा—"भगवन् मै ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, इतिहास पुराण, व्याकरण, पितृकर्म, गणितशास्त्र, भाग्यविधान, तर्कशास्त्र, नीतिशास्त्र, देव-

ज्ञान, ब्रह्मविद्या, पाँचों तत्वों की विद्या, धनुर्वेद, ज्योतिषशास्त्र, सर्पज्ञान, गन्धर्व विद्या आदि को जानता हूँ। इन सब का मैने अध्ययन किया है और मुझे ये विद्याएँ आती है। हे भगवन् मै सर्व विद्या सम्पन्न हूँ किन्तु आत्मा का ज्ञाता नही हूँ। मैंने सुना है कि आत्म का ज्ञाता मनुष्य जन्ममरण की चिन्ता से मुक्त हो जाता है। **भगवन्, मै शोक में हूँ। मुझ चिन्तातुर को आप शोकमुक्त करें।** मुझे ऐसा जान पडता है कि मैने केवल बहुत से शब्दो को ही पढा है।"[1]

उस अज्ञात सत्ता को जानने की जिज्ञासा तथा उस जिज्ञासा का निरुत्तर रह जाना वैदिक कालीन ऋषियो के शोक का भी कारण बना। ऋग्वेद के सहिता (म० १ सू० २२) के अन्तर्गत सृष्टि के चमत्कारो के प्रति निम्न रूप मे कुतूहलवृत्ति का सचार हुआ —

"ऊँचे पर रखे हुए यह तारे रात मे दिखाई दिए किन्तु दिन में कहाँ चले गए? आकाश के आश्चर्य समझ मे नही जाते। रात मे चमकता हुआ चन्द्रमा निकलता है किन्तु दिन में कहाँ चला जाता है?......"[2]

इसी प्रकार की जिज्ञासा एक अशिक्षित व्यक्ति को भी हुई। अफ्रीका की अशिक्षित "बासूटो" जाति का एक गडरिया जगल मे अपनी भेडे चरा रहा था। भेडे चराते हुए उसको आध्यात्मिक शोक की अनुभूति निम्नलिखित रूप मे हुई —

(गडरिया स्वय कह रहा है) "बारह वर्ष हुए अपनी भेडो के झुण्ड को मै जगल मे चरा रहा था। आकाश मे धुँध थी। मै एक चट्टान पर बैठ गया। **मेरे मन में शोकपूर्ण प्रश्न उठने लगे—हाँ, शोकपूर्ण क्योंकि मै उनका उत्तर पाने में असमर्थ था।** अपने हाथो से तारो को किसने छुआ? किन स्तम्भो पर यह आधारित है? जलप्रवाह कभी थकता क्यो नही? प्रवाह के अतिरिक्त किसी अन्य नियम को वह जानता नही। सवेरे से शाम और शाम से सवेरे तक बहता ही रहता है किन्तु वह कहाँ रुकता है? उसको कौन गति देता है? बादल भी आते है और चले जाते है तथा फटकर पृथ्वी पर पानी बरसा देते है। वह कहाँ से आते है? और उन्हे कौन

---

१. "अधीहि भगव इति होपससाद सनत्कुमार नारद· त होवाच यद्वेत्थ तेन मोपसीद्, ततस्त ऊर्ध्व वशयामीति १···
स होवाचर्ग्वेद भगवोऽध्येमि, यजुर्वेदम्, सामवेदमाथर्वण, चतुर्थमितिहासपुराण पचम वेदनां वेद पित्र्यम् राशि देव निधि वाकोवाक्यमेकायन देवविद्या ब्रह्मविद्यां भूतविद्या छत्रविद्या नशविद्या सर्पदेवजनविद्यामेतद्भगवोऽअध्येमि···२
सोऽहं भगवो मत्रविदेवस्मि नात्मावि ᳪ ह्येव मे भगवद्दृभयस्त रति शोकमात्मविदिति सोऽह भगवेः शोचामि त मा भगवाछोकस्य पार तारयत्विति त ᳪ होवाच यद्वै किंचैतध्यगीष्ठा ना मैवैतत्···३···(छाँदो० प्र०७-ख०१)

२. "अमीय ऋक्षानिहितास उच्चा· नक्त दद्दशे कुहचिद् दिवा ईयुः अद० धानि वरुणस्य व्रतानि।" (ऋग—सं० म० १ सू० २२)

भेजता है ? मैं वायु को देख नहीं सकता किन्तु यह है क्या ? कौन इसको लाता है और कौन इसको चलाता है ? दोनों हाथो मे मुंह छिपाकर, सिर झुकाए मैं सोचता रह गया।"[१]

आध्यात्मिक शोक के उपर्युक्त उदाहरणो से स्पष्ट है कि सृष्टि वैचित्र्य की निरुत्तर जिज्ञासा तथा मृत्यु-बन्धन से मुक्ति के असफल प्रयत्नो के फलस्वरूप प्राचीन जिज्ञासुओ को आध्यात्मिक शोक की अनुभूति हुई। आधुनिक खोज के द्वारा सृष्टिवैचित्र्य का उत्तर किसी अश तक जिज्ञासुओ को प्राप्त हो गया है तथा आज इस प्रकार के शोक की उद्भावना सम्भव नही है किन्तु इस प्रकार के उदाहरणों से आध्यात्मिक शोक की प्रकृति पर प्रकाश तो पडता ही है। साथ ही मृत्युभय आज भी उसी रूप मे विद्यमान है। इसका हल अभी तक सम्भव नही हो सका है।

जिज्ञासागत आध्यात्मिक शोक का दूसरा प्रसग अनुकूल साधना की खोज के अन्तर्गत आता है। धार्मिक विभिन्नता के साथ साधन विभिन्नता के अन्तर्गत अनुकूल साधन की खोज कर लेना भक्त के लिए एक समस्या बन जाती है। प्रभु खोज के स्थान मे प्रभु तक पहुँचने के अनुकूल मार्ग की खोज में ही साधक अटक कर रह जाता है। इस स्थिति मे उसकी असमर्थता तथा निराशा उसको परम कातर बना देती है।

धार्मिक आस्थानुकूल साधन की प्राप्ति भी हरिकृपा पर निर्भर है। यह तथ्य साधक की विवशता का मुख्य कारण बन जाता है। साधनखोज के लिए अपने श्रम एव प्रयास को वह अविश्वास की दृष्टि से देखने लगता है। उसकी यह विवशता उत्तरोत्तर बढती ही जाती है जब तक कि किसी प्रकार उसकी जिज्ञासा का समाधान नही हो जाता। किसी प्रकार अनुकूल साधन की प्राप्ति हो भी गई तो उसकी क्रियात्मक कठिनाइयाँ गुरुखोज के लिए उसको विवश कर देती है। इसीलिए साधन खोज ही नही प्रत्युत प्रभुखोज से भी बढकर गुरुखोज को बतलाया गया है।

---

१. The Psychology of Emotions —By Ribet, Page 239,

"In the following reported by a traveller, we have an instance of this spontaneous transition to disinterested curiosity in the case of an intelligent-Basute : "Twelve years ago (the man himself speaking) "I went to feed my flocks. The weather was hazy. I set down upon a rock and asked myself **sorrowful questions, yes, sorrowful, because I was unable to answer them.** Who has touched the stars with his hands ? On what pillars do they rest ? The waters are never weary, they know no other law than to flow without ceasing--from morning till night, and from night till morning but where do they stop, and who makes them flow thus ? Who sends them ? I can not see the wind, but what is it ? Who brings it, makes it blow ? Then I burried my face in both my hands." **The Basute :**

गुरु मिल जाने पर प्रभु मिलने में कोई कठिनाई नही होती—यह आध्यात्मिक क्षेत्र की प्रामाणिक आस्था है। गुरुखोज इसीलिए प्रभुखोज से भी महत्त्वपूर्ण तथा कठिन है। मध्ययुगीन चिन्तनधारा के अन्तर्गत साधना के लिए गुरु की आवश्यकता प्रत्येक साधक ने अपेक्षित रखी है जिसके अन्तर्गत गुरुमहिमा तथा सद्गुरु की कृपा की प्रतिष्ठा हुई है।

गुरुगत साधना मे भी गुरुकृपा के साथ साधक की अपनी योग्यता आवश्यक समझी गई। "मूरख हृदय न चेत जौ गुरु मिलैं बिरचि सम" अयोग्य साधको के लिए कवि का संकेत है जो अक्षरशः सत्य प्रतीत होता है। साधक की अपनी अयोग्यता उसके आध्यात्मिक शोक का कारण होती है। साधनागत स्पर्धा उसको भुला डालती है।

"गुरुमत" तथा "मनमत" दो शब्द गुरुसाधना के अन्तर्गत विशेष उल्लेखनीय है। गुरुमत होना ही साधक के लिए अपेक्षित एव आवश्यक समझा गया है किन्तु ऐसा प्रायः सम्भव नही हो पाता। मन प्राय गुरुमत की प्रतिकूलता तथा विरोध करता है, गुरुवचनो का परीक्षण करता है, शका एव सदेह की दृष्टि से गुरु आज्ञा की आलोचना करता है। मन के यह सब कार्य अहवृत्ति के फलस्वरूप स्वाभाविक कहे जा सकते है। मन का वह विरोध साधक के लिए घोर आत्मग्लानि का कारण बन जाता है जब वह देखता है कि उसके विरोध के होते हुए भी गुरु उस पर परम उदार और परम कृपालु बने हुए है। इस आत्मग्लानि मे करुण मनोभावो की सृष्टि होती है।

आत्म-निरीक्षण—आत्मनिरीक्षण के अन्तर्गत आध्यत्मिक शोक के प्रसग प्रकट हो सकते है जब एक अवधि के पश्चात् अपनी आध्यात्मिक प्रगति का अवलोकन करता हुआ भक्त देखता है कि वह आज भी वहाँ का वही है। इस आत्मनिरीक्षण के द्वारा उद्घाटित दोषो का परिज्ञान उसको अपनी अपवित्रता का आभास कराता है। साधक को बार-बार यही सकोच होता है कि इस पवित्रता के साथ स्वामी की शरणागति किस प्रकार सम्भव है। कबीर ऐसे आत्मविश्वासी भक्त भी अपने पिछले कारनामो के साफ किए जाने की प्रार्थना करते हुए दिखलाई देते है। भविष्य मे सावधान एव दृढ रहने का कबीर का आश्वासन उनकी निजी विशेषता है। साधारण साधक तो अपनी विवशता मे अपने आत्मविश्वास को ही खो बैठता है।

आध्यात्मिक विरह—अज्ञातसत्ता के प्रति प्रेम की बात ज्ञान, कर्म तथा भक्ति के तीन पृथक् मार्गो की प्रतिष्ठा के समक्ष अनहोनी अवश्य प्रतीत होती है किन्तु असम्भव नही। यह सत्य है कि इस प्रकार के प्रेम का क्षेत्र यहाँ विकसित न हो सका किन्तु इसका यह तात्पर्य नही कि मौलिक रूप मे यह विदेश से ही प्राप्त हुआ।

शरीर बन्धनो मे बद्ध, आत्मा के लिए बन्धनजन्य प्रभुदूरी आध्यात्मिक विरह की पृष्ठभूमि है। आत्मा का परमात्मा से चिरन्तन तथा शाश्वत सम्बन्ध है। इस सम्बन्ध को पुनः प्राप्त करने के लिए विरह-वेदना का जन्म अति स्वाभाविक है किन्तु

यह प्रत्येक के लिए सम्भव नही है। इसीलिए इसकी अनुभूति रहस्यात्मक हो जाती है। इस विरह-वेदना के सम्बन्ध मे जितना कहा जाय उतनी ही समस्या उलझती जाती है अतएव निषेधात्मक प्रणाली द्वारा साधको की भावनाओ की अभिव्यक्ति सम्भव हो सकी है।

आत्मा की उन्मुखदशा ही प्रेम के प्रथम चरण का प्रतीक होती है। इस क्षणिक आलोक से आत्मा की आँखे खुल जाती है। वह प्रभु का सानिध्य प्राप्त करने के लिए आतुर हो उठती है। विरह तन्मय होकर शरीर-साधन के लिए आवश्यक सम्पूर्ण आवश्यकताओ को भी भूल जाती है। आध्यात्मिक विरह के विरही पागल हो जाते है या जीवित नही रहते कबीर का यह विश्वास साधार प्रतीत होता है।

"राम वियोगी ना जिवै, जिवै त बौरा होइ।"

रूप के अभाव मे नाम ही रूप का स्थान ले लेता है, नाम की रट लग जाती है। एक क्षण का नाम वियोग प्रियवियोग की भाँति दारुण बन जाता है। नाम विरह की इस अन्यतमावस्था मे रोमरोम से नाम का उच्चारण होने लगता है। इस अलौकिक स्थिति को प्राप्त नाममय साधक यदि साध्य हो जाय तो क्या आश्चर्य ?

आध्यात्मिक विरह के अन्तर्गत मध्ययुगीन विचारधारा ने चिरन्तन एव विश्वव्यापी विरह की भी कल्पना की है। विश्वव्यापी विरह-भावना प्रेममार्गी कवियो की देन कही जा सकती है। कबीर मे इस भावना के दर्शन होते है। विद्यापति भी इस ओर एक स्थल पर सकेत करते है[1]। सूर और मीरा विरह के चिरन्तन रूप को प्रश्रय देते है जो विश्वव्यापी विरह को भी यथास्थान प्रकट करता है। इस चिरन्तन एव विश्वव्यापी विरह को विरहतन्मयामक्ति कहा जा सकता है। इस स्थिति मे प्रभुमिलन आशा का प्रश्न ही नही रहता। भक्त अपनी विवशता एव निराशा मे ही अपनी साधना का परमलाभ प्राप्त करता है।

आध्यात्मिक शोक कदाचित साहित्यगत दो वादो मे प्रकट हुआ—

१. भक्तिवाद, और २. रहस्यवाद।

भक्तिवाद आगे चलकर भक्तिरस बन गया तथा करुणरस के क्षेत्र से पृथक हो गया। रहस्यवाद 'वाद' के रूप मे ही प्रचलित रहा। यहाँ रहस्यवाद तथा भक्ति रस शोकमूला-प्रवृत्ति की दृष्टि से व्याख्या कर लेना आवश्यक है।

रहस्यवाद

गोचरजगत के अद्‌भुत व्यापारो मे एक चेतना तथा एक क्रम की अनुभूति किसी अगोचर परम सत्ता का आभास कराने के लिए विवश कर देती है। उस अज्ञात को ज्ञात करने की मानव-लालसा उसकी जिज्ञासा का आध्यात्मिक विकास है तथा इस लालसा के अपूर्तिजनित शोकपूर्ण उद्‌गार रहस्यवाद के प्रथम आभास कहे जा सकते

---

१. "जहाँ जहाँ पद युग धरइ। तँहि तँहि सरोरुह भरइ॥
जँह जँह नयन विकाश। तँहि तँहि कमल परकाश॥"

है । अज्ञात अज्ञात होने के कारण स्वयं रहस्यात्मक है । "वह क्या है, कैसा है ? आदि मूल जिज्ञासाएँ आदिम मानव से आज तक उसी रूप मे उत्तरापेक्षी समस्याएँ बनी हुई है। भविष्य में भी इनका कोई हल सम्भव नही है। इसीलिए रहस्यवाद सृष्टि के प्रारम्भ से प्रलय तक प्रगतिशील रहता है। व्यष्टि की वैयक्तिक अनुभूति की विभिन्नता ही रहस्यवाद की प्रगतिशीलता है।

इस क्षेत्र मे अनवरत, अध्यवसाय के परिणाम स्वरूप यह मान लिय गया है कि—

१—वह केवल अनुभूतिगम्य है।

२—वाणी के लिए वह सदा अनिवर्चनीय रहेगा !

इस खोज के पश्चात् रहस्यवाद विश्लेषण एव विकल्प से सश्लेषण तथा संकल्प के क्षेत्र की वस्तु बन गया है। ज्ञानक्षेत्र से अनुभूतिक्षेत्र मे उतरा तथा शास्त्रो से साहित्य के लिए मान्य हुआ। शास्त्रो ने जहाँ "नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन" तथा "नैषा तर्केण मतिरापनेया" कहकर उसको अलभ्य अमूल्य एवं अप्राप्य बतलाया वहाँ साहित्य ने "मोरे घर आए राजाराम भरतार" कह कर लभ्य एवं प्राप्य सिद्ध किया।

रहस्यवाद की मूलधारा आनन्दमूला थी तथा भारत की वह निजी सम्पत्ति है—प्रसादजी ने यह सिद्ध किया है। उनके इस मत से असहमत होने के लिए कोई कारण नही है किन्तु यह अवश्य है कि साहित्य की रहस्यधारा पर अभारतीय प्रभाव भी पड़ा। १४ वी शताब्दी मे भारतीय समाज एव सस्कृति पर सूफीमत का प्रभाव पडना प्रारम्भ हो गया था जिससे भारतीय रहस्य धारा को अछूता समझना उचित प्रतीत नही होता। यद्यपि भारतीय सस्कृति का आधारभूत सिद्धान्त पुरुष की विरह-विरलता तथा स्त्री का पुरुष के प्रति आकर्षण अक्षुण्ण रहा किन्तु इस धारा की आनन्दमूला मूल प्रवृत्ति दु.खोन्मुख हो गई इसमें सन्देह नही है।

इस दुःखमूला प्रवृत्ति की सकारणता का भी प्रसाद जी ने भारतीय दृष्टिकोण से अनुशीलन किया है किन्तु भारतीय रहस्यधारा के साथ सूफीमत की प्रबल विचार-धारा अपने कूलो में आबद्ध रहकर एक दूसरे के प्रभाव से वचित रही यह मानना वैज्ञानिक सिद्धान्तो के प्रतिकूल पड़ेगा। आज के सूफी ग्यारहवी शताब्दी के अपने रूप को स्थिर न रख सके तो यह कैसे सभव था कि रहस्यवाद की मूलधारा अपने भारतीय रूप मे अक्षुण्ण बनी रहती। इस विवाद की ओर सकेत करने का मेरा तात्पर्य यही है कि साहित्य की रहस्यधारा के अन्तर्गत प्रायः दु खवादी साहित्य का सृजन हुआ। इसके देशी अथवा विदेशी होने का निराकरण करने की यहाँ आवश्यकता नहीं है।

साहित्य की रहस्यधारा साधना क्षेत्र की वस्तु थी। उसका विकास कल्पना की ओर रहा था आज वह पूर्णतया कल्पना क्षेत्र की वस्तु बन गई है। इसका मूल कारण साधना की रहस्यात्मकता रहा है। साधनापद्धति का भारतीय दृष्टिकोण साधक की

निराश्रयता में विश्वास नही रखता। इस दृष्टिकोण का अक्षुण्ण रूप साहित्य की इस रहस्यधारा में प्रकट हुआ। गीता में बताया गया—"उस ज्ञान को तू समझ, श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ आचार्य को भलीभाँति दण्डवत प्रणाम करने, उनकी सेवा और कपट छोडकर सरलतापूर्वक प्रश्न करने से परमात्म तत्व को भलीभाँति जानने वाले वे ज्ञानी महात्मा तुझे तत्त्वज्ञान का उपदेश करेगे[1]?" साहित्य में "गुरु बिन होइ न ज्ञान" कह कर इस आस्था को साधना-मार्ग के लिए निर्गुण सगुण के भेदो का ध्यान न रखते हुए साधनाव्यापी रूप दिया गया।

साधना पथ को जिस प्रकार उपनिषद् काल के महर्षियो ने आपद्युत माना उसी प्रकार साहित्य में भी यह विश्वास बना रहा कि यह पथ किसी प्रकार भी निरापद नही है। उपनिषद् के यह "शब्द जिस प्रकार छुरे की धार तीक्ष्ण और दुस्तर होती है तत्त्वज्ञानी लोग उस पथ को भी वैसा ही दुर्गम बताते है"[2] साहित्य की निम्नलिखित अभिव्यक्ति मे प्रकट हुए—

"सीस उतारे भुइ धरै तौ पैठे घर माँहि"

साधना की दुःखमूला प्रवृत्ति का एक कारण साधना पद्धति का परसवेद्य रूप है। गुरु आश्रित होने के कारण साधक को गुरु उन्मुख होना पडता है। गुरु सेवा गुरु को प्रसन्न कर सकती है किन्तु साधना पद्धति के प्रकाशन के लिये उनको विवश किस प्रकार किया जा सकता है "मस्तमौला" स्वभाव के लिये गुरु प्रसिद्ध है। अतः साधक को अपनी बारी आने तक क्षोभपूर्ण राह देखने के लिये विवश होना पड़ता है। इस प्रकार का क्षोभ मध्ययुगीन काव्य मे यथास्थान प्रकट हुआ है किन्तु आशावादी भारतीय आत्मा को निराश होने के कम अवसर प्राप्त हुए है। प्राय गुरु कृपा का सौभाग्य साधक को प्राप्त हुआ।

साधनागत परमानन्द की व्यजना "गूँगे के री शर्करा" सदृश व्यक्त एव सुग्राह्य न हो सकी किन्तु इस आनन्दानुभूति के अविरल स्रोत की याचना तथा उसका अभाव प्रत्येक साधक को अनुभव हुआ तथा कोई नाम वियोगी हुआ तो कोई सुरति वियोगी।

"उस दिव्य और अलौकिक शक्ति से अपना शांत और निश्छल सम्बन्ध जोड़ने" की लालसा ने आत्मा को एक विशेष दृष्टिकोण दिया। भारतीय सास्कृतिक चेतना के अनुसार आत्मा बनी स्त्री तथा परमात्मा बना पुरुष, विरहिणी आत्मा का विरह चिरन्तन रूप मे विकसित हुआ। आत्मा विरह व्यथिता होकर "त्राहि-त्राहि" पुकारने लगी। आत्मा की यह पुकार निर्गुण साधना के अन्तर्गत साधक की प्रणत पुकार बनी तथा सगुण साधना मे शोकसतप्त भक्त का अतिनिवेदन।

---

१. "तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया,
उपदेश्यन्ति ते ज्ञान ज्ञानिनस्तत्वदर्शिन." गीता ४/३४

२. "क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया
दुर्ग पथस्तत्कवयो वदन्ति"—कठ० १।३।१४

अज्ञात के प्रति रहस्यात्मक आर्कषण तथा उसकी अंप्राप्ति के परिणामस्वरूप वेदना का दारुण अनुभव रहस्यवादी साधको की मूल अनुभूति रहा । इसको उन्होने स्त्री-पुरुष के विरह की विभिन्न दशाओ के अन्तर्गत प्रकट किया । प्रेमी-प्रेमिका के इस रूप को उन्होने व्यापक अर्थ मे लिया । इसीलिये अन्य स्थलो पर पिता पुत्र तथा माता पुत्र के सम्बन्धो की कल्पना की गई तथा बाल-अपराधो की क्षमायाचना के द्वारा रहस्यात्मक अभिव्यक्ति सभव हुई ।

रहस्यवाद के अन्तर्गत शोकानुभूति आध्यात्मिक जिज्ञासा के निरुत्तर रहने के फलस्वरूप प्रकट होती है । अपनी उमग मे आत्मा कल्पना करने लगती है–"सुगधित पुष्प चुन लूं । इनका एक सुन्दर हार बना लूं । इस हार को उसके गले मे डाल दूँ । किन्तु वह कौन ?" इस "कौन" की जिज्ञासा में उसका स्वप्न टूट जाता है । अपनी विवशता तथा अपनी असहायावस्था पर आत्मा अति दु खी हो उठती है । इस प्रकार की शोकानुभूति रहस्यवाद की परपरानुगत विचारधारा की श्रेष्ठ अभिव्यक्ति है ।

परमात्मा के सम्बन्ध मे आत्मा की जिज्ञासाएँ जन्म-जन्मान्तर से मौन चली आ रही है जो साधक की शोकानुभूति का मुख्य कारण है । वह जीवन पर्यन्त इन प्रश्नों के उत्तर प्राप्त नही कर पाता । इस प्रकार रहस्यवाद की मूल अनुभूति आध्यात्मिक शोकानुभूति का भी सृजन करती है ।

भक्ति रस—साहित्य के नौ रसों से पृथक् भक्ति और वात्सल्य रस की भी कल्पना कुछ विद्वानो द्वारा की गई है । भक्ति का स्थायीभाव श्रद्धा तथा वात्सल्य का स्थायीभाव स्नेह माना गया है । यह कल्पना विशेष कर भक्ति मार्ग वैष्णव अनुयायी आचार्यों द्वारा की गई है । भक्त के आर्त्त निवेदन, परिताप, ग्लानि, प्रबल मनोवेगो के समक्ष विवशता एव असहायोवस्था आदि शोकमूला भाव है जिनके कारण भक्ति रस के स्थायीभाव श्रद्धा को स्थायित्व प्राप्त होता है अन्यथा साहित्य मे श्रद्धा तथा वात्सल्य को मौलिक स्थायीभाव नही माना गया है । श्रद्धा की गिनती भावो मे की गई है—

"रतिर्देवादिविषया व्यभिचारी तथाञ्जित.

भाव. प्रोक्त: ,, का० प्र० स—१९३३, ४/३५

समवयस्को का स्नेह रति, छोटो का बडो के प्रति स्नेह भक्ति तथा बडो का छोटो के प्रति स्नेह वात्सल्य कहलाता है, इस प्रकार साहित्य मे भक्ति को पृथक् मानने के लिये कोई स्थान ही नही है ।

साथ ही साहित्य और धर्म के पृथक् क्षेत्र है । धर्म को साहित्य के शास्त्रीय विवेचन तक खीचना युक्तिसगत नहीं कहा जा सकता । आचार्य शुक्ल जी ने इस सबंध मे अपने विचार प्रकट करते हुए एक स्थल पर लिखा है —

"अध्यात्म शब्द की मेरी समझ में काव्य या कला के क्षेत्र में कहीं कोई जरूरत नही है ।" —रस मीमांसा, सं २००६, पृष्ठ ६६

पश्चिमी समीक्षक हेगल भी साहित्य को धर्म से पृथक् रखना चाहते है। उन के विचारों का भाव निम्नलिखित है।

"कला का सीधा सम्बन्ध किसी प्रकार भी धार्मिक सिद्धान्तो के प्रकाशन मे अथवा उनके सत्य की किसी विशेष अन्तरदृष्टि से नही है। परिणामत. यह महत्वपूर्ण है कि इन तथ्यों से इनको पृथक् रखा जाय यह और भी अधिक आवश्यक है कि कला द्वारा प्रत्येक प्रकार की शोकानुभूति, आचार सम्बन्धी प्रत्येक तथ्य जो क्रियात्मक तथा अति आवश्यक रुचि के हे, मानव हृदयो को सौप दिये जाँय।"[१]

हिन्दी साहित्य मे भक्तिरस का यह प्रश्न कदाचित् भक्तिमार्ग से ही आया मध्ययुगीन हिन्दी कलाकर प्रायः भक्त एव कवि हुए है। अतएव उनकी काव्यसामग्री का साहित्य एव भक्तिमार्ग - दोनो ही क्षेत्रो मे तुल्य समादर है। यही नही साहित्य-प्रेमी तथा भक्त दोनो इस सामग्री पर सभवत एकाधिपत्य भी प्रकट करना चाहते है। एक ओर तुलसी के 'मानस' मे कला एव अभिव्यक्ति के सौन्दर्य की चर्चा होती है तो दूसरी ओर उसके अखण्ड पाठ एव विधिवत् पारायण होते है तथा धूप आदि देकर पवित्र स्थान पर रखी जाती है जहाँ साहित्य प्रेमियो के हाथ भी न पहुँच सके। इन्ही प्रयत्नो मे दोनो ओर भक्ति रस की प्रतिष्ठा का प्रश्न उठा तथा साहित्य के नौ रसो के स्थान मे ग्यारह रसो की चर्चा प्रारम्भ हुई। कहना न होगा कि करुण का आध्यात्मिक शोक ही भक्ति के रूप मे प्रकट हुआ तथा महत्ता प्राप्त कर पृथक् रस बन गया है।

करुण एवं शान्त रस—करुण का स्थायीभाव शोक है और शान्त का स्थायीभाव निर्वेद। इसलिए करुण और विप्रलभ की भाँति करुण और शान्त भी एक बिन्दु पर मिलते दिखलाई देते है। शोक के कारण विरक्ति उत्पन्न हो जाती है किन्तु इस विरक्ति मे नष्ट प्रिय के प्रति राग एव मोह बना रहता है जो शोक का कारण होता है किन्तु शान्त रस की विरक्ति मे अन्याय वस्तुओ से विरक्ति के साथ स्वय इष्ट अथवा नष्ट प्रिय वस्तु की निरर्थकता तथा उसके प्रति मोह का ज्ञान भी हो जाता है जिसके फलस्वरूप स्वय इष्ट के प्रति भी उदासीनता प्रकट हो जाती है। विप्रलभ श्रृङ्गार की परिणति प्रायः निर्वेद मे हो जाती है। करुण की

१ "Art is, however, not directly concerned either in the exposition of religious dogmas, nor, indeed, in any exceptional insight into their truth. It is consequently of importance that she should be help aloof from such disquitions"

Hegel—Philosophy of Fine Art. Vol. I, Page 3II

"It is all the more necessary that we should through art entrust every type of pathos to the human heart, every motive of ethical significance, which are of practical and vital interest."

Hegel—Philosophy of fine Art. Vol. I—Page 311

परिणति भी शान्त रस में हो जाती है। इन दोनो परिणतियों मे अन्तर यह है कि पूर्व परिणत आवेगजन्य होती है और पर परिणत करुण का विकास होता है—शोक से खिन्नता और उदासीनता और उदासीनता से विरक्ति एव निर्वेद। इस प्रकार का एक प्रसग यहाँ अवलोकनीय है—

"आश्रम सागर सांत रस पूरन पावन पाथु।
सेन मनहुँ करुना सरित लिए जाहिं रघुनाथु॥" अयो० २७५

करुण एवं विप्रलंभ शृङ्गार—भरत ने करुण तथा विप्रलभ शृङ्गार का भेद निम्नलिखित रूप में किया है—

"करुण के कारण शाप, क्लेश, विनिपात, इष्टजन वियोग, विभवनाश, बन्धन, वध आदि है। यह निरपेक्ष है किन्तु औत्सुक्य तथा चिन्ता प्रधान विप्रलंभ शृंगार सापेक्ष है। इस प्रकार करुण और विप्रलभ दोनो एक दूसरे से भिन्न है।"[1]

"इष्टजनवियोग" के अन्तर्गत करुण एव विप्रलभ की स्थिति आती है। करुण एव विप्रलंभ दोनो की स्थिति की सम्भावना इष्टजनवियोग के अन्तर्गत होती है। इसीलिए इन दोनो रसो के बीच एक सीमा रेखा की आवश्यकता उपस्थित हुई। भरत ने इसका निराकरण निरपेक्ष एव सापेक्ष कहकर किया—करुण निरपेक्ष है तथा विप्रलभ सापेक्ष।

सापेक्ष एव निरपेक्ष का तात्पर्य आशामय (Optimistic) तथा निराशामय (Pessimistic) से है। विप्रलभ शृगार मे प्रिय मिलन की आशा बनी रहती है किन्तु करुण प्रियमिलन की आशा नही रहती। इस प्रकार आशा एव निराशा के आधार पर विप्रलभ तथा करुण को पृथक कहा गया है। इस कथन के अनुसार दोनों रसो के बीच सूक्ष्म सीमा रेखा खीचते हुए कहा जा सकता है कि जब तक आशा की चिनगारी बनी रहती है विप्रलंभ का क्षेत्र है तथा जैसे ही आशा की चिनगारी बुझी करुण का क्षेत्र आ जाता है। आशा की इस चिनगारी को विप्रलभ की विभिन्न दशाओ के अन्तर्गत उत्तरोत्तर कम होता हुआ देखा जा सकता है तथा अन्त मे "मरण" दशा वह देहरी है जिसके एक ओर आशा की चिनगारी टिमटिमाती दिखलाई देती है और दूसरी ओर बुझी हुई। अतएव कहा जा सकता है कि जहाँ तक प्रेमी प्रेमिकाओ अथवा प्रेमियो के वियोग का सम्बन्ध है विप्रलभ तथा करुण का सीमाप्रस्तर "मृत्यु" है। मृत्यु (या मृत्यु समझ ली गई) से पूर्व तक विप्रलभ तथा मृत्यु के पश्चात् करुण का क्षेत्र आ जाता है।

---

१. "करुणरसस्तु शापक्लेशविनिपतितेष्टजनविभवनाशवधबन्धसमुत्थो निरपेक्षभावः औत्सुक्यचिन्तासमुत्थ सापेक्ष भावो विप्रलंभकृतः एवमन्य. करुणोऽन्यश्च विप्रलभ इति, एवमेष सर्वभाव. सयुक्तः शृगारो भवति।"

भरत-ना० शा० ६—५१

विप्रलभ का स्थायीभाव रति है और करुण का स्थायीभाव शोक। ऊपर इष्टनाश-जनित करुण का उल्लेख कर चुके है। जब इष्ट का नाश हो जाता है तो स्थिति स्पष्ट रहती है। ऐसी दशा मे केवल करुणरस ही होता है। अनिष्ट प्राप्ति के प्रसग मे मुख्यतः कठिनाई उठती है। रति और शोक दोनो भावो की सम्मलित स्थिति के कारण रसनिर्णय मे कठिनाई उपस्थिति होती है। रति या शोक मे से जब तक एक की दूसरे पर प्रधानता स्पष्ट न हो जाय, रसनिर्णय करना सभव नही होता। इन भावो की मिश्रित स्थिति के अन्तर्गत करुण-शृ गार और करुणवात्सल्य नामक दो पृथक् भेदो की भी कल्पना की गई है। आचार्य शुक्ल ने इस मिश्रित स्थिति को दो भागो मे विभाजित किया है—

१ प्रियवियोगजनित अपनी विरहावस्था-विकलता आदि।

२. वियुक्त प्रिय के सबध मे आशका एव उसके कष्ट की चिन्ता के कारण क्षोभ।

पहली स्थिति को वह विप्रलभ के अन्तर्गत रखते है और दूसरी को करुण के अन्तर्गत।

आचार्य जी के मत का विश्लेषण करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि एक स्थिति से दूसरी स्थिति मे अन्तर का आधार अति सूक्ष्म है। रति और शोक दोनो भावो की मिश्रित स्थिति है। इन दोनो मे जो दूसरे से अधिक प्रभावशाली हो जायगा उसी के अनुकूल रस का निर्णय करना पडेगा। इस बात को और स्पष्ट करते हुए कह सकते है कि दोनो भावो के मिश्रित रूप की सभावना अधिक है। ऐसा नही कह सकते कि वियोग की विशेष परिस्थितियो मे एक आश्रय वियोग से केवल विकल होगा और दूसरा प्रिय के कष्ट की आशका से केवल कातर होगा—दूसरे शब्दो मे एक केवल विप्रलभ का आश्रय होगा और दूसरा केवल करुण का। बात यह है कि वियोगजन्य परिस्थितियो मे इस प्रकार का पृथक् विभाजन सभव नही होता। जो आश्रय प्रिय के वियोग के कारण विकल हो रहा है वह प्रिय की अनिष्ट की आशका से कातर न होगा अथवा जो आश्रय वियुक्त प्रिय की अनिष्ट की आशका से कातर हो रहा है वह वियोग के समय स्वय विकल होगा, ऐसा सोचना भ्रमात्मक ही कहा जायगा। यह अवश्य है कि एक आश्रय को वियोगजनित विकलता अधिक होगी तो दूसरे मे अनिष्ट-जनित आशका। उदाहरणस्वरूप माँ के पुत्र और पत्नी के पति का एक आलबन ले। माँ को वियोगजनित विकलता के स्थान मे पुत्र की अनिष्टजनित आशका अधिक होगी तो पत्नी को अनिष्टजनित आशका के स्थान मे वियोगजनित विकलता अधिक।

यहाँ एक मतविशेष का साधारणरूप से प्रतिपादन कर रहे है। इसलिए यह असगत न होगा कि इसके सभी पहलुओ पर विचार करते हुए हमको इस सभावना पर भी विचार करना चाहिए कि यदि उपर्युक्त उदाहरण में स्थिति विलोम हो जाय,

माँ वियोगजनित विकलता का अनुभव अधिक करे और पत्नी पति की अनिष्टजनित आशका से क्षुब्ध हो। यहाँ साहित्य के साथ हमारी सस्कृति के सबध पर विचार करना आवश्यक हो जाता है। हमारी सस्कृति के अनुकूल हम माँ मे रति भाव की कल्पना नही कर सकते। पत्नी मे रति के साथ शोक रह सकता है और ऐसी पत्नी सभव है जिसको पति के वियोग मे रति के स्थान मे शोक हो किन्तु ऐसी माँ की कल्पना भी नही कर सकते जिसे पुत्रवियोग मे शोक के स्थान मे रति भाव का अनुभव हो। माँ के लिए शोक ही निश्चित कर दिया गया है। इसीलिए वात्सल्य रस की पृथक् सता महत्वपूर्ण बन गई है। व्यवहारिक जीवन मे भी हम स्त्रीमात्र को माँ कह कर सबोधित कर सकते है किन्तु स्वय अपनी माँ को भी 'पिताजी की पत्नी' नही कह सकते। अस्तु, स्पष्ट है कि आचार्य जी के मत को साधारणरूप मे नही ले सकते। हमको रति और शोक की प्रधानता के साथ आश्रय विशेष का भी ध्यान रखना होगा।

इन दोनो भावो के मिश्रित पर मे से एक-एक भाव को पृथक्-पृथक् छाँट लेना तथा एक की दूसरे पर महत्ता निश्चित कर लेने मे प्राय. कठिनाई हुई है। उदाहरणस्वरूप गोपीविरह को ले। गोपीविरह के प्रसग मे विप्रलभ है अथवा करुणरस, यह निर्णय करना कठिन रहा है। यहाँ जैसा कि ऊपर दिखा चुके है, यह स्पपष्ट कर देना भी आवश्यक है कि यह कठिनाई रतिभाव के आश्रय के साथ ही हुई है अथवा यह कहे कि उस आश्रय के साथ उठी है जिसमे शोक के साथ रति की भी सभावना होती है और वास्तव मे इसी प्रकार के आश्रय के साथ रसनिर्णय की समस्या उठती है। गोपीविरह ऐसा ही प्रसग है। इसी कारण इसके सबध मे रसनिर्णय एक समस्या बन गई है। कतिपय विद्वान् इस प्रसग को विप्रलभ का और दूसरे करुण का बताते है।

मै समझता हूँ ऐसे प्रसगो को भरत द्वारा प्रतिष्ठित करुण और विप्रलभ के भेद के आधार पर सुलझा सकते है। इन प्रसगो मे भी निरपेक्ष और सापेक्ष दृष्टि के अन्तर्गत निर्णय किया जाय। प्रस्तुत प्रसग का विवेचन करते हुए कह सकते है कि गोपियो के विरह मे किसी भी स्थिति मे निरपेक्ष भाव की सभावना नही है—वे इस प्रकार की विरह-वेदना का अनुभव नही कर सकती जिस प्रकार की एक विधवा करती है। अतएव यह सापेक्ष वियोग है और इसलिए विप्रलभ का उदाहरण है करुण का नही। यहाँ एक कठिनाई दूसरे आश्रयो के सम्बन्ध मे उठ सकती है। उदाहरणस्वरूप यही स्थिति यशोदा के लिए भी है। वही कब ऐसा सोच सकती है कि वे पुत्रविहीना माँ है। अस्तु, उनका वियोग भी विप्रलभ के अन्तर्गत आता है। नही, उनका वियोग करुण के अन्तर्गत ही जायगा क्योकि वह माता है। जैसाकि ऊपर विस्तृत विवेचन कर चुके है। माँ के सम्बन्ध मे विप्रलभ का प्रश्न ही नही उठता। उनके लिए पुत्रवियोग करुण का ही कारण होगा।

प्रिय के वियोगजनित विकलता अथवा रतिभाव की स्थिति करुण के समीप

तक पहुंच जाती है जब विप्रलभ के अन्तर्गत मरण निवेदन होता है। विप्रलभ के चार भेद करते हुए आचार्य केशवदास जी ने एक भेद "करुण" भी रखा है। विप्रलभ और करुण की सूक्ष्म सीमा-रेखा विप्रलभ के अतिम चरण मे मिल जाती है और वियोगिनी उस पर भूलती-सी दिखलाई देती है।

विप्रलभ एव करुण के बीच स्थापित इस सूक्ष्म सीमा रेखा का निम्नलिखित उदाहरणो द्वारा स्पष्टीकरण किया जा सकता है। इन उदाहरणो द्वारा विप्रलभ एव करुण की पृथक्-पृथक् स्थिति पर प्रकाश पड सकेगा।

"जो वाके तन की दशा देख्यौ चाहत आप।
तौ बलि नेकु बिलोकिए चलि औचक चुपचाप॥ बिहारी

उपर्युक्त दोहा दूती द्वारा मरण निवेदन है। नायिका की दशा उस सीमा तक पहुंच चुकी है जहाँ वह नायक के देखने अथवा उससे सम्पर्क प्राप्त करने की समस्त आशा खो चुकी है। इसीलिए कवि ने दूती के मुख मे "औचक" शब्द रखकर यह प्रार्थना की है कि आपका आगमन यदि सहसा (औचक) होगा जबकि आपके आने की न कोई आशा है और न कोई सभावना तो नायिका के शरीर की वास्तविक दशा का परिचय आपको मिल सकता है। यदि औचक या सहसा आगमन न होकर आगमन का सदेश पहिले पहुच जायगा तो नायिका की दशा मे आशा का स्फुरण हो सकता है तथा उसकी वास्तविक दशा का चित्र आप नही देख सकेंगे। इस प्रकार दूती के द्वारा नायिका की उस दशा का सकेत हो रहा है जिसमे वह करुण रस की परिस्थिति तक पहुच चुकी है। प्रार्थना द्वारा दूती करुण रस को विप्रलभ की दशा मे ले आना चाहती है और यदि नायक के द्वारा दूती की प्रार्थना स्वीकार हुई तो नायिका का जीवन मृत्यु के अन्धकार से लौटकर जीवन के प्रकाश मे आ जायगा।

"एहो नन्दलाल ऐसी व्याकुल परी है बाल,
हाल ही चलौ, तौ चलौ, घोरे, घुरि जायगी।
कहै पदमाकर नही तो ये झकोरे लगे,
ओरे लौ अचाका बिन घोरे घुरि जायगी।
सीरे उपचारन धनेरे घनसारन सो
देखत ही देखौ दामिनी लौ दुरि जायगी।
तौ ही लगि चैन जौ लौ चेति है न चन्द्रमुखी,
चेतेगी कहूं तौ चाँदनी मे चुरि जायगी॥"—पद्माकर

बिहारी के समान पद्माकर की दूती भी नायिका की मरण दशा का निवेदन कर रही है। नायक के दर्शन से जीवनरक्षा हो सकती है इसका दूती को विश्वास है। इसीलिए वह "हाल ही चलो" का आग्रह करती है। नायिका की दशा उस सीमा तक

पहुँच चुकी है जहाँ करुण का क्षेत्र प्रारम्भ होनेवाला है । यदि नायक दूती की प्रार्थना स्वीकार कर "हाल ही" चल देता है तो नायिका की जीवन-रक्षा सभव हो जायगी तथा करुण का क्षेत्र न रहेगा। यदि नायक ने कुछ विलम्ब किया तथा उधर "चन्द्रमुखी चेती" तो निश्चय ही वह "चाँदनी मे चुरि जायगी" और करुण रस का क्षेत्र प्रकट हो जायगा।

इष्टनाश की सीमारेखा के सम्बन्ध मे यहाँ निम्नलिखित शंका उठ सकती है। विप्रलभ एव करुण का अन्तर प्रकट करते हुए बताया गया कि जहाँ तक आशा की चिनगारी बनी रहे विप्रलभ तथा जैसे ही आशा की चिनगारी बुझ जाय तो करुण का क्षेत्र आ जाता है। यहाँ यह प्रश्न हो सकता है—किसी की आशा की चिनगारी बुझ जाय ? रसानुभूति के अन्तर्गत आलबन, आश्रय तथा सामाजिक (या पाठक) विशेषरूप से आते है। आलंबन एव आश्रय मुख्यरूप से रसव्यंजना के आधार होते है। अतएव कहा जा सकता है कि भाव-व्यंजना करनेवाले पात्र (आश्रय) की ही आशा की चिनगारी बुझ जाय तो करुण रस समझना चाहिए। रसनिष्पत्ति सामाजिक मे मानी गई है। साधारणीकरण द्वारा सामाजिक का आश्रय के साथ तादात्म्य हो जाता है। अतएव आश्रय के साथ सामाजिक की आशा की चिनगारी भी बुझी हुई प्रतीत होती है। इस प्रकार आश्रय एव सामाजिक के तादात्म्य द्वारा इस शका का निवारण हो जाता है।

शास्त्रो मे आश्रय एव सामाजिक के तादात्म्य के प्रतिकूल दशा को रसाभास की श्रेणी मे रखा है किन्तु आचार्य शुक्लजी ने इस प्रकार की रसात्मकता को मध्यम कोटि की माना है।[1]

"किसी भाव की व्यजना करने वाला, कोई क्रिया या व्यापार करने वाला पात्र भी शील की दृष्टि से श्रोता (या दर्शक) के किसी भाव का जैसे श्रद्धा, भक्ति, घृणा, रोष, आश्चर्य, कुतूहल या अनुराग का आलबन होता है। इस दशा मे श्रोता या दर्शक का हृदय उस पात्र के हृदय से अलग रहता है अर्थात् श्रोता या दर्शक उसी भाव का अनुभव नही करता जिसकी व्यजना पात्र अपने आलबन के प्रति करता है बल्कि व्यजना करनेवाले उस पात्र के प्रति किसी और ही भाव का अनुभव करता है। यह दशा भी एक प्रकार की रस-दशा ही है यद्यपि इसमे आश्रय के साथ तादात्म्य और उसके आलबन का साधारणीकरण नही रहता—जैसे कोई क्रोधी या क्रूर प्रकृति का पात्र यदि किसी निरपराध या दीन पर क्रोध की प्रबल व्यजना कर रहा है तो श्रोता या दर्शक के मन मे क्रोध का रसात्मक संचार न होगा, बल्कि क्रोध प्रदर्शित करने वाले उस पात्र के प्रति अश्रद्धा, घृणा आदि का भाव जगेगा। ऐसी दशा मे

१. रसानुभूति मे मे 'उत्तम मध्यम' की कोटि स्थापित करना भ्रमात्मक ही है। रसानुभूति तो एक रस, अखण्ड और एक कोटि की ही होती है जहाँ तादात्म्य न होगा वहाँ स्तुति ही क्या होगी।

आश्रय के साथ तादात्म्य या सहानुभूति न होगी, बल्कि श्रोता या पाठक उक्त पात्र के शीलद्रष्टा या प्रकृति-द्रष्टा के रूप मे प्रभाव ग्रहण करेगा और यह प्रभाव भी रसात्मक ही होगा। पर इस रसात्मकता को हम मध्यम कोटि की ही मानेगे।

इस विवेचन से आचार्य जी का दृष्टिकोण स्पष्ट है। आश्रय एव सामाजिक के तादात्म्य न होने की अवस्था मे वह मध्यम कोटि की रसानुभूति मानते है। इस प्रकार की रसानुभूति करुण रस के सम्बन्ध मे भी जैसाकि पहले दिखा चुके है, उसके साथ विप्रलभ का वर्णन आदि सभव है इसीलिए आचार्यजी के दृष्टिकोण का यहाँ उल्लेख किया गया (यद्यपि इस प्रकार की मध्यम कोटि रसानुभूति को मै रसानुभूति नही मानता हूँ) —"करुण ही विप्रलभ होगया" कहकर की जा सकती है। इस प्रकार इस विभेद की पृथक् स्थिति समीचीन प्रतीत नही होती। जिस प्रकार विप्रलम्भ करुण मे परिणत हो जाता है उसी प्रकार करुण भी विशेष परिस्थितियो मे विप्रलम्भ मे परिणत हो जाता है।

उत्तररामचरित मे राम-सीता के मिलन की वस्तुस्थिति इससे पृथक् है। राम को सीता के मिलने की कोई आशा नही है। वह सीता को मृत समझकर विलाप करते है। अतएव यह पूर्ण प्रसग करुण के अन्तर्गत आता है। सीता मिलन से पूर्व—किसी आकाशवाणी आदि द्वारा—मिलन का आश्वासन प्राप्त न होने के कारण—मिलन से पूर्व तक करुण की स्थिति मे कोई अन्तर नही पडता। मिलन असभावित एव आकस्मिक रूप से होना है। अतएव इस अवसर पर विप्रलभ का प्रश्न ही नही उठता। यह मिलन अद्भुत-रस के अन्तर्गत आता है। राम ने स्वय इस वियोग तथा पहिले वियोग का अन्तर निम्नलिखित शब्दो मे प्रकट किया है—

"उपायाना भावादविरलविनोद व्यतिकरै—
विमर्दैर्वीराणा जनितजगत्यद्भुतरस:
वियोगो मुग्धाक्ष्या स खलु रिपुघातावधिरभू—
त्कटुस्तूष्णी सह्यो निरवधिरय तु प्रविलय।"
—(उ० रा० च०/३/४४)

रिपुघातपर्यन्त रहनेवाला पहिला वियोग विप्रलभ का उदाहरण था और यह दूसरा विरह अवधि शून्य होने के कारण करुणरस का उदाहरण है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि "करुणविप्रलभ" नामक पृथक् विभेद की कोई आवश्यकता नही है। इसीलिए साहित्यदर्पणकार से इतर भट्ट आदि अन्य किसी आचार्य ने इस विभेद की कल्पना नही की।

करुण एवं रौद्र रस—प्राचीन काल मे शापजनित परिस्थितियो मे शापित व्यक्ति करुण का तथा शापदाता रौद्र का आलबन होता था। इसी रूप मे कदाचित् करुण रस को रौद्ररस की प्रतिक्रिया कहा गया।

करुण और रौद्र रस के आश्रय, आलबन एव स्थायीभाव आदि मे स्पष्ट

अन्तर है। इसलिए किसी एक के स्थान पर दूसरे का भ्रम नही हो सकता। मनोभाव के विकास-क्रम का अध्ययन किया जाय तो यह भी स्पष्ट हो जायगा कि रौद्र से ही करुण उत्पन्न नही होता प्रत्युत करुण से भी रौद्र उत्पन्न हो सकता है और इस क्रम को निम्नलिखित रूप में देख सकते है—

रौद्र-करुण-रौद्र अथवा रौद्र-करुण एवं करुण-रौद्र।

प्राचीन कथाओ में भी इस प्रकार के प्रसग आए है कि शापित व्यक्ति भी शापदाता को प्रत्युत्तर में शाप दे डालता है। शोकाभिभूत व्यक्ति भी यदि शक्ति-सामर्थ्यवान हुआ तथा प्रतिकार सभव हुआ तो शोक के स्थान मे रौद्ररस का अभिनय करता है। अभिमन्यु की मृत्यु पर अर्जुन का शोक रौद्र एव वीर मे परिणत होगया था। भरत का कैकेयीभत्सर्ना-प्रसग शोक का क्रोध मे और क्रोध का पुन. शोक (आत्म-ग्लानि एव परिताप) मे पर्यवसान है।

रौद्र और करुण मनोभावो से सम्बन्धित मानस का एक प्रसग यहाँ अवलोकनीय है। इस प्रसग मे कवि की कला तो है ही—कवि ने उसी शब्दावली का दोनो भावो के लिए प्रयोग किया है किन्तु साथ ही मनोभावो के सान्निध्य तथा पूर्वा पर सम्बन्ध पर भी प्रकाश पडता है—

रावण सीता से "मानु मम बानी" के लिए आग्रह करता है और इसके उत्तर मे सीता के कटु वचनो को सुनकर क्रुद्ध हो जाता है—

"सुनत वचन पुनि मारन धावा, मयतनया कहि नीति बुझावा।
कहेसि सकल निसिचरिन्ह बोलाई, सीतहि बहुबिधि त्रासहु जाई।
मास दिवस महु कहा न माना, तौ मै मारबि काढि कृपाना।"

लकादहन के पश्चात् हनुमान् सीताजी से विदा लेते है। उस समय सीता जी इन्ही शब्दो को अति दुखी होकर दुहराती है—

"मास दिवस महुं नाथु न आवा, तौ पुनि मोहि जिअत नहि पावा।"

इस प्रकार दोनो मनोभावो की क्रियाशीलता तथा एक--दूसरे के सम्बन्ध एव अध्ययन सान्निध्य को दृष्टिगत रखते हुए इन दोनो रसो का तुलनात्मक अध्ययन आवश्यक है।

ट्रेजेडी और करुण रस—पाश्चात्य काव्यशास्त्र के प्रसिद्ध आचार्य अरस्तू ने ट्रेजेडी के सम्बन्ध मे विस्तृत विवेचन किया है तथा जिन मान्यताओ की उन्होने प्रतिष्ठा की है उनका आज भी समादर है। ट्रेजेडी और करुणरस का अध्ययन काव्य शास्त्र के क्षेत्र मे पाश्चात्य एव भारतीय चिन्तन को स्पष्ट कर देगा।

ट्रेजेडी के लिए जिस स्थायीभाव की कल्पना अरस्तू ने की है वह भय, त्रास तथा शोक का मिश्ररूप है। ट्रेजेडी मे इष्ट का वध रस का कारण होता है जो एक सीमा तक अनिवार्य भी समझा जा सकता है। किन्तु करुणरस मे शोक प्रमुख है उसके

साथ त्रास का सद्भाव हो सकता है। वैसे, करुण बिना त्रास के भी सभव है। भय के लिए तो करुणरस मे कोई स्थान ही नही है। भयानक स्वय एक पृथक् रस है।

ट्रेजेडी की प्रक्रिया विरेचन सिद्धान्त पर आधारित है। जिस प्रकार रेचक औषधि उदर विकारो को शुद्ध कर शरीर को स्वस्थ बना देती है उसी प्रकार ट्रेजेडी के द्वारा मनोविकारो से विषाक्त मन शुद्ध एवं परिष्कृत हो जाता है। दूसरे शब्दो मे ट्रेजेडी का मुख्य लक्ष्य दु ख से मुक्ति मात्र है जबकि करुणरस का उद्देश्य इससे आगे आनन्द प्राप्ति है। प्रक्रिया को और स्पष्ट करते हुए कह सकते है कि ट्रेजेडी और करुण दोनो मनोविकारो का परिष्करण करते है किन्तु ट्रेजेडी कपडे के धब्बो को एक-एक करके छुटाती है तो करुणरस सारे वस्त्र को एक रग मे डुबो देता है जिससे धब्बो आदि का कोई अस्तित्व ही नही रहता।

परिशिष्ट—क

करुणरस की अनुभूति सुखात्मक अथवा दुःखात्मक

करुणरस की अनुभूति सुखात्मक है अथवा दुःखात्मक—यह एक विवादास्पद विषय रहा है। नाट्यदर्पण के रचयिता रामचन्द्र गुणचन्द्र ने इस विषय का विस्तृत प्रतिपादन करते हुए निश्चय किया है "सुख-दु खात्मको रसः।"

इस प्रसग मे आगे व्याख्या करते हुए उन्होने लिखा है—भयानक, वीभत्स, रौद्र तथा करुणरस के श्रवण तथा इनके अभिनय के दर्शन से श्रोता अथवा सामाजिक के चित्त मे एक विचित्र क्लेश-दशा उत्पन्न होती है तथा सामाजिक उद्विग्न हो उठता है। सुखस्वाद से उद्वेग किस प्रकार उत्पन्न होगा। अतएव सामाजिक के उद्वेग को दृष्टिगत रखते हुए यह स्पष्ट रूप से प्रमाणित हो जाता है कि इन रसो से सुखात्मक अनुभूति नही होती। कवि शक्ति और नट-कौशल से वस्तु के प्रदर्शन मे एक विशेष चमत्कार आ जाता है जिसके कारण दु.खात्मक अनुभूति भी सामाजिक को प्रवृत्त किए रहती है।[1]

रसकलिका के लेखक रुद्र भट्ट भी इसी मत को मानते है। उन्होने भी करुण की अनुभूति को दु खात्मक तथा रस की दशा को सुखदु खात्मक माना है। "करुणामयानामपि उपादेयत्वं सामाजिकानाम् रसस्य सुखदु खात्मिकया तदुभयलक्षणेन उपपद्यते अतएव तदुभयजनकत्वम्।"

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस विषय पर प्रकाश डालते हुए निम्नलिखित विचार प्रकट किये है—

---

१. "भयानकादिभिरुद्विजते समाज न नाम सुखास्वादाद् उद्वेगो घटते, यत् पुनरेभिरपि चमत्कारो दृश्यते, स रसास्वादविरामे सति यथावस्थितवस्तुप्रदर्शकेन कीवनटशक्तिकौशलेन, अनेनैव च सर्वांगह्लादरेन कविनटशक्तिजन्मर्ना चमत्कारेण विप्रलब्धाः परमानन्दरुपता दु खात्मकेष्वपि करुणादिषु मुमेधरः प्रतिजानते।"

—(नाट्यदर्पण)

"क्रोध, भय, जुगुप्सा, और करुणा के सम्बन्ध मे साहित्य-प्रेमियो को शायद कुछ अड़चन दिखाई पडे क्योकि इनकी वास्तविक अनुभूति दुःखात्मक होती है। रसास्वाद आनन्दस्वरूप कहा गया है, अतः दुःखरूप अनुभूति रस के अन्तर्गत कैसे ली जा सकती है, यह प्रश्न कुछ गडबड डालता दिखाई पडेगा। पर आनन्द शब्द को व्यक्तिगत सुख-भोग के स्थूल अर्थ मे ग्रहण करना मुझे ठीक नही जँचता। उसका अर्थ मै व्यक्तिबद्ध दशा से मुक्त और हल्का होकर अपनी क्रिया मे तत्पर होना ही उपयुक्त समझता हूँ। इस दशा की प्राप्ति के लिए समय-समय पर प्रवृत्त होना कोई आश्चर्य की बात नही। करुणरस प्रधान नाटक के दर्शको के आँसुओ के सम्बन्ध मे यह कहना कि आनन्द मे भी तो आँसू आते है, केवल बाते टालना है। दर्शक वास्तव मे दुःख ही का अनुभव करते है। हृदय की मुक्त दशा मे होने के कारण वह दुःख भी रसात्मक होता है।"
—(चितामणि—रसात्मक बोध के विविध-रूप)

पाश्चात्य विद्वानो ने इस सम्बन्ध मे निम्नलिखित विचार प्रकट किये है —

अरस्तू—"शोकावसायी अभिनय के देखने से दर्शक के हृदयगत करुणा तथा भय के भावो का विरेचन हो जाता है। हमारे दैनिक जीवन मे इन भावो की विशुद्धि हो जाने से हम पहिले से अधिक स्वस्थ तथा मुक्त हो जाते है जैसे मल निसःरण पर शरीर हल्का, नीरोग तथा स्फूर्तिमय प्रतीत होता है। [१]"

फ्राइड—" उपर्युक्त सिद्धान्त (अरस्तू) पर्याप्त नही है। भावात्मक निःसरण के पश्चात् हम स्वस्थ अनुभव करते है किन्तु उस समय के हमारे सन्तोष का यह कोई कारण नही है...बात यह है कि नेता के पतन में हम अपनी विजय समझते है क्योकि अप्रत्यक्षरूप से हम उसको अपना शत्रु समझते है।" [२]

स्टुअर्ड तथा आँगडन—"जब हमारा जीवन सरलता तथा सुविधानुकूल व्यतीत होता है तो हम भावात्मक उत्तेजना को—यहाँ तक साधारणरूप मे वेदनायुत उत्तेजना को भी आनन्दपूर्वक प्राप्त कर लेते है।"[३]

---

1. Witnessing a tragedy affected a purgation of the feeling of pity and teror's and left us free of these emotions in our daily life.
2. The above theory is not sufficient. We have relief after some emotional out-burst but it does not account for our satisfaction at that time. Freud says that we unconsciously book upon him as a rival.
3. When our life follows a smooth and easy course, we enjoy emotional stimulation even of a slightly painful kind.

—Modern Psychology and educated by Stuart and Oagden-P. 113.

शैले—"हमारे मधुरतम गीत वह होते है जो अति शोकपूर्ण विचारों का प्रकटीकरण करते है।[1]

दु खान्त गाथा में हमारी सहानुभूति निम्नलिखित सिद्धान्त पर आधारित है—जिस आनन्द (सुख) का अस्तित्व वेदना मे है दुखान्त काव्य उस आनन्द की छाया की व्यवस्था कर आनन्द प्रदान करता है। आनन्द जो शोक में है स्वय आनन्द के आनन्द से मधुरतर होता है।"[2]

आचार्य शुक्ल जी ने इस समस्या के लिये मनोवैज्ञानिको का समाधान देते हुए लिखा है –"मनोवैज्ञानिक अनुभूति को क्रीडावृति मानते है। श्रम और पीडा जब क्रीडा की वृत्ति मे स्वत परर्वातित होते है जब उनकी अनुभूति आनन्दस्वरूप होती है।" —(रसमीमासा—४१५ स० २००७)

करुण विप्रलंभ—सस्कृत साहित्य के अन्तर्गत कुछ ऐसे भी प्रसग आए है जहाँ दो प्रेमियो मे से एक की मृत्यु हो जाने के पश्चात् पुनः मिलन हो जाता है। अन्य स्थलो पर मृत्यु समझ ली जाती है तथा कुछ समय पश्चात् पुन मिलन हो जाता है। ऐसे उदाहरण कादम्बरी मे पुण्डरीक तथा महाश्वेता और उत्तररामचरित्र मे सीता (हिस्र जन्तुओ द्वारा मृत समझ ली गई है) तथा राम के है। साहित्य दर्पणकार ने इन प्रसगो के लिये "करुणविप्रलभ" नाम से एक पृथक् भेद की कल्पना की है—

"यूनोरेकतरस्मिन् गतवति लोकान्तर पुनर्लभ्ये
विमनायते यदैकस्तदा भवेत् करुणविप्रलभ"
—(साहित्य दर्पण २/२०९)

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी "रस मीमासा" मे इस विभेद की ओर सकेत करते हुए लिखा है —

करुण रस और करुण विप्रलंभ में अन्तर—करुणविप्रलंभ मे किसी शक्ति के द्वारा मृत प्रिय के फिर से जीवित होने की आशा रहती। यदि कही इसप्रकार की आशा न हो तो करुण रस हो जाता है।
—(रस मीमासा—स०२००६, पृ० १९)

---

1. We look before and after.
And pine for what is not,
Our sincerest laughter,
With some pain is fraught,
sweetest songs are those that tell of saddest thought
2. Our sympathy in tragic fiction depends on this principle, tragedy delights by affording a shadow of that pleasure which exist in pain. This is the source of melancholy which is inseparable from the sweetest melody. The pleasure that is in sorrow is sweeter than the pleasure of pleasure itself,
--Shelley—Defence of poetry.

पुण्डरीक तथा महाश्वेता के आख्यान में करुण एव विप्रलभ की स्थिति का विश्लेषण निम्नरूप में किया जा सकता है—

पुण्डरीक की मृत्यु
महाश्वेता का विलाप — करुण

मृत शरीर को कोई दिव्य
ज्योति उठा ले जाती है
तथा आकाशवाणी द्वारा
महाश्वेता को आश्वासन
दे जाता है कि पुन मिलन
होगा ।
पुनः मिलन के लिये विरह — विप्रलंभ

(सम्पूर्ण — करुणविप्रलभ)

इस विश्लेषण से स्पष्ट है कि आकाशवाणी से पूर्वतक करुण तथा आकाशवाणी के पश्चात् विप्रलभ का स्पष्ट एव पृथक् क्षेत्र स्थित है । इन दोनों को मिलाकर करुण-विप्रलभ कहा गया है जिसकी व्याख्या भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानो के उपर्युक्त विचारो को सक्षिप्त रूप मे इस प्रकार रख सकते है—

करुण की अनुभूति का जहाँ तक प्रश्न है वह दु खात्मक होती है किन्तु निम्न-लिखित आधार पर वह सुखात्मक-सुखभोग के स्थूल अर्थ मे नही प्रत्युत व्यक्तबद्ध दशा से मुक्त रूप मे हो जाती है तथा सामाजिक की प्रवृत्ति बनी रहती है ।

वस्तुगत आधार—१. कविशक्ति तथा नटकौशल ।

हृदयगत आधार—१. सामाजिक का हृदय व्यक्तबद्ध दशा से मुक्त ।
२ शोक के भाव का विरेचन ।
३. नेता के पतन मे अपनी विजय ।
४ सरल एव सुविधाजनक जीवन मे साधारण वेदना का आनन्दरूप ।
५. क्रीडा-वृत्ति के रूप मे अनुभूति के आन्दस्वरूप होने के कारण ।
६. वेदना का आनद आनन्द के आनन्द से मधुरतर होने के कारण ।

उपर्युक्त विवरण को रेखाचित्र से इस प्रकार दिखा सकते है—

करुण रस की अनुभूति

(दु खात्मक, प्रिय तथा प्रवृतिजनक)

हृदय की दशा — मुक्त | विरेचित | वेदनाप्रिय | क्रीडाप्रिय | नेता के पतन मे उल्लसित

अनुभूति का गुण — वेदनागत आनद मधुरतर

वस्तुदशा — कविशक्ति, नटकौशल

हृदय की मुक्त दशा को ही मनोवैज्ञानिकों ने अनुभूति के गुण तथा हृदय की विभिन्न दशाओं के रूप में प्रकट किया है। उदाहरण स्वरुप किसी एक तथ्य को लेकर यहाँ विचार कर सकते है। हृदय की वेदनाप्रियता अथवा क्रीडा के उपभोग के समय अपने अस्तित्व से मुक्त हो जाना अति स्वाभाविक है। यदि हृदय भौतिक राग-द्वेष से मुक्त नही हुआ तो इस ओर रम ही नहीं सकता। अस्तु इन तथ्यों को हृदय की मुक्त दशा के अन्तर्गत प्रकट किया जा सकता है। इस तथ्य पर रस-विवेचन के अन्तर्गत प्रकाश डालते हुए पण्डितराज जगन्नाथ ने निम्नलिखित विचार प्रकट किए है—

"रत्याद्यवच्छिन्नभग्नावरणा चिद् एव रस."—रस पृथक् पदार्थ न होकर चैतन्यरूप ही है। चैतन्य के ऊपर से अज्ञान का आवरण हट जाता है जिससे रति आदि स्थायीभाव रसरूप होते है।

वस्तुगत दशा के अन्तर्गत कविशक्ति तथा नटकौशल का उल्लेख हुआ है। इस तथ्य की ओर भी आगे आने वाले आचार्यो का ध्यान गया तथा काव्य को कवि द्वारा भावित बतलाया गया। कवि मूल भौतिक अनुभूति को अपनी कल्पना तथा कला के आधार पर जो साहित्यिक रूप देता है वह भावित रूप कहलाता है। जिस प्रकार लोहा स्वर्ण बनकर महत्वपूर्ण बन जाता है, इसी प्रकार एक व्यक्ति के भाव एवं अनुभूति साधारणकृत रूप मे जो कवि के भावन व्यापार द्वारा संभव होता है, जन-साधारण की वस्तु बनकर सार्वजनीन हो जाती है। इस तथ्य की ओर सकेत रस को "ब्रह्मानद सहोदरः" अथवा "ब्रह्मानद सचिव." कहकर भी किया गया है। ब्रह्मानंद रूप रसानंद रूप से इस दृष्टि से पीछे पड जाता है कि ब्रह्मानंद, रूप में वासना का त्याग अथवा उच्छेदन अभीष्ट होता है तो रसानद मे वासना का विभावन अथवा विशोधन अभीष्ट है जो सहज सभव है इसीलिए ज्ञानमार्ग मे उच्चकोटि के महर्षियों की भी पतन की कथाएँ प्रचलित है किन्तु रसानद भोगी की विरति का कभी कोई उल्लेख नही हुआ। वास्तविकता यह है कि वासना का उच्छेदन, शमन अथवा असभव-प्राय· ही है।

विभावन व्यापार को निम्नलिखित रूप मे प्रकारान्तर से प्रकट किया गया है तथा भावन व्यापार की प्रक्रिया पर भी प्रकाश डाला गया है।

अनुभूति के तीन रूप होते है—शारिरिक, मानसिक तथा बौद्धिक। इन तीनो रूपो मे अनुभूति—उतरोतर अप्रत्यक्ष तथा सूक्ष्म होती जाती है। रसानुभूति मानसिक एवं बौद्धिक रूपों के मध्य की वस्तु है वह बौद्धिक की भाँति अरूप भी नही होती तथा मानसिक से सूक्ष्मतर भी होती है। इसीलिए इस अनुभूति मे लौकिक प्रत्यक्ष अनुभूति के समान दु.ख का अनुभव नही होता। साथ ही रसानुभूति के रूप मे अनुभूति अपने सुखद अथवा दु.खद गुण की परिभाषा भी बदल देती है। उस समय सुव्यवस्थित सुखद तथा अव्यवस्थित दु खद प्रतीत होता है। काव्य-भावना व्यापार में काव्य सामग्री को

सुव्यवस्थित रूप में प्रकट करता है। अतः प्रसंगानुकूल वह लौकिक रूप में दुखद होती हुई भी रसानुभूति मे पूर्णतया सुखद होती है।[1]

साहित्यगत अनुभूति पर दो रूपों में विचार कर सकते है—

१—आश्रयगत अनुभूति।

२—सामाजिकगत अनुभूति।

आश्रयगत अनुभूति में अभिनय प्रधान होता है। जितना अच्छा अभिनय होगा उतना ही अधिक वह पात्र के सतोष एवं आनंद का विषय होगा। पात्र बाह्यरूप में रोता पीटता दिखलाई दे सकता है और लौकिक दुखात्मक अनुभूति की भाँति शोक के उपयुक्त अभिनय करता है किन्तु उससे किसी भी प्रकार दुखी नही होता। उसके दु:ख में और लौकिक दुख की अनुभूति मे यह विशेष अन्तर होता है कि उसको अप्रत्यक्ष रूप मे अपनी सुरक्षित स्थिति का विश्वास रहता है। लौकिक आश्रय का यह विश्वास नष्ट हो जाता है। इसलिए वह दुख का अभिनय नही कर सकता प्रत्युत दुख का अनुभव ही करता है। लौकिक शोकानुभूति के पश्चात् आश्रय उदासीन, खिन्न तथा दु:खी दिखलाई देता है जबकि साहित्यगत् अभिनय के पश्चात् प्रसन्न, आनदित उल्लसित दिखलाई देता है। इसका मुख्य कारण यह है कि पात्र का उद्देश्य अभिनय की सफलता है इसलिए अपने अभिनय की प्रशंसा से आनंद तथा सुख की प्राप्ति होती है। यदि मान लीजिए कि उसका अभिनय अच्छा न हुआ तथा लोगो ने आलोचना की तो उसको दुख होगा। यह तथ्य आलोच्य विषय से सबधित नही है। यहाँ तो सफल अभिनय से ही तात्पर्य है जिसके अन्तर्गत लौकिक शोकानुभूति का हूबहू अनुकृति कर लेता है। लौकिक आश्रय के शोकानुभूति की प्रशसा का प्रश्न ही नही उठता। इस प्रकार स्पष्ट है कि पात्र की शोकानुभूति उसके लिए सुखद होती है।

सामाजिकगत अनुभूति अन्तर्गत केवल अश्रु तथा स्वरभग ही बाह्य व्यंजक के रूप मे प्रकट होते है जबकि लौकिक अनुभूति मे अश्रु तथा स्वरभंग से लेकर प्रलाप, मोह तथा अपस्मार आदि सभी दशाएँ प्रकट होती है। अश्रु का अध्ययन करते हुए देख चुके है कि अश्रु केवल दुख अथवा केवल सुख मे संभव नही होते, प्रत्युत विषम परिस्थिति में दु:खान्त सुखान्त के समन्वय मे सभव होते है। अतएव प्रत्यक्ष अनुभूति में अश्रु शोक की स्मृति के कम होने पर आलंबन के सुखद स्मृति के समन्वय मे प्रकट होते है जबकि रसानुभूति में आलंबन की नैतिक, धार्मिक अथवा राजनीतिक निष्ठा के अन्तर्गत उसके द्वारा घोर यत्रणा सहकर भी सत्य अथवा अहिसा आदि मनोनीत सिद्धान्तो की रक्षा को देखकर तज्जनित उल्लास एव आनंद के प्रसग मे दुख-सुख के समन्वय मे प्रकट होते है। सामाजिक में इस अश्रुमोचन के पश्चात् लौकिक आश्रय के

---

१. डा० नगेन्द्र द्वारा प्रतिपादित

अश्रु मोचन के समान विवर्णता, उदासीनता तथा क्लान्ति आदि दिखलाई नही देते प्रत्युत वह आनद, उल्लास तथा आनंद का अनुभव करता है ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार पात्र अपने सफल अभिनय के पश्चात् प्रसन्न होता है ।

इस प्रकार करुण रस की अनुभूति सामाजिक को सुख, संतोष तथा आनंद ही प्रदान करती है और इसी रूप मे उसको सुखात्मक कहा जाता है ।

●

परिशिष्ट—ख

करुणरस की परिभाषा का विकास

विभिन्न आचार्यों द्वारा दी गई परिभाषाओ के सूक्ष्म विवेचन द्वारा करुणरस की परिभाषा का विकास-क्रम निश्चित किया जा सकता है।

मूलत. चार रस माने गए तथा करुण की उत्पत्ति रौद्र रस से मानी गई। रौद्र रस की क्रिया को ही करुणरस कहा गया। शास्त्रीय मर्यादा का यह प्रारम्भिक काल कहा जा सकता है। प्राचीनो के लिए रौद्र रस की क्रिया प्राय. शाप के कारण होती थी। शाप की व्याख्या करते हुए नाट्यदर्पणकार रामचन्द्र गुणचन्द्र ने लिखा है—"किसी प्रभावशाली ऋषि मुनि आदि का इष्ट के वियोग के प्रति ले जाने वाला क्रोध शाप होता है।"[1] इसीलिए सभवतः स्वयं भरत ने भी करुण रस के कारणो को एक समस्त पद (करुणस्तु शापक्लेशविनिपतितेष्टजनविभवनाशवधबन्धसमुत्थो निरपेक्ष भाव:) "विनिपति समुत्थो" द्वारा निर्दिष्ट किया तथा उसके साथ "शापक्लेश" पद जोडकर सीमित कर दिया। इस प्रकार इसका अर्थ हुआ—केवल शापक्लेश मे पडे हुए इष्टजन के विभवनाश, वध तथा बन्ध से समुत्थित निरपेक्ष भाव करुण है। इस सम्पूर्ण पद के मिलने से एक कारण बन गया और इस प्रकार करुण की सीमा केवल शापग्रस्त व्यक्ति तक निश्चित करके अति संकीर्ण कर दी गई।

भरत के पश्चात् दण्डी ने इष्टनाश के साथ "आदि" धनंजय ने इष्टनाश अथवा "अनिष्ट प्राप्ति" तथा विश्वनाथ ने "इष्टनाश एवं अनिष्ट प्राप्ति" लिखकर करुणरस के क्षेत्र को विस्तृत किया। भरत के समय तक प्राय: "इष्टनाश" का ही उल्लेख हुआ। किन्तु दण्डी, धनंजय तथा विश्वनाथ ने स्पष्टतः दूसरे अग "अनिष्ट प्राप्ति" का भी उल्लेख किया।

विश्वनाथ के पश्चात् पण्डितराज जगन्नाथ ने पुन· करुणरस के क्षेत्र को विशेष एव परिमित करना चाहा। उन्होंने "पुत्रादि वियोग एवं मरण" को ही करुण का क्षेत्र निर्धारित किया। "इष्टनाश" एवं "अनिष्ट प्राप्ति" शब्दों के अन्तर्गत पुत्रादि का ही उल्लेख क्यो किया ? यह विषय शास्त्रीय खोज का है। सस्कृत साहित्य के इतिहास से तो यह प्रकट नही होता कि स्वय पण्डितराज को पुत्रवियोगादि सहना पडा

१. "शापोभिमत वियोगहेतुर्दिक प्रभाववतः आक्रोशः।"—मा० द० १११ की व्याख्या

हो तथा इस कारण से वह इस परिवर्तन को करने के लिए विवश हो गए। हो सकता है पुत्र वियोग की अनुभूति की दारुण एवं मर्मस्पर्शी प्रकृति को समझकर ही पण्डित-राज ने यह परिवर्तन किया हो।

पण्डितराज के पश्चात् रामचन्द्र गुणचन्द्र ने "बन्ध, धन-भ्रंश, शाप तथा व्यसन का पृथक् उल्लेख कर "बन्धन, धनभ्रंश तथा व्यसन के प्रसंगों की करुण रस के क्षेत्र में अभिवृद्धि की। यद्यपि भरत ने बन्धन एव विभवनाश का उल्लेख पूर्व ही कर दिया था किन्तु उसको इष्टनाश से सबधित ही रखा था। यहाँ यह प्रसंग स्वतत्र रूप में प्रकट हुए है इसलिए इनके द्वारा अभिवृद्धि समझी गई।

व्यसन की व्याख्या करते हुए उन्होने व्यसन का अर्थ बतलाया – अनर्थ या अनिष्ट होजाना। इस अनर्थ शब्द से ही युद्ध, अकाल, विप्लव आदि का सग्रह हो जाता है—यह भी उन्होने स्पष्ट किया। करुणरस के अभिनय के संबंध में लिखते हुए उन्होने बतलाया—रोना, मुख-मालिन्य और निन्दन (आत्मनिन्दा, दैवनिन्दा, एव भाग्य-निन्दा आदि) द्वारा करुण का अभिनय होता है। इस अभिनय की व्याख्या द्वारा करुणरस के क्षेत्र में निन्दन द्वारा आत्मनिन्दा के प्रसगो का भी समावेश हुआ। आत्मनिन्दा के प्रसग आध्यात्मिक शोक के अन्तर्गत भी जाते है। इस प्रकार नाट्य-दर्पणकार के समय तक करुणरस का सीमित क्षेत्र विशेषरूप से विस्तृत हुआ।

हिन्दी के आचार्यों मे आचार्य केशवदास जी ने करुण की परिभाषा देते हुए लिखा है, "सुख के सब उपाय जहाँ छूट जाते है वहाँ करुणरस स्वतः ही आकुल होकर उत्पन्न होता है।" आचार्य जी का संकेत आशा की चिनगारी बुझ जाने की ओर है जो करुण एव विप्रलभ का विभेदनिर्णायक तथ्य है। किन्तु रामचन्द्रिका मे आचार्य जी ने करुण रस के विशेष स्थल भी दिखलाए है।

(i) ऋषि सतानन्द तथा महाराज जनक दशरथ को भोजन के लिए बुलाने जाते और कहते है, "जिस प्रकार कल कष्ट किया था आज भी कष्ट कीजिए। हम लोग तो आपके चरणोदक के प्यासे है" इस विनय को सुनकर सबको करुणरस की अनुभूति निम्न शब्दो मे हुई—

"जब ऋषिराज विनै कर लीनो, सुनि सबके करुणारस भीनो।"

(ii) दूसरा विशेष प्रसग रामजननी-मिलन अवसर पर उपस्थित होता है। इस मिलन मे आचार्य जी करुणरस की अभूतपूर्व छटा देखते है—

"मिले जाय जननीन को जबही श्री रघुराई।
करुणारस अद्‌भुत भयो मो पै कह्यो न जाई॥"

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने करुणरसानुभूति के विकासक्रम की ओर सकेत करते हुए तीन दशाओ की प्रतिष्ठा की है—

भाव दशा	स्थायी दशा	शील दशा
|	|	|
शोक	संताप	खिन्नता

साथ ही शुक्ल जी ने भारतीय दृष्टिकोण को पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण के आधार पर भी खरा पाया है। उन्होने इस प्रयास में स्पष्ट दिखला दिया है कि पाश्चात्य साहित्य एवं समीक्षा की ओर दौडनेवाले नवयुवक अपने साहित्य एवं शास्त्रीय विवेचन की ओर भी देखे—जिन खोजपूर्ण तथ्यो के लिए आधुनिक मनोविज्ञान आज गर्व कर रहा है उनकी खोज भारतीय साहित्य आज से सहस्रो वर्ष पूर्व कर चुका था।

आचार्य जी ने करुण का विकासक्रम अनुभूति की दृष्टि से निश्चित किया है तथा करुण रस की अनुभूति को विप्रलम्भ की अनुभूति का क्रमिक विकास माना है।

करुणरस की परिभाषा का विकास प्रकारान्तर से विरोध परिहार के अन्तर्गत भी हुआ। करुण और श्रृंगार विरोधी रस है। इनके विरोधपरिहार के सबध मे प्राय. प्रयास हुआ—

महाभारत के युद्ध मे भूरिश्रवा के मर जाने पर युद्ध क्षेत्र मे उसके कटे हुए हाथ को देखकर उसकी पत्नी के विलाप-प्रसग मे निम्नलिखित श्लोक आया है—

"अयं स रशनोत्कर्षी पीनस्तनविमर्दन.
नाभ्युरुजघनस्पर्शी नीवीविस्रंसन करः।"

(सभोग समय तगडी को हटानेवाला, उन्नत उरोजो का मर्दन करनेवाला, नाभि, जघा और नितम्ब का स्पर्श करनेवाला और नाडे को खोलने वाला यह वही प्रियतम का हाथ है।)

इस श्लोक द्वारा सभोगश्रृगार की पूर्ण अभिव्यक्ति हो रही है किन्तु नायिका की विशेष स्थिति के कारण यह सभोग श्रृगार भी करुणरस का सहायक तथा उद्दीपक हो जाता है।

भवभूति के उत्तररामचरित के अन्तर्गत इस विरोध का परिहार तृतीय अक मे हुआ है। महाकवि की उत्कृष्ट कला ने इस अक मे श्रृगार एव करुण का अति सुन्दर समन्वय किया है। इस अक मे भी सभोग श्रृंगार के उत्कृष्ट दृश्य है किन्तु उन सब से करुणरस का ही उद्दीपन होता है। राम का विलाप "अपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम्" की सीमा तक पहुच जाता है। वह स्थल-स्थल पर सीता के विरह मे विलाप करते है। सीता के स्पर्श के कारण उनकी अनुभूति और भी मर्मस्पर्शी बन जाती है। वह बार बार मूर्च्छित होते तथा पुकार उठते है—

"हा हा देवि, स्फुटति हृदय ध्वसते देहबन्धः
शून्य मन्ये जगदविरलज्वालमन्तर्ज्वलामि।
सीदन्नन्धे तमसि विधुरो मज्जतीवान्तरात्मा
विष्वङ् मोहः स्थगयति कथ मन्दभाग्य. करोमि ?" —(उ०रा० ३/३८)

उधर सीता राम के स्पर्श का अनुभव कर सभोग श्रृगार की अनुमति का प्रकटीकरण कर रही है—

"सस्वेदरोमाञ्चितकम्पितांगी जाता प्रियस्पर्शसुखेनवत्सा
मरुन्नवाम्भः परिधूतसिक्ता कदम्बयष्टिः स्फुटकोरकेव ।" —(उ०रा०३/४२)

इस प्रकार उत्कृष्ट काव्यकला के आधार पर शृंगार एव करुण के परिहार की बात संभव हुई तथा इस रूप मे भी करुण रस के क्षेत्र का विकास हुआ ।

करुण रस के इस विकासक्रम का एक रेखा चित्र निम्नलिखित रूप मे दिया जा सकता है ।

भरत (नाट्यशास्त्र)	करुणरस (रौद्रस्य क्रिया) शापित व्यक्ति का (इष्टनाश, वध, बन्धन, विभवनाश)
दण्डी, धनजय, विश्वनाथ	इष्टनाश—अनिष्टप्राप्ति
पण्डितराज जगन्नाथ	पुत्रादि वियोग एव मरण
रामचन्द्र गुण चन्द्र	मृत्यु बन्ध धनभ्रंश शाप व्यसन निन्दन
केशवदास	आर्तनिवेदन एव मिलन प्रसग
आनन्दवर्धन, भवभूति	विरोध परिहार—शृंगार, करुण
आचार्य रामचन्द्र शुक्ल	करुण—विप्रलभ का क्रमिक विकास (जहाँ तक प्रेमी-प्रेमिकाओ के प्रेम का सबध है)

(क) **मनोभावों में करुणरस** (मध्य युगीन हिन्दी)

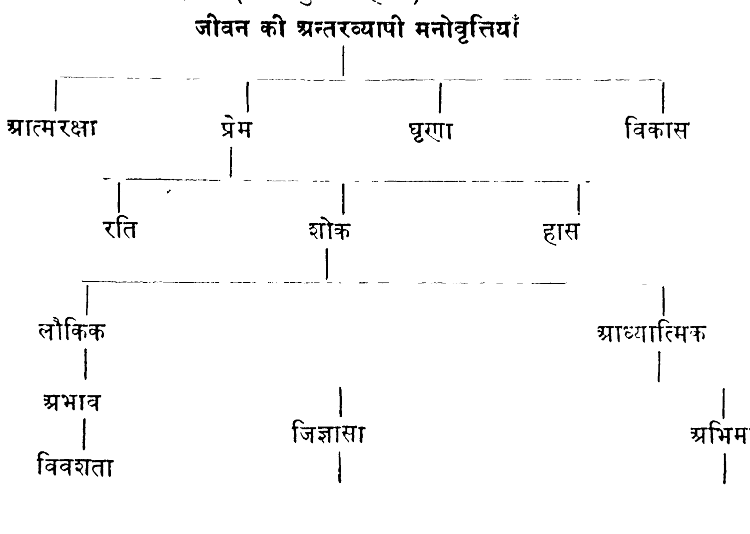

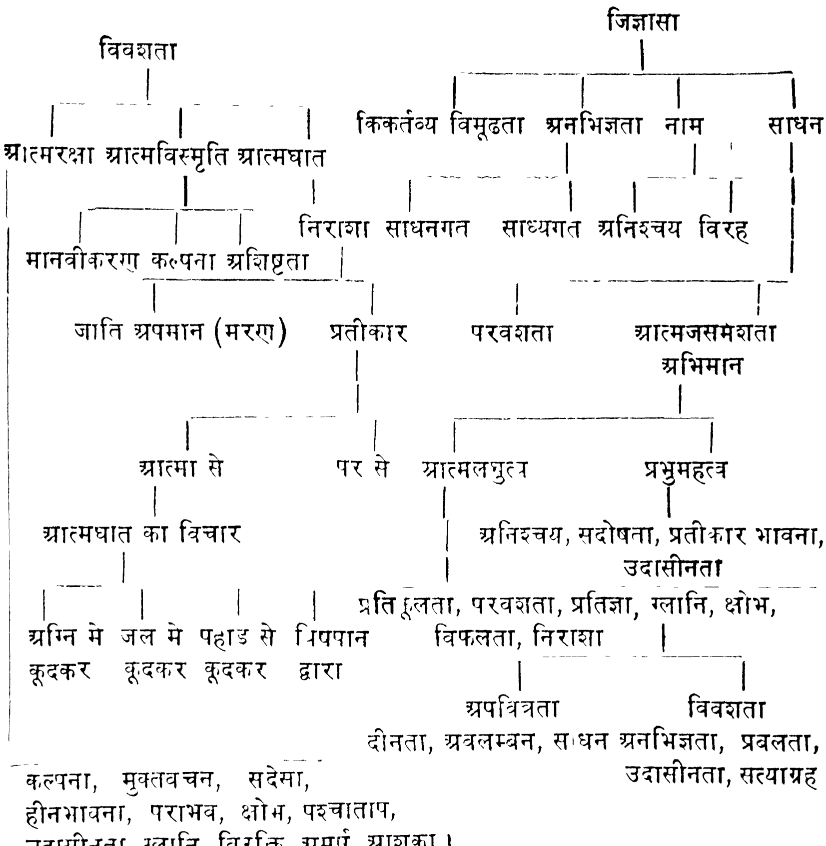

करुणरस का विश्लेषण

उत्पत्ति—१ शृंगार, रौद्र, वीर, वीभत्स

करुण

२. ऋग, साम, अथर्व, यजु

वीर, शृंगार, रौद्र, वीभत्स

करुण

३. इच्छा

राग   द्वेष

राग

प्रीति — श्रृंगार

सम्मान — अद्भुत

दया — करुण

४. सत् , रज् , तम्

सत् — श्रृंगार

रज् — हास्य

तम् — करुण

विभेद—१. करुण २. अतिकरुण ३. महाकरुण ४ लघुकरुण ५. सुखकरुण

देवता—यम, वरुण

आलंबन—प्रियजन वियोग, प्रियजन मरण, पराजय, बन्धन, वध, क्लेश एव दुख, धर्म अपघात, धन वैभव नाश।

उद्दीपन—प्रियजन दाह कर्म, वस्त्रादि दर्शन, गुणकथन, परिताप असहायावस्था।

अनुभाव—भूमिपतन, रोदन, दैवनिन्दा, भाग्य निन्दा, विवर्णता, उच्छ्वास स्तम्भ, प्रलय, स्वर भग, अश्रु, मुखशुष्कता, कम्प।

संचारीभाव—निर्वेद, ग्लानि, व्याधि, चिन्ता, स्मृति, विषाद, जड़ता, मोह अपस्मार, श्रम, दैन्य, मूर्च्छा, शका, आवेग, त्रास।

स्थायीभाव—शोक

"एको रस. करुण एव"

शोकस्थायी मे परिणति

श्रृंगार (रति)—स्मृतिगत सभोग श्रृंगार (इष्टनाश के समय) वियोग दशा (निराशा जन्य)

हास (हास्य) क्षोभगत हास (हँसते हुए रोना)

करुण (शोक) शोकगत विवश एव असहाय परिस्थितियाँ

रौद्र (क्रोध) प्रतिक्रिया के रूप मे (विवशतागत)

वीर (उत्साह) पराभव एवं पराजयगत परिस्थितियाँ

भयानक (भय) स्मृतिगत रूप में

वीभत्स (ग्लानि)आत्मग्लानि के रूप में।

अद्भुत (विस्मय)सृष्टि व्यापार वैचित्र्य।

शान्त (निर्वेद आध्यात्मिक शोक।

परिशिष्ट—घ

शोक का प्रदर्शन

शोक

करुण रस का प्रदर्शन

आध्यात्मिक शोक

आध्यात्मिक शोकाभिभूत ईसा

(साप्ताहिक हिन्दुस्तान के सौजन्य से)

खण्ड—ख

मध्ययुगीन हिन्दी-रामकाव्य
में
करुणरस

: १ :

मध्ययुगीन हिन्दी-रामकाव्य की पूर्वपीठिका

मध्ययुगीन हिन्दी रामकाव्य की पूर्वपीठिका के अन्तर्गत संस्कृत-साहित्य, अपभ्रंश-साहित्य तथा हिन्दी का चारणकाल मुख्यरूप से उल्लेखनीय है जिनके सदर्भ मे करुणरस पर विचार कर लेने से करुणरस की मूलधारा के उद्गम का भी उद्घाटन हो सकेगा। मध्ययुगीन हिन्दी-रामकाव्य की करुणधारा के श्रोत का उसकी पूर्वपीठिका मे अवलोकन कर लेने से हिन्दी रामकाव्य के करुणरस के प्रसगो को समझने मे सुविधा होगी क्योकि हिन्दी-रामकाव्य की अभिव्यक्ति का आधार उस की पृष्ठभूमि ही है। अतएव यहाँ सस्कृत साहित्यगत रामकथा एवं अपभ्रंश-साहित्य गत रामकथा मे तथा चारणकाल मे प्रकट करुणरस का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

संस्कृत-साहित्य की रामकथा में करुणरस

सस्कृत साहित्य के प्राय काव्यो का आधार रामकथा रही है जिनमें वाल्मीकि रामायण तथा उसके ही आधार पर रचित अध्यात्म-रामायण और नाटको मे उत्तर-रामचरित विशेषरूप से उल्लेखनीय है। वाल्मीकि रामायण रामकथा का प्रथम महाकाव्य है जिसमे रामकथा का विस्तृत विवेचन हुआ है तथा रामकथा के सभी तत्वो पर विस्तार से विचार किया गया है। रामकथा का कोई ऐसा प्रसग अछूता अथवा अविकसित नही छूटा जिस पर आगे आने वाले कवियो की यश-प्राप्त करने की कामना सिद्ध हो सकती।

महर्षि वाल्मीकि की प्रेरणा का मूल आधार करुणा है जो पशु-पक्षियों तक के लिए उन्मुक्त रही है। शोक ने श्लोक की रचना की और करुणा ने महर्षि को कवि बना दिया, उनको करुणा की प्रतिमूर्ति कहे तो अत्युक्ति न होगी। उनकी करुण-प्रकृति के अनुकूल ही उनको काव्य-सृजन के लिए उपयुक्त कथानक मिला। रामकथा के प्रथम कथाकार महर्षि वाल्मीकि ने उसमे यथाशक्ति और यथासंभव करुणा भरदी। उनके शोक में रामकथा मूलत शोककुला एव शोकमूला बन गई।

वाल्मीकि के राम, राम पहले तथा भगवान् बाद मे है । इसीलिए उनके मानस में मानवहृदय की उन सहज अनुभूतियों के दर्शन होते हैं जो जन-साधारण की अति सामान्य पारिवारिक समस्याओ के फलस्वरूप उत्पन्न होती है । माता कौशल्या को महाराज दशरथ से उचित सम्मान प्राप्त नही होता, यह राम को भली-भाँति विदित है । राजमहल मे सौतीली माता कैकेयी का विशेष प्रभाव है यह भी वह भली-भाँति जानते हैं । इसीलिए बनवास के समय उनके निवेदन मे इन तथ्यो की ओर स्पष्ट संकेत मिलते है । कहना न होगा कि इस रूप मे वाल्मीकि रामायण जन-मानस के अति समीप है ।

हिन्दी साहित्यगत रामकथा मे प्रमुखत इष्टनाश अथवा प्रियबन्धुबान्धव के वियोग का ही वर्णन हुआ है । सस्कृत-साहित्य मे भी करुणरस के इतर प्रसगो का वर्णन नाममात्र मे ही हुआ है । भारतीय आत्मा ने भौतिकता की कभी चिन्ता नही की है । इसलिए धननाश आदि के प्रसग प्राय अछूते ही रहे है । यहाँ इस प्रकरण मे प्रियबन्धुबान्धव के वियोग तक ही अध्ययन को सीमित रखा गया है जिससे हिन्दी साहित्यगत रामकथा के समान प्रसगो पर सस्कृत रामकथागत करुणरस की पृष्ठभूमि में अपेक्षित प्रकाश पड सके ।

वाल्मीकि रामायण के प्रियबन्धुबान्धव-वियोग एव इष्ट-नाश के प्रसगो को निम्नलिखित रूप मे रखा जा सकता है—

१. राम-वनवास प्रसग तथा दशरथ-मरण ।
२. सीताहरण तथा रामविलाप ।
३. अशोकवन स्थित सीता की करुणदशा ।
४. माया के बने हुए राम के कटे सिर को देखकर सीता का विलाप ।
५. माया-सीता के वध पर राम का दुख एव शोक ।
६. लक्ष्मण शक्ति ।
७. सीता-निर्वासन ।

विपक्षी पात्रो की शोकानुभूति—

१. बालि-वध ।
२. कुभकरण-मेघनाद वध पर रावण-विलाप ।
३. रावण-वध पर विभीषण तथा मदोदरी का विलाप ।

वाल्मीकि रामायण में करुणरस की अभिव्यक्ति

रामवनवास प्रसंग—रामवनवास-प्रसग की मुख्य घटना दशरथ-मरण है । वियोग की यह आत्यातिक दशा असाधारण है। इसीलिए कवि को इस तथ्य की विभिन्न रूपों में व्याख्या तथा पुष्टि करनी पडी है । यह व्याख्या शास्त्रीय-विवेचन नही है । मनोवैज्ञानिक तत्वो का सकलन तथा सघटन है जिनके फलस्वरूप अप्रत्यक्ष

रूप मे दशरथ-मरण की असाधारण घटना स्वाभाविक प्रतीत होने लगती है। बात यह है वाल्मीकि रामायण मे रामकथा के करुण प्रसगों की पहले-पहल अभिव्यक्ति हुई। इसलिए राम-वियोग मे दशरथ मरण को स्वाभाविक एवं सहज सिद्ध करने के लिए कवि को विशेष प्रयत्न करना पडा। दशरथ की शोकानुभूति के क्रमिक विकास, आशा-निराशागत भावो के उत्थानपतन तथा वेदना के विकसित असह्यरूप में अंधशाप की स्मृति के अन्तर्गत जीवनीशक्ति के ह्रास के लिए घातक सवेदनो की योजना करके कवि इस प्रसग को स्वाभाविकता प्रदान करता है। इस प्रकार सामाजिक को यह प्रसग स्वाभाविक ही नही लगता प्रत्युत उसके मानस मे इस प्रकार की मृत्यु के भी संस्कार बन जाते है जिसके फलस्वरूप आने वाले रामकथा के कलाकारों को इस प्रसंग पर इतना परिश्रम करने की आवश्यकता नही रहती।

कैकेयी के वरदान को सुनकर तरुणीवशगत वृद्ध महाराज जो अनुनय-विनय करते है उसमे उनकी विवशता, शारीरिक शिथिलता तथा जीवन शक्ति की क्षीणता के प्रति कवि प्रथम ही सकेत कर देता है जो इस प्रसग की पृष्ठभूमि वन जाती है।

महाराज दशरथ की व्यथा का निम्नलिखित चार स्थितियो मे अध्ययन कर सकते है—

१—कैकेयी से वरदान का श्रवण, राम का बुलाया जाना तथा बनवास के लिए कहना।

२—राम का वनवास की तैयारी करके माता कौशल्या सहित महाराज के पास आना तथा प्रस्थान।

३—सुमत्र का राम को पहुँचाकर वापिस आना तथा माता कौशल्या की कटूक्तियाँ।

४—अधशाप का स्मरण तथा निधन।

महाराज दशरथ की व्यथा की प्रथम स्थिति—महाराज दशरथ की अनुनय-विनय के अन्तर्गत निम्नलिखित तथ्यो का प्रकटीकरण हुआ[1]।

अ—वह (महाराज) वृद्ध है, उनको जीवन की आशा नही रही है तथा उनकी दशा शोचनीय है।

आ—वह कैकेयी के वश मे है उसके सामने गिडगिडाते तथा हाथ-पैर जोड़ते है और अपने आपको परम विवश अनुभव करते है। राम के प्रति उनका अगाध प्रेम

---

१. "मम वृद्धस्य कैकेयि गतान्तस्य तपस्विनः।
दीन लालप्यमानस्य कारुण्य कर्तुमर्हसि॥" —अयो० १२/३४
"अञ्जलि कुर्मि कैकेयि पादौ चापि स्पृशामि ते।
शरण भव रामस्य माधर्मो मामिह स्पृशेत्॥"—अयो० १२/३६
"इति दुःखाधिसन्तप्त विलपन्तमचेतनम्।
घूर्णमान महाराजं शोकेन समभिप्लुतम्॥" —अयो० १२/३७

है किन्तु प्रतिज्ञाभंग के प्रति वह परमभीरु भी है।

इ—उनकी शारीरिक दशा अति क्षीण है, इसलिए वह अचेत हो जाते हैं।

उपर्युक्त वर्णन महाराज की शोकानुभूति की पृष्ठभूमि है। इसकी पुष्टि महाराज के शब्दों में पुन: होती है जब वह कैकेयी से यह निश्चय कराते है कि वह वास्तव मे ही ऐसा वरदान माँग रही है अथवा केवल हँसी कर रही है। कैकेयी अपने निश्चय को पुन प्रकट करती है और साथ मे शपथ खाकर अपने भयकर निश्चय को कठोर वास्तविकता के रूप मे प्रकट करती है। तब तो महाराज दशरथ अपनी असहायावस्था मे बिलख उटते है और उनकी अति करुणापूर्ण दशा का कवि मार्मिक शब्दो मे चित्रण करता है[1]—

अ—शोक की गंभीरता मे वाणी मूक हो गई और उनके मुख से केवल "हा राम! हा राम" शब्द निकले।

आ—उनकी दशा ऐसी हो गई जैसे—

(१) पागल हो गए हो और इसलिए नष्टचित्त हो।

(२) सन्निपातादि रोगो से ग्रस्त हो।

(३) मत्रमुग्ध सर्प की तरह हततेज हो।

इ—महाराज दशरथ विषम वेदना के कारण विलाप करने लगे। निस्सहाय प्राणी की भाँति उनकी दृष्टि भी आकाश की ओर लग गई।

ई—वह सोचने लगे कि दु ख सहने के अयोग्य श्रीराम के दु ख को देखने मे पूर्व हम मर जाते तो स्वर्ग मे हमको मुख मिलता। वह रात्रि उनके लिए काल-रात्रि बन गई। यह सोचकर वह कहने लगे कि हम इस निशा का प्रभात नही चाहते।

इस समय राम को बुलाया गया। महाराज दशरथ वेदना तथा आत्मग्लानि से पीडित थे अतएव वह राम को देखने का साहस न कर सके न वह कुछ बोल ही सके। अश्रुपूर्ण-नेत्र महाराज दशरथ के मुख से केवल "राम" शब्द निकल[2]। कवि ने मानस की सूक्ष्म अनुभूतियो की ओर सकेत करते हुए इस प्रसग को मर्मस्पर्शी बना

१. "स देव्या व्यवसाय च घोर च शपथ कृतम्।
ध्यात्वा रामेति नि श्वस्यच्छिन्नस्तरुरिवापतत्॥" —अयो० १२/५४
"नष्टचित्तो यथोन्मत्तो विपरीतो यथाऽतुर:।
हततेजा यथा सर्पो बभूव जगतीपति:॥"—अयो० १२/५५
"यदि दु:खमकृत्वाद्य मम सक्रमण भवेत्।
अदु:खार्हस्य रामस्य तत: सुखमवाप्नुयाम्॥"—अयो० १३/१२
"विललापार्तवद्दु ख गगनासक्तलोचन.।
न प्रभात तवेच्छामि निशे नक्षत्र भूषणे॥"—अयो० १३/१७

२. 'रामेत्युक्त्वा च वचन वाष्पपर्याकुलेक्षण:।
शशाक नृपतिर्दीनो नेक्षितु नाभिभाषितुम्॥'—अयो० १८/३

दिया है। महाराज के अनुभावों का वर्णन करके कवि ने अप्रत्यक्षरूप से इस प्रसग की गभीरता पर प्रकाश डाला है[१]।

महाराज की सारी इन्द्रियाँ विकल थी, शोकसताप के कारण बार-बार दीर्घ निश्वास छोड रहे थे। नीची गर्दन किए आँसू बहा रहे थे।

यहाँ हृदय को कचोटनेवाला एक प्रसग और उल्लेखनीय है। राम कैकेयी से पूछते है कि यह तो बताइए कि महाराज इस प्रकार नीची गर्दन किए आँसू क्यो बहा रहे हैं। इसके उत्तर मे कैकेयी कहती है—"हे राम, जबतक तुम वन को प्रस्थान न करोगे तबतक महाराज ऐसे ही बैठे रहेगे, न स्नान करेगे न भोजन करेगे।" इस उत्तर से स्पष्ट है कि कैकेयी से अधिक रामवनवास के लिए महाराज की सहमति एवं इच्छा ही नही प्रत्युत वह इसके लिए कृतनिश्चय भी है और जब तक यह कार्य नही हो जाता तबतक वह इसी प्रकार सत्याग्रह किए बैठे रहेगे। महाराज दशरथ के समान भुक्त भोगी ही इस उत्तर की कटुता का अनुभव कर सकते है। वह निष्पाप तथा निरीह और उनके मत्थे उन्ही के सामने मढा जाय यह घोर पाप एव कलक, विशेषकर उस समय जब वह अपनी दीन दशा एव मानसिक असह्य वेदना के कारण इसका विरोध करने मे भी असमर्थ हो और उनकी मौन उनकी सहमति को ही प्रकट कर सकती हो। महाराज दशरथ इस हृदयविदारक उत्तर को सुनकर अतएव "हा धिक" कहकर दीर्घ निश्वास छोडते हुए मूर्च्छित होकर पलग पर गिर पडे। कवि ने अपनी कलाकुशलता के बल पर ही महाराज को कैकेयी के इस जाल से मुक्त करा दिया। इस एक शब्द "हा धिक्" से ही स्थिति स्पष्ट हो गई[२]।

इसी क्रम मे इस व्यथा का एक और रूप प्रकट होता है जब श्रीराम कैकेयी से कहते है कि ऐसा करना कि भरत अच्छी तरह राज्य करे और पिता की भली-भाँति सेवाशुश्रूषा करे क्योकि पुत्र के लिए यही सनातन धर्म है। महाराज दशरथ के मानस की कल्पना कीजिए, वह राम को वनवास दे रहे है और राम वन जाते हुए भी उन (पिता जी) की कुशलक्षेम एव सेवाशुश्रूषा के लिए लालायित एव प्रयत्नशील है। इसीलिए इस स्थिति मे महाराज कुछ बोल तो न सके किन्तु ढाड मारकर रोने लगे[३]।

---

१. 'इन्द्रियैरप्रहृष्टैरत शोकसन्तापकर्शितम्।
नि.श्वसन्तं महाराजं व्यथिताकुलचेतसम्।।'—अयो० १८/५
'तदाश्वासय हीमं त्वं किन्विदं यन्महीपतिः।
वसुधासक्तनयनो वसुधासक्तनयनो मन्दमश्रूणिमुञ्चति।।'—अयो० १६/६

२. धिक्कष्टमिति निश्वस्य राजा शोकपरिप्लुतः।
मूर्छितो न्यपतत्तस्मिन्पर्यङ्के हेमभूषिते।।'—अयो० १६/१७

३. 'भरत: पालयेद्राज्यं शुश्रूषेच्च पितुर्यथा।
तथा भवत्या कर्तव्यं स हि धर्म. सनातन —अयो० १६/२६
'स रामस्य वचः श्रुत्वा भृश दु खहत पिता।
शोकादशक्नुवन्बास्पे प्ररुरोदे महास्वनम।।' —अयो० १६/२७

महाराज दशरथ की व्यथा की द्वितीय स्थिति—व्यथा की द्वितीय स्थिति की पृष्ठभूमि में माता कौशल्या का शोक मर्मस्पर्शी रूप मे प्रकट होता है जब वह सुनती है कि राम को राजतिलक के स्थान में वनवास की आज्ञा दी गई है। यहाँ सौतेली माता तथा सौतिया-डाह के प्रसंग विशेष रूप से अवलोकनीय है जिनके संदर्भ मे माता कौशल्या का शोक पारावारिक कटुता एवं विषमता के कारण मर्मभेदी वास्तविकता का उद्घाटन करता है।

माता कौशल्या को जब श्रीराम ने अपने वनवास की सूचना दी तो वह इस दु:खद समाचार को सुनकर यकायक भूमि पर गिर पडी[1]। यह अनुभाव स्वाभाविक प्रतीत होता है जब हम देखते है कि माता कौशल्या की आशा, प्रयत्न, हर्ष, उल्लास एवं उत्साह के विपरीत उनको घोर निराशा का समाचार सुनने को मिला। कहाँ वह राजतिलक की तैयारी कर रही थी और राह देख रही थी कि वह आज अपने पुत्र को राजसिंहासन पर सुशोभित देखेगी और कहाँ उनको सुनने को मिला कि उन का यशस्वी पुत्र वन को जा रहा है क्योंकि उसको दण्डित व्यक्ति की भाँति वनवास की राजकीय आज्ञा दी गई है।

माता कौशल्या का शोक आत्मग्लानि तथा भविष्य की कटु परिस्थितियो की चिन्ता मे प्रकट होता है[2]।

(१) मैं निपुत्री होती तो एक दु ख पुत्र न होने का ही होता किन्तु इस प्रकार की घोर व्यथा तो न सहनी पडती।

(२) पति का प्रेम मिला नही, जीवन के दु खो का अन्त दिखाई दे रहा था किन्तु वह स्वप्न ही रहा।

(३) अब तो सौतो की सेवा करनी पडेगी और इतने पर भी कैकेयी की दासी के बराबर भी तो पूछ न होगी।

माता कौशल्या फलस्वरूप मृत्यु की कामना करती है और मृत्यु न मिलने पर आत्मग्लानि से कातर होकर कह उठती है—मै समझती हूँ कि मृत्यु मुझे भूल गई है

---

१. 'पपात सहसा देवी देवतेव दिवश्च्युता।
तामदु खोचितां दृष्ट्वा पतितां कदलीमिव ॥'—अयो० २०/३३

२. 'न स्म दु खमतो भूयः पश्येयमहमप्रजा.।
एक एव हि वन्ध्यायाः शोको भवति मानसः ॥'—अयो० २०/३७
"न दृष्टपूर्वं कल्याणं सुखं व पतिपौरुषे ॥"—अयो० २०/३८
"अहं श्रोष्ये सपत्नीनामवराणां वरा सती।
अतो दु खतरं किं नु प्रमदानां भविष्यति ॥"—अयो० २०/४०
"परिवारेण कैकेय्याः समा वाप्यथवा वरा।"—अयो० २०/४३

यमराज के यहाँ भी मेरे लिए स्थान नही है[1] ।

माता कौशल्या की स्थिति तथा उनके भविष्य के संबध में राम से कुछ छिपा न था। अब माता द्वारा स्पष्ट कहने पर उनको इसकी चिन्ता होने लगी। उन्होने इसीलिए महाराज से बार-बार माता कौशल्या का ध्यान रखने की प्रार्थना की।[2]

आप पूज्य है, माता कौशल्या का आप ध्यान रखें। उसका उचित सम्मान तथा सत्कार करे जिससे पुत्रवियोग का कष्ट उसको न हो और वह पुत्रवियोग मे जीवित रह सके।

महाराज दशरथ बहुपत्नी प्रथा के दोषो को समझते थे और अपने घर मे उत्पन्न विषम परिस्थिति का अनुभव भी करते थे। राम की प्रार्थना ने मानो उनके सामने घर की शोचनीय स्थिति का प्रकटीकरण करके मुंह पर तमाचा-सा मार दिया और वह अपनी विवशता मे तिलमिला उठे। वह राम के इन वचनों को सुनकर मूर्च्छित हो गए। राम की ओर देखने अथवा राम से कुछ कहने का उनको साहस न हुआ। कवि ने इस रूप मे महाराज दशरथ की अति स्वाभाविक मानसिक दशा का चित्रण किया है। वेदना का सतोष पूर्वकर्म के विधान अथवा भाग्यवाद मे होता है। महाराज दशरथ भी इस असह्य पीडा मे यही सोचने लगे कि निश्चय ही हमने पूर्वजन्म मे बहुत-सी गौओ के बछडे उनसे अलग कर दिए है अथवा बहुत से प्राणियों का वध किया है जिसके फलस्वरूप हमको यह घोर यातना सहनी पड रही है।[3]

राम वन को चले तो उनके साथ अयोध्या के नर-नारी भी चल दिए। श्रीराम के रथ के पीछे क्या बालक, क्या बूढे और क्या युवक सभी दौडने लगे। राज-भवन से महाराज दशरथ अपनी रानियो सहित यह कहते हुए पैदल ही दौड पड़े—"मै अपने लाडलो को देखूंगा'।'[4]

---

१. "स्थिर तु हृदय मन्ये ममेद यन्न दीर्यते॥" —अयो० २०/४६
"ममैव नून मरण न विद्यते।
न चावकाशोस्ति यमक्षये मम॥" —अयो० २०/५०

२. पुत्रशोक यथानर्च्छे-त्वया पूज्येन पूजिता।
मा हि सञ्चिन्तयन्ती सा त्वयि जीवेतपस्विनी॥— अयो० ३८।१७

३. नैन दुःखेन सन्तप्त. प्रत्यवैक्षत राघवम्।
न चैनमभिसम्प्रेक्ष्य प्रत्यभाषत दुर्मनाः॥ — अयो० ३६।२
मन्ये खलु मया पूर्व विवत्सा बहवः कृताः।
प्राणिनो हिंसिता वापि तस्मादिदमुपस्थितम्॥— अयो० ३६।४

४. अथ राजा वृत. स्त्रीभिर्दीनाभिर्दीनचेतन.।
निर्जगाम प्रिय पुत्रं द्रशयामीति ब्रुवन्गृहात्॥— अयो० ४०/२८

उधर माता कौशल्या रथ के पीछे दौड़ रही थी तथा "हा राम, हा सीता हा लक्ष्मण" कह कर चिल्ला रही थी[१]।

अयोध्या के सारे नगरवासी राम के प्रयाण के समय हाहाकार करते हुए किंकर्तव्यविमूढ हो गए। महाराज नगरवासियो को अति दुखी देखकर जड से कटे हुए पेड की भाँति भूमि पर गिर पडे[२]।

रामवियोग का व्यापक प्रभाव—रामवियोग का व्यापक प्रभाव चराचर जगत मे दिखलाई दे रहा है। सक्षेप मे निम्नलिखित रूप मे उसका अवलोकन किया जा सकता है—[३]

१—उस दिन न तो किसी ब्रह्मचारी ने अग्निहोत्र किया न किसी गृहस्थ के घर चूल्हा ही जला।

२—हाथियो ने अपनी झूले गिरा दी, गौओ ने बछडे-बछियो को दूध न पिलाया।

३—माताएँ अपने बडे पुत्रो को देखकर आनन्दित न हुई।

४—तेज वायु चलने लगी, आकाश मेघाच्छादित हो गया, नगर मे भूकम्प आ गया।

५—दशो दिशाओ मे अधकार छा गया।

६—राह चलते मनुष्यो के नेत्रो से आँसू बह रहे थे।

महाराज दशरथ की शोचनीय दशा—महाराज दशरथ राम के रथ पर दृष्टि लगाए हुए उसको एक टक देख रहे थे। उन्होने उस ओर से उस समय तक आँख न फेरी जबतक रथ ओझल न हो गया किन्तु रथ के ओझल होते ही वह परम निराश

---

१. तथा रुदन्ती कौसल्या रथ तमनुधावतीम्।
क्रोशन्ती रामराममेति हा सीते लक्ष्मणेति च ॥—अयो० ४०/४४

२. दृष्ट्वा तु नृपति श्रीमानेकचित्तगत पुरम्।
निपपातैव दुखेन हृतमूल इव द्रुमः ॥—अयो० ४०/३६

३ नाग्निहोत्राण्यहूयन्त नापचन्गृहमेधिन।
अकुर्वन्न प्रजा कार्य सूर्यश्चान्तरधीयत !!—अयो० ४१/९
व्यसृजन्कवलान्नागा गावो वत्सान्नपाययन्।
पुत्र प्रथमज लब्ध्वा जननी नाभ्यनन्दत ॥"—अयो० ४१/१०
कालिकानिलवेगेन महोदधिरिवोत्थित.।
रामे: वन प्रव्रजिते नगरं प्रचचाल तत्ः ॥"—अयो० ४१/१३
"दिश. पर्याकुल सर्वानि स्तमिरेणेव सवृता.।" —अयो० ४१/१६
बाष्पपर्याकुलमुखो राजमार्गगतो जनः।"—अयो० ४१/१७

हो गये और अति आर्त्त और विकल होकर भूमि पर गिर पड़े। उनकी इस व्यथा मे राम सीता लक्ष्मण के वन के कष्टों के चित्र उनके मानस मे सजीव हो उठे। वह सोचने लगे [1]—

१—हमारे पुत्र यहाँ चन्दनचर्चित तकियो एवं गद्दो पर सुख से सोते थे, वन में वे किसी वृक्ष के नीचे लकडी का तकिया लगा कर सोवेगे।

२—महाबाहु श्रीराम को वन में लोग अनाथो की भाँति घूमता देखेगे।

३—सुख भोगने योग्य सीता के पैरो मे काँटे चुभेगे।

४—राजमहल के सुखों से वन के कष्टो की तुलना करके महाराज अति विकल हो उठे। उनको राम का अभाव खटकने लगा और प्रलाप करते हुए हाथ ऊपर को उठा कर वह चिल्लाते हुए बोले—"हे बेटा राम! तुम हमे छोड़े जाते हो[2]।"

महाराज दशरथ की दशा इस प्रलाप के पश्चात् अति शोचनीय हो गयी। उन की दृष्टि जाती रही। वह कौशल्या से कहने लगे कि मुझे स्पर्श कर तथा मार्ग प्रदर्शन कर। कवि ने कहा कि महाराज की दृष्टि राम के साथ चली गई और लौटी नही किन्तु अति विलाप, टकटकी लगाकर घण्टो एक दिशा मे देखते रहने का भी तो यही प्रभाव होता है। इस तथ्यनिरूपण मे वह सौन्दर्य कहाँ जो कवि की कल्पना मे प्रसूत हुआ है—"रामं मे ऽनुगता दृष्टिरद्यापि न निवर्तते, न त्वा पश्यामि कौसल्ये साधु मा पाणिना स्पृश"

---

१. "न पश्यति रजोऽप्यस्य यदा रामस्य भूमिपः।
तदाऽऽर्तश्च विषण्णश्च पपात धरणीतले॥"—अयो० ४२/३

२ "यः सुखेषूपधानेषु शेतेचन्दनरूषित।
वीज्यमानो महार्हाभि स्त्रीभिर्मम सुतोत्तमः॥"—अयो० ४२/१५
"स नूनं क्वचिदेवाद्य वृक्षमूलमुपाश्रित।
काष्ठं वा यदि वाऽश्मानमुपधाय शयिष्यते॥—अयो० ४२/१६
"राममुत्थाय गच्छन्त लोकनाथमनाथवत्"—अयो० ४२/१८
सा नून जनकस्येष्टा सुता सुखसदोचिता।
कण्टकाक्रमणाक्रान्ता वनमद्य गमिष्यति॥—अयो० ४२/१९

३. तच्चा दृष्ट्वा महाराजो भुजमुद्यम्य वीर्यवान्।
उच्चैः स्वरेण चुक्रोश हा राघव जहासि माम्॥"—अयो० ४२/३१

महाराज दशरथ की व्यथा की तृतीय स्थिति—महाराज दशरथ को अभी एक आशा लग रही थी । सुमत्र राम सीता लक्ष्मण को रथ में बैठाकर वन में पहुँचाने गए थे । महाराज ने इच्छा प्रकट की थी कि वन में घुमाकर लौटा लायें । सुमंत्र को भी विश्वास था कि महाराज की आर्त्त दशा तथा नगर निवासियों के विषमवियोग को ध्यान में रखते हुए श्रीराम वन में घूम कर वापिस आजावेगे । महाराज दशरथ सुमत्र की राह देख रहे थे और उधर सुमत्र विफलमनोरथ होकर विलख रहे थे । सुमत्र की निराशा का प्रारम्भ उस समय हुआ जब राम ने साथ मे आए हुए पुरवासियों को त्याग दिया । राम सोते हुए पुरवासियो को छोड कर सुमंत्र को जगाकर मार्ग को छिपाते हुए वन की ओर चल दिए और इधर पुरवासी बिलखते हुए रह गए ।

तमसा नदी के किनारे पर राम के द्वारा परित्यक्त पुरवासियो की **वेदना इन शब्दों में प्रकट हुई**—तो अब हम यही प्राण दे देगे या हिमालय पर जाकर बर्फ मे गलकर मर जावेगे ।[1] विषादयुक्त तथा अत्यत दु खी होने के कारण पुरवासी मृत्यु की कामना कर रहे थे । उनके मन मे यह भी विचार आ रहा था कि जब हमारी यह दशा है तो महाराज दशरथ तो निश्चय ही राम के वियोग मे प्राण दे देगे[2] ।

सुमंत्र की अनुनय—विनय विफल हुई तथा राम वन से वापिस न लौटे तब सुमत्र बहुत उदास और शोकाकुल हो कर अयोध्या वापिस आए । अयोध्या को "शून्या मिव नि.शब्दा" देख कर वह समझ गए कि पुरी रामवियोग मे दुखी तथा शोकाकुल थी— "रामसन्तापदु खेन दग्धा शोकाग्निना पुरी।" राजमार्ग से जब वह महाराज दशरथ के भवन को जा रहे थे तो राम विरह मे शोकाकुल पुर-नर-नारियो के हृदय विदारक विलाप को सुनकर अति व्यथित हो गए और उन्होने अपना मुँह हाथो से ढक लिया। बड़ी शीघ्रता के साथ वह महाराज के भवन की ओर बढ चले[3] ।

सुमंत्र के साथ राम के वापिस जाने की आशा केवल महाराज दशरथ को ही नही थी प्रत्युत अयोध्या के समस्त नर नारियो को ही यह आशा थी और वे सब सुमत्र के आने की राह देख रहे थे । जब उन्होने सुमत्र को अकेला ही आते हुए देखा तो उनकी आशा घोर एव कष्टकर निराशा मे परिणत हो गई तथा चारो ओर हा-हाकार होने लगा । छज्जो, अटारियो तथा भवनो मे जो स्त्रियाँ बैठी थी वे सुमत्र को

---

१. इहैव निधन यामो महाप्रस्थानमेव वा ।
रामेण रहिताना हि किमर्थ जीवित हि न ।—अयो० ४७/७

२ तेषामेव विषण्णाना पीड़ितानामतीव च ।
वाष्पविप्लुतनेत्राणा सशोकाना मुमूर्षया ॥—अयो० ४८/१
"न हि प्रव्रजिते रामे जीविष्यति महीपति"—अयो० ४८/२६

३. स राजमार्गमध्येन सुमत्र. पिहिताननः ।
यत्र राजा दशरयस्तदेवोपययौ गृहम ॥ —अयो० ५७/१६

अकेला देख कर अत्यन्त दुःखी होकर विलाप करने लगी। विलाप के साथ उनके हृदयोद्गार भी अस्पष्ट शब्दो में प्रकट हुए [१] ।

कवि ने उपर्युक्त वर्णन के द्वारा महाराज की व्यथा की तृतीय स्थिति की गंभीरता पर प्रकाश डाला है। सामाजिक सहज ही सोच सकता है कि जब पुर के नर-नारियो की निराशाजनति यह दशा है तो महाराज की क्या दशा होगी जिसका जीवन ही राम के आधीन है।

सुमत्र ने राम का संदेश महाराज को सुनाया तथा वनावास के लिए उनका दृढ निश्चय बताया तो महाराज शोक के कारण अति विकल होकर मूर्च्छित हो गए और भूमि पर गिर पडे। मूर्च्छित तो वह बार-बार होते थे किन्तु इस प्रसग मे उनकी मूर्छा चिन्ताजनक बन गई। उनकी आशा, जिसके सहारे वह जबतक जीवित थे तथा राम के वापिस आने के स्वप्न देख रहे थे, सहसा निराशा मे परिवर्तित हो गई और वह परम निराश एवं असहाय होगये। ऐसी स्थिति मे मूर्च्छित होना निश्चय ही चिन्ता का विषय था। राजपरिवार को आशका हो उठी कि कही महाराज का निधन तो नही हो गया। इस तथ्य का सकेत कवि ने निम्नलिखित वर्णन मे किया है—

उस समय महाराज को पथ्वी पर मूर्च्छित पडा देख कर रनिवास की सब रानियाँ बडी दु खी हुई तथा बाँहे उठा-उठाकर विलाप करने लगी [२] ।

उस समय का दृश्य भी ऐसा ही कारुणिक बन गया। एक ओर महाराज मूर्छित पडे थे और दूसरी ओर महारानी कौशल्या विलाप कर रही थी। इस कारण महाराज के निधन की आशका स्वाभाविक बन गई और महाराज की अन्य रानियाँ ऊँचे स्वर से रोने लगी और रनिवास मे इस प्रकार के घोर विलाप को सुनकर नगर निवासी रोने लगे [३] ।

कहना न होगा कि इस प्रसग मे कवि ने आगे आने वाली वास्तविक मृत्यु का सकेत कर दिया है और सामाजिक को इसके लिए तैयार भी कर दिया है। कवि ने करुणा के अन्तर्गत प्रकट सहानुभूति का अति स्वाभाविक वर्णन उपर्युक्त प्रसग मे

१. हर्म्यैर्विमानै प्रासादैरवेक्ष्याय समागतम्।
हाहाकारकृता नार्यो रामादर्शनकर्शिता॥ —अयो० ५७/१८
आयतैर्विमलैर्नेत्रैरश्रुवेगपरिप्लुतै ।
अन्योन्यमभिवीक्षन्तेऽव्यक्तमार्ततरा स्त्रिय ॥" —अयो० ५७/१९

२. ततोऽन्त पुरमाविद्ध मूर्छिते पृथ्वीपतौ।
उद्धृत्य बाहू चुक्रोश नृपतौ पतिते क्षितौ॥ —अयो० ५७/२७

३. एव विलपन्ती दृष्ट्वा कौसल्या पतिता भुवि।
पति चावेक्ष्य ता सर्वा सुस्वर रुरुदुः स्त्रियः॥—अयो० ५७/३३
ततस्तमन्तःपुरनादमुत्थित, समीक्ष्य वृद्धास्तरुणाश्च मानवाः।
स्त्रियश्च सर्वा रुरुदु. समन्ततः ··· ······· ···॥"— अयो० ५७/३४

किया है। एक को रोता देखकर दूसरे के नयनों में अश्रुओं का आ जाना स्वाभाविक है। इस लक्ष्य की ओर कवि ने विशेष ध्यान दिया है। कौशल्या को देखकर अन्य रानियों का रोना तथा उनको रोता देखकर नगरवासियों का रोना इस मनोवैज्ञानिक तथ्य की अति सुन्दर अभिव्यक्ति है।

मूर्छा से चेतन के पश्चात् महाराज को अपने वनवासी पुत्रो एवं पुत्रबधू की चिन्ता पुनः हो उठी। वह उनके कष्टो का विचार कर अति दुःखी होने लगे। उन्होने सुमंत्र से यही पूछा कि वह किस प्रकार वन के कष्टो को सहते होगे। षट्रसो से युक्त स्वादिष्ट भोजन करने वाले वे राजकुमार किस प्रकार वन के कंद-मूल खाकर रहते होगे, किस प्रकार कोमल गद्दो पर सोने वाले वे कोमल शरीर वाले मेरे पुत्र व पुत्रवधू भूमि पर कुश आदि बिछाकर सोते होगे, श्रेष्ट सवारियो मे चलने वाले वे सुकुमार किस प्रकार सुकुमारी, दुखिया सीता को साथ लेकर पैदल चलते होगे[१]। उपर्युक्त कष्टो की स्मृति महाराज की वेदना तथा अनिष्ट की आशका को बल देने के लिए पूर्ण समर्थ हुई।

इसके साथ श्रीराम के सदेश को सुमत्र ने सुनाया। यह सदेश तथा इसके साथ राम और सीता की वेदना का वर्णन महाराज दशरथ के लिए अति कष्टकर सिद्ध हुआ। वह असह्य वेदना के कारण तडपने लगे। कवि ने योजना ही ऐसे मर्मस्पर्शी प्रसंग की की। राम के सदेश मे महाराज दशरथ के परिवार की विषमता का वह कटु सत्य था जिसको सुनकर महाराज का तिलमिला उठना स्वाभाविक था। सुमत्र ने बताया कि राम ने भरत के लिए अति दुःखी होकर कहला भेजा था कि वह माता कौशल्या को अपनी माँ के समान ही समझे और इस सदेश के साथ वह बहुत रोए। उनको रोता देखकर सीता जिस पर इस प्रकार की विपत्ति प्रथम बार ही पडी थी, कुछ बोल न सकी, प्रत्युत अति कष्ट के साथ विलख उठी[२]। पति के अश्रुपूर्ण मुख को देख सीता का मुख सूख गया था और वह मेरी ओर देखकर सहसा आँसू बहाने लगी थी। इस स्थल पर भी कवि ने करुण के सहानुभूतिगत प्रभाव का सुन्दर चित्रण किया है। महाराज दशरथ की वेदना वैसे ही असह्य थी। इस सदेश के द्वारा उनकी मानसिक पीड़ा अति कष्टकर बन गई। उनकी यह कमजोरी उनके सामने आई कि वह कैकेयी-वशगत हैं, जिसके कारण अन्य बडी रानियो की चिन्ता उनको नही रही

---

१. सुकुमार्या तपस्विन्या सुमंत्रः सह सीतया।
राजपुत्रो कथं पादैरवरुह्य रथाद्गतौ॥—अयो० ५८/६
"आसित शयित भुक्त सूत रामस्य कीर्तय।"—अयो० ५८/१२

२. अब्रवीच्चापि मा भूयो भृशमश्रूणि वर्तयन्।
मातेव मम माता ते द्रष्टव्या पुत्रगर्धिनी॥—अयो० ५८/२४
अदृष्टपूर्वव्यसना राजपुत्री यशस्विनी।
तेन दुःखेन रुदती नैव मा किञ्चिदब्रवीत्॥—अयो० ५८/३५

हैं तथा वे रानियाँ कैकेयी की वशगता है, और इसके साथ ही यह विचार भी उनके मन में आया कि यह सब अनीति उनकी इसी कमजोरी के कारण हुई है। वास्तव में वही इस सब के लिए दोषी है। वह तडफ उठे और अति विवश होकर प्रलाप करने लगे—हे राम, हे लक्ष्मण, हे वैदेही तपस्विनी तुम लोग नहीं जानते कि मैं अपने किए का फल भोग रहा हूँ, तुम सबके होते हुए भी अनाथ की भाँति मर रहा हूँ[1]।

वेदना चाहे जैसी असह्य हो किन्तु मृत्यु का कारण होने के लिए तो उसे अत्यन्त घातक बनना पडेगा। इसीलिए कवि ने इस प्रसग मे एक और कष्टकर चोट महाराज के हृदय पर की। कौशल्या ने जब राम के सदेश को सुना तो उनका मातृ-स्नेह सहज ही मुखरित हो उठा। वह 'ओ मेरे लाडले, ओ मेरे राम आदि' कहकर विलाप करने लगी। भरत के लिए प्रेषित राम के सदेश से अविश्वास स्थापित हो चुका था। इसलिए महाराज दशरथ से यह भी कह बैठी कि यदि वनवास की १४ वर्ष की अवधि को पूरा करके राम वापिस आए तो मुझे विश्वास नही कि भरत राम को राज्य तथा कोष वापिस दे देगे।[2] इसके साथ उन्होने राम की अनिष्ट की आशंका को भयकर रूप धारण किए हुए देखा और उसका मूलकारण देखा महाराज की कमजोरी को। अतएव उन्होने और भी जो जी मे आया कह डाला।

इस प्रकार यह प्रसंग अति कटु और असह्य बन गया। महाराज सहज ही अति व्याकुल होकर सज्ञाशून्य हो गए।[3]

महाराज दशरथ की व्यथा की चतुर्थ स्थिति—महाराज की चेतना के साथ महाराज को अधशाप की स्मृति हो आई और वह अपनी मृत्यु अवश्यम्भावी समझकर अति दीन और कातर हो उठे। महारानी कौशल्या के कठोर वचन कटु सत्य थे। अतएव अपनी दीनता और विवशता प्रकट करते हुए महाराज ने महारानी कौशल्या जी से क्षमा-याचना की—

हे देवी, मै तेरे हाथ जोडता हूँ, विनती करता हूं, मुझ जैसे अति दु खी व्यक्ति से ऐसे कठोर वचन न कहो। देवी मुझे क्षमा करो। तुम तो अपने शत्रुओ तक पर दया करती हो, मेरे ऊपर दया करो।[4]

१. हा राम रामानुज हा हा वैदेहि तपस्विनि।
ना मा जानीत दु खेन म्रियमाणमनाथवत् ॥—अयो० ५६/२७

२. "न चैव देवी विरराम कूजितात् प्रियेति पुत्रेति च राघवेति च ॥—अयो० ६०/२३
"यदि पचदशे वर्षे राघवः पुनरेष्यति।
जह्याद्राज्य च कोश च भरतो नोपभुज्यते ॥—अयो० ६१/११

३. "इमा गिर दारुणशब्दसश्रिता निशम्य राजाऽपि मुमोह दु.खितः॥"—अयो० ६१/२

४ "प्रसादये त्वा कौशल्ये रचितोऽय मयाऽञ्जलि.।
वत्सला चानृशसा च त्व हि नित्य परेष्वपि ॥—अयो० ६२/७
"नार्हसे विप्रिय वक्तु दु.खितापि सुदु.खितम् ॥"—अयो० ६२/६

इस चोट के साथ अंधशाप का स्मरण हो आया तथा महाराज दशरथ अति विकल हो उठे। यह विकलता ठीक उसी प्रकार की थी जिस प्रकार प्राण निकलते समय शरीर का अग-अग तडफ उठा है। अर्धशाप की कथा उनकी आखो के सामने नाचने लगी जिसकी पुनरावृत्ति होने जा रही थी। आज उनको स्वयं अंधतापस का अभिनय करना था। उनकी आत्मा इस बात को समझ रही थी और इसीलिए अंधशाप की कथा के चित्रो को वह स्पष्ट देख रही थी और अति मार्मिक शब्दो मे वर्णन कर रही थी—

वे दोनों (अंधतापसयुग्म्) पुत्र के पास जाकर उसके मृत शरीर को हाथो से टटोल कर उससे लिपट गए और श्रवण के पिता कहने लगे—हे पुत्र, तूने न तो आज मुझको प्रणाम किया और न मुझसे कोई बातचीत ही की, तू भूमि पर क्यो पड़ा है, क्या तू मुझसे रूठ गया है ?[1]

इस स्मृति के साथ महाराज ने अनुभव किया कि उनके शरीर से प्राण निकल गए हैं जैसे दीपक का तेल समाप्त होकर वह निस्तेज हो गया हो। असह्य शोक उनके जीवन को उसी प्रकार नष्ट करने लगा जिस प्रकार नदी की वेगवती धारा नदी के कगारों को नष्ट कर देती है।[2]

जीवन-नाश के इन अन्तिम क्षणो मे प्रयाणतत्पर प्राणों के साथ महाराज का करुण प्रलाप प्रकट हुआ—हे पिता के प्यारे, हे मेरे नाथ, हे मेरे बेटे, तुम कहाँ गए ? हा, कौशल्या तपस्विनी, हा सुमित्रा, हा क्रूर कुलघातिनि कैकेयी, इस प्रकार राममाता कौशल्या तथा सुमित्रा के सान्निध्य मे विलाप करते हुए महाराज दशरथ ने प्राण त्याग दिए।[3]

महाराज दशरथ के निधन पर शोक—आश्रय की दृष्टि से महाराज दशरथ

---

१. तौ पुत्रमात्मान. स्पृष्ट्वा तमासाद्य तपस्विनी।
निपेततु· शरीरेऽस्य पिता चास्येदमब्रवीत्॥—अयो० ६४/३०
नाभिवादयसे माऽद्य न च मामभिभाषसे।
किन्तु शेषेऽद्य भूमौ त्वं वत्स कि कुपितो ह्यसि॥—अयो० ६४/३१

२. क्षीणस्नेहस्य दीपस्य ससक्ता रश्मयो यथा।
अयमात्मभवः शोको मामनाथमचेतसम्॥—अयो० ६४/७५
संसादयति वेगेन यथाकूल नदीरय·।

३ हा राघव महाबाहो हा ममायासनाशन॥—अयो० ६४/७६
हा पितृप्रिय मे नाथ हाऽद्य क्वासि गतः सुत !
हा कौसल्ये विनश्यामि हा सुमित्रे तपस्विनि !
हा नृशसे ममामित्रे कैकेयि कुलपासिनि॥—अयो० ६४/७७
इति रामस्य मातुश्च सुमित्रायाश्चसन्निधौ।
राजा दशरथः शोचञ्जीवितान्तमुपागमत्॥—अयो० ६४/७८

के निधन पर कवि ने तीन बार शोक का वर्णन किया है—

(i) मृत्यु के समय राजमहल तथा नगर मे व्याप्त शोक जिसके आश्रय राजमहल की विकल रानियाँ तथा सेवकगण और नगर के निवासी थे।

(ii) भरत के ननिहाल से लौटकर आने पर भरत द्वारा विलाप तथा शोक, महाराज के अन्त्येष्टि के समय प्रियबन्धुबान्धव का विलाप तथा शोक।

(iii) वन मे भरत से महाराज दशरथ के मरण का समाचार पाकर श्रीराम द्वारा विलाप तथा शोक।

महाराज की मृत्यु के समय कवि ने शोक के सूक्ष्म बाह्याभिव्यंजकों की योजना की है। महाराज की अब तक सामान्य दशा यह थी कि वह बार-बार मूर्च्छित होते और प्रलाप करने लगते थे। इस प्रकार उनकी मृत्यु के समय उनकी मृत्यु का विश्वास न होना तथा मृत्यु की सपुष्टि के लिए स्पर्शादि का आश्रय लेना स्वाभाविक था।

महारानी कौशल्या तथा सुमित्रा ने महाराज दशरथ को देखा तथा स्पर्श किया और फिर (निश्चय हो जाने के पश्चात् कि वास्तव में मृत्यु हो गई) "हा नाथ" कहकर चिल्लाने लगी और अति प्रलाप करती हुई पछाड खाकर पृथ्वी पर गिर पडी[1]।

महाराज की अन्य रानियाँ कैकेयी के साथ विलाप करती हुई महाराज के पास दौड़ी आई और शोक से सतप्त होने के कारण मूर्च्छित होकर गिर पडी[2]।

रानियो के साथ अन्यान्य व्यक्तियो के घोर विलाप तथा क्रन्दन के कारण महाराज दशरथ के राजभवन के विशेष वातावरण का कवि ने वर्णन किया।

कवि ने गिने-चुने शब्दो मे बताया "राजमहल भाग्यहीन-सा लग रहा था" इस स्वरूप की व्याख्या करते हुए कवि ने बताया कि उस समय महाराज दशरथ का राजभवन त्रस्त, विकल और व्यग्रजनो से आकुल, उनके महाचीत्कारो से व्याप्त और परिताप से संतप्त बन्धुजनो से परिपूर्ण, दीन, विपन्न तथा अति करुणापूर्ण हो गया था[3]।

रानियों के शोक का वर्णन करते हुए कवि ने उनके निम्नलिखित सूक्ष्म

---

१. कौशल्या च सुमित्रा च दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा च पार्थिवम्।
हा नाथेति परिक्रुश्य पेततुर्धरणीतले ॥—अयो० ६५/२२

२. ततः सर्वा नरेन्द्रस्य कैकेयीप्रमुखाः स्त्रियः।
रुदन्त्य. शोकसन्तप्ता निपेतुर्धरणीतले ॥—अयो० ६५/२५

३ तत्समुत्रस्तसम्प्रान्त पर्युत्सुकजनाकुलम्।
सर्वतस्तुमुलाक्रन्द परितापार्तबान्धवम् ॥—अयो० ६५/२७
सद्यो निपतितानन्द दीनक्लदवर्शनम्।
बभूव नरदेवस्य सद्म दिष्टान्तमीयुषः ॥—अयो० ६५/२८

व्यापारों का उल्लेख किया है। कवि का मनोवैज्ञानिक अनुशीलन यहाँ विशेष रूप से अवलोकनीय है—

अ—महादु:खी हो अत्यन्त करुणापूर्ण स्वर मे रोती हुई महाराज की भुजाओं को पकडकर अनाथ का भाँति विलाप कर रही थी।

आ—जब महाराज के शव को तेल के कढाव मे रखा गया तो वे "हा महाराज मर गए" कहकर विलाप करने लगी।

इ—अपनी बाँहो को उठाकर, आँखो से आँसू बहाते हुए विलाप कर रही थी।

ई—उनके प्रलाप मे ये शब्द मुखरित हो रहे थे—"प्रियवादी राम से पृथक् करके महाराज आप हमे छोडकर कहाँ जाते है ?"[1]

शोक मे दो तथ्यो का कवि ने विशेष रूप से उल्लेख किया है—

(i) मृत्यु की अनुभूति की वास्तविकता का प्रकटीकरण उसी समय होता है जिस समय शव को स्थानान्तर करते है या अन्त्येष्टि के लिए चिता पर रखते हैं।

(ii) आश्रय को आलबन का अभाव खटकता है जो बार-बार उसके शोक को उद्दीप्त करता तथा बल देता है। "महाराज आप हमे छोडकर कहाँ जाते है", इसी प्रकार के शब्द है।

भरत का शोक—भरत की शोकानुभूति मे भी उपर्युक्त तथ्यो का विशेष उल्लेख हुआ है। भरत की दशा का वर्णन करते हुए कवि उनके "पपात सहसा भूमौ" की ओर विशेषरूप से ध्यान आकृष्ट करता है। भरत के लिए यह सूचना अप्रत्याशित थी और विशेषकर उस समय जब कि उन्हे महाराज के सबध मे कोई चिन्ताजनक समाचार भी प्राप्त नही हुआ था न उनके पीछे की कुचक्रगत घटनाओ का ही उनको ज्ञान था जिसके मूल मे यद्यपि उनकी माता का ही हाथ था। भरत की निष्कपटता तथा निर्दोषता सिद्ध करने के लिए भी कवि द्वारा इस प्रकार का वर्णन आवश्यक था।

भरत ने भूमि पर गिरते समय दोनो हाथ पृथ्वी पर पटक कर कहा—"हाय मै मारा गया" प्रलाप करते हुए वह महाराज के वात्सल्य का स्मरण करने लगे—"हा, महाराज का वह सुखद हाथ कहाँ गया जो मेरे धूलधूसरित शरीर की धूल बार

---

१. भृश रुदन्त्य. करुण सुदु खिता:।
प्रगृह्य बाहू व्यलपन्ननाथवत् ॥—अयो० ६५/२९
"तैलद्रोण्या तु सचिवै: शायित त नराधिपम्।
हा मृतोऽयमिति ज्ञात्वा स्त्रियस्ता. पर्यदेवयन् ॥—अयो० ६६/१६
"बाहूनुर्धम्य कृपणा नेत्रप्रस्रवणैर्मुखै:।
रुदन्त्य: शोकसन्तप्ता: कृपणं पर्यदेवयन् ॥—अयो० ६६/१७
"हा महाराज रामेण सतत प्रियवादिना।
विहीन: सत्यसन्धेन किमर्थ विजहासि न: ॥—अयो० ६६/१८

बार झाड़ता था[1]।"

महाराज दशरथ की अन्त्येष्टि—अन्त्येष्टि के तीन अंगो का वर्णन कवि ने किया है—

१—शव का चिता पर रखा जाना

२—चिता का जलना

३—फूलों का चुनना

शव को चिता पर रखते समय प्रियबन्धुबान्धवों को वास्तव में आलम्बन के नाम का अनुभव होता है। इसीलिए इस समय की वेदना अति करुणापूर्ण होती है। अभावानुभूति प्रत्यक्ष एवं साकार हो कर आश्रय को विपन्न तथा विकल बना देती है।

महाराज के शव को विविध रत्नो से जटित शय्या पर लिटाकर भरत अति दु.खी होकर महाराज के लिए विलाप करने लगे। माता कौशल्या विलाप करती हुई कहने लगी—"हे महाराज, क्लिष्ट कार्यों को भी करने वाले पुरुषसिंह श्रीराम से विहीन करके मुझ दु:खिया को छोडकर आप कहाँ जाते है।"[2]

जलती हुई चिता की प्रदक्षिणा की जाती थी। शोकाभिभूत आश्रय को अपना सम्मान प्रकट करने का यह अन्तिम अवसर होता है। भारी हृदय लेकर आश्रय यह परिक्रमा देता तथा शोक को सह्य बनाने का उपक्रम करता है। घोर विलाप और अति विकलता का यह दृश्य हृदयविदारक होता है। इसीलिए कवि को इस स्थल पर अपनी मूल करुणानुभूति की स्मृति हो आई।

'ऋत्विजो ने और कौशल्यादि रानियो ने अत्यन्त शोक सतप्त होकर महाराज की जलती हुई चिता की प्रदक्षिणा की। उस समय के विलाप-कलाप को सुनकर ऐसा प्रतीत होता था मानो क्रौंच पक्षी की मादाएँ रो रही हो।[3]

---

१. 'पपात सहसा भूमौ पितृशोकबलार्दितः।"—अयो० ७२/१६
हा हतोऽस्मीति कृपणा दीना वाचमुदीरयन्।
निपपात महाबाहुर्बाहू विशिष्य वीर्यवान्॥—अयो० ७२/१७
"क्व स पाणिः सुखस्पर्शस्तातस्याक्लिष्टकर्मणः।
येन मा रजसा ध्वस्तमभीक्ष्ण परिमार्जति॥—अयो० ७२/३१

२. सवेश्य शयने चाग्र्ये नानारत्नपरिष्कृते।
ततो दशरथ पुत्रो विललाप सुदु खितः॥—अयो० ७६/५
क्व यास्यसि महाराज हित्वेम दु:खित जनम्।
हीन पुरुषसिहेन रामेणाक्लिष्टकर्मणा॥—अयो० ७६/७

३. प्रसव्य चापि तं चक्रुऋत्विजोऽग्निचितं नृपम्।
स्त्रियश्च शोकसतप्ताः कौसल्या प्रमुखास्तदा॥—अयो० ७६/२०
क्रौञ्चीनामिव नारीणां निनादस्तत्र शुश्रुवे।
आर्तानां करुणं काले क्रोशन्तीनां सहस्रशः॥—अयो० ७६/२१

भरत फूल चुनने के लिए श्मसान मे गए और पिता के शरीर की श्वेत रंग की राख को देखकर अति विकल हो उठे, उनका शोक निम्नलिखित प्रलाप मे मुखरित हो उठा और इसके साथ वह असह्य वेदना के कारण मूर्छित होकर भूमि पर गिर पडे।

हे पिता, जिन बडे भाई श्रीराम के भरोसे से आपने मुझे छोडा था उनको वन मे भेजकर आपने मुझको अनाथ की भाँति त्याग दिया है।

जिन माता कौशल्या के पुत्र को बनवास दिया गया उन दुखिनी माता को छोड कर हे तात तुम कहाँ चले गये।

श्रीराम का महाराज के निधन पर शोक—भरत श्रीराम को वापिस लौटाने के लिए वन को गए। भरत से श्रीराम को महाराज के निधन का दुखद समाचार प्राप्त हुआ जिसको सुनकर श्रीराम अचेत हो गए। पिता के निधन का यह दारुण समाचार श्रीराम जैसे धीर और वीर पुरुष के लिए भी असह्य सिद्ध हुआ। जन-साधारण की भाँति श्रीराम की आत्मा विलख उठी। शोकानुभूति का मार्मिक अंग परिताप है। श्रीराम को यही परिताप था कि मेरे वियोगजनित शोक के कारण तो पिता की मृत्यु हुई और मै उनका अन्तिम सस्कार भी न कर सका। मेरा तो जीवन ही निरर्थक रहा।[1]

शोक प्रियजनो का आलबन चाहता है और उनके सान्निध्य मे द्विगुणित वेदनायुक्त बन जाता है। श्रीराम ने सामने सीता और लक्ष्मण को देखा जिनको अभी तक पिता के निधन का समाचार नही मिला था, तो चिल्लाकर कहने लगे—'सीते, तुम्हारे ससुर मर गए, लक्ष्मण पितृहीन हो गए, श्रीराम पिता को तिलाजली देने नदी किनारे गए। वहाँ से लौटते समय पिता का अभाव श्रीराम के मानस मे वेदना का कारण बन रहा था। अपनी कुटी पर उन्होने भरत और लक्ष्मण को देखा और उन दोनो को भुजाओ से थाम कर श्रीराम रोने लगे। उस समय चारो राजकुमार तथा सीताजी घोर विलाप करने लगी। ऐसा लगता था मानो सिह दहाड रहे हो जिसके फलस्वरूप पर्वत गूँजने लगा हो।[2]

---

१. ता श्रुत्वा करुणा वाच पितुर्मरणसहिताम्।
राघवो भरतेनोक्तां बभूव गतचेतन ॥—अयो० १०२/१
किन्नु तस्य मया कार्य दुर्जातेन महात्मन·।
यो मृतो मम शोकेन मया चापि न सस्कृत:॥—अयो० १०२/६

२. सीते मृतस्ते श्वशुर. पित्रा हीनोऽसि लक्ष्मण।
भरतो दु खमाचष्टे सवर्गतं पृथवीपतिम्॥- अयो० १०२/१५
तत: पर्णकुटीद्वारमासाद्य जगतीपति:।
परिजग्राह बाहुभ्यामुभौ भरतलक्ष्मणौ॥—अयो० १०२/३२
तेषां तु रुदतां शब्दात्प्रतिश्रुत्कोऽभवद्गिरौ।
भ्रातृणां सह वैदेह्या सिंहनामिव नर्दताम्॥—अयो० १०२/३३

भरत की दारुण वेदना तथा मन की कचोट—कैकयी ने राम को वनवास तथा भरत के लिए अयोध्या का राज्य माँगा था। अतएव भरत की सहमति की शंका स्वाभाविक थी क्योंकि उनकी माता द्वारा याचित वरदान मे उनकी हितसाधना थी। उनकी अनुपस्थिति मे यह सब कार्य हुआ था। इसलिए भरत को अपनी स्थिति के स्पष्टीकरण का कोई अवसर नही मिला था। वह माता के मत से सहमत न थे, इसका वह वरदान याचना के समय विरोध भी नही कर सके थे। अतएव उनके क्या विचार है यह जानने के लिए सबको उत्सुकता भी थी। यह उत्सुकता सभावना का रूप ले चुकी थी, यथा यही सब लोग सोचते थे कि भरत की इच्छा के अनुकूल ही यह कुचक्र रचा गया होगा। कवि ने इस सभावना का परिपुष्ट रूप माता कौशल्या की कटूक्तियो मे प्रकट किया।

कौशल्या को दु.खी और विपन्न देखकर दोनो भाई, भरत और शत्रुघ्न अत्यन्त दु खी होकर कौशल्या से लिपटकर रोने लगे। कौशल्या ने इन दोनों भाइयो के विलखते हुए हृदयो पर अति दारुण चोट की जब उन्होने ताना मारते हुए कहा—तुम्हारी राज्य पाने की लालसा थी, वह तुम्हारी क्रूरकर्मा मा ने पूरी कर दी। तुम्हारे लिए तुम्हारी मा ने केवल राज्य ही नही प्रत्युत राम को वनवास दिलाकर निष्कटक राज्य प्राप्त करा दिया है।[1]

किसी निर्दोष व्यक्ति को ऐसे घोर दुष्कर्म का दोषी बताया जाय तो उसकी क्या दशा हो सकती है, इसका अनुमान कोई भुक्तभोगी ही लगा सकता है। भरत मन-वचन कर्म से श्रीराम के भक्त थे। और उनके अहित की कभी कामना नही कर सकते थे। जब उन्होने माता कौशल्या के मुख से ऐसे वचन सुने तो वह अवाक् रह गए। उनकी असह्य वेदना का अनुमान लगाने के लिए कवि ने एक अन्य वेदना का उदाहरण देते हुए कहा "भरत को उसी प्रकार अपार कष्ट हुआ जिस प्रकार घाव मे सुई चुभोने से होता है।'[2]

अपनी विवशता तथा असहायावस्था मे भरत कातर हो उठे। उनको इस दोष से मुक्ति का कोई मार्ग दिखलाई नही दे रहा था। वह किन शब्दो मे अपनी सफाई दे, जिससे उनका विश्वास किया जा सके। भरत के लिए यह एक कठिन समस्या बन गई।

आत्मग्लानि, असह्य वेदना तथा दारुण पीडा और शोक ने भरत को आहत कर दिया, वह शपथ खाकर अपनी निर्दोषता प्रकट करने लगे। वह उन दुर्गतियों की

---

१. ततः शत्रुघ्नभरतौ कौसल्यां प्रेक्ष्य दुःखितौ।
पर्यष्वजेता दु खार्ता पतिता नष्टचेतनाम्॥—अयो० ७५/६
"इदं ते राज्यकामस्य राज्य प्राप्तमकण्टकम्।
सम्प्राप्तं बत कैकेय्या शीघ्रं क्रूरेण कर्मणा॥—अयो० ७५/११

२. इत्यादि बहुभिवाक्यैः क्रूरैः सम्भर्त्सितोऽनघ।
विव्यथे भरतस्तीव्रं व्रणे तुद्येव सूचिता॥—अयो० ७५/१७

कामना करने लगे जो अन्याय पापों के करने से पापी मनुष्यों को प्राप्त होती है। इन शब्दों में भरत का हृदय उमड पडा। वह एक के बाद दूसरी पापगति की कामना करते हुए अनेक पापगतियो का वर्णन कर गए। संक्षेप में यह पापगतियाँ तथा उनके कारण अथवा उनके मूलकर्म जिनके करने से यह गतियाँ मिलती है, निम्नलिखित है[1]।

१—पढ़े शास्त्र को भूलना।

२—नीच-जाति का सेवक बनना।

३—सूर्य की ओर मुख करके मलमूत्र त्यागने का पाप।

४—सोती गाय को लात मारने का पाप।

५—बडा काम करा लेने पर वेतन न देने का पाप।

६—पुत्रवत प्रजापालक राजा से विरोध करने का पाप।

७—छठा अंश लेकर भी रक्षा न करने वाले राजा को लगने वाला पाप।

८—ऋतिवजो को दक्षिणा देने की प्रतिज्ञा कर पीछे दक्षिणा न देने का पाप।

९—युद्ध क्षेत्र से भागनेवालो का पाप।

१०—गुरु से उपदिष्ट रहस्यपूर्ण वेदान्त आदि शास्त्र का भूल जाना।

११—श्रीराम का राज्याभिषेक न देखे (मरजाय)।

१२—देवता, पितृ, अतिथि को बिना निवेदन किए खीर, तिल, चावल, माँस आदि खाने वाले को जो पाप होता है।

१३—गुरु को देखकर खडे न होनेवाले को जो पाप होता है।

१४—गुरु को प्रणाम न करनेवाले को जो पाप होता है।

१५—गौ को पैर से छूने से जो पाप लगता है।

१६—गुरुनिन्दा का पाप।

१७—मित्रद्रोह का पाप।

१८—विश्वासघात करने का पाप।

१९—उपकार न करनेवाले, सबसे त्यक्त, निर्लज्ज, सबसे वैर करने वाले को जो पाप होता है।

२०—स्वयं अच्छे पदार्थ खाने तथा अपने आश्रितो को कदन्न खिलाने का पाप।

२१—समान कुल की पत्नी न मिलना।

२ —सन्ततिहीन रहना।

२३—अग्निहोत्र आदि धार्मिक कृत्य किए बिना ही मृत्यु होना।

२४—अपनी संतति को बिना देखे दु.खी होना और पूर्ण आयु का प्राप्त न होना।

२५—राजा, स्त्री, बालक, वृद्ध का वध करने का पाप।

२६—निरपराध स्वामिभक्त सेवक को त्यागने का पाप।

२७—मास, शहद, मद्य, लाख, लोहा और विष के व्यापार करने का पाप।

२८—युद्ध से भागते हुए (मारने) या भागते हुए शत्रु को मारने का पाप।

भरत इन पापो एवं दुर्गतियों का उल्लेख करते हुए कामना करते है कि यदि श्रीराम वनवास में मेरी सहमति हो तो मुझे यह गति तथा यह पाप लगे। उनका मन विकल तथा अति दुःखी है। इसलिए वह पुनः इन्हीं बातों को दुहराते हुए कहते हैं।

इस बार की इस पुनरावृत्ति में वह अपनी माता की ओर भी सकेत करते है। वह कहते हैं जिसकी सम्मति से श्रीराम वन गए हो वह—

१—चिथडे लपेटे, मुर्दे की खोपडी हाथ मे लिए द्वार-द्वार भीख माँगता फिरे।

२—मद्य, जूआ, मैथुन मे आसक्त रहे और काम-क्रोध के वशीभूत होकर निरादृत हो।

३—अधर्म करे और कुपात्र को दान दे।

४—उसकी गाढी कमाई का धन चोर ले जावे।

५—वह प्रातः साय सोये।

६—वह घर मे आग लगाने वाला, गुरुस्त्रीगामी तथा मित्र द्रोही हो।

७—देवता, पितर, माता-पिता की सेवा एव श्राद्ध आदि से विरत रहे।

८—उसकी कीर्ति नष्ट हो, वह सत्कर्मों से भ्रष्ट हो।

९—माता की सेवा से वह विमुख हो।

१०—वह बहुसन्ततिवाला होकर दरिद्र हो, ज्वर से पीडित हो।

११—धनवान होकर भी दीन याचक को निराश लौटावे।

१२—वह कपटप्रिय, चुगलखोर, अधर्मी हो।

१३—वह ऋतुस्नाता पतिव्रता पत्नी की इच्छापूर्ति न करे।

१४—वह परस्त्री से रति करे।

१५—वह ब्राह्मण होकर अपने पुत्रों का पालन न कर सके और भूखो मर जाय।

१६—वह पानी मे विष मिलाने या विष देकर मारने का घोर पाप करे।

१७—उसकी सब इन्द्रियाँ कलुषित हो।

१८—वह ब्राह्मण के प्राप्त सत्कार मे बाधक हो।

१९—वह छोटे बछडे वाली गाय का दूध दुहे।

२०—वह जल रहते प्यासे को पानी न दे।

२१—वह मध्यस्थ होकर पक्षपाती बने और पाप करे।[1]

इस प्रकार माता कौशल्या के सामने अपनी सफाई देते हुए भरत अति आर्त्त हो गए और विकल होकर भूमि पर गिर पडे। माता कौशल्या को भरत की निष्कपटता तथा निर्दोषता का विश्वास हुआ और वह अति दुःखी हुई। वह श्रीराम के वनवास से पहले से ही दुःखी थीं। अब भरत की आत्मग्लानि से तो उनको और भी दुःख हुआ। वह व्यर्थ ही भरत जैसे राम के परम भक्त भाई को दोष दे रही थी; यह सोचकर उनको मार्मिक क्लेश हुआ[2]। यह क्लेश अति वेदनामय तथा पीडाजनक

१. अयोध्या सं० ७५ के २१ से ६५ तक के श्लोक अवलोकनीय है।

२. विहीनां पतिपुत्राभ्या कौसल्या पार्थिवात्मजः।
एवमाश्वासयन्नेव दुःखार्तो निपपात ह ॥—अयो० ७५/५९
मम दुःखमिद पुत्र भूय समुपजायते।
शपथैः शपमानो हि प्राणानुपरुणत्सि मे ॥—अयो० ७५/६१

होता है, यह भुक्तभोगी व्यक्ति भलीभांति जानते है, दोषारोपण मिथ्या सिद्ध होने पर दोषारोपण करने वाले व्यक्ति को एक विशेष खिसियानपन तो होता ही है किन्तु दूसरा व्यक्ति अपना सुहृद तथा अपना शुभचिन्तक सिद्ध हुआ तब तो हृदय विदीर्ण हो उठता है माता कौशल्या की वेदना इसी प्रकार की थी ।

भरत का क्षोभ—भरत ने वन मे भगवान् की कुश-शय्या देखी तो उनकी आत्मग्लानि पुन सजग हो उठी । महाराज राम वन मे इस प्रकार के कष्ट सहे यह सब उन्ही के कारण हुआ । जो कोमल गद्दो पर सोथे थे आज भूमि पर कुशशय्या पर सोते है, भरत आत्मग्लानि मे सिहर उठे और बोले, "हा, मै तो जीते जी मर गया । मै बड़ा दुष्ट हूँ । मेरे ही कारण सीता सहित श्रीराम को वन मे कुशय्या पर सोना पड रहा है । मेरे ही पीछे भगवान् राम को यह कष्ट भोगने पड रहे है । मुझ जैसे लोक-निंदित तथा नृशस के जीवन को धिक्कार है" । इस आत्मग्लानि के साथ भरत के वाह्य व्यजको का भी वर्णन कवि ने किया है । भरत का मुख पसीने से तर हो रहा था[1] । स्वेद का शोक के बाह्यव्यजक के रूप मे अध्ययन कवि के सूक्ष्म निरीक्षण को प्रकट करता है ।

भरत अयोध्या लौटकर आए और उन्होने अयोध्या की शून्यता को देखा तथा राजमहल को महाराज से शून्य देखा । शून्यता अथवा अभावगत परिस्थितियो के अन्तर्गत शोक की अनुभूति मूल अनुभूति से कही अधिक दारुण होती है । मूल अनुभूति के अन्तर्गत मृत-शरीर यद्यपि शोक का कारण होता है किन्तु यह शोक उस समय तक दारुण नही होता जब तक शरीर को अग्निदाह द्वारा नष्ट नही कर दिया जाता । आश्रय की मानसिक स्थिति मोहग्रस्त की जैसी रहती है और शव के नाश से पूर्व तक वह ऐसे स्वप्न देखा करता है कि उसका आलबन जीवित हो जायगा । कुछ उदाहरण ऐसे देखे भी गए हैं कि मृतव्यक्ति पुनः जीवित हो उठता है । इस प्रकार के उदाहरण भी आश्रय के इन स्वप्नो का एक आधार हो सकते हैं किन्तु मुख्यत. यह मानस की अपनी प्रवृत्ति होती है कि वह निराश मे आशा का स्वप्न देखा करता है, चमत्कार की कल्पना किया करता है । शून्यता या अभाव की परिस्थिति मे कोई आधार नही रहता तथा अभाव अथवा शून्यता स्वय उद्दीपन का काम करने लगती है । इस रूप मे शोक की अनुभूति विशेष रूप से वेदनामय बन जाती है । करुण की इस प्रकार की अनुभूति को रस की दृष्टि से उत्कृष्टता प्रदान की जा सकती है । इसी कारण प्राय: कलाकारों की दृष्टि इस ओर गई है ।

---

१. "हा हतोऽस्मि नृशसोऽह यत्सभार्यः कृते मम ।
ईदृशी राघव. शय्यामधिशेते ह्यनाथवत् ॥"—अयो० ८८/१७
"मन्निमितमिद दु:खं प्राप्तो रामः सुखोचितः ।
धिग्जीवित नृशंसस्य मम लोकविगर्हितम् ॥"—अयो० ९९/३९
"इत्येवं विलपन्दीन· प्रस्विन्नमुखपङ्कजः ।"—अयो० ९९/३७

अयोध्या की शून्यता का दृश्य उपस्थित करते हुए कवि कहता है—

अयोध्या के राजमार्ग—सुनसान थे।

अयोध्या के बाजार बन्द थे।

अयोध्या डरावनी थी, जैसे वर्षाकाल मे मेघों से व्याप्त, चन्द्रमा तथा तारो से रहित अँधेरी रात होती है।[1]

भरत राजमहल में घुसे और महाराज दशरथ के निवास-स्थान को शून्य देखा। उस शून्यता को देख कर वह अति दुखी हुए और फूट-फूट कर रोने लगे। उनके दुख तथा अभावगत वेदना का अनुमान लगाने के लिए कवि ने एक समान अनुभूति का उदाहरण दिया है कि भरत को उसी प्रकार अत्यन्त दु.ख हुआ जिस प्रकार देवासुर संग्राम मे सूर्य के अभाव को देखकर देवता लोग दुःखी हुए थे।[2]

सीताहरण—सीताहरण प्रसग के अन्तर्गत सीता तथा राम के वियोग का वर्णन हुआ है। यह प्रसग सीता का पता लगने से पूर्व तक करुण की निराशा तथा निरपेक्षता के अन्तर्गत आता है। सीता को विश्वास नही कि किस प्रकार उसके हरण की सूचना राम तक पहुँच सकेगी। उधर राम को विश्वास नही कि सीता मिल सकेगी क्योकि वह समझते थे कि सीता को राक्षस मार कर खा गए होगे। इस सम्बन्ध मे राम का निश्चय इन शब्दो से प्रकट है—"सुव्यक्त राक्षसै सीता भक्षिता का हृताऽपि वा।"

सीताहरण प्रसग मे एक विशेषता है कि सीताराम का विरह चराचर जगत की सहानुभूति का अपेक्षी है, निर्जन वन मे उनका कौन था, यह बात तो है ही किन्तु अपनी भाव भूमि को चराचर जगत के लिए उन्मुक्त कर देना भी तो हर एक का काम नही है। ऐसा तो राम जैसे आदर्श चरित्रो से ही सभव है। कवि की तह योजना निश्चय ही आध्यात्मिक जगत की अभूतपूर्व झाकी है जिसका उल्लेख गोस्वामीजी ने भी किया—"सियाराम मय सब जग जानी।"

निर्जन वन मे सीता अपने हरण की सूचना राम तक पहुँचाने के लिए वन-देवता, वृक्षो, पर्वतो तथा पक्षियो को सम्बोधित करती है और उनसे ही कहती है कि वह श्रीराम को सूचना दे दे कि रावण सीता को हर कर ले गया।

"क्षिप्र रामाय शसध्व सीता हरित रावण." [3]

"प्रिया यदि विजानीषे नि शक कथयस्वमे।"

---

१. संमूढनिगमा स्तब्धा सक्षिप्तविपणापणाम्।
प्रच्छन्नशशिनक्षत्रा द्यामिवाम्बुधरैर्वृताम् ॥—अयो० ११४/१३

२. तदा तदन्तः पुरमुझितप्रभ
सुरैसिरौत्सृष्टमभास्कर दिनम्।
निरीक्ष्य सर्वं तु विविक्तमात्मवान्
मुमोच बाष्प भरत. सुदु.खित. ॥—अयो० ११४/२८

३. अरण्य०—४६/३१

उधर श्रीराल कदम्ब, विल्व, अर्जुन, कुकम, तिलक, अशोक, ताल, जामुन, आम, साखू, कटहत, अनार मोलसिरी आदि वृक्ष, मृग, गजेन्द्र, शार्दूल आदि बन पशु तथा पक्षियो से पूछते है।

राम का विरहजनित शोक—निम्नलिखित रूप मे वर्णन प्रकट हुआ है [1]—

बाह्यव्यंजक—सतप्त होने के कारण कृशाग, निस्संज्ञ, निश्चेष्ट, आर्त्त और दीन, गरम और लम्बी सांस लेते हुए।

विरहोक्तियाँ—सीता के बिना मै जीवित नही रह सकता। "हा प्रिये" कहकर तथा गद्-गद् होकर उच्चस्वर से विलाप करने लगे, हे विशालाक्षी, यह तेरी पर्ण कुटी सूनी पडी है, तू शीघ्र प्रकट हो, देखो, यह मृगझुण्ड आँखो में आँसू भरे हुए मानो कह रहा है कि सीता को राक्षसो ने खा लिया।

हे मेरी पूज्ये, हे पतिव्रते, हे वरवर्णिनि, तू कहाँ गई ?'

हे लक्ष्मण, मै सीता के बिना मर जाऊँगा, तुम वापिस अयोध्या चले जाओ। मेरे तथा सीता के विना[2] का हाल विवरण सहित माता को सुना देना और भरत से कहना कि वही राज्य करे।

आत्मग्लानि—मेरा बडा खोटा भाग्य है जिसके कारण राज्य से हाथ धोए, बन मे वास करना पड़ा, सीता का हरण हुआ और जटायु का मरण हुआ। यह दुर्भाग्य (निश्चय ही बडा भयकर है) चाहे तो स्वय अग्नि को भी भस्म कर सकता है।

---

१. अरण्य काण्ड ६०/१६

२. सन्तप्तो ह्यवसन्नाङ्गो गतबुद्धिर्विचेतन.।
निषसादातुरो दीनो नि श्वस्यायतमायतम् ॥—अरण्य० ६१/२१
"सीतया रहितोऽय वै न हि जीवामि लक्ष्मण।
वृतं शोकेन महता सीताहरणजेन माम् ॥—अरण्य० ६१/६"
बहुलं स तु निःश्वस्थ रामो राजीवलोचनः।
हा प्रियेति विचुक्रोश बहुलो वाष्पगद्गद· ॥—अरण्य० ६१/३०"
"आगच्छ त्वं विशालाक्षि शून्योऽयमुटजस्तव।
सुव्यक्तं राक्षसै. सीता भक्षिता वा हृताऽपि वा ॥"—अरण्य० ६२/८
"न हि सा विलपन्त मामुपसंप्रैति लक्ष्मण ॥—अरण्य० ६२/६"
'शसन्तीव हि वैदेही भक्षिता रजनीचरैः।
। ममार्ये यातासि हा साध्वि वरवर्णिनि ॥—अरण्य० ६२/१०"
"सीतायाश्च विनाशोऽय मम चासिन्नकर्शन।
विस्तरेण जनन्या मे विनिवेद्यस्त्वयाऽवेत् ॥"—अरण्य० ६ /२०
"राज्याद्भ्रंशो वने वास. सीतानाश द्विजो हतः।
ईदृशीय ममालक्ष्मीर्निदहेदपि पावकम् ॥—अरण्य० ६७/२४"

अशोकवनस्थिति सीता की करुणापूर्ण दशा—सीता की खोज में हनुमान अशोक वाटिका में पहुँचते है तथा वहाँ सीता को अति दुःखी तथा व्यथित देखते हैं। सीता की करुणापूर्ण दशा का अनुमान इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि हनुमान उनको इस दशा में देखकर स्वयं अति दुःखी होते हैं और रोने लगते हैं। हनुमान के मानस में प्रकट करुणा निम्नलिखित रूप में प्रकट होती है।[४]

अ--श्रीराम-पत्नी ऐसे कष्ट सहे, निश्चय ही कालगति विकट है।

आ—काले केशवाली, कमलनयनी तथा सर्वथा सुख भोगने योग्य इस जानकी को दुःखी देखकर मेरा भी कलेजा असह्य दुःख के कारण फटा जाता है।

कवि ने इस प्रसग मे सीता की व्यथा का वर्णन प्रत्यक्षदर्शी पात्र के मुख से कराकर जहाँ परिस्थिति की गभीरता का परिचय दिया है वहाँ सीता को मौन रखकर उनकी गभीर वेदना तथा भारतीय नारी की विशेष विरह-भावना पर भी प्रकाश डाला है। वे वेदना के मुखरित होने के स्थान मे बाह्याभिव्यजको द्वारा बरबस प्रकट होने को सगत समझती है जिसमे उनकी विवशता निहित रहती है।

माया के बने हुए राम के कटे सिर को देखकर सीता का विलाप—रावण सीता को विभिन्न प्रकार की यातनाएँ दे रहा था। इनमे सबसे अधिक कष्टकर तथा भयानक यातना प्रस्तुत प्रसग मे प्रकट हुई है। रावण ने माया-रचित राम के कटे हुए सिर को सीता के सामने लाकर रख दिया और बताया कि प्रहस्त ने सोते मे राम का सिर काट डाला। जिस राम के लिए वह रोती तथा जिसके विरह मे विकल होती थी, वह राम अब इस ससार मे नही रहा।

सीता को पहले-पहल तो विश्वास नही हुआ, इसीलिए सीता ने राम के धनुष कुण्डल, नेत्र, आदि रग ध्यान से देखे तथा और भी अनेक प्रकार से जाँच की। किन्तु मायाजनित सिर इस कौशल से बनाया गया था कि सीता को शका करने के लिए कोई आधार न मिला और उनको यह निश्चय हो गया कि वास्तव मे रावण ने राम का ही सिर कटवा लिया है। इस हृदय विदारक अनुभूति के निश्चय के साथ ही उनको राम बनवास के मूल कारण का कष्टकर स्मरण हो आया। कैकेयी की कुत्सित नीति आज सफल हो गई। अतएव कुररी इव शोक से विकल सीता के प्रथम प्रथम यही शब्द निकल पडे—

"सकामा भव कैकेयी हतोऽयं कुलनदन.।"[२]

---

१. "स मुहूर्तमिव ध्यात्वा बाष्पपर्याकुलेक्षणः।
सीतामाश्रित्य तेजस्वी हनुमान्विललाप ह॥—सुन्दर काण्ड १६/२
इमामसितकेशान्ता शतपत्रनिभेक्षणाम्।
सुखार्हा दुःखिता दृष्ट्वा ममापि व्यथित मनः॥—सुन्दर का० १८/२८

२. युद्ध का०—३२/४

सीता की शोकानुभूति निम्नलिखित रूप में आगे प्रकट हुई—[1]

राम के प्रति—१. तुम्हारे मरने से मै विधवा हो गई।

२. तुम तो मेरा उद्धार करने के लिए उद्यत हुए थे 'अब मेरा क्या होगा' तुम तो चल बसे।

३. हे राघव, ज्योतिष जानने वाले भविष्यवक्ताओ के वचन मिथ्या निकले, आप दीर्घायु न हुए, अल्पायु मे ही कालकवलित हो गए।

वेदना—१. हाय ! कालरात्रि ने मुझ से मेरे कमल लोचन को वरबस छीन लिया।

२. तुम मुझे क्यो नही देखते, मुझ से क्यो नही बोलते।

३. तुम्हारे सुन्दर शरीर को मास-भक्षी गिद्ध आदि नौच रहे होगे।

४ हम तीन वनवासियो मे से अब केवल एक लक्ष्मण अयोध्या लौट सकेगे

माता कौशल्या की वेदना की अनुभूति—१ जब अकेले लक्ष्मण अयोध्या लौटेगे तो निश्चय ही माता कौशल्या का हृदय फट जायगा और वह मर जाँयगी। यह असह्य शोक उनके लिए घातक सिद्ध होगा। बिना बछडे की गौ की तरह वह निर्वत्सला हो गई।

आत्मग्लानि- १. मुझ अभागिनी के कारण ही तुम्हारा सोते मे वध हुआ।

२ मुझ कुलकलकिनी के साथ विवाह करके तुम से बडी भूल हुई, मेरे कारण तुम्हारी मृत्यु हुई।

३. निश्चय ही पूर्व जन्म मे मैने किसी के कन्यादान मे बाधा डाली है जिसके फलस्वरूप इस जन्म मे मुझे यह घोर दण्ड मिला है।

४ रावण, तू बडी कृपा करे यदि मुझको भी मार कर राम के ऊपर डाल दे।

५. मैं एक क्षण भी जीवित नही रहना चाहती हूँ। मैं पति की अनुगामिनी होऊँगी।

कवि-कथन—पति के कठ, सिर और धनुष को बारबार देख कर विशालनयना सीता अति दु खी होकर विलाप कर रही थी।

---

१. देखिए युद्ध काण्ड ३२/३ के ३४ तक—तथा निम्नलिखित विशेष रूप से—
यो हि मामुद्यतस्त्रातु सोऽपि त्व विनिपातित।"—युद्ध का० ३२/११
वत्सेनेव यथा धेनुर्विवत्सा वत्सला कृता।"—युद्ध का० ३२/१२
कि मा न प्रेक्षसे राजन् कि मां न प्रतिभाषसे।"—युद्ध का० ३२/२०
साधु पातय मा क्षिप्र रामस्योपरि रावण॥"—युद्ध का० ३२/३१
मुहूर्तमपि नेच्छामि जीवितु पापजीविता।"—युद्ध का० ३२/३३
इति सा दुःखसन्तप्ता विललापायातेक्षणा।
भर्तुः शिरोधनु तत्र समीक्ष्य च पुन पुन॥"—युद्ध का० ३२/३४

इसी प्रकार का एक-दूसरा प्रसंग और आया है। इन्द्रजीत ने युद्ध में राम लक्ष्मण दोनों भाइयो को विषधर सर्पतुल्य बाणों से बाँध लिया। दोनो वीरो के अगों से झरने की तरह रक्त बह रहा था तथा वे दोनो बाणशय्या पर पड़े हुए थे। इसी भीषण दृश्य को सीता को दिखलाने की रावण ने योजना की और उसने सीता को पुष्पक विमान पर बिठाकर यह दृश्य दिखलाया—

सीता इस दृश्य को देखकर अति दुःखी हुई और विलाप करने लगी। सीता के शोक के अन्तर्गत निम्नलिखित तथ्यों का उल्लेख हुआ [1]—

१. सब सामुद्रिक झूठे निकले, श्रीराम को वह दीर्घायु बतलाते थे किन्तु वह अल्पायु मे ही कालकवलित हो गए।

२. मुझे शुभ लक्षणो वाली सधवा तथा चक्रवर्ती की पत्नी बतलाया था किन्तु मै भी आज विधवा हो गई। जिन बुरे लक्षणो के होने से स्त्रियाँ विधवा हो जाती है उनके न होते हुए भी मै हतभाग्य सिद्ध हुई।

३. मुझे सबसे अधिक चिन्ता अपनी सास, माता कौशल्या की है जो नित्य यही सोचती होगी कि राम सीता और लक्ष्मण वनवास की अवधि समाप्त कर वापिस आते होगे। वह हम लोगो को देखेने के लिए लालायित होगी।

कहना न होगा कि उपर्युक्त दोनो प्रसग करुणरस की कष्टकर वेदना को प्रस्तुत करने तथा सीता की यातना को अति दारुण रूप मे प्रकट करने के लिए प्रस्तुत किए गए है। करुण का यह रूप सामाजिक के लिए क्षोभपूर्ण बन जाता है। इसीलिए सभवतः इस प्रकार के प्रसगो की योजना से गोस्वामी तुलसीदास ने अपने आप को विरत रखा है।

यह तो हुई सीता को घोर यातना देने की बात। इसी प्रकार की यातना की योजना राम के लिए भी की गई।

माया सीता के वध पर राम का शोक—हनुमान से सीता-वध का समाचार पाकर श्रीराम असह्य शोक से व्यथित होकर मूर्च्छित हो गए और पृथ्वी पर छिन्न-मूलतरु के समान गिरे पडे। उस समय अत्यन्त दुःखी लक्ष्मण ने दोनो भुजाओं में

---

१. "भर्तार निहत दृष्ट्वा लक्ष्मण न महाबलम्।
विललाप भृश सीता करुणं शोककर्शिता॥—युद्ध० ४८/१
तेऽद्य सर्वे हते रामे ज्ञानिनोऽनृतवादिन।"—युद्ध० ४८/२
वैधव्य यान्ति यैर्नार्यो लक्षणैर्भाग्यदुर्लभाः।
नात्मनस्तानि पश्यामि पश्यन्तीऽहतलक्षणा॥"—युद्ध० ४८/७
साऽनुचिन्तयते नित्य समाप्तव्रतमागतम्।
कदा द्रक्ष्यामि सीता च लक्ष्मण च सराघवम्॥"—युद्ध० ४८/२१

श्रीराम को रोक लिया और गले लगाकर उनको समझाने लगे[1] ।

लक्ष्मण-शक्ति—लक्ष्मण की मूर्च्छा तथा लक्ष्मण-शक्ति दोनों प्रसगों के अन्तर्गत श्रीराम की करुणा मुखरित हो उठी है। अतएव इन दोनो ही प्रसंगो पर वहाँ दृष्टिपात किया जा रहा है।[2]

लक्ष्मण-मूर्च्छा—राम और लक्ष्मण दोनो ही युद्ध मे मूर्च्छित हो गए थे। राम मूर्च्छा से पहले जगे। उन्होने लक्ष्मण को मूर्च्छित देखा।

राम लक्ष्मण को रुधिर से रजित, दीन बदन और दु खी देख कर अति दुःखी हुए और शोक के कारण रोने लगे। वह कहने लगे कि—

आत्मग्लानि—१. मैं अब स्वय जीवित रह कर क्या करूँगा।

२. यदि सुमित्रानदन का देहावसान हो गया तो मै भी इन वानरो के सामने अपने प्राण दे दूँगा।

३. मुझ पापी को धिक्कार है कि जिसके कारण लक्ष्मण शरशय्या पर मृतक के समान पडे हैं।

प्रियजनों की तुलना—१. सीता जैसी स्त्री खोजने पर भले ही मिल जाय किन्तु लक्ष्मण जैसा भाई, सहायक, वीर, योद्धा नही मिलेगा।

३. जब लक्ष्मण ही युद्ध मे अचेत पडे है तो मैं सीता को ही लेकर क्या करूँगा।

वेदना तथा विरक्ति—१. यदि लक्ष्मण की मृत्यु हो गई और मुझे लक्ष्मण के बिना ही अयोध्या लौटना पडा तो मै बिना बछड़े की गौ के समान काँपती तथा कुररी के सामने विलाप करती हुई सुमित्रा को किस प्रकार धीरज बँधाऊँगा।

२ विभीषण को लका का राज्य देने को कहा था, वह न दे पाया।

३. भाग्य की रेखा नही मेटी जा सकती। अतएव क्या करूँ अब मै सब को बिदा देता हूँ जिसकी जहाँ इच्छा हो वहाँ चला जाय।

अन्य पात्रों पर प्रभाव—१. राम के ऐसे दु:ख एव निराशापूर्ण वचनो को सुन कर वानर रो पडे।

२. विभीषण ने जल लेकर दोनो वीर राजकुमारो की आँखे धोई और वह स्वयं विलाप करने लगे। उनको यही सोच थी कि जिन राजकुमारो के बलबूते पर मैंने अपने मान सम्मान को प्राप्त करने की आशा लगा रखी थी, वे दोनो शरीर त्यागने के लिए पृथ्वी पर पडे है।

---

१. "तस्य तद्वचन श्रुत्वा राघव· शोकमूर्च्छित· ।
निपपात तदा भूमौ छिन्नमूल इव द्रुमः॥—युद्ध० ८३/१०
त लक्ष्मणोऽथ बाहुभ्या परिष्कन्य सुदु:खित.।
उवाच रामयस्वस्थ वाक्यं हेत्वर्थसंयुतम्॥—युद्ध० ८३/१३

२. देखिए—युद्ध काण्ड—४९/४, ५, ६, ७, १२, २२, २८, ३० व ५०/१४, १८

लक्ष्मण-शक्ति—रावण के कठोर आघात से लक्ष्मण का मर्मस्थल बुरी तरह विदीर्ण हो गया वह वेदना से अति व्याकुल हुए बुरी तरह कराह रहे थे। जब श्रीराम ने उनको इस दशा मे देखा तो वह अत्यन्त दु.खी हुए और शोक से कातर हो उठे। वह अति व्यथित होकर विलाप करने लगे।[1] वह कहने लगे कि—

(नितांत विरक्ति एवं उदासीनता) १. मुझे न अब युद्ध ही से कोई प्रयोजन है न सीता से और न अब मैं अधिक जीवित ही रहना चाहता हूँ।

२. मैं अयोध्या का राज्य लेकर या जीकर ही क्या करूँगा।

३. देश-देश मे स्त्री और भाई मिल सकते हैं किन्तु सहोदर भ्राता कही पर भी नही मिलेगा।

इन दोनो प्रसगो मे यह विशेषरूप से अवलोकनीय है कि श्रीराम को इन स्थलो पर सीता की बरबस स्मृति हो आई है और उनके मानव मे यह भाव बार-बार आता है कि कही ऐसा न हो कि स्त्री के लिए प्रियबन्धु का विनाश हो जाय। यदि ऐसा हो गया तो ससार क्या कहेगा ? लोक मर्यादा के प्रभाव मे ही राम ऐसा सोचते है, यह स्पष्ट है।

सीता-निर्वासन—अपवाद के भय से सीता को निर्वासित किया गया तथा लक्ष्मण को इस कार्य के लिए सीता के साथ भेजा गया। सीता से कहा गया कि वन देखने की उनकी इच्छा थी, अतएव वन दिखाने के लिए उनको वन मे ले जाया जा रहा है। सीता ने प्रसन्नता पूर्वक वन जाने की तैयारी की और लक्ष्मण के साथ वन को चल दी। जब गगा के तीर पहुंचे तो स्वय लक्ष्मण अपने कार्य की गुरुता से कातर हो उठे और वह बडे जोर से रोने लगे। उनकी ग्लानि एव वेदना इन शब्दो मे फूट पडी—

"श्रेयो हि मरण मेऽद्य मृत्युर्वायत्पर भवेत्" और अपनी विवशता का निवेदन करते हुए लक्ष्मण अचेत होकर पृथ्वी पर गिर पडे।[2]

---

१ "पर विषादमापन्नो विललापाकुलेन्द्रिय ।
न हि युद्धेन मे कार्य नैव प्राणैर्न सीतया ।।—युद्ध० १०२/१०
"भ्रातर निहत दृष्ट्वा लक्ष्मण रणपासुषु ।
कि मे राज्येन कि प्राणैर्युद्धे कार्यं न विद्यते ।।—युद्ध० १०२/११
"देशे-देशे कलत्राणि देशेदेशे च बान्धवाः ।"—युद्ध० १०२/१२
"त तु देश न पश्यामि यत्र भ्रातासहोदरः ।"—युद्ध० १०२/१३

२. 'प्रसीद च न मे पाप कर्तुमर्हसि शोभने ।
इत्यञ्जलिकृतो भूमौ निपपात स लक्ष्मणः ।। उत्तर० ४७/६

लक्ष्मण ने जब वस्तुस्थिति का ज्ञान कराया तो सीता अति व्याकुल हुई और वह भी एक क्षण को अचेत होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी। वह लक्ष्मण से दीन वचनो में अपनी वेदना प्रकट करती हुई बोली।[1]

१. मेरा तो शरीर ही विधि ने दुःख सहने के लिए बनाया है।

२. महादुःखी मैं किसके सम्मुख अपना दुःख रोऊँगी।

३. जब मुनि मेरे परित्याग का कारण जानना चाहेगे तो मै क्या उत्तर दूँगी ?

४. हे लक्ष्मण ! सब को सिर झुकाकर मेरा प्रणाम कहना और वही करो जैसी आज्ञा हुई है जिससे पुरवासियों का अपवाद छूट जाय।

५. रही मैं सो मेरी गति तो मेरा पति ही है। पति ही नारी के लिए भाई, देवता और गुरु होता है।

६. किन्तु यह और देखते जाओ कि मैं गर्भिणी हूँ।

लक्ष्मण सीता जी के उपर्युक्त निवेदन को सुनकर परम दुखी हुए और उच्च स्वर से विलाप करते हुए बिना कुछ कहे ही विदा हुए। वह वापिस जाते हुए बार बार अनाथ की भाँति बैठी हुई सीता को देखते जाते थे।

सीता की उपर्युक्त उक्तियो मे कितनी विवशता, वेदना तथा व्यग्य भरा है यह रेखांकित स्थलों को पुन देखने से स्पष्ट हो जायगा। महर्षि की करुणा यहाँ सीता के रूप में मानो साकार हो गई है और लोक मर्यादा के नाम पर किए गए इस कृत्य के लिए प्रश्न बन गई है। जिसका समाधान सहज संभव नही है।

---

१. "मामिकेय तनुर्नून सृष्टा दुखाय लक्ष्मण।"—उत्तर० ४८/३
"आख्यास्यमि च कस्याहं दुख दुःखपरायणा।"—उत्तर० ४८/६
"किंनु वक्ष्यामि मुनिषु कर्म चासत्कृतं प्रभो।
कस्मिन् वा कारणे त्यक्ता राघवेण महात्मना॥"—उत्तर० ४८/७
"यथाज्ञं कुरु सौमित्रे त्यज्य मा दुःखभागिनीम्।"—उत्तर० ४८/८
शिरसामिनतो ब्रूयाः सर्वासामेव लक्ष्मण।"
यथापवादः पौराणां तथैव रघुनन्दन।
पतिर्हि देवता भार्याः पतिर्बन्धुः पतिर्गुरुः॥"—उत्तर० ४८/१७
"निरीक्ष्य माम् गच्छ त्वमृतुकालातिवर्तिनीम्।
एवं ब्रुवन्त्यां सीताया लक्ष्मणो दीनचेतनः॥—उत्तर० ४८/१९
"संमूढ इव दुःखेन रथमध्यारुहद्द्रुतम्।
मुहुर्मुहुः परावृत्य दृष्ट्वा सीतामनाथवत्॥—उत्तर० ४८/२४

विपक्षी पात्रों की शोकानुभूति

१. बालिवध का तारा-विलाप[1]

वाह्याभिव्यंजक— १. अपना सिर और छाती पीटने लगी।
२. पति को मरा देखकर विकल और उद्विग्न हो भूमि पर गिर पडी।
३. कुररी की तरह रोती हुई (तारा)....
४. बालि से लिपट गई।
५. करुणाजनक रूप से रोती हुई अपने पति के समीप बैठ गई, अन्न जल त्याग कर प्राण त्याग का निश्चय किया।

कातरता तथा आर्त निवेदन—१. बेटा ! अपने धर्मवत्सल पिता के अन्तिम दर्शन कर लो।
२. हे नाथ ? अपने पुत्र को ढाढस बँधाओ और मुझसे जो कुछ कहना हो कहो।
३. अपने पुत्र का मस्तक सूँघ लो क्योंकि अब तो तुम सदा के लिए जा रहे हो।
४. मैं खडी रो रही हूँ मुझ से बोलते क्यों नहीं ?
५. देखो मैं पुत्र सहित तुम्हारे पास बैठी हूँ।
६. जिस बाण से मेरे प्रिय को मारा है उसी से मुझे मार डालो जिससे मैं उनके पास पहुँच जाऊँ क्योकि मेरे बिना वह प्रसन्न न रह सकेगे।

---

१. "शिरश्चोरश्क बाहुभ्यां दुःखेन समभिघ्नती।" —कि० १६/२०
तामवेक्ष्य तु सुग्रीव: क्रोशन्ती कुररीमिव।"—कि० १६/२८
"समीक्ष्य व्यथिता भूमौ सम्भ्राता निपपातह।"—कि० १६/२७
"सा समासाद्य भर्तार पर्यष्वजत भामिनी।"—कि० २०/२
"तथा तु तारा करुण रुदन्ती भर्तुः समीपे सह वानरीभिः।
व्यवस्यत प्रायमुपोपवेष्टुमनिन्द्यवर्णा भुवि यत्र बाली॥—कि० २०/२६
"कुरुष्व पितरं पुत्र सुदृष्ट धर्मवत्सलम्।
दुर्लभ दर्शन वत्स तव तस्य भविष्यति॥"—कि० २०/१७
"समाश्वासय पुत्रं त्व सन्देश सन्तिशस्व च।
मूर्घ्नि चैन समाघ्राय प्रवास प्रस्थितो ह्यसि॥"—कि० २०/१८
"कि मामेव विलपती प्रेम्णा त्वं नाभिभाषसे" —कि० २०/२१
येनैकबाणेन हत: प्रियो मे तेनैव मां त्वं जहि सायकेन।
हता गमिष्यामि समीपमस्य न मामृते राम रमेत बाली॥"—कि० २४/३३

बालि वध पर सुग्रीव का विलाप

परम आत्मग्लनि—१. मेरी ऐसी दुष्ट बुद्धि हो गई जिससे मैने ऐसा प्राणघातक कार्य किया।

२. मैंने अपने कुल का नाश किया है, मै अब अधिक जीने योग्य नहीं हूँ।

श्रीराम का प्रभाव—सुग्रीव के अत्यन्त आर्त्त निवेदन को सुनकर श्रीराम जी के नेत्रो मे आँसू भर आए और एक मुहूर्त के लिए वह उदास हो गए।

कुंभकरण और मेघनाद वध पर रावण-विलाप[२] —

अनुभाव—१. शोकसतप्त रावण मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पडा।

२. अति दीन होकर रावण विलाप करने लगा।

(गुणकथन) ३. हे वीर ! हे शत्रुदर्प हन्ता ! महाबली ! तुम मुझको छोडकर मेरा तथा बन्धुबान्धवो का काँटा निकाले बिना ही यमलोक चल दिए।

(विरक्ति) ४. अब मुझे राज्य से कोई प्रयोजन नही है और सीता का भी क्या करूँगा।

५. कुभकरण के बिना मै जीवित नही रहना चाहता।

६. मेरा जीवन व्यर्थ है, मेरा मरना ही इस समय कल्याणकर है।

७. मैं आज ही उस देश को जाऊँगा जहाँ मेरा भाई गया है।

(परिताप) ८. मैंने जो अपने धार्मिक भाई विभीषण को निकाल दिया, निश्चय उस दुष्कर्म का यह शोकजनक परिणाम मुझे प्राप्त हुआ है।

मेघनाद वध—

(गुणकथन) १ पुत्र शोक से अति दीन तथा व्याकुल रावण विलाप करने लगा हे राक्षसचमूग्रध्यक्ष ! महारथी ! मेरे वत्स !

---

१ "कुलस्य हन्तारमजीवनर्हि।" —कि० २४/२३

"श्रुत्वा वचो बाल्यनुजस्य तस्य।
सञ्जातवाष्प: परवीरहन्ता रामो मुहूर्त विमना बभूव॥ —कि० २४/२४

२. "रावण: शोकसतप्तो मुमोह च पपात च"—युद्ध० ६८/७

"त्वं मा विहाय वै वैवाद्यातोऽसि यमसादनम्।
मम शल्यमनुद्धृत्य बान्धवानां महाबल॥" - युद्ध० ६८/११

"राज्येन नास्ति मे कार्य कि करिष्यामि सीतया।"—६८/१७

"कुभकर्ण विहीनस्य जीविते नास्ति मे रति।"—युद्ध० ६८/१८

"ननु मे मरण श्रेयो न चेदं व्यर्थजीवितम्।
अद्यैव त गमिष्यामि देश यत्रानुजो मम॥—युद्ध० ८६/१६

"तस्याय कर्मण: प्राप्तो विपाको मम शोकद:।
यत्मया धार्मिक: श्रीमान् स निरस्तो विभीषण:॥" —युद्ध० ६८/२३

२. तुम तो काल को भी अपने बाणों से छिन्नभिन्न कर सकते थे, तुम किस प्रकार लक्ष्मण के वशवर्ती हो गए। तुमने इन्द्र को जीत लिया था।

(आर्त्त निवेदन) १ हे परतप ! तुम लका के यौवराज्य को, लका को, राक्षसो को मुझे, अपनी माता तथा स्त्री को छोड़कर कहाँ चले गए ?

२. मेरे मरने पर तुमको मेरा प्रेतकार्य करना चाहिए था किन्तु यह तो सब उलटा ही हो रहा है, मुझे तेरा प्रेतकार्य करना होगा।

२ तुम राम सुग्रीव के जीवित रहते हुए और मेरा काँटा बिना निकाले हुए कहाँ चले गए ?

(शून्यता का अनुभाव)—एक इन्द्रजीत के बिना तीनो लोक और सारी पृथ्वी मुझे शून्य प्रतीत हो रही है[1]।

रावणवध पर विभीषण विलाप[2]

गुणकथन—१. हे वीर ! हे विख्यात पराक्रमी ! हे सुशिक्षित ! हे नीति चतुर तुम उत्तम सेज पर सोनेवाले आज भूमि पर क्यो सो रहे हो।

२ बाजूबन्दो से शोभित दोनो लबी भुजाएँ चेष्टाहीन फैली हुई है।

३ सूर्य की तरह चमकीला मुकुट अलग पडा है।

अनुभाव ४ तुम्हारे मरने से सेना का सग्रह नष्ट हो गया, वीरो का आश्रय समाप्त हो गया।

५. तुम्हारे जैसे श्रेष्ठ वीर के मरने से सूर्य पृथ्वी पर गिर पडा, चन्द्रमा अन्धकार मे डूब गया, अग्नि-ज्वाला शान्त हो गई, उत्साह निराधार हो गया—

रूपक ६ राम पवन और रावण रूपी वृक्ष का पतन।

७ राम सिह और रावणरूपी मदमस्त हाथी का विनाश।

रावण की स्त्रियों का विलाप[3]

बाह्याभिव्यंजक—१. वे सब 'आर्यपुत्र, हा नाथ' कहकर चिल्लाती समरभूमि मे जाकर गिर पडी जहाँ रक्त की कीच हो रही थी और जो कबधो से परिपूर्ण थी।

२. वे कटी हुई वनलता के समान गिर पडी।

३. उनमे से कोई उससे लिपट गई, कोई उसके पैरों से लिपट गई और कोई उसके कण्ठ को पकड कर रोने लगी।

४. किसी ने उसके सिर को अपनी गोद मे रख लिया और उसको

---

१. देखिए युद्ध—काण्ड ९३ ६, ७, १२, १३, १४, १५

२. देखिए युद्ध—काण्ड ११२/१,२,३,४,७,८।

३. देखिए युद्ध—काण्ड ११३/४,७,८,१०,२६।

देख-देखकर आँसू बहाने लगी।

५. वे कुररी पक्षी की भाँति रोने लगी।

महाराना मंदोदरी का विलाप[1]

गुणकथन—१. तुम्हारे क्रोध के सामने इन्द्र भी काँपता था, ऋषि, ब्राह्मण, गंधर्व दसों दिशाओं मे भाग जाते थे।

२. विश्वास नहीं होता कि एक मनुष्य ने तुमको मार डाला, निश्चय ही वह मनुष्य नही, या तो वह स्वय काल है अथवा यमराज है।

आलोचना—अरे दुर्मति, तुमने अरुन्धती और रोहिणी से भी बढकर मान्य सीता को हरा, यह तुमने बडा ही बुरा किया।

स्मरण[2]—१ कैलाश, मन्दराचल, मेरु, चैत्ररथ वन तथा देवताओ के समस्त उद्यानों मे मैं तुम्हारे साथ विहार करती थी।

२. इन्द्रजीत के मारे जाने पर मेरे हृदय पर बडा आघात हुआ था किन्तु आज तो मेरी मृत्यु ही हो गई।

आर्त्तनिवेदन और वेदना[3]—१. आज तो तुमने बडी लम्बी और दुर्गम यात्रा का मार्ग पकडा है, मुझ दुःखार्त्ता को भी अपने साथ ले चलिए। मै तुम्हारे बिना जीवित नही रह सकती।

२. मुझ दु.खी, दीन और विलाप करती हुई, मदभागिनी से बोलते क्यो नही ? मुझे छोडकर क्यो जाते हो ?

ग्लानि—उस हृदय को धिक्कार है जो तुम्हारे शोक मे फटकर हजारो टुकडे नही हो जाता।

---

१. देखिए युद्ध ११४/२–१३, २१,

२. देखिए युद्ध ११४।३२,५८,

३. "प्रपन्नो दीर्घम् ध्वान राजन्नद्य सुदुर्गमम्।
नय मामपि दुःखार्ता न जीविष्ये त्वया बिना॥ —युद्ध० ११४/६०
"कस्मात्त्व मा विहायेहे कृपणा गन्तुमिच्छसि।
दीनां विलपितैर्मन्दा किवा नाभिभाषसे॥ —युद्ध० ११४/६१
"धिगस्तु हृदयं यस्या ममेदं न सहस्रधा।
त्वयि पचत्वमापन्ने फलते शोकपीड़ितम्॥ —युद्ध० ११४/८६
इत्येव विलपन्त्येव बाष्प व्याकुललोचना।
स्नेहावस्कन्नहृदया देवी मोहमुपागमत्॥ —युद्ध० ११४/८७
"इत्येवमुच्यमाना सा सशब्द प्ररुरोद ह।
स्नापयन्ती त्वभिमुखौ स्तनावस्राम्बुविस्रवैः॥ —युद्ध० ११४/९१
"मरणान्तानि वैराणि निर्वृत्तं नः प्रयोजनम्।
क्रियतामस्य संस्कारो ममाप्येष यथा तव॥—युद्ध० ११२/२६

बाह्याभिव्यंजक—१. इस प्रकार विलाप करती तथा अश्रु बहाती हुई मंदोदरी स्नेह के कारण व्यथित हृदय होकर मूर्च्छित हो गई।

२. अश्रुधारा से अपने स्तनों को भिगोती हुई वह जोर से रोने लगी।

श्रीराम की सहानुभूति—

श्रीराम ने विभीषण से कहा—मरने तक ही वैर करना चाहिए। मेरा प्रयोजन पूरा हुआ, अब तो जैसा तुम्हारा भाई वैसा मेरा भाई, इसलिए अब इसका यथोचित संस्कार करो।

विपक्षी पात्रो की शोकानुभूति के अन्तर्गत उद्धृत उपर्युक्त प्रसगो का अवलोकन करने से स्पष्ट हो जाता है कि महर्षि वाल्मीकि की दृष्टि मे जहाँ तक करुण रस का सबध है पक्ष और विपक्ष का कोई अन्तर नही है। जिन शब्दो एवं पदो का प्रयोग उन्होने पक्ष की करुणानुभूति को प्रकट करने के लिए किया है उन्ही का प्रयोग तथा उतने ही विस्तार से उन्होने विपक्ष का वर्णन किया है।

वाल्मीकि रामायण के उपर्युक्त अध्ययन के आधार पर निम्नलिखित परिणाम निकाले जा सकते है—

वस्तुगत—१. कवि ने रामकथा का विस्तार के साथ वर्णन किया है। ऐसा ज्ञात होता है कि कवि को तत्कालीन समाज मे लोककथाओ के रूप मे प्रचलित प्रचुर सामग्री प्राप्त हुई है जिसका कवि ने सफल प्रयोग किया है!

२. कवि प्रथम रामकथाकार एव प्रथम महाकाव्यकार माना जाता है। इस लिए उसका प्रयास, वस्तु एव अभिव्यक्ति दोनो दृष्टियो से उदाहरण तथा कतिपय रूपो मे आदर्श है!

३. कथा मे एक शीर्ष के अन्तर्गत विभिन्न उपशीर्षों की योजना की गई है जिससे करुणप्रसग प्रभावशाली बन गये है। (दशरथ के लिए विभिन्न उपशीर्षों के अन्तर्गत बार-बार शोक का उद्रेक किया गया है!)

४ कवि का दृष्टिकोण "वीर के वृत्त" का वर्णन है। इस कारण वस्तु के लौकिक रूप की ओर कवि की दृष्टि प्रतिलक्षित होती है जिसके अन्तर्गत भगवान् के नर रूप की वास्तविकता अवलोकनीय है!

५. कवि की कृति का प्रेरणास्रोत करुणरस है। इसलिए "वीर वृत" मे भी करुण की प्रमुखता है। कथावस्तु इसलिए करुणकथा बन गई है, यह कहना अत्युक्ति न होगा।

अभिव्यक्तिगत—१ शोक की सभव सभी स्थितियो, परिस्थितियो तथा अनुभूतियो का कवि ने वर्णन किया है।

२. शोक की मार्मिकता के प्रसग मे कवि ने ऐसे स्थलो की भी योजना की है जहाँ अभिव्यक्ति मे भय और त्रास का सम्मिश्रण हो गया है।

३. "कुररी और क्रौंच मादा का विलाप" कवि की मूल शोकानुभूति के आधार होते है । इसलिए करुणप्रसगो में मार्मिकता का उद्घाटन कवि इन विलापो की उपमा देकर करता है ।

४ कवि की दृष्टि अनुभावो एव बाह्य-व्यजको की ओर रही है । शोक के लिए अपेक्षित सभी अनुभाव एव बाह्य-व्यजक कवि की कृति मे उपलब्ध है ।

५. आत्मग्लानि, परिताप, वियोगजन्य परिस्थितियों का कवि ने मनोवैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया है :

६. शोक की अनुभूति को मर्मभेदी रूप देने के लिए कवि ने व्यग्य एव कटु उक्तियों का सहारा लिया है ।

७. विपक्षी पात्रो की शोकानुभूति का पक्ष की शोकानुभूति के समान कवि ने सोत्साह वर्णन किया है ।

८. अन्त्येष्टि की विभिन्न स्थितियो का वर्णन करते हुए इष्टनाश के अभाव की उत्तरोत्तर विकसित करुणानुभूति का दिग्दर्शन कराया गया है । (चिता पर रखना, जलती चिता की परिक्रमा, फूल चुनना आदि रूपो मे नष्ट इष्ट की विभिन्न स्थितियाँ तथा तज्जन्य शोक) ।

९ परिताप की अभिव्यक्ति के अन्तर्गत कवि ने एक लम्बी सूची पापगतियो एव दुर्गतियो की दी है जो शोकजन्य ग्लानि के साथ तत्कालीन समाज की दशा पर भी प्रकाश डालती है ।

१०. शोकानुभूति के अन्तर्गत अपने प्रियजनो मे से एक को दूसरे के नाश का कारण मानकर अप्रिय निन्दा की गई है (लक्ष्मण शक्ति प्रसग मे सीता की उपेक्षा तथा नारीमात्र की अवहेलना ।)

११ कर्तव्यपरायणता तथा मर्यादा के साथ लोकनिन्दा एव लोकापवाद से मुक्ति के प्रसगो मे अभिव्यक्ति का विकास हुआ है ।

१२ करुणानुभूति मे आश्रय की नितात विवशता, असहायावस्था तथा आदर्शो के अन्तर्गत परवशता का उद्घाटन कम स्थलो पर हुआ है । केवल राम इस प्रकार की अनुभूति का उद्घाटन करते है । अन्य पात्र कटूक्तियो के द्वारा करुणरस की सहज अनुभूति मे बाधा उपस्थित कर देते है ।

१३. वियोगदशा मे चराचर जगत से सहानुभूति प्रकट की गई है तथा उपमानो का मानवीकरण किया गया है ।

१४ शोक की चरम अभिव्यक्ति आत्मघात के प्रयत्न एव मृत्यु की याचना मे प्रकट हुई है ।

अध्यात्म रामायण में करुणरस

ब्राह्माण्ड पुराण के उत्तरखण्ड मे अध्यात्म रामायण दी हुई है । सस्कृत साहित्यगत रामकथा मे अध्यात्म रामायण का अपना महत्त्व है । वाल्मीकि रामायण

मे जैसा कि दिखा चुके है रामकथा का सविस्तार विवेचन हो चुका है और कथा की पूर्णता के साथ कोई प्रसग ऐसा नही छूटा है जिस पर किसी को कुछ नवीन मत प्रकट करने का अवसर प्राप्त हो सके। फिर भी, अध्यात्म रामायण की अभिव्यक्ति एव दृष्टिगत अपनी विशेषता है जिसका अध्ययन मध्ययुगीन हिन्दी रामकाव्य की पूर्वपीठिका में अपेक्षित है।

अभिव्यक्ति का सोदाहरण विवेचन आगे किया जायगा। यहाँ अध्यात्म रामायण के दृष्टिकोण पर दो शब्द आवश्यक है। अध्यात्म रामायण तथा वाल्मीकि रामायण की दृष्टिकोणगत विशेषता ही वस्तुत दोनो कृतियो के पृथक् विवेचन का आधार है। अध्यात्म रामायण के राम यद्यपि अपने आपको "ससारिणा अस्माकं विषयासक्त चेतना नितरा" कहकर नर ही नही अपितु घोर कामी नर की श्रेणी मे रखते है किन्तु वास्तव मे वह ससारी नही प्रत्युत ससारी-ससार के आदिकारण स्वरूपा माया के पति है, भगवान् है। स्थल-स्थल पर उनके भगवत्स्वरूप के दर्शन होते है। जहाँ कही भ्रम की सभावना हो सकती है वहाँ कवि पहले से ही भगवल्लीला का निर्देश कर देता है। इस प्रकार राम भगवान् ही बने रहते है। उनके नर रूप का किंचित् भी आभास नही हो पाता। पाठक भूलकर भी यह नहीं सोच पाता कि राम भगवान् के साथ-साथ नर भी हैं। इसके विपरीत वाल्मीकि रामायण मे राम, राम पहले तथा भगवान् बाद को है। कथा के प्रवाह मे विभोर पाठक मानवोचित अनुभूतियो में जहाँ-तहाँ राम को भगवान् के रूप मे देखकर एक क्षण को स्तम्भित रह जाता है—'अरे, यह तो भगवान् के चरित का गान है' और झट हाथ जोड लेता है। इस प्रकार इन दोनो कृतियो के दृष्टिकोण मे विशेष अन्तर होने के कारण करुणरस की अभिव्यक्ति मे भी विशेष अन्तर आ गया है। एक ओर जहाँ वाल्मीकि रामायण मे करुणरस का प्रबल प्रवाह पाठक को आनदविभोर कर देता है वहाँ दूसरी ओर अध्यात्म रामायण मे वैसी ही सामग्री के सदर्भ मे रस-परिपाक सभव नही हो पाता। कवि की योजना इस प्रकार की है कि पाठक शोकाभिभूत राम को देखकर भी रस का आनद नही ले पाता क्योंकि ऐसे प्रसगो से पूर्व ही कवि भगवान् राम से (या वह स्वय(यह निर्देश कराकर कि इस प्रकार की लीला की जा रही है, सारे रहस्य को खोल देता है और ऐसा अनुभव होने लगता है जैसे नाटक देखते हुए बीच-बीच मे कोई टोकता जाय कि यह सब नाटक है, सत्य नही और इस प्रकार दर्शक को आश्रय के साथ तादात्म्य का अवसर ही न मिलने दे।

अध्यात्म रामायणगत करुणरस के प्रसगो की अभिव्यक्ति पर विचार करने से पूर्व उपर्युक्त टिप्पणी तथ्यो को अपने मूल रूप मे समझने मे सहायता देगी तथा करुण रस के स्वरूप का यथातथ्य ज्ञान हो सकेगा। अध्यात्म रामायण मे रामकथा के निम्नलिखित करुण प्रसग आए है जिन पर आगे विवेचन किया जायगा।

१—**रामवनगमन** (क) दशरथ का शोक .

(ख) भरत का शोक।
(ग) रनिवास का शोक।

२—**रामवनवास** (क) गुह का शोक राम को कुशशय्या पर सोता देखकर।
(ख) राम का शोक—महाराज दशरथ के निधन के समाचार को पाकर; सीता हरण पर।

३—**लक्ष्मण शक्ति**—राम का शोक।

४—तिरस्कार एवं परित्याग जन्य सीता का शोक।

५—राम का शोक सीता के पृथ्वी-प्रवेश के प्रसंग मे।

विपक्षी पात्रों की शोकानुभूति—

१. बालिवध पर तारा का शोक।
२. कुभकर्ण और मेघनाद वध पर रावण का शोक।
३. रावण वध पर मदोदरी का शोक।

रामवनगमन—महाराज दशरथ का शोक इस प्रसंग मे विशेष रूप से उल्लेखनीय है। महाराज दशरथ के शोक मे शोकसतप्त मानव के दर्शन होते हैं। उनके शोक की तीन स्थितियाँ है—

प्रथम स्थिति—महाराज कैकेयी के मान की सूचना पाते है और अविलंब कैकेयी के पास उपस्थित होते है। कैकेयी कठोरता की साकार मूर्ति बनकर महाराज की घोर यातना का कारण बन जाती है। कैकेयी के रोमाचकारी कठोर वचनों को सुनकर उनको महान् कष्ट होता है और वह शोक से कातर हो उठते है। इस प्रसग मे महाराज के अनुभावो के द्वारा कवि ने शोक का वर्णन किया है—वज्राहत पर्वत/मृतक-के समान पृथ्वी पर गिर पड़े।

श्रुत्वैतद्दारुणं वाक्यं······१. निपपात महीपालो वज्राहत इवाचलः।
(अयो० ३/२३)
२. मूर्च्छित. पतितो भूमौ विसज्ञो मृतको यथा!
(अयो० ३/३३)

द्वितीय स्थिति—राम सीता और लक्ष्मण वन जाने के लिए महाराज की सेवा में उपस्थित हुए और वल्कल वस्त्र पहन कर वन को चलने लगे। उनको देखकर महाराज दुःख से दुखी होकर भूमि पर गिर पडे और रोने लगे। जब रथ जिसमे राम वन जा रहे थे ओझल हो गया तो महाराज मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पडे।

राममालोक्य सीता चैव लक्ष्मणम् ··१ दुःखान्निपतितो भूमौ रुरोदाश्रुपरिप्लुतः।
(अयो० ५/४२)
रामे दूरं गते·················२. राजा मूर्च्छित : प्रापद्भुवि।
(अयो० ५/४६)

तृतीय स्थिति—सुमंत्र राम को वन पहुंचाकर वापिस आते हैं और महाराज को

समाचार सुनाते है और राम का सदेश निवेदन करते है—

१—महाराज को आशा थी कि रामलक्ष्मण सीता ने कठोर शब्द कहे होगे—

कुत्र त्यक्तस्त्वया रामः कि मा पापिनमब्रवीत् । (अयो० ७/४)

सीता वा लक्ष्मणो वापि निर्दयं मा किमब्रवीत् ॥

किन्तु राम का सदेश उसी प्रकार परम आज्ञाकारी पुत्र का निवेदन था—

सुमंत्र ब्रूहि राजानं शोकस्तेऽस्तु न मत्कृते ।

साकेतादधिक सौख्यं विपिने नो भविष्यति ॥ (अयो० ७/१०)

यही नहीं राम को महाराज की कुशलक्षेम की चिन्ता भी थी जो इन शब्दो मे प्रकट हुई—'आश्वासयतु राजान वृद्ध शोकपरिप्लुतम् ।' (अयो० ७/११)

इस प्रसग मे करुणरस की मनोविज्ञानाश्रित सुन्दर अनुभूति अवलोकनीय है। हमसे अपराध बन जाय और उसके विरोध मे हमारा प्रिय हमको डाटफटकार दे, बुरा-भला कहले तो चित्त को सतोष हो जाता है। इसके स्थान पर यदि हमारा प्रिय उदारता पूर्वक क्षमा करके उल्टा हमारी सुख सुविधा के लिए चिन्तित हो तो उसका इस प्रकार का व्यवहार बडा मर्मस्पर्शी बन जाता है। दशरथ की दशा ऐसी ही थी। वह तो चाहते थे और उन्होने कहा भी था—"स्त्रीजित भ्रान्तहृदयमुन्मार्गपरिवर्तिनम् ।

निगृह्य मा गृहाणेद राज्य पाप न तद्भवेत् ॥"

(अयो० ३/६६)

किन्तु ऐसा न हुआ और जो कुछ हुआ वह उनके लिए राम की शालीनता के सदर्भ मे मन को कचोटने वाला बन गया।

३—इस ग्लानि एव परिताप मे महाराज दशरथ अति दु खी ही थे कि इसी समय महारानी कौशल्या ने हृदयविदारक व्यग्य कस दिया जो निश्चय ही ऐसा लगा जैसे किसी ने घाव मे अग्नि का स्पर्श कर दिया हो—"अपने आप यह सब करके अब आप रोते क्यो है ?" कृत्वा त्वमेव तत्सर्वमिदानी कि नु रोदिषि । (अयो० ७।१७)

३. इसी प्रसग मे श्रवण के अधे माता-पिता का शाप भी स्मरण हो आया और महाराज परम विकल हो गए।

महाराज दशरथ राम के वियोग मे इस प्रकार उपर्युक्त तीन दारुण स्थितियो मे उत्तरोत्तर शोकाक्रान्त होते हुए मरणासन्न स्थिति को प्राप्त हुए और प्राण त्याग स्वर्ग सिधारे—"हा राम पुत्र हा सीते हा लक्ष्मण गुणाकर ।

त्वद्वियोगादह प्राप्तो मृत्यु कैकेयिसम्भवम् !! (अयो० ७।४७)

भरत का शोक—१. पिता की मृत्यु का समाचार पाकर भरत "हा तात, हा तात मुझे दु खसागर मे छोडकर आप कहाँ चले गए" कहते हुए पृथ्वी पर गिर पडे।

तच्छ्रुत्वा निपपातोर्व्यां भरत. शोकविह्वलः ।

हा तात क्व गतोऽसि त्व त्यक्त्वा मा वृजिनार्णवे ॥ (अयो० ७/६६)

२ रामसीतालक्ष्मण के वनवास के समाचार को सुनकर उनका शोक क्रोध में परिणत हो जाता है और वह मां को बुरा भला कहने लगते है, ग्लानि से कातर हो उठते है और विष खा लेने या अग्नि प्रवेश की सोचते है—

"अहमग्नि प्रवेक्ष्यामि विष वा भक्ष्याम्यहम् ।" (अयो० ६/८०)

३. भरत माता कौशल्या के यहाँ पहुचे । उनको देखकर माता कौशल्या फूट-फूटकर रोने लगी । उधर भरत भी उनके चरणो मे पड कर रोने लगे ।

"सापि त भरत दृष्ट्वा मुक्तकण्ठा रुरोद ह ।" (अयो० ७/८२)

"पादयो पतितस्तस्या भरतोऽपि तदारुदत् ।" (वही ८३)

माता कौशल्या को बहुत विलाप करता हुआ देख कर भरत ने उनके सामने अपनी स्थिति स्पष्ट की और निम्नलिखित शपथ ली—यदि मै माता कैकेयी के मत मे होऊँ तो—

१. मुझे सौ ब्रह्म हत्याओ का पाप लगे ।

२. अरुधती सहित श्री वशिष्ठ जी को खड्ग से वध करने का जो पाप हो वह सारा पाप मुझे लगे ।

(देखिए—अयो० ६/८७, ८८, ८९)

रनिवास का शोक—रनिवास की रानियो के लिए रामवनगमन प्रसग मे कई अवसर शोक के प्रकट हुए । इन अवसरो पर कवि ने रनिवास के शोक का प्रकटीकरण निम्नलिखित रूप मे किया—

१. महाराज को मूर्च्छित देख कर रनिवास की सारी रानियाँ रोने लगी ।

राजान मूर्च्छित दृष्ट्वा चुक्रुशु सर्वयोषित । (अयो० ३/५३)

२. कैकेयी ने सीता को वल्कल वस्त्र दिए किन्तु वह उनको पहनना नही जानती थी । वह उनको लेकर लज्जा सहित राम की ओर देखने लगी । राम ने उन वस्त्रो को सीता के वस्त्रो पर लपेट दिया और इस प्रकार उनका पहनना बतलाया । इस मर्मस्पर्शी दृश्य को देख कर रनिवास की समस्त स्त्रिया रोने लगी ।

"···सीता तन्न विजानती हस्ते गृहीत्वा रामस्य लज्जया मुखमैक्षत ।

रामो गृहीत्वा तच्चीरमशुके पर्यवेष्टयत् ॥

तद् दृष्ट्वा रुरुदु सर्वे राजदारा. समन्तत ।"

(अयो० ७/३६, ३७/३८)

कहना न होगा कि कवि ने इस स्थल पर करुणरस की जो योजना की है वह उसकी मनोवैज्ञानिक सूक्ष्म दृष्टि पर आधारित है । ऐसे सरल, निरीह, अबोध तथा सुशील पात्रो को इस प्रकार यातना का शिकार होते हुए देखकर किस का हृदय न फूट पडेगा ।

३. महाराज दशरथ के निधन पर कौशल्या, सुमित्रा तथा अन्यान्य रानियाँ छाती पीटकर रोने लगी ।

कौशल्या च सुमित्रा च तथान्या राजयोषित. ।
चुक्रुशुश्च विलेपुश्च उरस्ताडनपूर्वकम् । (अयो० ७/४८, ४६)

२. **रामवनवास**—राम को विपन्नावस्था मे देख कर गुह का सवेदनाजन्य शोक—

राम को कुश और पत्तो की साथरी पर सोता देखकर गुह को बडा दु ख हुआ और आँखो मे आँसू भर कर वह विधाता के विधान पर टिप्पणी करने लगा और कैकेयी और मथरा को कोसने लगा। सुप्त राम समालोक्य सोऽश्रुपरिप्लुतः ।
लक्ष्मण प्राह विनयाद् भ्रात. पश्यसि राघवम् ।।
शयान कुशपत्रौघसस्तरे सीतया सह ।
यः शेते स्वर्णपर्यङ्के स्वास्तीर्णे भवनोत्तमे ।। (अयो०६/१,२)

महाराज दशरथ के निधन का समाचार पाकर राम सीता और लक्ष्मण अति दु खी हुए उनके शोक की अभिव्यक्ति निम्नलिखित रूप मे हुई है—

१ राम और लक्ष्मण–इन शूल के समान वचनो को सुनकर "हाय, हम मारे गए" इस प्रकार रोते हुए भूमि पर गिर पडे ।

२ समस्त माताएँ तथा अन्य उपस्थित लोग भी रोने लगे । (सवेदनाजन्य रूप)

३ श्रीराम बराबर यह कहने लगे—'हे तात, आप मुझे छोडकर चले गए । मैं अनाथ हो गया । मुझे अब कौन प्यार करेगा ?"

राम के साथ सीता और लक्ष्मण भी बहुत विलाप करने लगे ।

श्रुत्वा तत्कर्णशूलाम···"हा हतोऽस्मीति पतितो रुदन् राम सलक्ष्मण. ।
ततोऽनुरुरुदु सर्वा मातरश्च तथापरे ।
हा तात मा परित्यज्य क्व गतोऽसि घृणाकर ।
अनाथोऽस्मि महाबाहो मा को वा लालयेदित· ।।"
(अयो० ६/१४, १५, १६)

सीताहरण—सीताहरण प्रसग से पूर्व राम-सीता को एकान्त मे लीला का सारा रहस्य बता देते है—"रावण तुम्हारे पास भिक्षु का रूप धर कर आएगा । तुम अपने समान रूपवाली अपनी छाया कुटी मे छोडकर अग्नि मे प्रवेश कर जाओ ।" इसके पश्चात् मायामृग को देख कर हँसती हुई सीता उस मृग को प्राप्त करने का आग्रह करती है। इस प्रकार उपर्युक्त पृष्ठ भूमि मे सीताहरण पर राम का निम्नलिखित विरह विकल स्वरूप रस की अनुभूति नही करा पाता क्योकि इस शोक प्रदर्शन से पूर्व भी राम यह बता देते है कि" ···शोचामि प्राकृतो यथा "

"हा प्रिये क्व गतासि त्व नासि पूर्ववदाश्रमे । (अर० ८/१६)
अथवा मद्विमोहार्थ लीलया क्व विलीयसे । (अर० ८/१६)
मृगाश्च पक्षिणो वृक्षा दर्शयन्तु मम प्रियाम् । (अर० ८/१७)

मम जायेति सीतेति विललापातिदुःखितः ।। (अर० ८/२०)

लक्ष्मण शक्ति—लक्ष्मण शक्ति के प्रसंग में राम की शोकानुभूति का कवि संकेत मात्र उल्लेख करता है—

रामोऽपि लक्ष्मणं दृष्ट्वा मूर्च्छितं पतित भुवि । (युद्ध ६/३१)
मानुषत्वमुपाश्रित्य लीलानुशुशोच ह । (वही/३३)

सीता का शोक—१. रावणवध के पश्चात् सीता राम के पास लाई गई। सीता के चरित्र को शंका की दृष्टि से देखते हुए राम ने न कहने योग्य बहुत सी बाते कहीं।

"अवाच्यवादान्बहुशः प्राह तां रघुनन्दन. ।"

इस प्रसंग में करुणरस की अनुभूति सभव थी किन्तु कवि ने उसकी योजना नही की। सीता को प्रत्युत सतोष हुआ और उनमे अद्भुत साहस का सचार हुआ। वह अपनी पवित्रता का विश्वास कराने के लिए सहर्ष अग्नि मे प्रवेश कर गई।

२. दूसरा प्रसग लोकापवाद के भय से सीता का निर्वासन है। इस प्रसग की पृष्ठ भूमि मे भी राम सीता को सारा रहस्य निम्नलिखित शब्दो मे प्रकट कर देते है—

"कल्पयित्वा मिष देवि लोकवादत्वदाश्रयम् । (उत्तर/४, ४१)
त्यजामि त्वा वने लोकवादाद्भीत इवापर ।। (उत्तर/४, ४२)

यह सारा प्रसग बैकुण्ठ जाने से सबन्धित है जिसमे भगवान् राम और सीता की सहमति ही नही प्रत्युत रहस्यमयी योजना भी सम्मिलित है। इसीलिए इस प्रसग में सकेत मात्र उल्लेख से ही काम चल गया है। लक्ष्मण जब सीता को वन मे छोड कर आते है तो केवल निम्नलिखित अभिव्यक्ति से इस प्रसग की कारुणिक प्रवृत्ति की ओर कवि सकेत करता है—

लोकापवादभीतया त्वा त्यक्तवान् राघवो वने । (उ० /४/५८)
इत्युक्त्वा लक्ष्मणः शीघ्रं गतवान् रामसन्निधिम् ।
सीतापि दुखसन्तप्ता विललापातिमुग्धवत् ।।" (उ० ४/५९, ६०)

सीता का पृथ्वी-प्रवेश—सीता जी अपने सतीत्व और पातिव्रत का उच्चतम आदर्श उपस्थित करती हुई पृथ्वी में प्रवेश कर गईं। इस अवसर पर राम के शोक की चर्चा मात्र की गई है क्योकि कवि के दृष्टिकोण के अनुकूल भगवान् राम की पूर्व निश्चित योजना के अनुसार ही यह सब हो रहा है। इसीलिए भगवान् के शोक का उल्लेख करते हुए कवि यह कहना नही भूलता—

रामस्तु सर्वं ज्ञात्वैव भविष्यत्कार्यगौरवम्" । इसके साथ—

राम के शोक का वर्णन निम्नलिखित शब्दो मे समाप्त कर दिया जाता है—

"अजानन्निव दुःखेन शुशोच जनकात्मजाम् ।"

विपक्षीपात्रों की शोकानुभूति—बालिवध पर तारा के शोक मे करुणरस की विभिन्न स्थितियाँ प्रकट हुई है—

तारा के शोकगत अनुभव—१. शोक से मूर्च्छित होगई। (निहितं बालिन

श्रुत्वा तारा शोकविमूर्च्छिता (कि० ३/४)

२ सिर तथा छाती को हाथों से पीटने लगी। (अताडयत्स्वपाणिभ्या शिरो वक्षश्च भूरिष (कि० ३/६)

३. रोती हुई, बाल बिखरे हुए। (रुदती मुक्तमूर्धजा—कि० ३/६)

४. रोती हुई बालि के पैरो पर गिर पडी। (रुदती नायनायेति पतिता तस्य पादयोः (कि० ३/७)

तारा की शोकागत मार्मिक उक्तियाँ—१. जिस बाण से बाली को मारा है उसी से मुझे मार डालिए। (राम मा जहि बाणेन येन वाली हतस्त्वया कि० ३/८)

२ वे मेरी बाट देख रहे होगे, मेरे बिना उनको स्वर्ग मे भी चैन न होगा। पत्नी-वियोग का दु ख तो आपने अनुभव किया है। (स्वगऽपि न सुख तस्य मा विना रघुनन्दन पत्नीवियोगज दु खमनुभूत त्वयानथ।—कि० ३/९, १०)

तारा की शोकगत व्यंग्योक्तियाँ—१ बाली के पास मुझे पहुंचाकर आपको स्त्रीदान का फल मिलेगा। (वालिने मा प्रयच्छाशुपत्नीदानफल भवेत्—की० ३/१०)

२ सुग्रीव से—अब तुम रुमा के साथ निष्कटक राज्य भोगो। (रुमया सार्ध मुड्क्ष्व—कि० ३/११)

रावण का शोक—कुम्भकर्ण-वध के अप्रत्याशित समाचार को पाकर रावण मूर्च्छित हो कर पृथ्वी पर गिर पडा और सज्ञाप्राप्त करके विलाप करने लगा। रावण के शोक का इससे अधिक वर्णन न कर कवि ने मेघनाद को ला उपस्थित किया और शत्रुओ के सहार का विश्वास दिलाकर शोक-शमन किया।[1]

मेगनाद वध—मेघनाद वध के समाचार को पाकर रावण अति शोकाकुल होगया उसके शोक की निम्नलिखित तीन स्थितियाँ विशेष उल्लेखनीय है—

१ अनुभावगत स्थिति—मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पडा और अति दीन हो कर विलाप करने लगा। (रावण पतितो भूमौ मूर्च्छित्न पुनरुत्थित। विललापाति-दिनात्मा पुत्रशोकेन रावण। —युद्ध० ९/५९)

२. **पुत्र के गुणकर्म का स्मरण एव कथन**—आज इन्द्रजीत को मारा गया सुन कर सारे देवता, लोकपाल, महर्षिगण सुख से सोयेगे। इस प्रकार पुत्र के शोक मे भाँति-भाँति विलाप करने लगा—

"अद्य देवगणा सर्वे लोकपाला महर्षय।
हतमिन्द्रजित ज्ञात्वा सुख स्वप्स्यन्त निर्भया।
इत्यादि बहुश तुत्रलालसो विललाप ह। युद्ध० —९/६०, ६१)

३. **शोक की क्रोध में परिणति—अ**—अति क्रुद्ध होकर अपने शत्रुओ को

---

१. भ्रातर निहत श्रुत्वा···रावणःशोकसन्तप्तो मूर्च्छितः पतितो भूमावुत्थाय विललाप ह।" —युद्ध० ८/५३, ५४

नष्ट करने की इच्छा से राक्षसो से विचार करने लगा। (देखिए—युद्ध० ६/६२)

आ—शोक और क्रोध से विकल हो सीता को मारने के लिए दौड़ा। (देखिए-युद्ध ६/६)

रावण वध पर मंदोदरी का शोक—रावण वध पर मदोदरी और विभीषण के शोक का कवि द्वारा कथनमात्र है। इस प्रसग की अभिव्यक्ति के लिए कवि उदासीन प्रतीत होता है जो कथा के चरम लक्ष्य की दृष्टि से स्वाभाविक है। निम्नलिखित टिप्पणी इस प्रसग के सम्बन्ध मे रामायण मे दी गई है।

रावण को भूमि पर पडा देखकर मदोदरी आदि समस्त स्त्रियाँ उसके पास आई और उसके सामने गिर पडी तथा शोक से विलाप करने लगी। विभीषण भी शोकाकुल हो गए और आर्त्त भाव से रावण के सामने गिर पडे और बहुत प्रकार से विलाप करने लगे।

"दृष्ट्वा रावणं पतितं भुवि···मदोदरीमुखा. सर्वा. स्त्रियो···पतिता रावणस्याग्रे शोचन्त्य पर्यदेवयन्।

विभीषण शुशेचार्त शोकेन महतावृत
पतितो रावणस्याग्रे बहुधा पर्यदेवयत्॥" —(युद्ध० १२/४, ५, ६,)

उपर्युक्त अध्ययन के आधार पर हम सहज ही निम्नलिखित परिणामो पर पहुँच जाते है—

वस्तुगत—१. यद्यपि इस कृति मे रामकथागत करुणरस के प्राय. सभी अगो को प्रश्रय दिया गया है किन्तु कवि का विशेष दृष्टिकोण प्राय. स्थलो पर रसनिष्पति मे बाधक सिद्ध हुआ है। सीता-निर्वासन प्रसग को भी कथावस्तु मे रखा है।

२. सहानुभूतिजन्य शोक के एक दो प्रसगो की नई उद्भावना की है। (गुह भगवान् को कुश शय्या पर सोता देखकर दु खी होता है।)

३. कथा का विस्तार अपेक्षाकृत सक्षिप्त हो गया है। बालमीकि की रामायण मे कथा का जो विस्तर दृष्टिगोचर होता है अध्यात्म रामायण मे न तो वह विस्तार है न करुण रस की मार्मिक एव दारुण अनुभूति को प्रकट करने के लिए बालमीकि की कथा के समान, प्रसगो मे भय और त्रास की योजना की गई है। दशरथ मरण प्रसग मे शोक की साघातिक स्थिति के लिए आयोजित स्थितियो मे कमी की गई है, भरत के परिताप के अन्तर्गत एक पूरी सूची के स्थान मे गिनीचुनी पाप गतियो का उल्लेख किया गया है, लक्ष्मण मूर्च्छा के दो प्रसग मे से शक्ति के प्रसग को ही प्रश्रय दिया गया है।

४. करुणरस के कतिपय नए प्रसंगो की उदभावना भी की गई है। (कैकेयी का सीता को वल्कल वस्त्र देना।)

५. अप्रिय प्रसंगों को सकेत रूप मे चलता कर दिया गया है। लंका से आई हुई सीता का (रामद्वारा) निन्दा प्रसंग।

अभिव्यक्तिगत—१. प्रायः स्थलो पर करुण की अभिव्यक्ति में कवि के दृष्टि-कोण के कारण बाधा उपस्थित हुई है।

२. "भूमि पतन" अनुभाव का कवि ने प्रायः प्रयोग किया है। इसके साथ मूर्च्छा, सिर छाती पीटना, केश खुले हुए होना आदि का भी उल्लेख हुआ है।

३. सहानुभूतिगत करुणानुभूति को प्रश्रय दिया गया है। करुण की मार्मिक अभिव्यक्ति के स्थलों पर सहानुभूतिगत शोक की प्रायः व्यवस्था की गई है।

४. इष्टनाशगत प्रसगो मे आलबन का अभाव, आश्रय की असहायावस्था, अनाथदशा, विवशता एव विकलता का प्रायः उल्लेख हुआ है।

५. विपक्षी पात्रो की शोकानुभूति के प्रति कवि ने पक्ष के समान ही सहानुभूति प्रकट की है। इन प्रसगो मे व्यग्य-उक्तियो तथा निराशाजन्य उदासीनता का विशेष उल्लेख हुआ है।

६. एक-दो स्थलो पर शोक की परिणति रोष मे दिखलाई गई है।

भवभूति सस्कृत साहित्य के महान कलाकार है। उनके तीन नाटक प्रसिद्ध है —महावीरचरित्र, मालती माधव तथा उत्तररामचरित। इनमे उत्तररामचरित करुणरस की एक अनुपम कृति है। करुणरस की इससे सुन्दर और प्रिय कृति साहित्य मे कभी सभव न हो सकी।

भवभूति के अनुसार करुणरस ही एक मात्र रस है। जिस प्रकार समुद्र का जल कभी भवर कभी बुद्बुद और कभी तरगो का रूप धारण कर लेता है किन्तु वास्तव मे है सब जल ही उसी प्रकार निमित्त भेद से किवा रस सामग्री की विभिन्नता से एक ही करुणरस अन्य रसो के रूप मे प्रकट होता है।"[1]

एको रसः करुण एव—उत्तर रामचरित मे भवभूति ने "एकोरस करुणएव" सिद्धान्त की प्रतिष्ठा एव सम्पुष्टि की है। इस नाटक मे कवि ने करुणरस की व्यापकता का विशेषरूप से दिग्दर्शन कराया है। शास्त्रीय मर्यादा के अनुसार नाटक का मुख्य रस शृंगार या वीर होना चाहिए किन्तु भवभूति ने इस रुढि के प्रतिकूल प्रगति का अनुसरण किया।

इस शास्त्रीय मर्यादा को दृष्टिगत रखते हुए भवभूति मे शृगार और वीर रस का मुख्य रूप से तथा अन्य रसो का गौणरूप से करुणरस मे पर्यवसान दिखलाकर शास्त्रीय रूढि का खण्डन किया। उनकी दृष्टि सभी रसो पर थी। इसलिए उन्होने प्रत्येक रस को करुणरस के व्यापक क्षेत्र मे लाने का प्रयत्न किया जिसमे उनको पूर्ण सफलता प्राप्त हुई।

इस नाटक मे प्रारम्भ से अन्त तक सामाजिक की वही दशा रहती है जो जल-

---

१. "एकोरसः करुण एव निमित्तभेदाद्भिन्नः पृथक्पृथगिवाश्रयते विवर्तान्।
आवर्तबुद्बुदतरङ्गमयान्विकारानम्भो यथा सलिलमेव हि तत्समस्तम्"
पाठा०—तु तत्समग्रम् (उ० रा०–३/४७)

पूरितघट को सिर पर रखकर पनघट से जाती हुई नागरी की रहती है। जिस प्रकार वह अपनी सखियो से खेलती तथा इठलाती हुई जाती है किन्तु घट सतुलन की सुरति से वह क्षणभर को भी विरत नही होती, उसी प्रकार इस नाटक का सामाजिक शृंगार, हास्य, वीर, भयानक, वीभत्स, रौद्र, अद्भुत तथा शान्त आदि सभी रसो का रसास्वादन करता है किन्तु उसकी सुरति शोकस्थायी मे ही लगी रहती है। कवि की यह अलौकिक योजना वस्तुत. धन्य है। यहाँ सक्षेप मे पूरे नाटक पर इस दृष्टिकोण से दृष्टिपात कर लेना आवश्यक होगा जिससे उपर्युक्त कथन की विवेचना सभव हो सके।

प्रथम अक मे सभोग शृङ्गार तथा हास्य की मृदु रेखा के दर्शन होते हैं। देवीजी के अन्यमनस्क भाव की शान्ति के लिए महाराज उन्हे चित्र-दर्शन कराते है। रामायण के पात्रो का लक्ष्मण परिचय देते है। उर्मिला के अवसर पर वह मौन हो जाते है। अविलम्ब देवीजी शिष्टहास की एक रेखा खीच देती है—"वत्स इयमप्यपरा का" भाभी देवर का यह परिहास कितना प्रिय एव सरल है, यह यहाँ विशेषरूप से अवलोकनीय है। यह हासपरिहास कितना करुणापूर्ण है इसका अनुमान उस स्मृतिगत विरह-वेदना से लगाया जा सकता है जिसके अन्तर्गत राम सीता हरण चित्र को देखकर विह्वल तथा कातर हो उठते है। लक्ष्मण उनकी दशा को ताड जाते है।

"आपका अश्रु प्रवाह मोतियो की टूटी लडी की भाँति अनेक धाराओ मे टपटप गिरता हुआ पृथ्वी पर पहुँच कर बिखर रहा है। बरबस दबाए जाने पर भी आपके हृदय का यह भरा हुआ उद्वेग आपके फडकते हुए ओठो तथा नासापुटो द्वारा दूसरो को सहज ही सूचित हो रहा है।"[1]

इसके पश्चात् सभोग शृंगार का प्रगाढ प्रसग आता है। सीता जी पति की भुजा पर सिर रखकर सो जाती है। राम अपने प्रणय को मुखरित करने लगते है—

" यह गृहलक्ष्मी ऐसी है जैसे नेत्रो के लिए अमृत की सलाई हो। इसके शरीर को स्पर्श करके चन्दन की भाँति शीतलता अनुभव होती है।"[2]

किन्तु इस प्रणय-प्रसग मे कितनी वेदना भरी है इसका अनुमान कर्तव्यपरायण राम के निम्नलिखित चीत्कार से लगाया जा सकता है—

"ओ भोली रानी, तू मुझको छोड दे। मै पापी चान्डाल हूँ। तू चन्दन के धोखे विषवृक्ष की शाखा से लिपट गई है।"[3]

---

१. अय ते वाष्पौघस्त्रुटित इव मुक्तामणिसरो
विसर्पन्धाराभिर्लुठति धरणी जर्जरकण।
निरुद्धोऽप्यावेगः स्फुरदधरनासापुट तया
परेषामुन्नेयो भवति च भराध्मात हृदयः"—उ०रा० १/२९

२. "इय गेहे लक्ष्मीरियममृतवर्तिर्नयनयो
रसावस्याः स्पर्शो वपुषि बहुलश्चन्दनरस।"—उ०रा० १/३८

३. "अपूर्वकर्मचण्डालमयि मुग्धे विमुञ्च माम्
श्रितासि चन्दनभ्रान्त्या दुर्विपाक विषद्रुमम्।"—उ०रा० १ ४६

कर्त्तव्याहत राम के प्रणयबलिदान की यह अति करुणापूर्ण आत्मग्लानि है। इस स्थल पर राम के साथ सामाजिक की रतिस्थायी की प्याली टूट जाती है जो अभी तो भर भी नही पायी थी।

दूसरे अंक की प्रस्तावना बारह वर्ष के पश्चात् की गई है। इस दीर्घ अवधि मे राम तथा सीता ने किस प्रकार अपनी विरह-वेदना को सहा होगा। यह कल्पना ही स्वय अति वेदनापूर्ण है। एक प्रजापालन तथा कर्त्तव्य भार से जीवित है तो बेचारी दूसरी पुत्र धरोहर के नाते येनकेन प्रकारेण जीवन नौका खे रही है।

इस अक के प्रारम्भ मे सीता के कष्टो का अन्य पुरुष द्वारा वर्णन कराया गया है जिसके द्वारा सामाजिक की करुणानुभूति के लिए मानो एक पृष्ठभूमि प्रस्तुत हो जाती है।

इस अक मे बन की गम्भीरता, हिसक पशुओ का शोर, साँप के स्वेद का गिरगिट द्वारा पान आदि भयानक दृश्य भी उपस्थित होते है जो भयानक रस की योजना करते है। राम इन दृश्यो के सम्बन्ध मे टिप्पणी देते हुए कहते है "किमत: पर भयानक स्यात्," भयानक रस की यह योजना सीता के कष्टो को अति वेदनापूर्ण बना देती है। पग-पग पर सामाजिक सीता की करुणादशा पर विकल हो जाती है।

तृतीय अक मे राम दण्डकारण्य मे शाम्बूक वध के लिए जाते है। वासन्ती उनको अतीत की वेदनापूर्ण स्मृतियाँ दिलाकर करुणारस के मार्मिक चित्र उपस्थित करती है। विरह के दिनो मे राम इन स्मृतियो के अन्तराल मे अति कातर हो जाते है।

एक सुकुमार स्मृति की योजना यहाँ अवलोकनीय है।

"हे देव, देखिए यह वही लताकुँज है जिसके द्वार पर खडे-खडे आप सीता की बाट जोह रहे थे और सीता गोदावरी के तट पर देर तक हंसो के साथ क्रीडा करती हुई मनोविनोद कर रही थी। थोडी देर पश्चात जब लौटकर सीता ने आप को कुछ उदास देखा तो अत्यन्त कातर भाव से उन्होने कमल की कलियो के समान अपनी अगुलियो को जोड़ कर विलम्ब के लिए क्षमा याचना करते हुए आपको प्रणाम किया था।[1]"

इस मार्मिक प्रसग की दारुण अनुभूति राम के लिए असह्य हो गई होगी, यह निश्चित है।

इसी अक में कवि ने छाया सीता की एक मनोवैज्ञानिक योजना की है। सीता अदृष्य है तथा इसी रूप मे वह नियोजित सम्पूर्ण कार्यो को करती है। इस योजना

१. अस्मिन्नेव लतागृहे त्वमभवस्तन्मार्गदत्तेक्षण:
सा हसै: कृत कौतुका चिरमभूदगोदावरी सैकते।
आयन्त्या परिदुर्मनायितमिव त्वा वीक्ष्य बद्धस्तया
कातर्यादरविनदकुड्मलनिभो मुग्ध: प्रणामाजलि:॥ —उ० रा० ३|३७

द्वारा राम और सीता की आत्यतिक विरहानुभूति का उद्घाटन सम्भव हो सका है। विषम विरह से संतप्त सीता राम के उत्कृष्ट पत्नी-प्रेम के दर्शन भी करती है जिसका उनको गर्व है।

इस अक को विरह व्यथा का संघात कहना चाहिए जिसके अन्तर्गत मूर्च्छा तथा अचेतन दशा किंचित काल के लिए पात्रो एव सामाजिक के हित में पटाक्षेप का काम करती है। हृदय के मार्मिक भावो के आधार पर प्रेयसी को मूर्तिमान देखना, प्रबल अश्रुप्रवाह से प्रेम को सीचना तथा कर्त्तव्य की विवशता के समक्ष व्यक्तित्व की मर्मस्पर्शी वेदना, इस अंक की विशेषताएँ है जिनके फलस्वरूप इस अक मे करुणरस का चरमोत्कर्ष सभव हो सका है।

सीता की मनोदशा का एक मनोवैज्ञानिक अध्ययन इस प्रसग मे अवलोकनीय है—

तमसा कहती है—"हे बेटी इस समय तुम्हारा हृदय पुनः समागम की आशा न रह जाने से उपेक्षामय, अकारण परित्याग से विषादपूर्ण, दीर्घ वियोग मे अचानक भेंट हो जाने से नितान्त स्तब्ध, राम के सहज सौजन्य से प्रसन्न, प्रिय के विलापो के कारण अत्यन्त शोकाकुल तथा निरतिशय प्रेम के कारण सर्वथा द्रवीभूत सा हो रहा है।"[1]

इसी अंक मे रावणजटायुस्मृति-प्रसग मे वीभत्स रस का प्रकटीकरण हुआ है। खच्चर की हड्डियाँ पडी दिखलाई दे रही है। यह वीभत्स की सकेतमात्र योजना कही जा सकती है। एक क्षण को वीभत्स की ओर उन्मुख सामाजिक पुन करुण रस की धारा में अवगाहन करने लगता है।

चतुर्थ अक मे सीता को मृत मानकर जननी कौशल्या तथा जनक विलाप करते हैं। लव का सम्पर्क उनकी व्यथा को और भी गभीर बना देता है। भाँति-भाँति की मर्मस्पर्शी कल्पनाएँ उनके मानस मे (सीता के सम्बन्ध मे) उठती है जिनको कवि स्वय पाठको के लिए छोड देता है।

इसी अक मे दो तपसी बालको का संक्षिप्त प्रसग विष्कम्भक के अन्तर्गत प्रह-सन की योजना करता है। यह प्रहसन भी अपनी पृथक् सत्ता न रखते हुए नाटक की मूल धारा मे ही विलीन दृष्टिगोचर होता है।

वीर रस का प्रकटीकरण भी इस अक मे लव के वीरोचित उद्गारो में हुआ है। वह कहते है—

"दो दाँतो के समान अति घोर धनुष्टंकार हो रही है, जिह्वा के समान चाप से

---

१. तटस्थ नैराश्यादपि च कलुष विप्रियवशाद्
वियोगे दीर्घेऽस्मिन्झटिति घटनोत्तम्भितमिव
प्रसन्नं सौजन्याद्दयितकरुणैर्गाढकरुण
द्रवीभूत प्रेम्णा तव हृदयमस्मिन्क्षण इव। — उ० रा० ३/१३

ज्या लग रही है। संसार को भक्षण करने के लिए जब काल अपना मुख खोलता है आज मेरी यह सेना उसी काल की छवि धारण किए हुए है।"[1] कहना न होगा कि यह वीर गर्वोक्ति भ्रातृ-द्रोह की दृष्टि से अति करुणापूर्ण है।

पाँचवे अंक में वीर और रौद्र रस की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है किन्तु चन्द्रकेतु तथा लव दोनों भाइयो का एक दूसरे को न पहिचानते हुए युद्ध करना ही सामाजिक की अनुभूति के लिए कितना वेदनाजनक है, यह स्पष्ट है।

षष्ठ अंक के अन्तर्गत श्री रामचन्द्र जी विमान से उतर कर लव और चन्द्रकेतु के युद्ध को शान्त कराते है। वीर एव रौद्र दोनों रसो का करुण मे पर्यवसान हो जाता है जब राम अपने पुत्रों को न पहिचानते हुए स्वाभाविक स्नेह के फलस्वरूप दोनो को हृदय से लगा लेते है। उनकी मुखछवि मे सीता सौन्दर्य की अनुकृति, जृम्भक शस्त्र की सहज सिद्धि तथा इन बालको की स्वाभाविक शालीनता राम के उद्वेग का कारण बन जाती है। वह सीता की गर्भभारालसा अवस्था का स्मरण कर अति कातर तथा इन बालकों का परिचय प्राप्त करने के लिए अति आतुर हो जाते हैं।

सप्तम अक मे गर्भांक नाटक की योजना नाटक को सुखान्त बनाने का कवि का सफल प्रयास है। इस गर्भांक नाटक के प्रारम्भ में ही घोषित कर दिया जाता है कि यह अद्भुत एव करुण रस का नाटक है। सीता का मिलन एक अद्भुत रहस्य है जो इस सुखान्त योजना मे भी अति मार्मिक एव करुणापूर्ण बन जाता है। इस नाटक को देखते हुए राम की दशा गंभीर शोक एव आत्म ग्लानि के कारण अति चिन्ताजनक हो जाती है। सीता के स्पर्श द्वारा उनकी प्राण रक्षा की जाती है तथा इस प्रकार राम सीता का मिलन होता है।[2] यह मिलन स्पष्टतया करुण के चरमोत्कर्ष के रूप मे प्रकट होकर रस की उत्कृष्ट अभिव्यजना करने मे सफल होना है।

इस प्रकार भवभूति अपनी कला-कुशलता द्वारा रसऐक्य की प्रतिष्ठा तथा सम्पुष्टि करते है। उनके इस प्रयास के लिए करुण रस निश्चित रूप से उपयुक्त रस सिद्ध हुआ जिसमे अन्य सब रसों का समावेश सभव हो सका।

नाटक की दृष्टि से पात्रगत घटनाएँ न्यून तथा अपर्याप्त प्रतीत होती है किन्तु अन्तर्द्वन्द्वो के सफल चित्रण की दृष्टि से नाटक मनोविज्ञान की सिद्धान्त पुस्तिका कहा

---

१. ज्या जिह्वा वलयितोत्कटकोटि दंष्ट्र
मुद्भूरिघोर घनघर्घर घोषमेतत्
ग्रास प्रसक्तहसदन्तकवक्त्रयन्त्रजृम्भाविडम्बि विकटोदरमस्तु चापम्"।
—उ० रा० ४/२९

२. क्या ही अच्छा होता यदि कवि सीता-मिलन की सुखद योजना को स्थायी रूप देता। सीता के पृथ्वी-प्रवेश प्रसग को कथा वस्तु से निकाल कर सीता को जीवित रहने देता तथा सभोग शृंगार के सुन्दर चित्र प्रस्तुत कर के नाटक को वास्तव मे सुखान्त बना देता है।

*

जा सकता है, रसऐक्य की प्रतिष्ठा एवं सम्पुष्टि जिसका उद्देश्य है।

संस्कृत साहित्य के प्रमुख रामकथाकारों के करुण प्रसगो का अध्ययन कर लेने के पश्चात् सहज ही निम्नलिखित परिणामो पर पहुँच सकते है—

दृष्टिकोणगत—१. भगवान् राम के नर और नारायण दोनों रूपो के प्रति कवियों की श्रद्धा प्रकट हुई है। वाल्मीकि नर रूप की प्रतिष्ठा करते है तो अध्यात्म रामायण मे भगवान् के नारायण रूप की ही प्रमुखता है। साथ ही बाल्मीकि ने लोक-मर्यादा तथा लोकलाज को कथावस्तु का फल रखा है तो लोकनिन्दा और लोकपवाद के क्रोड़ मे भवभूति की नारी भावना समाज के लिए प्रश्न बन जाती है। सीता निर्वासन एक कर्त्तव्य-आहत पति का अतिकार्य है जिसका समाधान कठिन हो जाता है।

विषयगत—१. वाल्मीकि ने कथा का सविस्तर वर्णन किया है। उनके सफल प्रयास ने अन्य कवियो की यशलालसा के लिए अवसर छोडे है। इसीलिए अन्य कृतियो मे कथा का स्वरूप सक्षिप्त प्राप्त होता हे अथवा मूल कथा के उत्तरांश पर ही कार्य किया गया है।

२. इष्टनाश अथवा प्रियवियोग ही करुणरस के मुख्य आलबन रहे हैं।

३. विपक्षी पात्रो के साथ आदि कवि की पूर्ण सहानुभूति रही है। उनकी शोकानुभूति का भी समकक्ष रूप मे विस्तार सहित वर्णन किया गया है।

४. कथा वस्तु मे करुणरस के प्रसगो की विभिन्न स्थितियाँ प्रकट की गई है जिनके सदर्भ मे करुण की चरम अभिव्यक्ति मरण की सकारणता सिद्ध हो जाती है। बाल्मीकि ने विशेष रूप से यह प्रयत्न किया है तथा महाराज दशरथ की मृत्यु के लिए विभिन्न स्थितियो की योजना की है।

५ बाल्मीकि कथावस्तु मे करुणरस के ऐसे प्रसग भी आ गये है जिनमे त्रास और भय की योजना हुई है। ऐसे प्रसगो का अनुकरण हिन्दी-काव्यों मे नही हुआ है।

अभिव्यक्तिगत—१ करुणरस के प्रसगो मे ऊहात्मक कटूक्तियो के स्थान में सहज एव स्वाभाविक भावो, उक्तियो तथा व्यग्य एव कटूक्तियो का भी सहारा लिया गया है। अभिव्यक्ति प्रत्येक स्थल पर अति मार्मिक बन पडी है।

२ प्रियवियोग के अन्तर्गत चराचर जगत् से सहानुभूति प्रकट की गई है मानवीकरण का प्रयोग हुआ है। भवभूति की छाया सीता मानवीकरण तथा कल्पना, की अद्वितीय रचना है।

३. शोकानुभूति के विश्लेषण तथा विकास की ओर विशेष ध्यान दिया गया है तथा मनोविज्ञान के सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्वो का उद्घाटन किया गया है, आत्मग्लानि, परिताप, एव आत्मनिन्दा के प्रसग मनोवैज्ञानिक विश्लेषण पर आधारित होने के कारण अति मर्मस्पर्शी बन गये है।

४. महर्षि वाल्मीकि की करुणा की मार्मिक अनुभूति का प्रतीक "कुररी का विलाप" है। अध्यात्म मे "भूमिपतन" तथा भवभूमि के 'उत्तर रामचरित' में भाव संघातों की योजना विशेष रूप से अवलोकनीय है।

*

५. इष्टनाश के साथ भविष्य की चिन्ता, आश्रम की असहायावस्था तथा यथा-स्थान आलंबन की महत्ता के समक्ष अन्य इष्टजनों की लघुता तथा उनकी उपेक्षा प्रकट हुई है।

अपभ्रंश साहित्यगत रामकथा में करुणरस की परम्परा

अपभ्रंश साहित्य के अन्तर्गत स्वयभू कवि के 'पउमचरिउ' मे रामकथा का वर्णन हुआ है। यह एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। करुणरस की परम्पराओ के विश्लेषण की दृष्टि से यह ग्रन्थ और भी महत्वपूर्ण है। हिन्दी रामकथागत करुणरस की प्राय: परम्पराओ का मूलस्रोत सस्कृत रामकथा तथा अपभ्र श रामकथा मे खोजना असगत न होगा। इसी दृष्टि से यहाँ अपभ्रंश साहित्यगत रामकथा की पात्रगत एव वर्णनगत (करुणरस की) परम्पराओ का अध्ययन किया जा रहा है।

पात्रगत परम्परा—पात्रगत परम्परा के अन्तर्गत शोकानुभूति का निम्नलिखित दो रूपो मे प्रकाशन हुआ है—

अ—आलबन की क्षति का प्रभाव।

आ—आलंबन के लिये आश्रयादि की शोकानुभूति।

आलबन की क्षति के प्रभाव के अन्तर्गत निम्नलिखित चार तथ्यो पर विशेष प्रकाश पडता है।

अ—अपार दु ख के कारण प्रकृति के महज व्यापारो की सहेतुक कल्पना।

आ—आलबन की क्षतिपूर्ति का असभव समझा जाना।

इ—आलबन की क्षति के दु:ख का आत्यतिक रूप में प्रकाशन।

ई—आलबन से सबन्धित सभी वस्तुओ को विनष्टप्राय समझना।

अपारदु:ख के कारण प्रकृति के सहज व्यापारों की सहेतुक कल्पना—मनोवैज्ञानिक दृष्टि से इस प्रकार की कल्पना अति स्वाभाविक है, मानवमानस अपने भावो के अनुकूल शेष प्रकृति को रगने मे सदा से सिद्धहस्त है। इस काल मे भी यह प्रवृत्ति काव्य का विशेष अंग बनी हुई थी।

आलबन की क्षति के कारण ही—

"णं सखर बहु अंसु जलोल्लिय"—मानो सरोवर अश्रुजल पूरित है।

"णं उण्हविय दवग्गि विऊएँ"—मानो उपा वियोग की दावाग्नि है।

"णं अप्थविउ दिवायर दुक्खे"—मानो दिवाकर (इस महान दु ख के कारण ही) अस्त हो चला है।

लक्ष्मण शक्ति पर भरत का निम्नलिखित विलाप भी अति व्यापक रूप मे प्रकट हुआ है—

---

१. राहुल सांकृत्यायन की "हिन्दी काव्यधारा" किताबमहल प्रकाशन के आधार पर।

"दुक्खा उरु धाहा वराह लग्गु । पुण्णक्खइ हरि' व मुयंतु सग्गु ।
घत्ता ! हा पइ सोमिति ! मरंतएण, मरइ रिगरुतउ दासरहि ।
भत्तार-विहरिगय रगारि जिह, अज्जु शराहीहूय महि ॥
हा भायर ! एक्कसि देहि वाय । हा पइ विरगु जइसिरि-विहव जाय ।
हा भायर ! महु सिरि पडिय गयरगु ।
हा हियउ फुट्टु दक्खहि वयरगु ।
हा भायर ! महुयर-महुर-वारिग ! महु रिगवडिऊ-सि दाहिरगउ पारिग।
हा ! कि समुद्दु जल-रिगवहु खुट्टु । हा ! किह दिट्ठु कुम्भकडाहु फुट्टु ।
हा ! किह सुरवइ लच्छिएँ विमुक्कु । हा ! किह जमरायहोमररगु ढुक्कु ।
हा ! किह दिरगयरु कर-रिगयरु चत्तु । हा ! किह अरगघु दोहगघु पत्तु ।
हा ! चवल हूयउ केम मेरु हा । केम जाउ रिगद्धरगु कुवेरु ।
धत्ता । हा ! रिगब्बिसु किह धरणेंदु थिउ, रिगप्पहु ससि-सिहि सीयलउ ।
टलटलि हुई केम महि, केम समीररगु रिगब्वलउ ॥

—(पउमचरिउ, रामायरग) ६९/१०— ११

आलंबन की क्षतिपूर्ति का असंभव समझा जाना—विशेष कर सहोदर भ्रात की क्षतिपूर्ति असभव समझी गई । स्त्री पुत्रादि के मरने पर दूसरा विवाह हो जाने अथवा दूसरे पुत्र के जन्म लेने से क्षतिपूर्ति सभव समझी गई । भाई की क्षतिपूर्ति की असभावना के सम्बन्ध में लक्ष्मरग-शक्ति का उदाहरग यहाँ लिया जा सकता है ।

"लब्भइ रयरगयरे रयरग-खारिग ।
लब्भइ कोइल-कुले यहुर-वारिग ।
लब्भइ चदरगु-सिरि मलय-सिगे ।
लब्भइ सुहवत्तरगु जुवइ अगें ।
गय-मोत्तिउ सिघलदीवें मगिग,
वइ रागरहो वज्ज पउरु ।
आयइ सव्वइ लब्भति जइ,
रगवर रग लब्भइ भाइवरु ॥"

—(पउमचरिउ रामायरग) ६९/१०—१२

आलंबन की क्षति के दुःख का आत्यंतिक रूप में प्रकाशन—विवश एव असहाय परिस्थितियों के अन्तर्गत आलबन की क्षति के दुःख का आत्यतिक रूप मे प्रकाशन अति स्वाभाविक है । इष्ट नाश के भी दारुरग अन्य दुःख मानव ने सहे हो किन्तु तत्कालीन परिस्थिति मे उसको वह दुःख महान प्रतीत होता है । इसका मुल्य कारग यही है कि उस समय उसके पास तुलनात्मक अनुभूति का कोई स्थूल आधार नही होता । वह आत्यतिक एव एकातिक रूप मे एक अनुभूति से प्रभावित रहता है । अतएव उसको उससे अधिक दारुरग दुःख की कल्पना ही नही हो पाती ।

आलंबन की क्षतिगत दुःख एवं शोक को आत्यंतिक रूप में प्रकट करने के लिए अन्य दारुण अतियो की कल्पना की गई और उन सब को वर्तमान दु ख से कम प्रभावशाली बताया गया। भाई के दु ख को अत्यन्त असह्य प्रकट करते हुए कहा गया—चाहे दूसरे राजा का शासन हो जाय, चाहे कालकूट विष-भक्षण करना पडे, चाहे वज्रासन पर सिर रखना पडे—चाहे नरक का दु ख भी आ जाय किन्तु भाई के वियोग-दु ख के समान ये दु ख नही हो सकते।

आलंबन से संबंधित सभी वस्तुओं को विनष्टप्राय समझना—आलबन पर आश्रित एव आधारित होने के कारण आलबन से सबधित सभी वस्तुओ को आलबन-क्षति के समय विनष्टप्रायः समझना अति स्वाभाविक है। रावणमृत्यु पर विभीषण-प्रलाप मे इस प्रवृति के दर्शन होते है।

विभीषण कहता है, "तुम अस्त नही हुए प्रत्युत सारा वश अस्त हो गया, तुम नही जीवित थे प्रत्युत त्रिभुवन जीवित था, तुम नही मरे बदीजन मर गए, तुम्हारा मुकुट भग नही हुआ प्रत्युत गिरि कदरा भग हो गई। तुम्हारी दृष्टि नष्ट नही हुई प्रत्युत लकापुरी नष्ट हो गई, तुम्हारी वाणी नष्ट नही हुई प्रत्युत मदोदरी नष्ट हो गई, तुम्हारा हार नही टूटा प्रत्युत तारागण टूट गए, तुम्हारा हृदय नही बिधा प्रत्युत आकाश बिध गया, तुम्हारी आयु समाप्त नही हुई प्रत्युत समुद्र समाप्त हो गया।"[1]

आलंबन के लिए अन्य पात्रों की शोकानुभूति—निम्न रूपो मे प्रकट हुई है—

अ—पात्र की अनुभावदशागत।

आ—पात्र की अनुभूति-गाभीर्य के अन्तर्गत प्रकृति मे मानवीकरण की प्रवृति।

इ—आलबन की क्षति मे आलम्बन के अभाव की अनुभूति।

ई—आलम्बन के गुणकथन द्वारा शोक प्रकाशन।

पात्र की अनुभावदशागत—पात्र की अनुभावदशागत शोकानुभूति के अन्तर्गत प्रायः कवियो की रुचि स्वाभाविकता की ओर रही है। शोकानुभूति प्रकट करने के लिए एक दो स्थलो पर एक विशेष अनुभाव "एक हाथ उठाना" का वर्णन हुआ है।

लक्ष्मण शक्ति का समाचार प्राप्त कर अयोध्या के अन्त पुर के भृत्यगण हाथ उठाकर रो रहे है। रावण मृत्यु पर मन्दोदरी भी हाथ उठाकर दहाड मारती हुई वर्णन की गई है।

---

१ "रुअइविहीसणु सोयवकमियउ। तुहु ण' त्थमिउ वंसु अत्यमियउ।
तुहु ण जिऊसि सयलु जिउ तिहुयणु। तुहु ण मुऊसि मुयउ वदिज्जणु।
दिट्ठ ण णट्ठ णट्ठ लकाउरि। वयण ण णट्ठ णट्ठ मन्दोयरि।
हारु ण तुट्टु तुट्टु तारायणु। हियण ण भिण्णु भिण्णु गयणंगणु।
... .
णीय ण आणिय आणिय जमउरि। हरि-वश कुद्ध कुद्ध ण केसरि।"
—(पउमचरिउ रामायण) ७६/३

यद्यपि शोकप्रदर्शन की यह प्रथा इस समय दिखलाई नही देती किन्तु मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह अस्वाभाविक भी प्रतीत नही होती। आर्तक्रन्दन के समय अचेतन वासना के फलस्वरूप सहायतार्थ पुकारने के लिए हाथ का उठ जाना स्वाभाविक है।

अश्रु मोचन—अनुभावदशागत प्रसंग में अश्रुमोचन विशेष महत्वपूर्ण माना गया है। इसका प्राय: स्थलो पर विस्तृत वर्णन हुआ है। शोकसतप्त प्रत्येक पात्र का पृथक्-पृथक् अश्रु मोचन दिखलाया गया है। इस रीति से अवश्य ही करुणरस की अभिव्यक्ति मे मार्मिकता तथा गम्भीरता आ जाती है। संभवत इसी दृष्टि से इस रीति का अनुसरण निम्नलिखित प्रसगो मे किया गया है—

"अन्त पुर के भृत्यु रो रहे है, सुमित्रा रो रही है, कौशल्या रो रही है आदि आदि⋯"[1]

अश्रु मोचन तथा विलाप के साथ मूर्च्छा का प्रसंग आ जाता है। निम्नलिखित प्रसंग उदाहरणस्वरूप यहाँ देखे जा सकते हैं—

"मदोदरी दशानन की अवस्था देखकर "हा हा स्वामी" कहती हुई पृथ्वी पर निश्चेत होकर गिर पडी।"

"रामलक्षण के वनगमन समाचार को सुनकर दशरथ वज्राहत के समान मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पडे।"

"लक्ष्मण के शोक से सतप्त रघुनन्दन मूर्च्छित हो गए।"

विलाप और मूर्च्छा के अतिरिक्त शोकसतप्त स्त्री का खुले केश होना, शरीर की अस्तव्यस्त दशा, उद्भ्रान्त होकर गिरना, वैधव्य के फलस्वरूप नूपुर-हार का छिपाना, चदनादिक का मिटाना, वियोग मे दीर्घ श्वासप्रश्वास लेना, काँपना, ऊँगली चटकाना, सिर कूटना, छाती पीटना, बाल नोचना आदि आदि अनुभावो का वर्णन हुआ है। उदाहरणस्वरूप यहाँ एक दो प्रसग देख लेना उचित होगा।

वनवास प्रसग मे राममाता खुले केश वर्णन की गई है। रावणमृत्यु पर मदोदरी के केश खुले है।[2] शरीर अस्तव्यस्त है, हडबडाती हुई, उद्भ्रात गिरती पडती, हाथ उठा

---

१. "रोवइ मिच्चयणु समुद्द-हत्थु। ण कमल-सडु हिम-पवण-घत्थु।
⋯⋯⋯⋯⋯⋯
रोवइ अवरा इव रामजणणि। केक्कय दाइय तरु-मूल-खणणि।
रोवइ सुप्पह विच्छाय जाय। रोवइ सुमित्त सोमित्ति-माय।
हा पुत पुत! केत्तहि गउसि। किह सत्तिएँ वच्छत्थले हउसि।"
—पउमचरिउ रामायण—६९/१३

२. "मोक्कल-केस विसंठुल-गत्तउ। विहडप्फडु णिवडतु'द्धंतउ।
उद्ध-हत्थु उद्धाहावतउ। असु-जलेण वसुह सिचतउ।
णेऊर-हार-डोर गुप्पतउ। चदण-छड-कछ मे खुप्पतउ।
पीण-पऊहर-भारक्कतउ। कज्जल-जल-मल मइलिज्जंतउ।"
—पउमचारिउ रामायण ७६/४-५

कर दहाड मारती हुई, आँसुओं को बहाती तथा वसुधरा को सींचती हुई, नूपुरहार छिपाती हुई, चंदनादि को मिटाती हुई, पुष्ट पयोधरो के भार से दबी हुई, कज्जल-मिश्रित मलिन अश्रुजल से मलिन छवि हुई शोक प्रकट कर रही है।

इस वर्णन मे कवि का सूक्ष्म निरीक्षण विशेषरूप से अवलोकनीय है। चन्दनादि लेपों का मिटाना, नूपुर आदि आभूषणो का छिपाना तत्कालीन समाज मे विधवा के लिए अनुपालनीय था—यह स्पष्ट है।

सन्देशरासक के अन्तर्गत एक नायिका का वियोग वर्णन भी इसीप्रकार अनुभावो से भरपूर है।

"वह दीर्घ श्वासप्रश्वास ले रही है। वह सलिलसंभववदनी हो गई है, उँगलियो को चटका रही है, कदली जैसे वायु से काँपती है उसी प्रकार काँप रही है।"

अनुभूति की गंभीरता मे प्रकृति मे मानवीकरण की प्रवृति तथा प्रकृति के रूपों में आलंबन की भ्रांति—मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह प्रवृति अति स्वाभाविक है। करुणरस के अन्तर्गत चेतन-अचेतन का यह अभेद रस की गभीरता तथा प्रभावशीलता का द्योतक कहा जा सकता है। इष्ट के सम्पर्क मे आने वाली वस्तुएँ उसके अभाव मे बोलती हुई सी प्रतीत होती है। जिन स्थानो पर वह उठा बैठा करता था वह स्थान उसकी स्मृति दिलाने मे सजीव दिखलाई देते है। इन स्थानो पर प्रिय का आभास स्वाभाविकरूप मे प्रतीत होता है।

सीताहरण से अवसर पर राम की शोकानुभूति के अन्तर्गत यह प्रवृति निम्न रूप मे देखी जा सकती है—

राम कही कमल को देखते हे तो कमलनयना को समझ लेते है, कही अशोक की लता को हिलता हुआ देखकर उनको ऐसा प्रतीत होता है मानो सीता की बाँह हिल रही हो (अथवा कवि को कहना चाहिए था—मानो सीता बुला रही है) इसी प्रसग मे राम का यह रूप तुलसी की कला मे भी प्रकट हुआ है तथा इस प्रकार इस परम्परा का परिपालन आगे भी प्रगतिशील रहा।

आलम्बन की क्षति मे आलम्बन के अभाव की अनुभूति—स्वार्थ के बन्धनो के अन्तर्गत आलम्बन का अभाव शोकानुभूति को दारुण बना देता है। 'उसके अभाव मे उसके बिना कैसे काम चलेगा'—इस प्रकार की स्वाभाविक चिन्ता मानस को घेर लेती है तथा उसका अभाव शोक को द्विगुणित दारुण बना देता है—

मंदोदरी विलाप[1] के अन्तर्गत यह प्रवृत्ति प्रतिलक्षित हुई है—

"तुम्हारे बिना अब समरतूर्य कौन बजावेगा, तुम्हारे बिना मन्त्रशक्ति का कौन आराधन करेगा, तुम्हारे बिना तलवार कौन धारण करेगा, तुम्हारे बिना कौन कुबेर का भजन करेगा, तुम्हारे बिना तीनो लोक किसके वश मे होगे, तुम्हारे बिना मुझे पुष्पक विमान पर बैठाकर मरु शिखर पर स्थिति जैन मदिर के हाथ जोड़ने का अवसर कौन दिलावेगा, · ···मै तुम्हारा आलिगन स्मरण करती हूँ, ·· शयनभवन के नखक्षत स्मरण करती हूँ।"

आलम्बन के गुणकथन द्वारा शोक प्रकाशन—इस रीति का इस काल मे विशेष प्रचार था। किन्ही अशो मे यह प्रवृत्ति मनोवैज्ञानिक भी है। यकायक किसी अशुभ समाचार को सुनकर मनुष्य स्तम्भित हो जाता है तथा इस समाचार की पुष्टि के लिए पर्याय गुणो का वर्णन करते हुए तथ्यातथ्य का निराकरण करता है। गुणकथन की एक लम्बी सूची इस वैज्ञानिक तथ्य की ओर एक सकेत समझी जा सकती है।

लक्षमण शक्ति पर राम, भरत, सुमित्रा सभी विलाप करते है तथा प्रत्येक विलाप मे गुणकथन की यह प्रवृत्ति प्रतिलक्षित होती है। रावण मृत्यु पर मदोदरी विलाप तथा कुम्भकरण मृत्यु पर रावण विलाप मे भी यह प्रवृत्ति प्रकट हुई है। यहाँ एक दो उदाहरण प्रस्तुत कर देना उचित होगा।

लक्ष्मण-शक्ति पर राम-विलाप

"हा लक्खण-कुमार ! एक्कोयर।
हा भद्धिय उविद दामोदर।
हा माहव ! महुमह महुसूयण।
हा हरि - कण्ह - विण्हु - पारायण।
हा केसव ! अनत - लच्छी-हर।
हा गोविद ! जणद्दण - महिहर॥"

---

१. रोवइ लकापुर-परमेसरि। हा रावण ! तिहुयण-जण-केसरि।
पइ विणु समर तूरु-कहो वज्जइ। पइ विणु वालकील कहो छज्जइ।
पइ विणु णावगह-एक्कीकरणउ। को परिहेसइ कठाहरणउ।
पइ विणु को विज्जा आराहइ। पइ विणु चद-हासु को साहइ।
को गधव्व-वापि आडोहइ। कण्णहो छवि-सहासु संखोहइ।
पइ विणु को कुवेरु भजेसइ। तिजग-विहुसणु कहो बसे होसइ -
घत्ता। सामिय पइ भविएण विणु, पुत्फविमाणे चडेवि गुरुभत्तिएँ।
मेरु-सिहरे जिण-मदिरइँ, को मइ णेसइ वंदण-हत्तिए॥
सयण-भवणें णहणियर-वियारणु। सुमरमि लीला-पंकय-ताडणु॥
पउमचरिउ—रामा० ७६/८,६/१०

"हा अरि - दमण ! मडप्फर - भजण ।
हा जिय - पोम सोम - मण - रजण ।
... .

हा खर - दूसण - वलमुसुमूरण !
हा सुग्गीव - मणोरह - पूरण !
हा हा मोडिसिला - सचालण !
हा हा मयर - हरो उत्तारण ॥"
(रामायण—६७/२, ३)

कुम्भकरण-मृत्यु पर रावण-विलाप

"हा कुम्भयण्ण ! एक्कोयर। हा हा मय-मारिच्य-सहोयर ।
हा इदइ हा तोयदवाहण। हा जमहट अणिट्ठिय-साहण ।"
(रामायण—६७/६)

वर्णनगत् परम्परा के अन्तर्गत निम्न प्रवृत्तियाँ विशेषरूप से प्रतिलक्षित होती है—

अ—वर्णनविशदता की ओर प्राय कवियो की रुचि रही है। शोकानुभूति के अन्तर्गत यदि आलबन की क्षति का प्रभाव दिखलाया गया तो एक लम्बी सूची दे दी गई। इसी प्रकार यदि आलम्बन के अभाव मे आलम्बन से सबधित वस्तुओ की नष्टप्राय दशा का वर्णन किया गया तो एक दूसरी सूची प्रस्तुत कर दी गई।

आ— वर्णन मे स्वाभाविकता तथा सरलता की ओर कवि की दृष्टि रही। यद्यपि इन कवियो का ध्यान मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की ओर न था तथापि इनके सरल एव स्वाभाविक वर्णन मनोवैज्ञानिक तथ्यो पर आधारित है।

इ—शोकाभिव्यजना के अन्तर्गत विशेषकर विरह का ही वर्णन हुआ है तथा विरहवेदना के अन्तर्गत आध्यात्मिक विरह के प्रसग प्राय प्रत्येक कवि के वर्णन मे मिलते है। तत्कालीन धार्मिक परिस्थितियो के अन्तर्गत रहस्यानुभूति का विशेषरूप मे उद्घाटन हुआ है ।

ई—शोकानुभूति के क्रमिक विकास की ओर एक दो स्थलो पर सकेत हुआ है।

अन्य प्रसग—दरिद्रता, दुर्भिक्ष आदि ऐसे प्रसग है जिन पर कवियो ने इतिवृतिरूप मे प्रकाश डाला है। किसी प्रसग मे भी शोकानुभूति की अभिव्यजना सम्भव न हो सकी ।

उपर्युक्त सक्षिप्त परिचय के आधार पर कहा जा सकता है कि अपभ्रंश साहित्य मे करुणरस के सभी रूपो की प्रतिष्ठा हो चुकी थी। करुणरस के सभी आलम्बनो की ओर कवियो का ध्यान गया था। इस सम्बन्ध मे एक रेखाचित्र निम्न रूप में दिया जा सकता है—

अपभ्रंश साहित्यगत करुणरस की परम्पराओं का विश्लेषण—

शोकानुभूति

पात्रगत—१—आलबन के प्रभावगत् ।

अ—प्रकृति के सहज व्यापारो मे सहेतुक कल्पना ।

आ—क्षतिपूर्ति असभव ।

इ—क्षति का दु.ख आत्यतिक ।

ई—आलम्बन से सबधित सभी वस्तुएँ नष्टप्राय ।

२—आलंबन के लिए अनुभूति ।

अ—अनुभावगत ।

आ—प्रकृति मे मानवीकरण ।

इ—अभावानुभूति ।

ई—गुणकथन ।

वर्णनगत—विशदता, स्वाभाविकता, शोकानुभूति का विकास, रहस्य भावना ।

अन्य प्रसग—दरिद्रता, दुर्भिक्ष ।

चारण काल में करुणरस

वीरगाथा या चारण काल जैसा कि इस काल के नाम से प्रकट है, वीर गाथाओ एव वीर रस की अभिव्यक्ति के लिए प्रसिद्ध है । आजकल की मृगया की भाति उन दिनो युद्ध वीरो के मनोरंजन का ही विषय था । युयुत्सा जीवन की आदर्श कामना समझी जाती थी । यद्यपि युद्ध की विभीषिका के फलस्वरूप इस काल मे रौद्र की प्रतिक्रिया के रूप मे करुण के लिए बहुत क्षेत्र उपलब्ध था किन्तु जनकवि के अभाव मे उन कारुणिक दृश्यो को देखने का अवकाश राजकवि को न था । राजकवि का कर्तव्य प्रजारजन न होकर प्रजापालक का रजन था । अतएव वे विजय के साथ हर्ष-उल्लास प्रदर्शित करते रहे । अशोक की भाँति युद्ध की विभीषिका, हताहतो के करुण चीत्कार, अनाथ अबलाओ और बिलखते दुधमुँहे बच्चो की मर्मभेदी पुकारो को सुनकर उनका भी हृदय द्रवित हो सकता था, किन्तु ऐसा न हुआ ।

यही क्यो, स्वय आश्रयदाता राजाओ की पराजय एव यातना मे भी ये राजकवि करुण के गीत न गा सके । पृथ्वीराज के कारावास-जीवन को दिवास्वप्नों मे अथवा भूतकालीन वैभव के पुनराख्यान मे चित्रित करना ही श्रेयस्कर समझा गया । करुण की अभिव्यक्ति के साथ आश्रयदाताओ के दुर्बल पक्ष का उद्घाटन होता जिसको चित्रित करने का किसी कवि मे साहस न था ।

इस प्रकार वीरगाथा काल मे करुणरस के अनुकूल मृत्यु एवं अनिष्ट की परिस्थितियाँ एव वातावरण के होते हुए भी करुणरस के प्रति कम ध्यान दिया गया प्राय: प्रसंग ऊर्जस्वीकृत होकर करुणरस के क्षेत्र से दूर जा पड़े । फलस्वरूप कहीं-कहीं

रसाभास के रूप में अथवा आभास-मात्र रूप मे करुण के दर्शन हो सके जो करुण की मूलधारा मे न तो उल्लेखनीय है न कोई योग ही देते है ।

रामकथा की पृष्ठभूमि में करुणरस—वाल्मीकि रामायण के प्रारम्भ मे बालकाण्ड के अन्तर्गत राम-कथा तथा राम-काव्य के सृजन की प्रेरणा महर्षि वाल्मीकि को निम्नलिखित प्रसग मे प्राप्त होती है । महर्षि गगा स्नान के लिये जा रहे थे । मार्ग मे उन्होने देखा कि उनके सामने ही क्रौच युग्म मे से नर क्रौंच को किसी बधिक ने वाण से मार डाला । उस क्रौच पक्षी की मादा अपने नर को रक्त से सना हुआ देख तथा पृथ्वी पर छटपटाते देख कर करुण स्वर से विलाप करने लगी । वह क्रौची उस लाल चोटी वाले काममत और सभोग के लिए पर फैलाए हुए नर से विहीन हो गई । इस दृश्य को देखकर धर्मात्मा महर्षि को अति करुणा आई और उसके मुख से निम्न-लिखित शब्द फूट पडे मानो उनका शोक ही श्लोक बन गया हो ।[1]

"मा निषाद प्रतिष्ठा त्वमगम शाश्वती: समा:
यत्क्रौचमिथुनादेकमवधी: काममोहितम् ।"

स्वस्थ होकर महर्षि ने अपने शिष्यो से कहा—यह श्लोक हमारे शोक के कारण मुखरित हुआ है । इसमे चार पद है, प्रत्येक पाद मे समान अक्षर है । वीणा पर भी यह गाया जा सकता है । अतएव यह हमारे यश का कारण हो ।[2]

इसके पश्चात महर्षि के आश्रम मे ब्रह्मा जी आए । ब्रह्मा जी को सम्मानपूर्वक बिठा कर महर्षि ने आसन ग्रहण किया । उस समय भी महर्षि को वही प्रसग—दुष्ट बहेलिए ने काम समोहित पक्षी का वध कर डाला । वह उस दृश्य को याद कर उस श्लोक को "मा निषाद····· काममोहितम्" बार-बार कहने लगे । वाल्मीकि जी को इस प्रकार चिन्तित तथा शोकसतप्त देखकर ब्रह्माजी ने हँस कर उनसे कहा—आपको चिन्तित होने की आवश्यकता नही है । मेरी इच्छा से ही आपका शोक श्लोक

---

१. तस्मातु मिथुनादेकं पुमास पापनिश्चय ।
जघान वैरनिलया निषादस्तस्य पश्यत ॥ — बाल० २/१०
त शोणितपरीताग वेष्टमानं महीतले ।
भार्या तु निहत दृष्ट्वा रुरावा करुणा गिरम ॥—बाल० २/११
वियुक्ता पतिना तेन द्विजेन सहचारिणा ।
ताम्रशीर्षेण मत्तेन पत्रिणा सहितेन वै ॥—बाल० २/१२
तथा तु तं द्विजं दृष्ट्वा निषादेन निपातितम् ।
ऋषेर्धर्मात्मनस्तस्य कारुण्यं समपद्यत ॥—बाल० २/१३

२. पादबद्धोऽक्षरशमस्तन्त्रीलय समन्वित: ।
शोकार्तस्य प्रवृत्तो मे श्लोको भवतु नान्यथा ॥—बाल० २/१८

के रूप में मुखरित हुआ था। अब अमरलोको में धर्मात्मा, गुणवान, तथा बुद्धिमान श्री रामचन्द्र जी के चरित्र का उसी रूप में वर्णन करें, जिस रूप में नारद जी के मुंह से मौखिक रूप में आप सुन चुके है।[1]

इसके पश्चात् मन में प्रभु का ध्यान करते हुए महर्षि ने सोचा कि इसी प्रकार के श्लोको में मैं सम्पूर्ण रामकथा लिखूं तथा राम-काव्य की रचना करूँ।

"सोऽनुव्याहरणाद्भूय: शोक: श्लोकत्वमागत:
तस्य बुद्धिरियं जाता वाल्मीकेर्भावितात्मन:
कृत्स्नंरामायणं काव्यामिदृशै: करवाण्यहम्"।—(बाल २/४१)

उपर्युक्त कथा से स्पष्ट है कि राम-कथा की मूल प्रेरणा करुण रस के प्रसंग से ही प्राप्त हुई है। वाल्मीकि रामायण में इस प्रेरणा के प्रत्यक्ष दर्शन किए जा सकते है। कवि की आत्मा करुण स्थलों पर द्रवीभूत हो जाती है। उसकी लेखनी सूक्ष्म अन्तर्वृत्तियो, अनुभावों तथा बाह्याभिव्यजको का अलौकिक सृजन करने लगती है। यही क्यों कवि की करुणरस प्रियता के कारण एक प्रसग से कवि का परितोष नही होता। प्रकारान्तर से उसी प्रसग को पुन: लेते तथा उसका वर्णन करते है। यह अवश्य है कि कवि की उत्कृष्ट कला और कल्पना के अन्तर्गत ऐसे प्रसग अपनी निजी मौलिकता रखते है तथा पुनरावृति नही कहे जा सकते। कतिपय ऐसे प्रसगों की योजना भी कवि ने की है जिनके अन्तर्गत करुण की कटु एवं कसकर अनुभूति का प्रकटीकरण हुआ है। कहना न होगा कि आदर्शपात्रो को जो कवि की इस योजना का शिकार होना पडा है—उदाहरण स्वरूप 'मायारचित कटे हुए राम के सिर का सीता को दिखलाया जाना' तथा 'माया रचित रणक्षेत्र मे हनुमान की उपस्थिति मे मेघनाद द्वारा वध किया जाना' ले सकते है। इन प्रसगो से यह अवश्य है कि करुणरसानुभूति में मार्मिकता आ गई है और इस प्रकार ये प्रसग कवि की कला और कल्पना के

---

१. तद्गतेनैव मनसा वाल्मीकिर्ध्यानमास्थित:।
पापात्मना कृतं कष्ट वैरग्रहणबुद्धिना ॥—बाल० २/२८
यस्तादृश चारुखं क्रौचहन्यादकारणात्।
शोचन्नेव मुहु: क्रौचीमुप श्लोकमिम पुन: ॥—बाल०२/२९
जगावन्तर्गतमना भूत्वा शोकपरायण:।
तमुवाच ततो ब्रह्मा प्रहस्य मुनिपुङ्गवम् ॥—बाल० २/३०
श्लोक एव त्वया बद्धोनाम कार्या विचारणा।
मच्छन्दादेव ते ब्रह्म-प्रवृत्तेयं सरस्वती ॥—बाल० २/३१
रामस्य चरितं कृत्स्न कुरु त्वमृषिसत्तम।
धर्माष्मनो गुणवतो लोके रामस्य धीमत: ॥—बाल०२/३२
वृत्तं कथय वीरस्य तथा ते नारदाच्छ्रुतम्।
रहस्यं च प्रकाश च यद्वृत्तं तस्य धीमत: ॥—बाल० २/३३

उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

हिन्दी-साहित्य में राम-कथा जिन परिस्थितियों में प्रकट हुई उनका अवलोकन कर लेना यहाँ आवश्यक होगा। कवि की तत्कालीन परिस्थितियो उनके काव्य सृजन का आधार होती हैं जिनको दूसरे शब्दो मे कहा गया है कि साहित्य समाज का दर्पण होता है। अतएव कवि की तत्कालीन परिस्थितयो के विवेचन के अभाव में उसके काव्य की मूल भावना से अवगत होना ही असभव है। इस दृष्टि से हिन्दी साहित्य मे राम-कथा के कवियो के काव्य का अवलोकन अपेक्षित है।

इस युग की राजनीतिक विषमताओ के कारण समाज की अति शोचनीय दशा हो चुकी थी। कवि अथवा किसी देश-प्रेमी के लिए यह असभव था कि वह खुलकर कुछ कह सके। इसलिए प्रतीक-प्रणाली का अवलबन किया गया तथा राजनीतिक विषमतागत विषम यातना को "कलिकाल" का नाम दिया गया।

हिन्दी का उद्गम जैन-ग्रन्थो, नाथ सप्रदाय की अनुभूतियो तथा चारणकालीन प्रशस्तियो से आरम्भ हुआ है। इसलिए इस काल की धार्मिक-चेतना मध्य युग मे भी प्रगतिशील रही। युग-वेदना के साथ इस धार्मिक-चेतना का समन्वय हुआ तथा "कलिकाल" राजनीतिक विषमता के साथ धार्मिक चिन्तन का भी प्रतीक बन गया।

राजनीतिक दासता तथा धार्मिक अत्याचारो ने जन चेतना को छिन्नप्राय करके जन-जन मे निराशा की भावना भर दी। इस काल की निराशा वेदना के रूप मे कवियो के हृदयो मे झकृत हो उठी। सूर, तुलसी तथा केशव—तीनो कवियो द्वारा प्रस्तुत रामकथा मे वेदना को ही वाणी मिली। रामकथा का रूप भी इसीलिए आशिक रूप मे परिवर्तित हुआ। वाल्मीकि के राम का उद्देश्य अपयश को दूर करना है।

"या त्व विरहिता नीता चलचितेन रक्षसा,
दैव सम्पादितो दोषो मानुषेण मयाजित.।"
"सम्प्राप्तमवमान यस्तेजसा न प्रमार्जति,
कस्तस्य पुरुषार्थोऽस्ति पुरुषस्याल्पतेजस ।"
"रक्षता तु मया वृतमपवाद च सर्वशः
प्रख्यातस्यात्मवंशस्य न्यङ्ग च परिरक्षता ।।"

और हिन्दी कवियो के राम का उद्देश्य था रावण-वध।[1] इसीलिए इन कवियो ने वाल्मीकि की उपर्युक्त मूल भावना को सकेत-मात्र रूप मे चलता कर दिया और उसकी सकारणता दिखाने का प्रयत्न नही किया।

१. "निसिचर हीन करउँ महि भुज उठाई पन कीन्ह।
सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि जाइ जाइ सुख दीन्ह ।।" —अरण्य काण्ड ६

"देखत दरस राम मुख मोरयो ।"

"कहे कछुक दुर्बादा ।"

साथ ही केशव के विभीषण के साथ तत्कालीन जन-जीवन की यही पुकार थी। रावण के अत्याचारो से मरे जा रहे हैं, शीघ्र उद्धार कीजिए, अपनी शरण में लीजिए—

"दीनदयाल कहावत केशव हौं अति दीन दशा गहो गाढो ।
रावण के अघ ओघ समुद्र मे बूडत हौं बर ही गहि काढो ।।"

यह ठीक है कि वाल्मीकि रामायण आधार-ग्रन्थ के रूप में इन कवियो को सुलभ था और उसके आधार पर उनको करुण रस की अनुभूति को ही प्रश्रय देना चाहिए था किन्तु यहां यह नही भूल जाना चाहिए कि इन राष्ट्र कवियो के लिए राम कथा का ग्रहण कोई विवशता न थी। यदि थी तो वह थी जन-जन की माँग के रूप मे। दूसरा उपभोग पक्ष समान रूप से प्रभावशाली था किन्तु युग-प्रवर्तक तथा हिन्दी कथा के प्रमुख कवि को वह प्रभावित न कर सका। परम्परा अथवा परिपाटी के लिए निर्वाह के लिए यदि उन्होने उस क्षेत्र मे भी अपनी लेखनी को कष्ट दिया तो इस से उनकी मूल भावना पर कोई प्रभाव नही पडता। मध्य युग के अन्य कलाकारो के दृष्टिकोणो पर यहाँ सक्षेप मे दृष्टिपात कर लेने से जन-वेदना के स्वरूप का स्पष्टीकरण हो जायगा।

जनवेदना के कारण ही धार्मिक चेतना का मूलदृष्टिकोण ही इस काल मे परिवर्तित हो गया। कवि ने योग साधना के स्थान पर चिरन्तन विरह की अलौकिक साधना का श्रीगणेश किया। कवि ने विरह-वेदना को अपनाया तथा विप्रलभ की सापेक्ष विरह-वेदना को विरह दृष्टि देकर निरपेक्ष रूप दे दिया। ये भक्त विरह के लिए विरह को चाहने लगे तथा इस विरह को उन्होने विश्वव्यापक एव चिरन्तन रूप मे प्रतिष्ठित किया। भगवान ने भक्त के इस दृष्टिकोण की पहचान का भक्त की इच्छा-पूर्ति करते हुए भक्तो को चिरन्तन विरह की योजना कर दी।

भगवान—"प्यारी, मैं निठुर नही हूँ। मैं तो अपने प्रेमिन को बिना मोल को दास हूँ। परन्तु **मोहि निहचे है** (कि) कै हमारे प्रेमिन को हम सो हूँ हमारो विरह प्यारो है। **ताहि सो सै हूँ बचाय जाऊँ हूँ।"**

—(च०ना०-पृष्ठ ११५, स० ४८)

इस चिरन्तन विरह के दर्शन होते है कबीर, सूर तथा मीरा मे। तुलसीदास जी भी एक स्थल पर इस दृष्टिकोण की ओर सकेत करते हुए विश्वव्यापी विरह का विनयपत्रिका में उल्लेख करते हैं—

"बिछुरे रवि ससि मन, नैनन तें पावत दुख बहुतेरो ।
भ्रमत स्नमित निसि-दिवस गगन मँह, तहँ रिपु राहु बडेरो ।
जद्यपि अति पुनीत सुर-सरिता, तिहुँ पुर सुजत घनेरो ।
तजे चरन अजहूँ न मिटत नित बहिबो ताहू केरो ।।"

विद्यापति के विरह का दृष्टिकोण भी चिरन्तन विरह है किन्तु उसकी सम्यक् अभिव्यक्ति सभव न हो सकी। कवि "निराशा" से घबडा जाता है तथा अविलम्ब आशा की किरण देकर करुण रस के प्रसग को विप्रलग का रूप दे देता है —

"मनइ विद्यापति सुन बर जौवति
अब नहि होइ निरासे
से व्रजनन्दन हृदयअनदन
झटति मिलब तुअ पासे।"

तुलसी ने अपनी वेदना को मर्यादा के अन्तर्गत रखना उचित समझा। इसलिए विनय-पत्रिका मे "विश्वव्यापी विरह" की ओर संकेत करके अपनी वेदना को आध्यात्मिक शोक के द्वारा आर्तनिवेदन तथा आर्त प्रार्थना के अन्तर्गत प्रकट किया।

इस विरह का प्रारम्भ बिना परिचय के कैसे हो सकता है। इस तथ्य को ये कलाकार जानते थे। इसीलिए विरह को आधार बनाने के लिए कही केवल ऊहा की वस्तु न बन जाय इस भय से किसी प्रकार दिव्य क्षणो मे उन्होने सभोग का आभास प्राप्त कर लिया और उसके पश्चात् चिरन्तन रूप मे विरह साधना चलने लगी।

विद्यापति की राधा सभोग मे ही वियोग के अकुर देखती है—

"एकहि वचन विच मेल रे
हँसि पहु उतरो न देल रे।"

कबीर के "घर आए राजा राम भरतार" किन्तु इस की पुनरावृति न हो सकी कबीर की विरहिणी आत्मा सदा यही पुकारती रही—

"बासुरि सुख ना रैणि सुख, ना सुख सपने माँहि,
कबीर बिछुट्या राम सू, ना सुख धूप न छाँह।"

सूर ने "हाथ छुडाकर" जाने पर हृदय की दृढता का भरोसा किया तथा उस हृदय मे भर लिया चिरन्तन गोपी-विरह।

मीरा को "सुपणे मे परण गया" फिर उसके दर्शन कभी न हुए। जन्मजन्मान्तर की विरहिणी मीरा इस जन्म मे भी चिरन्तन विरह को ही भोगती रही।

इस विरह वेदना के साथ इष्ट के मिलन की अनिश्चितता मे पूरे प्रसग को करुण के समीप ला रखा। इष्ट इस जन्म में मिलेगा या नहीं। मिलेगा तो किस प्रकार एवं किस रूप में आदि जिज्ञासाएँ कभी शान्त न हो सकी।

साथ ही इन कवियो की मिलन की कोई लालसा भी प्रतीत नही होती। इन भक्त कवियो ने जब कभी कोई याचना की तो वह मिलन की याचना न थी जैसी कि विप्रलभ शृंगार मे होती है। प्रत्युत उन्होने ऐसे अवसरो पर भव-दुख-निवृति के लिए ही याचना की।

"कखन हरब दुख मोर, हे भोलानाथ"
"ऐसा कोई ना मिलै, हम को दै उपदेश।

भौ सागर मे डूबता, कर गहि काढ़ै केस।"
"मीरा दासी राम भरोसे, जम का फंद निवार।"
"या भव में मैं बहु दुख पायो, **संसा सोग** निवार।"
"मीरा के प्रभु गिरधर नागर, ग्रावागमन निवार।"

मीरा के इस "ससार सोग" से निश्चय ही ग्राध्यात्मिक शोक का ग्राशय है जिसको तुलसीदास जी ने ग्रति मार्मिक रूप मे ग्रनुभव किया तथा ग्रति वेदना के कारण त्राहि-त्राहि पुकार उठे—

"पाहि पाहि राम पाहि, रामभद्र रामचन्द्र।"

ग्रालंबन की विभिन्नता—इन भक्त कवियो ने इष्ट को प्रियतम कहा तथा इस प्रियतम शब्द से विप्रलभन की सभावना की जा सकती है। ग्रतः इसका भी स्पष्टीकरण यहाँ ग्रावश्यक है।

यह ठीक है कि इन कवियों ने "हरि मोर पीव" तथा "सुपणे में परण गया जगदीश" कहा किन्तु यह "पीव" ससारी प्रियतम न था। तथा यह विवाह सासारिक विवाह न था। ये शब्द ग्रति व्यापक ग्रर्थ मे प्रयुक्त किए गए थे ग्रौर इनका ग्रर्थ था "रक्षक, उद्धारक" इसलिए उस परम इष्ट को प्रियतम कहा जा सकता था, पिता कहा जा सकता था, माता कहा जा सकता था तथा यही नही सासारिक प्रत्येक सबध उससे जोडा जा सकता था। इसलिए कबीर एक स्थल पर कहते है "हरि मोर पीव मै हरि की बहुरिया" तथा दूसरे स्थल पर कहते है—

"बाप राम सुनि बिनती मोरी।"
तथा
"हरिजननी मैं बालक तोरा।"

ग्रतः स्पष्ट है कि भक्त ग्रौर भगवान का सबंध विप्रलभगत प्रेमी-प्रेमिका के सम्बन्ध से भिन्न था।

साथ ही यहाँ यह भी स्पष्ट कर देना ग्रावश्यक है कि भक्ति के इस दृष्टिकोण के साथ प्रेममार्गी कवियो का एक दूसरा दृष्टिकोण भी इस समय चल रहा था जिसके ग्रन्तर्गत केवल प्रेमी-प्रेमिका के सबध का ही निर्वाह हुग्रा है।

जायसी के नागमती विरह तथा पद्मावती रत्नसेन के विरह को यहाँ उदाहरणस्वरूप लिया जा सकता है। इस विरह मे वही जान है जो भक्त कवियो के विरह मे है। विरह की विश्वव्यापकता भी उसी रूप में है किन्तु इस विरह का दृष्टिकोण सापेक्ष है। यह प्रिय प्रियतमा का विरह है जो प्रत्येक रूप मे प्रियप्रियतम ही हैं तथा उनको एक दूसरे के मिलने की ग्राशा है। मिलन ही इन वियोगियो का ग्रभीष्ट है। यह ग्रवश्य है कि स्थान-स्थान पर करुण की सीमा का स्पर्श करता चलता है।[1]

---

१. "ना हौ सरग क चाहौ राजू। ना मोहि नरक सेति किछु काजू।
चाहौ ग्रोहिकर दरसन पावा। जेइ मोहि ग्रानि प्रेम पथ लावा॥"

उधर इन भक्त कवियों को पहिले तो कुछ अभीष्ट ही नही है । वह तो विरह के लिए विरह ही चाहते है। भक्ति के लिए ही भक्ति कर रहे है । यदि कभी कुछ अभीष्ट है तो भव-दुःख-मुक्ति जिसके अन्तस् में तत्कालीन विषय परिस्थियोंगत समाज की यातनामुक्ति भी निहित है । आर्त एवं त्रसित जीव प्रभु से रक्षा याचना करता है जिसको भव रौद्र की प्रतिक्रिया (करुण) कहा जा सकता है ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि रामकथा के कवियो के साथ मध्ययुगीन अन्य कवियो का काव्य भी जन-वेदना तथा अत्याचारो से प्रपीडित मानस की करुणपुकार से विशेष रूप से प्रभावित हुआ है और इस रूप मे करुग और विप्रलभ के उस रूप को प्रश्रय मिला है । विप्रलंभ अपेक्षाकृत निराशा तथा निरपेक्षता के सदर्भ मे करुण के समीप है । यही कारण है कि रामकथा मे राममीता का विप्रलभ करुण का आस्वादन कराता है । ऐसा अनुभव नही हो पाता कि राम अपनी प्रेयमी को बधनमुक्त कराने के प्रयत्न में हैं अथवा रामसीता एक दूसरे के विरह में प्रेमी-प्रेमिका के रूप में विकल हैं । प्रत्युत ऐसा लगता है कि सीता के रूप में जनजीवन अथवा भारतमाता बंधनग्रस्त तथा अति दु.खी है और उसके उद्धार का प्रयत्न जननायक राम कर रहे है । उनका विरह 'हाथ पर पर हाथ रखकर आहे भरने मे' व्यतीत नही हो रहा प्रत्युत वह प्रयत्नपक्ष की उस सफल साधना मे सतत सलग्न है जिसके द्वारा प्रपीडन तथा अत्याचार का विनाश होगा । इस तथ्य की ओर आचार्य शुक्ल ने निम्नलिखित शब्दो मे हमारा ध्यान आकृष्ट किया है ।

"भावो की छानबीन करने पर मगल का विधान करने वाले दो भाव ठहरते हैं—करुणा और प्रेम । करुणा की गति रक्षा की ओर होती है और प्रेम की रजन की ओर । लोक में प्रथमसाध्य रक्षा है । रजन का अवसर उसके पीछे आता है । अत. साधनावस्था या प्रयत्नपक्ष को लेकर चलने वाले काव्यो का बीजभाव करुणा ही ठहरता है । इसीसे शायद अपने दो नाटको मे रामचरित को लेकर चलने वाले महा-कवि भवभूति ने 'करुणा" को ही एकमात्र रस कह दिया । रामायण का बीजभाव करुणा है जिसका सकेत क्रौच को मारने वाले निशाद के प्रति वाल्मीकि के मुख से निकले वचन द्वारा आरम्भ ही मे मिलता है । उसके उपरान्त भी बालकाण्ड के पन्द्रहवे सर्ग में इसका आभास दिया गया है, जहाँ देवताओ ने ब्रह्मा से रावण द्वारा पीड़ित लोक की दारुण दशा का निवेदन किया है । उक्त आदिकाव्य के भीतर लोक-मगल की शक्ति के उदय का आभास ताडका और मारीच के दमन के प्रसग मे ही मिल जाता है । पंचवटी से वह शक्ति जोर पकडती दिखाई देती है । सीता-हरण होने पर उसमे आत्मगौरव और दाम्पत्य प्रेम की प्रेरणा का भी योग हो जाता है । ध्यान देने की बात यह है कि इस आत्मगौरव और दाम्पत्य प्रेम की प्रेरणा बीच से प्रकट होकर उस विराट मंगलोन्मुखी गति मे समन्वित हो जाती है । यदि राक्षसराज पर चढ़ाई करने का मूल कारण केवल आत्मगौरव या दामपत्य प्रेम होता तो राम के कालाग्नि-

सदृश्य क्रोध में काव्य का यह लोकोत्तर सौन्दर्य न होता। काव्य का उत्कर्ष केवल प्रेमभाव की कोमल व्यंजना मे ही नहीं माना जा सकता जैसाकि टालस्टाय के अनुयायी या कुछ कलावादी कहते है। क्रोध आदि उग्र और प्रचण्ड भावो के विधान में भी, यदि उनकी तह में करुण-भाव अव्यक्त रूप में स्थित हो, पूर्ण सौन्दर्य का साक्षात्कार होता है।"

--(चितामणि—इंडियन प्रेस ५६, पृष्ठ २२३/२२४)

रामकथा को काव्य के क्षेत्र में प्रश्रय दिए जाने के सबध मे तत्कालीन-परिस्थितियाँ अधिकाश मे उत्तरदायी थी जिनका विवेचन किया जा चुका है। अब यहाँ यह देखना अभीष्ट है कि हिन्दी साहित्यगत रामकथा की पृष्ठभूमि मे करुणरस का क्या स्वरूप रहा।

मध्यकालीन हिन्दी साहित्य की पृष्ठभूमि मे दो महान विभूतियो 'राम' और 'कृष्ण' को साहित्यिक प्रेरणा का मूल आधार कहा जा सकता है। इन दोनो विभूतियो के विभिन्न स्वरूप थे—

(१) जन-जीवन करुणा के प्रतीक।
(२) जन-जीवन के उल्लास के प्रतीक।

हिन्दी साहित्य मे भारतीय सस्कृति की समन्वय-प्रवृत्ति के दर्शन जहाँ अन्यान्य रूपो में हुए है वहाँ इन दोनो विभूतियो के विभिग्न स्वरूपो के समन्वय मे भी यह विशेषता देखी जा सकती है। जनजीवन के दो विभिन्न पक्षो पर इनका अमिट प्रभाव पड़ा। राम के साथ जनजीवन राक्षसों के अत्याचारो से मुक्ति पाने के लिए चिन्तित था तो कृष्ण के साथ वह निश्चिन्त एव अशोक हो रास के आनन्द-उल्लास मे आत्म-विभोर था। सूक्ष्म निरीक्षण से किन्तु यह स्पष्ट हो जाता है कि दूसरे रूप के आनन्द और उल्लास के गर्भ में भी सजल नेत्र तथा तप्त बाहो को प्रश्रय दिया गया था। कृष्ण-गोपी-विरह की ही प्रधानता थी जिसका विवेचन किया जा चुका है और कहना न होगा कि इसी समान आधार पर इन दो विरोधी स्वरूपों का समन्वय संभव हो सका।

यह अवश्य है कि रामकथा मे भावी प्रवल है तो कृष्ण-कथा मे भावी का सृजन एक अश तक स्वय किया गया है। राम के लिए पितृ-आज्ञा तथा वचन-पालन-गत विवशता थी तो कृष्ण के लिए मथुरा जाने का निमन्त्रण स्वीकार कर लेना शिष्टा-चार मात्र था। कस के निमन्त्रण को अस्वीकार किया जा सकता था किन्तु राम के लिए ऐसा कोई विकल्प न था। इसीलिए राम के प्रति उमड़ती एवं उद्वेलित जन-भावराशि विवशता के कारण असहाय, दीन तथा अति दुःखी थी और इसी कारण रामकथा जनमानस के अधिक समीप रही तथा उसका प्रभाव सदा के लिए अमिट हो गया। कृष्णकाव्य किसी भी रूप मे रामकथा से कम न होते हुए भी जनमानस की वह समीपता न पा सका। रामायण के अनुरूप कृष्णायन की भी रचना हुई किन्तु

रामायण रामायण ही रही। इन दोनों स्वरूपों के इस अन्तर के अन्तर्गत ही राम-कथा की पृष्ठभूमि में करुण रस की महत्ता निहित है।

रामकथा का आधार मूलरूप में वाल्मीकि रामायण मे सुलभ था जिसकी ओर हिन्दी के कवियो ने कृतज्ञता प्रकाशित की है।

तुलसी—"यद् रामायणे निगदित ।"

केशव—"वाल्मीकि मुनि स्वप्न महँ दीन्हो दर्शन चारु।"

यही नही उन्होने रामकथा का निम्नलिखित शब्दो मे वही प्रभाव बताया है जो प्रभाव हेगल ने चरित्र-निर्माण के लिए करुण का बताया था। "शोक अपने ठोस रूप मे मानव चरित्र है।"

"विधि निषेधमय कलिमल हरनी, करम-कथा रविनदनि बरनी।
हरि हर कथा विराजति बेनी, सुनत सकल मुद मगल देनी ॥"
"तिन के गुण कहिहौ सब सुख लहिहौ पाप पुरातन भागै ॥"

कहना न होगा कि हिन्दी के कवि शोक के चरित्र-निर्माण सम्बन्धी प्रभाव से सुपरिचित थे। इसीलिए रामकथा का प्रभाव बतलाते हुए उन्होने "कलिमल हरनी", "पापपुरातन भागै" गुणों की ओर ही प्रमुखरूप से सकेत किया।

अस्तु कहा जा सकता है कि रामकथा की पृष्ठभूमि मे करुणरस की प्रमुख रूप से व्यापकता रही। कथा को आगे बढाने, उसमे मोड देने तथा उचित प्रवाह लाने के लिए करुण रस का सफल प्रयोग हुआ। करुणरस यद्यपि मुख्यत. अव्यक्त रूप मे दुष्टो के विनाशक भगवान के मगलमय क्रोध का आधार था तथापि व्यक्तरूप मे भी मूल कथा से किसी भी रूप मे पीछे न रहा। मूलकथा-रावणवध है तो उसके दोनो किनारों पर करुणरस की धारा प्रवाहित है – एक किनारे पर है दशरथ-मरण तथा सीताहरण (जहाँ तक सीता का पता नही चलता तथा राम सोचते है कि उसको किसी राक्षस ने मार डाला) तो दूसरे किनारे पर है सीता-वनवास। इन द्रवभूति किनारो के बीच मे बहती है मूलकथा की वेगवती धारा जिसका नियत्रण इन्ही किनारो के हाथ में है।

: २ :

मध्ययुगीन हिन्दी-रामकाव्य में जीवन-दर्शन

जीवन-दर्शन तथा साहित्य—साहित्य समाज का दर्पण होता है। समाज की गतिविधि की स्पष्ट छाया साहित्य की अभिव्यक्ति के अन्तर्गत प्रकट होती है। व्यष्टि रूप में जीवन की प्रत्येक दशा पर साहित्य प्रकाश डालता है। जीवन की आस्थाएँ एवं विश्वास, क्षोभ एवं ग्लानि आदि का यथातथ्य निरुपण करने के साथ साहित्य जीवन को विशिष्ट आदर्शों की ओर भी उन्मुख करता है। अतः जीवन-दर्शन के अन्तर्गन्त जीवन के यथार्थ एव आदर्श दोनो ही रूपो का समावेश होता है।

मध्ययुगीन हिन्दी-साहित्य ने समाज के लिए यथार्थ एव आदर्श दोनो रूपों की योजना कर आलोचक एव सुधारक दोनो व्यक्तित्वो का प्रकटीकरण किया। यथार्थ के अन्तर्गत समाज मे व्याप्त अव्यवस्था एव वितण्डावाद की ओर साहित्य ने शिव का तीसरा नेत्र खोला तो आदर्श के अन्तर्गत मर्यादापुरुषोत्तम का आदर्शचरित्र परमत्रय में प्रतिष्ठित कर 'अवश्यमेव अनुकरणीय' सिद्ध कर दिया।

मध्ययुगीन राजनीतिक परिस्थितियो के अन्तर्गत जीवन का आनन्दवादी दृष्टिकोण दुःखवाद की ओर उन्मुख हो उठा था। उठकर संभलने के स्थान मे कलपने तथा कोसने की प्रवृत्ति प्रतिलक्षित हो उठी थी। परिस्थितिगत विवशता एव असहायावस्था के कारण उत्थान का अवसर सभव न था। अत दैन्य एव आर्त्त प्रार्थना के दर्शन साहित्य में संभव हुए। युग की प्रगति का विकास आत्म-विश्वासी साधक के स्थान पर आत्म-अविश्वासी दीन भक्त में प्रतिलक्षित हुआ। समष्टि रूप में शोकानुभूति के सभी सभव प्रसंगों तक कवियो की दृष्टि गई तथा व्यष्टि रूप मे जन्म, शैशव, यौवन, वार्द्धक्य तथा मरण प्रत्येक दशा की दुःखानुभूति की ओर सकेत हुआ।

वर्णाश्रम व्यवस्था का विकास—मानव-जीवन मे दुःख-निवृत्ति के प्रयास मानव जन्म से ही प्रारम्भ होते है। सुख एवं सुविधापूर्वक जीवन-यापन के विभिन्न साधन समाज की आस्था और विश्वासों के रूप मे प्रकट होते हैं जो समय-समय पर परिवर्तित तथा संशोधित होते रहते हैं। इन परिवर्तनों के अन्तर्गत दुःख-निवृत्ति की

मूल भावना प्रगतिशील रहती है जो आज भी उसी रूप में प्रगतिशील देखी जा सकती है।

मानव-जीवन के प्रारम्भ में जीवन की आवश्यकताएँ संख्या मे परिमित होते हुए भी वैयक्तिक साधनों के लिए अलभ्य सिद्ध हुईं। एक व्यक्ति के लिए उनका जुटाना कठिन था। साथ ही अपरिचित वातावरण मे जीवन-रक्षा तथा जीवन-यापन की मूल आवश्यकताएँ आदि मानव के लिए दुरुह समस्याएँ थी जिनको हल करने के लिए जन-समूह का दो वर्गों में विभाजित किया जाना आवश्यक समझा गया। इन प्राथमिक आवश्यकताओं के आधार पर क्षत्रिय और वैश्य दो वर्गों की उद्भावना हुई। कालातर में सेवा और ज्ञानार्जन की आवश्यकताओ ने शूद्र तथा ब्राह्मण वर्णों की सभावना कर चार वर्णों की प्रतिष्ठा की। ज्ञान-विज्ञान के अधिष्ठाता ब्राह्मण आगे चलकर समाज में महत्ता प्राप्त कर समाज के नेता बन गए। [१]

हिन्दी-साहित्य मे वर्णाश्रम व्यवस्था के विकास एव प्रतिष्ठा के सम्बन्ध मे कोई विवेचन नही हुआ। साहित्य के प्रादुर्भाव से शताब्दियो पूर्व वर्णाश्रम व्यवस्था की पूर्ण प्रतिष्ठा हो चुकी थी। इसलिए इस समय साहित्य मे इनके विवेचन की कोई आवश्यकता भी न समझी गई। साहित्य को इस काल में वर्ण व्यवस्था के विकृत रूप के ही दर्शन हुए जिसके प्रति साहित्य ने क्षोभ प्रकट किया।

---

१. शास्त्रीय विश्वासो के अनुकूल वर्ण-व्यवस्था विकास का परिणाम नही है। सृष्टि का प्रारम्भ ही वर्ण-व्यवस्था से होता है।

"ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः।
उरु तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत।"—ऋग ८/१०/९०
शुक्ल यजु ३१/१

विराट पुरुष के मुख से ब्राह्मण, बाहुओ से क्षत्रिय, उरु से वैश्य तथा चरणो से शूद्र उत्पन्न हुए।

इसी प्रकार ब्राह्मणो के सम्बन्ध मे शास्त्रीय विचार विकासवाद के अनुकूल नही है—

"जन्मनैवः महाभागो ब्राह्मणो नाम जायते।
नमस्यः सर्वभूतानामतिथि. प्रसृताग्रमुक्॥"—महा० भा० अनु० पर्व ३५/१

हे महाभाग, जन्म के द्वारा ही ब्राह्मण होता है। ब्राह्मण कुल मे जन्म लेने के कारण ही वह समस्त प्राणियो के लिए नमस्य-नमस्कार करने योग्य और अतिथि रूप में स्वपक्व अन्न का सर्वप्रथम भोक्ता बनता है।

"ब्राह्मणः संभवाच्चैव देवानामपि देवतम्।"—व्यास संहिता ४/४९
ब्राह्मण जन्म से ही देवताओ के भी पूज्य है।

वर्णाश्रम व्यवस्था का विकृत रूप--परिस्थितियों वश आश्रम व्यवस्था से वानप्रस्थ तथा सन्यास दोनो आश्रमो का लोप हो गया। गृहस्थाश्रमगत् ममता, मोह तथा आर्थिक संकट ने एक बड़ी संख्या में गृहस्थो को वानप्रस्थ एव सन्यास आश्रम मे जाने से रोक दिया। साथ ही वर्ण व्यवस्था भी धीरे-धीरे रूढिगत हो चली। गुण कर्म के स्थान में जन्मना व्यवस्था व्यवहार्य हुई। कालान्तर मे यह जन्मना विधान अति कठोर हो गया। एक वर्ण से दूसरे वर्ण मे परिवर्तन के अवसरो की असंभावना के साथ सामाजिक सम्बन्ध भी वर्ण तक सीमित हो गए। शूद्र अब अछूत बन गए। मदिरो मे प्रवेश वर्जित होने के साथ-साथ विशिष्ट राजमार्गो पर भी आने-जाने की उनको आज्ञा न रही। रूढि की विरोधिनी प्रतिक्रिया मध्ययुगीन साहित्य की रचना के समय प्रकट हुई। शूद्र स्पष्ट रूप से वर्ण व्यवस्था का विरोध करने लगे। कवि ने इस प्रतिक्रिया को कलियुग का प्रभाव बतलाया तथा इसके प्रति निम्नलिखित शब्दो मे आन्तरिक क्षोभ प्रकट किया।।

"न वर्ण धर्म रहा न चारो आश्रम रहे। सब स्त्री-पुरुष वेद के विरोधी हो गए। ब्राह्मण वेदो को बेचने वाले है तथा राजा-प्रजा के शोषक है।"[1]

"जिसको जो अच्छा लगा उसी को उसने प्रशस्त मार्ग समझा। जो व्यर्थ बकवास करने लगा वह पण्डित समझा गया। जो मिथ्याडबर करता है तथा दम्भ मे रत है उसको सब लोग सत कहने लगे।"[2]

"जो दूसरो का धन हरण कर सकता है वही बुद्धिमान कहलाया। जो दम्भ करता है वह बडा आचारी तथा जो झूठ बोलता तथा उपहास करना जानता है वह गुणवान समझा गया।" [3]

"शूद्र ब्राह्मणो से विवाद करने लगे कि हम क्या तुमसे कुछ कम है? जो ब्रह्म को जानता है वही श्रेष्ठ ब्राह्मण है।" [4]

"तेली, कुम्हार, चाडाल, भील, कोल तथा कलवार आदि जो नीच वर्ण है, स्त्री के मरने पर अथवा गृहसम्पति के नाश होने पर सिर मुडाकर सन्यासी

---

१. वरन धर्म नहि आश्रम चारी, श्रुति विरोध रत सब नर नारी।
द्विज श्रुति बेचक भूप प्रजासन, कोउ नहि मान निगम अनुसासन।।

२. मारग सोह जा कहूँ जोई भावा, पडित सोइ जो गाल बजावा।
मिथ्यारंभ दम्भ रत जोई, ताकहूँ संत कहइ सब कोई।।

३. सोइ सयान जो परधन हारी, जो कर दम्भ सो बड आचारी।
जो कह झूठ मसखरी जाना, कलिजुग सोइ गुनवत बखाना।।

४. बादहि सूद्र द्विजन्ह सन हम तुम ते कछु घाटि।
जानइ ब्रह्म सो विप्रवर आँखि दिखावहिं डाटि।।

—(रामचरितमानस, उतरकाण्ड ९९)

हो गए।"[1]

"शूद्र नाना प्रकार के जप, तप और व्रत करते थे। ऊँचे आसन पर बैठकर पुराण सुनाते है। सब मनुष्य मनमाना आचरण कर रहे है। अपार अनीति व्याप्त हो रही है जिसका वर्णन नही किया जा सकता।"[2]

आश्रम का आदर्श—कवि प्रत्येक आश्रम के लिए अपेक्षित विशेषता पर प्रकाश डालता है तथा उसके अभाव को देखकर क्षुब्ध हो उठता है। वेद ब्राह्मण की शोभा है। इसलिए वेदविहीन विप्र जो अपना धर्म-कर्म छोडकर विषयरत है, शोचनीय है। नीति-निपुणता तथा प्रजावत्सलता राजा की शोभा है। अत वह राजा शोचनीय है जो नीति नही जानता तथा जिसको प्रजा प्रिय नही है। धनवान वैश्य कृपणतावश अतिथिसत्कार तथा शिवभक्ति से विरत रहे तो वह अपनी मर्यादा से च्युत होने के कारण शोचनीय है। सेवा एव निस्वार्थ सेवा शूद्र का धर्म है। अतएव यदि शूद्र ब्राह्मणो का अपमान करने वाला, अधिक बोलने वाला तथा मान-बडाई चाहने वाला है तो वह शूद्र भी पथ-भ्रष्ट है तथा वह भी शोचनीय है। स्त्री को पति अनुकूल रहना चाहिए अतएव कुटिल,कलहप्रिय तथा स्वेच्छा से विचरण करने वाली पतिवचक नारी भी शोचनीय है।" व्रतपते व्रत चरिष्यामि" ब्रह्मचारी का आदर्श हे। अत व्रत से विरति तथा गुरु-आज्ञा-प्रतिकूलता ब्रह्मचारी के लिए शोक का कारण है।[3]

गृहस्थाश्रम मे कर्म-मार्ग का अनुसरण श्रेयस्कर है। अतः मोहवश कर्म-मार्ग से विरत गृहस्थ शोचनीय है। वह सन्यासी भी शोचनीय है जो ज्ञान वैराग्य विहीन है और सासारिक प्रपचो मे लीन है। वानप्रस्थ आश्रम तपश्चर्या के लिए है। यदि इस आश्रम मे भी भोग भले लाते हे तो ऐसे वानप्रस्थ-मार्ग मे पतित होने के कारण शोचनीय है।

---

१. "जे वरनाधम तेलि कुम्हारा, स्वपच किरात कोल कलवारा।
नार मुई घर सपति नासी, मूड मुडाइ होंहि सन्यासी॥

२ सूद्र करहि जप तप व्रत नाना, बैठि बरासन कहहि पुराना।
सब नर कल्पित करहि अचारा, जाइ न बरनि अनीत अपारा॥
—(उ० काण्ड, ९९)

३. सोचिअ विप्र जो वेद विहीना, तजि निज धरमु विषय लवलीना।
सोचिअ नृपति जो नीति न जाना, जेहि न प्रजा प्रियप्रान समाना।
सोचिअ वयसु कृपन धनवानू, जो न अतिथि सिव भगति सुजानू।
सोचिअ सूद्र विप्र अवमानी, मुखर मानप्रिय ग्यानगुमानी।
सोचिअ पुनि पति वचक नारी, कुटिल कलहप्रिय इच्छाचारी।
सोचिअ वटु निज व्रतु परिहरई, जो नहि गुरु आयुस अनुसरई॥
—(अयो० काण्ड, १७[illegible])

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि वर्णाश्रम व्यवस्था कवि का आदर्श है तथा व्यवस्था के अनुकूल आदर्शों के प्रति समाज की उदासीनता कवि को असह्य है । लोकमगल की कामना से प्रेरित होकर ही कवि ने समाज की इस उदासीनता के प्रति अपना क्षोभ प्रकट किया है।

धर्म की द्वन्द्वात्मक प्रवृत्ति—"दु.ख की निवृत्ति की खोज से ही धर्म उत्पन्न होते है"—किन्तु वाह्य कर्मकाण्ड के आधार पर धर्म स्वय दु खमूलक भी बन जाते है। धार्मिक द्वन्द्व तथा धार्मिक अत्याचार विश्व के धार्मिक इतिहास की मुख्य रूप-रेखा है जिन्होने समय समय पर विश्वराजनीति को भी प्रगति दी है। मध्ययुग में इस्लाम तथा हिन्दू दो प्रतिद्वन्दी धर्म तथा शैव एव वैष्णव एक ही धर्म के दो प्रति-द्वन्द्वी सम्प्रदाय थे। इन द्वन्द्वो की ओर साहित्य की दृष्टि गई तथा धर्म के नाम पर प्रचलित इस अज्ञानता पर साहित्य को अति क्षोभ हुआ। कवि ने एक ओर अभय दण्ड हाथ मे लेकर विरोधमूलक कर्मकाण्ड की कटु आलोचना की तो दूसरी ओर एक सम्प्रदाय को दूसरे का पोषक सिद्ध करके भेदभित्ति को चकनाचूर कर डाला।

कर्मकाण्डगत क्षोभ---रामकथा के कलाकारो के साथ कबीर ने भी कर्मकाण्ड पर क्षोभ प्रकट किया है। प्रस्तुत प्रसंग मे कबीर के क्षोभ का स्वरूप देख लेना असंगत न होगा। माला लेकर नाम जपने पर कवि को दु ख हुआ। कैसी बिडम्बना है यह ? दिखावा तो हो रहा है धर्म का, किन्तु मन न जाने कहाँ-कहाँ प्रपचो मे घूमता है।[1]

सन्यासी का वेश धारण करना सहज है किन्तु उसका निभाना कठिन है। साधु ऐसी वाणी बोले जिससे सुनने वाले आहत हो उठे तो वह साधुता किस काम की ?[2] पाषाण पूजा तथा मसजिद की नमाज दोनो ही व्यर्थ हैं। कवि को इस प्रकार की पूजा तथा नमाज पर दु ख होता है। क्षुब्ध होकर वह डपटने लगता है। "घर की चक्की क्यो नही पूजते जो आटा तो पीस देती है। क्या खुदा बहरा है जो मुल्ला बाँग दे रहा है।"[3]

---

१. माला तो कर मे फिरै, जीभ फिरै मुख माँहि।
मनुवाँ तो दहूँ दिस फिरै, यह तौ सुमिरन नाहि ॥

२. साधु भया तो क्या भया, बोलै नाहि विचारि।
हतै पराई आतमा, जीभ बाँधि तरवार ॥"

३. पाहन पूजे हर मिलै तो मैं पूजूं पहार।
ताते यह चाकी भली पीस खाय संसार।
काँकर पाथर जोर कै मसजिद लई चिनाय।
ता चढ़ि मुल्ला बाँग दे, क्या बहिरा हुआ खुदाय। —कबीर

साथ ही कवि को "मूंड मुडाकर" सन्यासी होना भी रुचिकर नही लगता। उसे इन संन्यासियो की अज्ञानता पर क्षोभ होता है। बेचारे बालो ने क्या बिगाड़ा है जो उनको "मुंडवा" दिया। विकार परिपूर्ण तो मन है। इसका कोई उपचार क्यों नही करते?[1]

हिन्दुओ की छूआछूत एव दुराचार तथा मुसलमानो का मासाहार एवं भाई-बहिन का बिवाह सम्वन्ध कवि के क्षोभ का कारण बनता है तथा दोनो की अज्ञानता पर प्रकाश डालते हुए वह कह उठता है—

"अरे इन दोउन राह न पाई।"

साम्प्रदायिक ऐक्य की समस्या शैव और वैष्णवो के विरोध के लिए हल की जानी आवश्यक थी। अतएव कवि ने राम-भक्ति प्राप्त करने के लिए शिव-भक्ति अपेक्षित निर्धारित की। राम "शम्भु थापना" कर शिव महिमा के साथ शैव एवं वैष्णवो की एकता की स्थापना करते हैं।

केशवदास जी ने भी रामचन्द्रिका मे इस प्रसग को इसी रूप मे रखकर साम्प्रदायिक एकता का प्रयत्न किया है—

"उरते शिव मूरति श्रीपति लीन्ही।
शुभ सेतु के मूल अधिष्ठित कीन्ही॥
इनको दरसै परसै पग जोई।
भवसागर को तरि पार सो होई॥"

धार्मिक एकता का अभिन्न रूप—धार्मिक एकता का अभिन्न रूप साहित्य की अपूर्व कल्पना मे प्रस्फुटित हुआ जिसके अन्तर्गत विधर्मी शासको का पूर्व जन्म में हिन्दू होना अथवा एक ही ज्योति से उद्भूत होने के कारण हिन्दू शासको से संबधित होना सिद्ध किया गया। प्रस्तुत प्रसग मे प्राचीन काव्य के उपलब्ध उदाहरण देख

---

१. 'केसन कहा बिगारिया जो मूँडौ सौ बार।
मन को क्यो नहि मूंडिये, जामैं विषै विकार॥"
—(कबीर-ग्रन्थावली)

"हिन्दू अपनी करै बड़ाई गागर छुवन न देई।
वेस्या के पांइन तर सोवै यह देखो हिदुआई।
....
खाला केरी बेटी ब्याहै घरहि मैं करै सगाई।"
—(कबीर-ग्रन्थावली)

लेना अपेक्षित होगा। कवि की करुणा द्रवित हो उठी जब उसने देखा कि धर्मी और विधर्मी का प्रश्न कितना घातक सिद्ध हो रहा है। मानव ऐक्य के लिए उसकी आत्मा विह्वल हो उठी। उसकी इस अन्तर्वेदना ने ही इन अलौकिक कल्पनाओं को जन्म दिया। विरोधी पक्ष के दो चरित्रो की ओर कवियो की दृष्टि विशेष रूप से गई—१· मुहम्मद गौरी और २. अलाउद्दीन।

इन दोनों चरित्रो के सम्बन्ध मे साहित्य की अलौकिक कल्पना निम्नलिखित रूप मे प्रकट हुई—

मुहम्मद गौरी के सम्बन्ध मे वीरभद्र ने कवि चन्द्र से यह रहस्य प्रकट किया—

"··· शहाबुद्दीन गौरी, राजा पृथ्वीराज और तुम (चन्द) तीनो एक ज्योति के अश हो और अन्त मे तुम तीनो को एक ही साथ उस ज्योति मे लीन होना है।"[1]

हम्मीर के शीश ने भी अलाउद्दीन को इन्ही तथ्यो की ओर सकेत किया जिन के अनुसार अलाउद्दीन ने सेतुबधु रामेश्वर की पूजा की तथा समुद्र मे कूदकर शरीर त्याग किया। स्वर्ग मे जाकर शाह और हम्मीर एक दूसरे से मिले और हर्षित हुए। हम्मीर के शीश ने "हम तुम सु एक जानो न और" तथ्य का उद्घाटन कर धार्मिक ऐक्य ही नही प्रत्युत मानव-ऐक्य का पाठ पढाया।

धर्म के मूल रूप—साहित्य ने धर्म का मूल रूप सरलतापूर्वक खोज निकाला। कर्म काण्डगत धर्म, धर्म नही हो सकता यह निषेधात्मक रूप मे सिद्ध किया गया। विधि के रूप मे गुणकथन, आर्त्त प्रार्थना, प्रेमानुरक्ति तथा नामसाधना आदि का विधान किया गया। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से गुणकथन तथा लीलागान तदाकार वृत्ति के सृष्टा हो सकते है। सभवत भक्त कवियो की दृष्टि इसी मनोवैज्ञानिक तथ्य की ओर इस साधना के अन्तर्गत रही। इसीलिए साधना की एक अवधि के पश्चात् अपने व्यवहार एव सदाचार पर सिहावलोकन करने का अवकाश निकालने की भक्त की

१. रासोसार, पृष्ठ ४३४/४

मध्ययुगीन प्रमुख शासक अकबर महान के सम्बन्ध मे भी इसी प्रकार की एक कथा प्रचलित है जिसका समावेश किसी प्रकार साहित्य मे न हो सका।

"पूर्व जन्म मे अकबर मुकुन्द ब्रह्मचारी थे। प्रयाग मे रहते थे। यमुना के दक्षिणी किनारे पर आधुनिक किले के सामने उनका निवास था। आज भी इस स्थान को मुकुन्द ब्रह्मचारी का टीला कहते है। मुकुन्द ब्रह्मचारी दुग्धाधारी थे। एक बार बिना छाने हुए ही ब्रह्मचारी जी गाय का दूध पी गए। इस दूध मे गाय का बाल था। गाय के बाल का भक्षण गाय माँस भक्षण के समान पापपूर्ण होता है। अतः इस परिताप के कारण आत्महत्या कर ब्रह्मचारी जी ने प्राण त्याग किए तथा दूसरे जन्म मे वह अकबर हुए।"

—अमृतबाजार पत्रिका, १९/१/५३ (अंग्रेजी)

लालसा बनी रही। संक्षेपतः यह कहा जा सकता है कि धर्म के वाह्य रूप को आन्तरिक साधना के लिए स्थान रिक्त करना पड़ा।

आन्तरिक साधना के अन्तर्गत कवि की दृष्टि "भगत मन कुटिलाई" की ओर रही जिसकी विस्तृत व्याख्या मानस रोगो के अन्तर्गत हुई। धर्म का मूलरूप वाह्य नही अन्तरिक है—इस भावना को लेकर मानसिक उदात्त वृत्तियो को प्राप्त करने की स्वाभाविक लालसा भक्त को हो उठी। इस लालसा की अपूर्ति भक्त के शोक का कारण बनी। कवि ने आलकारिक रूप मे अपनी वेदना को चित्रित करने का प्रयत्न किया। शारीरिक रोगगत स्थूल वेदना के आधार पर मानस रोगो की सूक्ष्म एवं गम्भीर वेदना निम्नलिखित शब्दो मे प्रकट की गई—

"· सब रोगो की जड मोह (अज्ञान) है जिससे बहुत से शूल उत्पन्न होते है। काम वात है, लोभ बढा हुआ कफ है और क्रोध पित्त है जो सदा छाती जलाते रहते है। यदि कही यह तीनो भाई प्रीति करले तो दु खदायी सन्निपात रोग उत्पन्न होता है। कठिनता से पूर्ण होने वाले विषयो के मनोरथ ही सब शूल है। वे अपार हैं। उनके नाम कौन जानता है।"[1]

ममता दाद है, ईर्ष्या खुजली है, हर्ष-विषाद गले के रोग है, पर सुख को देखकर उत्पन्न जलन क्षय है, दुष्टता और मन की कुटिलता ही कोढ है।[2]

अहकार अत्यत दु खदायी डमरू रोग है। दम्भ, कपट, मद और मान नहरुआ रोग है। तृष्णा वृहद् उदर वृद्धि है। तीन प्रकार की प्रबल इच्छाएँ (पुत्र, धन, मान) प्रबल तिजारी है। मत्सर और अविवेक दो प्रकार के ज्वर है। इस प्रकार अनेक रोग है जिन्हे कहाँ तक कहा जाय।[3]

इस प्रकार कवि ने शारीरिक रोगो की पीडायुक्त अनुभूति के उदाहरणो द्वारा मानसिक रोगो की परम वेदनामय अनुभूति का स्पष्टीकरण कर धर्म के दु.खात्मक पक्ष के दर्शन कराए है। "कबहु मन विश्राम न मान्यो" कहकर कवि ने साधन-

---

१. "मोह सकल व्याधिन्ह कर मूला। तिन्ह ते पुनि उपजहि बहु सूला॥
काम वात कफ लोभ अपारा। क्रोध पित्त नित छाती जारा॥
प्रीति करहि जौ तीनिउ भाई। उपजइ सन्यपात दुखदाई॥
विषम मनोरथ दुर्गम नाना। ते सब सूल नाम को जाना॥"
—(मानस, उ० का०)

२ "ममता दादु कडु इरषाई, हरष विषाद गरह बहुताई।
पर सुख देखि जरन सोई छई, कुष्ट दुष्टता मन कुटिलई॥"

३ "अहकार अति दुखद डमरुआ, दभ कपट मद मान नेहरुआ।
तृष्णा उदर वृद्धि अति भारी, त्रिविधि ईषना तरुव तिजारी।
जुग विधि ज्वर मत्सर अविवेका, कहँ लगि कहौ कुरोग अनेका।"
—(मानस, उ० का०)

विफलता की ओर सकेत किया है जिसके द्वारा साधक की विवशता एवं कातरता प्रकट हो रही है।

आचार्य केशवदास जी ने भी जीवन को दु खपूर्ण देखा तथा संसार को सुख रहित बताया। उन्होंने जीवन के प्रत्येक पहलू को देखा और उसको दु.खपूर्ण ही पाया—

अ—सबसे बड़ा दु.ख तो जन्म-मरण का है। यह चक्र चलता ही रहता है।

आ—जन्म लेते हुए—गर्भ मे कष्ट सहते है और बडे कष्ट से गर्भ से बाहर आते है। तब शरीर सम्बन्धी व्यवहारो मे पडकर अन्त मे कष्ट सहते है।

इ—बचपन मे भली-बुरी वस्तु को नही जानता तथा सब कुछ मुँह मे रख लेता है।[1]

ई—बचपन मे माता-पिता से बडे दु:ख पाते है। शिक्षण में गुरु जी से दु:खित होते हैं।

उ—जवानी में सशय रूपी चिता चित्त को चबाती है। क्रोध रूपी सर्प त्वचा को चबाता है। मनुष्य काम रूपी समुद्र की तरगो मे चचल और यौवन बल मे मदहोश रहता है।

---

१. "सुमति महामुनि सुनिये, जग महँ सुक्ख न गनिये।
मरणहि जीव न तजही, मरि-मरि जन्म न भजही॥" —रा० च० २४/१
"उदरनि जीव परत है, बहु दु ख सो निसरत है।
अंतहु पीर अनतही, तन उपचार सहित ही॥"—रा० च० २४/२
"पोच भली न कछू जिय जानै, लै सब वस्तुन आनन आन।"—(रा० च०)
"हैं पितु मातन ते दुख भारे, श्रीगुरु ते अति होत दुखारे।"—रा० च० २४/४
"जारति चित चिता दुचिताई, दीह त्वचा अहि कोप चबाई।
काम समुद्र झकोरनि भूल्यो, यौवन चोर महामद भूल्यो॥"—रा० च० २४/५
"बक हियेन प्रभा सँरसी सी, कर्दम काम कछू परसी सी।
कामिनि काम की डोरि ग्रसीसी, मीन मनुष्यन की बनसी सी॥"—रा०च० २४/७
"खैंचत लोभ दसौ दिसि को गहि मोह महा इत फाँसिहि डारे।
ऊँचेते गर्व गिरावत, क्रोधहु जीवहि लूहर लावत भारे।
ऐसे मे कोढ की खाज ज्यो केशव मारत कामहु बाण निनारे।
मारत पाँच करे पँचकूटहि कासों कहै जगजीव बिचारे॥"—रा०च० २४/८
"कँपै उर बानि डगै बर डीठि त्वचा ति कुचै सकुचै मति लेली।
नवै नवग्रीव थकै गति केशव बालकते सग ही सग खेली।
लिये सब आधिन व्याधिन सग जरा जब आवै ज्वरा की सहेली।
भगै सब देह दशा, जिय साथ रहै दुरिदौरि दुराशा अकेली॥"
—(रा० च० २४/११)

ऊ—स्त्रियों की कुटिलता वंशी के काँटे के समान है, उनके हृदय की गुप्त कामेच्छा मास का चारा है। स्त्री ही डोरी के समान है, कामदेव शिकारी है जो मनुष्य रूपी मीनो को फँसाकर मारता है।

ए—महा मोहरूपी गले मे फाँसी है, उसको लोभ दसो दिशाओ मे खीचता है, गर्व नीचे गिरा देता है। क्रोध जीव को जलते अगारो में जलाता है, इस पर भी कोढ़ की खाज की तरह कामदेव पाँचो कामबाणो को एक साथ मारता है। बेचारा जीव अपना दु:ख किससे कहे ?

ऐ—वृद्धावस्था में वाणी काँपने लगती है, दृष्टि डगमगा जाती है, त्वचा शिथिल होकर सिकुड जाती है, बुद्धि मद पड जाती है, गर्दन झुक जाती है, जीने की दुराशामात्र शेष रह जाती है।

जीवन के दु.खपूर्ण पक्ष की ओर साहित्य की दृष्टि रही। इसलिए साधना क्षेत्र में दु खत्राण की आवश्यकता प्रतीत हुई तथा गुरुभक्ति आध्यात्मिक क्षेत्र का त्राण सिद्ध हुई। "गुरू बिन होई न ग्यान" कहकर साधना-क्षेत्र मे गुरू की अनिवार्यता पर जोर दिया गया। गुरू रूप माध्यम की अनिवार्यता के लिए मध्ययुगीन सभी कलाकार एकमत रहे। साधन विफलता क्रियात्मक रूप मे सभावित त्रुटियाँ साधनागत निराशा आदि के समय गुरू-शरण आर्त्त प्राणी के लिए सतोष और शान्ति की योजना कर सकी।

गुरू-महत्ता के साथ गुरूपद की प्राप्ति भी महत्वपूर्ण बन गई तथा सच्चे गुरूओ के स्थान पर "गुरूडम" का प्रचार हो चला। इस अनाचार को देखकर कवि अति क्षुब्ध हो उठा। पदलोलुपता ने गुरू को गुरूडम के लिए विवश किया तो ऐसे ही शिष्यो के भी दर्शन होने लगे। शिष्य और गुरू मे बहरे और अंधे का बानिक बन गया। एक (शिष्य) उपदेश नही सुनता और दूसरा (गुरू) देखता नही—उसे ज्ञानदृष्टि प्राप्त नही।

कवि ने गुरूडम से दुखित होकर सिद्धान्तरूप मे घोषित किया कि जो गुरू शिष्य का धन हरण करता है पर शोक नही हरता वह घोर नरक मे पडता है। अन्त मे गुरूडम गुरू महिमा को लेकर ही विलीन हुई। धार्मिक क्षेत्र मे यह एक क्रान्ति कही जा सकती है जिसने मूल भावना के उपदेश रूप को विडम्बना के आवर्तन मे आमूल नष्ट कर डाला।

धार्मिक विधि से त्राण—धार्मिक विधि से त्राण पाने की लालसा ने भक्ति मार्ग मे सरलतम साधना की खोज की। नारदजी ने प्रतिनिधित्व किया—

"राम सकल नामन ते अधिका,
होउ नाथ अघ खग गन बधिका।"

---

१. "गुरू सिष बधिर अंध का लेखा, एक न सुनइ एक नहीं देखा।"
हरइ सिष्य धन सोक न हरई, सो गुर घोर नरक महँ परई॥"—उ०क० ६६

इस वरदान को प्राप्त कर आसन, प्राणायाम, समाधि आदि-आदि कष्टकर धार्मिक विधियों से भक्त को त्राण मिला। "भाव कुभाव अनख आलसहू, राम जपत मगल दस दिसिहू'—कहकर तो मानो भक्तो को सब प्रकार की छूट दे दी गई। जिस प्रकार मदिर मे घंटा बजाने तथा दर्शनमात्र से देवता की प्रसन्नता सभव हो सकी ठीक उसी प्रकार 'राम राम कहि जे जमुहाही, तिन्हहि न पाप पुंज समुहाही" पाप-मुक्ति के लिए सरलतम साधन सिद्ध हुआ। दु खी एव आर्त भक्त के लिए त्राणकर्ता नाम की परम प्रभावशीलता भी प्रकट हुई जब कवि ने राम की व्यापक महिमा की प्रतिष्ठा करते हुए दुःख निवृत्ति के लिए एक बार राम नाम लेना पर्याप्त बतलाया—

"बारक राम कहत जग जेऊ। होत तरन तारन नर तेऊ॥
जाकर नाम मरत मुख आवा। अधमउ मुकुत होइ श्रुति गावा॥
अपतु अजामिलु गजु गनिकाऊ। भए मुकुत हरिनाम प्रभाऊ॥
कहाँ कहाँ लगि नाम बडाई। राम न सकहि नाम गुन गाई॥"

नैसर्गिक उत्सर्गो के समय 'राम राम" कह लेने मात्र से साधनकार्य पूरा हुआ। धार्मिक विधिविधान के कष्टो के प्रति उदासीन जनरुचि ने ही कवि को धार्मिक साधना के अति सरल रूप के प्रकटीकरण के लिए विवश किया। इस साधना को कवि ने परम श्रेयस्कर भी सिद्ध किया—"नहि कलि करम न भगति विवेकू, रामनाम अव-लंबन एकू।"

इस प्रकार नाम जप एव नामस्मरण का युग धार्मिक क्षेत्र की नवीन अनुभूति के साथ प्रारम्भ हुआ जो अपनी सरलता के कारण सर्वप्रिय बन गया।

आचार्य केशवदास जी ने भी नाम महिमा की प्रतिष्ठा की। वशिष्टजी "सब भाँति अशक्त" के लिए उपयुक्त साधन की जिज्ञासा करते हुए ब्रह्मा जी से पूछते हैं—

"चित माँझ जब आनि अरूझी।
बात तात पहँ मैं यह बूझी॥
योग याग करि जाहि न आवै।
स्नान दान विधि मर्म न पावै॥
है अशक्त सब भाँति बिचारो।
कौन भाँति प्रभु ताहि उधारो॥"

इसके उत्तर में ब्रह्मा जी ने नाम-महात्म्य की पुष्टि करते हुए कहा—

"जब सब वेद पुराण नसै है, जब तप तीरथ हू मिटि जैहै।
द्विज सुरभी नहि कोउ बिचारै, तब जग केवल नाम उधारै॥"

मृत्यु समय प्रभु नाम-स्मरण पापविनाशक सिद्ध हो कर सहज ही स्वर्ग प्राप्त करा देता है, इस आस्था की ओर भी आचार्य जी ने निम्नलिखित शब्दो मे सकेत किया—

"मरण काल कोऊ कहै, पापी होय पुनीत।
सुख ही हरिपुर जाइहै, सब जग गावै गीत॥"

—रा०च०२६/१०

साधु एव असाधु का अन्तर भी आचार्य जी ने नाम-महात्म्य द्वारा निम्न-लिखित रूप मे प्रकट किया है—

"लेई जो कहिये साधु तेहि, जो न लेई सो बाम।
सब को साधन एक जग, राम तिहारो नाम॥"

—रा० च० २५/४०

ब्राह्मण पूजा—मध्ययुग मे ब्राह्मणो की दीन दशा पर कवि की करुणा जाग्रत हो उठी। अब तक वह समाज मे पूज्य तथा सम्मानित था किन्तु तत्कालीन परिस्थितियो मे वह गुणहीन ही नही अपितु शीलहीन भी हो गया। अतएव सम्मान के लिए अपेक्षित गुण शील के अभाव मे उसके सम्मान की रक्षा कवि को करनी पडी। "पूजिन विप्र सील गुन हीना" कहकर कवि ने विप्रत्राण की सफल योजना की। इस सिद्धान्त की पुष्टि के लिए कवि ने भिन्न-भिन्न अनुकूल प्रसगो की योजना की। पुण्य करने के इच्छुक भक्तो को एकमात्र पुण्य का निर्देश किया गया—

"पुन्य एक जग महुँ नहि दूजा, मनक्रमवचन विप्रपद पूजा।"

"भय बिन होई न प्रीति" के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त के आधार पर कवि ने 'जिमि द्विज द्रोह किए कुल नासा" का भयावना रूप भीरू-हृदय भक्तो के सम्मुख रखा। मर्यादा पुरुषोत्तम राम से इसकी सम्पुष्टि करा दी गई—"मोहि न सोहाई ब्रह्मकुल द्रोही।" अन्त मे विप्र-पूजा द्वारा परम लाभ की भी योजना कवि ने की—

"मनक्रमवचन कपट तजि, जो कर भूसुर सेव।
मोहि समेत विरँचि सिव ताके सब देव॥"

कवि के प्रयास सफल हुए तथा विप्रपूजा के साथ ब्रह्मभोज की भी सामाजिक व्यवस्था अनिवार्य हो गई। जीवन के प्रत्येक शुभाशुभ कार्यो के अवसर पर ब्रह्मभोज अनिवार्य हुआ जिसके फलस्वरूप मृत्यु भी व्यय-भार से आक्रान्त होकर समाज के लिए अभिशाप बन गई। दरिद्रता के क्रोड मे मरणासन्न प्रियजन की मृत्यु से भी आर्थिक सकट की सभावना होने लगी। मध्ययुगीन सरल हृदय कवि को सभवतः इस शोचनीय दशा की आशा न थी।

आचार्य केशवदास जी स्वयं सनाढ्यब्राह्मण थे। अतएव उन्होंने ब्राह्मणों मे भी सनाढ्यो की पूजा का विधान रखा—

"सनाढ्य जाति सर्वदा! यथा पुनीत नर्मदा!!
भजै सजै ते सपदा! विरुद्ध ते असंपदा॥"—रा० च० ३८/५६
"सनाढ्य वृत्ति जो हरे। सदा समूल सो जरै॥

अकाल मृत्यु सो मरै। अनेक नर्क सो परै ।।"—रा० च० ३४/५७

सनाढ्य पूजा का फल बताते हुए आचार्य जी ने कहा—

"सनाढ्य पूजा अघ ओघ हारी। अखंड आखडन लोकधारी ।।

अशेष लोकावधि भूमिचारी। समूल नाशै नृप दोष कारी।।"—रा० च० २१/२०

जीवन के दु खवादी दृष्टिकोण ने दु:ख-निवृत्ति के लिए एक परम शील एव परम शक्तिवान साध्य की प्रतिष्ठा की। 'शरणागत-वत्सलता' साध्य का प्रमुख गुण बतलाया गया। कोई कैसा ही पापी क्यो न हो, भगवान् की शरण मे आवे तो प्रभु उसको अविलम्ब अपना लेते है। यह विश्वास मध्ययुगीन कवि को शोकसतप्त आध्यात्मिक पथ के पथिक के सम्मुख रखना पडा।

भक्त की जिज्ञासा हुई—किस पापी को अपनाया जा सकता है? कवि ने शंका का समाधान करते हुए कहा—जिसको करोडो विप्र-वध के पाप लगे हो अथवा जो चराचर द्रोही हो वह भी भगवान् की शरण मे ले लिया जायगा। उसको भी भगवान् अविलम्ब अपना लेगे। इस प्रकार पापो की आत्यतिक दशा मे उद्धार की संभावना तथा प्रभु कृपा का विश्वास हुआ।[1]

'मानउँ एक भगति नर नाता' कह कर कवि ने वर्ण-व्यवस्था के भेदभाव को भी दूर किया। धार्मिक जगत मे शूद्रो और स्त्रियो को धार्मिक कृत्यो के अधिकार न थे। इस भेदभाव के प्रति कवि की चेतना सजग हुई तथा उसे उपर्युक्त सिद्धान्त की प्रतिष्ठा करनी पडी। इस तथ्य के स्पष्टीकरण के लिए कवि ने दृढतापूर्वक कहा कि यदि अति नीच प्राणी भी भक्त है तो वह भगवान् को प्राणो से भी प्यारा है।

"भगतिवत अति नीचउ प्रानी, मोहि प्रान प्रिय अस मम बानी।"

"दीनबन्धुत्व तथा दीन दयालुता" भगवान् का सहज "बाना" बताया गया जिससे दीनो को अपने दैन्य के कारण प्रभु शरणागति प्राप्त करने मे कोई आशका न रहे। बिना किसी निमित्त के सहज स्वभाववश ही दीनो पर भगवान् का दयालु होना बतलाया गया। "जिसके लिए कोई अन्य गति न हो वह केवल भगवान् को ही प्रिय लगता है," कवि का यह सदेश प्राणीमात्र मे प्रभुभक्ति का सचार करने मे समर्थ हुआ—

"एक बानि करुना निधान की,
सो प्रिय जाके गति न आन की।"

कवि ने प्रभु को परम सुन्दर, परम शक्तिवान तथा परम शीलवान प्रतिष्ठित कर परमाराध्य निश्चित किया। ऐसे परम उदार तथा दीनवत्सल भगवान् की शरण में जाकर शोकसतप्त जीव का अविलम्ब उद्धार होना स्वाभाविक था। भगवान् के इस

---

१. जो नर होइ चराचर द्रोही, आवै सभय सरन तकि मोही।
तजि मद मोह कपट छल नाना, करउँ सद्य तेहि साधु समाना।
कोटि विप्र वध लागहिं जाहू, आए सरन तजउँ नहि ताहू।
सनमुख होइ जीव मोहि जबही, जन्म कोटि अघ नासहि तबही ।।

शील और स्वभाव से कवि ने सबको परिचित करा दिया। अब उनको कोई ऐसा कारण दिखलाई नही देता कि जीव ऐसे भगवान् की शरण में न जाय ! यदि ऐसा कोई जीव कही हो सकता है तो उस पर गोस्वामी जी को निम्नलिखित शब्दों में क्रोध आता है—

"सुनि सीतापति सीलसुभाऊ
मोद न मन तन पुलक नयन जल सो नर खेहर खाऊ।"

समाज—गृह-व्यवस्था को सुव्यवस्थित तथा सयत करने की दृष्टि से कवि ने लोक धर्म की प्रतिष्ठा की। पिता, पुत्र, भ्राता, पत्नी, परिजन एव पुरजन आदि प्रत्येक सदस्य के लिए आदर्श कर्त्तव्यो की प्रतिष्ठा की गई। पुत्र के लिए माता-पिता की आज्ञा-पालन के परम आदर्श का निर्वाह कितना कठोर एव कष्टकर हो सकता है—यह कवि ने आदर्शपुत्र राम के चरित्र द्वारा दिखलाया। इसी प्रकार उन्होने अन्य आदर्शों की प्रतिष्ठा रामकथा के विभिन्न चरित्रो के आदर्श चित्रण द्वारा की है। कोरे उपदेशो के स्थान मे कवि का यह प्रयास विशेष सफल तथा स्तुत्य रहा है। समाज की सुव्यवस्था मे कवि का महत्त्वपूर्ण योग है।

शोकानुभूति—शोकानुभूति के बाह्य व्यजको का दिग्दर्शन मूल प्रकरणो मे किया गया है। यहाँ शोकानुभूतिगत सामाजिक विश्वास एव आस्थाओ पर विचार किया जा रहा है—

अ—प्रियजन की मृत्यु का समाचार प्राप्त कर "निरब व्रत" का सकेत साहित्य मे हुआ। इसका दृढतापूर्वक पालन होता था। सभवत. दिवगत आत्मा के लिए सम्मान प्रदर्शन का यह अपेक्षित साधन समझा जाता था। सिर के बाल भी मुंडवा दिये जाते थे।[1]

(आ) प्रेतकर्म[2] का विवरण इस प्रकार है :—

---

१. मुडित केस-सीस, विह्वलदोउ, उमँगि कठ लपटाने।

—सू० सा० ६/५२/४६६

२. आईने अकबरी मे प्रेतकर्म का विस्तृत विवरण इस प्रकार दिया हुआ है—

"जब मनुष्य मरणासन्न होता था लोग उसे जमीन पर लिटाते थे, सिर के बाल बनाते थे, (सुहागिन स्त्री के बाल नही बनाए जाते थे) और उसे स्नान कराया जाता था। दान दिए जाते थे और ब्राह्मण आकर प्रार्थना करता था। गोबर से स्थान लीपा जाता था और कुछ कुश डालकर उसे पृथ्वी पर चित लिटा दिया जाता था। उसके पैर दक्षिण मे और सिर उत्तर को होता था। जब वह मरने को होता था तो उसके मुख मे गगाजल और सोना अथवा अन्य जवाहारात डालते थे। गाय पुण्य की जाती थी और उसकी छाती पर तुलसी रखी जाती थी और सिर पर एक विशेष प्रकार की मिट्टी से तिलक लगाया जाता था। मृत्यु के बाद उसका छोटा पुत्र, भाई, शिष्य और अन्य मित्र अपनी डाढी और मूंछ बनवाते थे और कही-कही दस दिन तक नही बनवाते थे। मृत शरीर को किसी चादर या कपडे से लपेटते थे। लाश को किसी नदी के किनारे ले जाते थे और एक चिता पलाश की लकड़ियो की बनाई जाती थी और लाश उसके ऊपर रखी जाती थी। मत्र पढकर घी तथा स्वर्ण शरीर के रन्ध्रो मे डाला जाता था। सबसे छोटा लडका या सबसे छोटा भाई या सबसे बड़ा भाई दाहसस्कार करता था।"—(आईने अकबरी भाग ३, पृष्ठ ३२२)

(१) शव को स्नान कराया जाता था—
"नृप तनु वेद विदित अन्हवावा ।"—(मानस २/१६६/१)

(२) शरीर के बधन तोड़ दिए जाते थे—
"तोरि लियो कटिहू कौ डोरा···।"—(सूरसागर ३७)

(३) रस्सी से बाँधकर अर्थी बनाई जाती थी—
"प्रेत प्रेत तेरौ नाम परयौ, जब जेबरि बाँध निकारियौ ॥"
—(सूरसागर ३३६)

(४) शव को सुगन्धित वस्तुओ के साथ जलाया जाता था—
"चंदन अगर भार बहु आये, अमित अनेक सुगध सुहाये"
—(मानस १६६/२)

(५) शव को पिण्डदान दिया जाता था—
"तेहि कर कमल कृपाज गीध कहै, पिड देइ निज धाम दियौ ।"
—(विनयपत्रिका १३८)

(६) कपालक्रिया की जाती थी—
"तेई लै खोपरी बाँस दै, सीस फोरि बिखरै दै ।"

(इ) **दिवंगत आत्मा के लिए दशगात्र विधान** अपेक्षित था। दस दिनो तक 'दीपदान' तथा आत्म-शान्ति के कार्य होते रहते थे। 'त्रियोदशा' के स्थान पर 'एकादश' प्रचलित मे था।[1]

(ई) **पति के साथ स्त्री का सती होना** प्रचलित था किन्तु सती होने के लिए उसको विवश नहीं किया जाता था। उसकी स्वेच्छा ही इस सबध में मान्य थी। पुत्र-दर्शन की लालसा से दशरथ की रानियाँ सती होने से विरत हो जाती है।[2]

(उ) **मृत शरीर** को चिता तक सजाकर विमान द्वारा ले जाया जाता था। विमान सभवत: पूर्ण आयुप्राप्त सुखसमृद्धिशाली व्यक्तियो के लिए ही बनाया जाता था।[4]

---

१. एहि विधि दाह क्रिया सब कीन्ही, विधिवत न्हाइ तिलांजुलि दीन्ही ।
सोधि सुमृत सब वेद पुराना, कीन्ह भरत दसगात विधाना ॥

२. दिन दस लौ जलकुभ साजि सुचि, दीप-दान करवायौ ।
जानि एकादस विप्र बुलाए, भोजन बहुत करायौ ॥—सू० सा० ६/५०/४६४

३. नृप तनु वेद विदित अन्हवावा, परम विचित्र विमानु बनावा।
गहि पद भरत मातु सब राखी, रही रानि दरसन अभिलाषी ॥
चदन अगर सुगध और घृत, विधि करि चिता बनायौ ।
चले विमान सग गुरु-पुरजन, तापर नृप पौढायौ ॥

(ऊ) **दिवंगत आत्मा के लिए तर्पण** किया जाता था।[1]

(ए) **अपशकुन में आस्था** तत्कालीन समाज में अपशकुन में आस्था प्रचलित थी। शोकानुभूति के सबंध में काग का बुरे स्थान पर बैठकर बुरी भाँति काँव-काँव करना तथा गदहे और सियारों का विपरीत बोलना विशेष उल्लेखनीय है। साथ ही अवयवों के फडकने के फलस्वरूप प्रचलित अपशकुनों की ओर भी कवियों का सकेत रहा।[2]

(ऐ) **भयानक स्वप्नों से अशुभ** एव **अमंगल की अशंका**-सभव बताई गई जिससे अनेक प्रकार की बुरी कल्पनाओ का मन मे जाग्रत होना स्वाभाविक था।[3]

(ओ) **अशुभ की आशंका** —निम्नलिखित घटनाओ के कारण अशुभ की आशंका हो उठती थी--(अ) श्रवणफूल का खिसकना, (आ) अस्त्रशस्त्रो का हाथो से गिरना, (इ) योद्धाओ का रथ से गिरना, (ई) हाथी-घोडो का साथ छोडकर चिघाडते हुए भागना, (उ) स्यार, गीध, कौवे और गदहो का शब्द करना, (ऊ) कुत्तो का वहुत अधिक भोकना, (ए) उल्लू का भयानक शब्द करना, (ऐ) गीधो का उड कर सिर पर बैठना।[4]

(औ)—**समाज में बहु विवाह की कुप्रथा** प्रचलित थी जिसके दुष्परिणाम का उद्‌घाटन राम-कथा द्वारा हुआ। दशरथ-मरण, राम-वनवास, सीताहरण, आदि आदि घटनाएँ इस कुप्रथा के कारण ही सभव हुई। इसीलिए रामराज्य के अन्तर्गत कवि ने एक पत्नीव्रत की प्रतिष्ठा की।

नारी –नारी के गिने-चुने आदर्श चरित्रो के अतिरिक्त कवि ने नारी के प्रति प्राय: उदासीनता एव उपेक्षा ही प्रकट की। साधना क्षेत्र मे अपने संयम की दुर्बलता का आरोप नारी के चरित्र मे करके नारी को साधना क्षेत्र के लिए सदा बाधक समझा गया। कहना न होगा कि नारी-जीवन को जीवन की वास्तविक दृष्टि से देखने का कवि को न अवकाश था और न कवि ने इसकी आवश्यकता ही समझी।

नारी-चरित्र के सबध मे अविश्वासी पुरुष ने नारी के लिए प्रयास निर्धारित किए वृद्ध, रोगी, जड, निर्धन, अधा, बधिर, क्रोधी, दीन, चोर, जुआरी, व्यभिचारी, अधम, अभागी, कुटिल, आदि कैसा ही दुर्गणी पति क्यो न हो मनवचनकर्म से पत्नि को उसकी सेवा करनी चाहिए। उसको त्यागा नही जा सकता। पति अपमान करके

1. भस्म अततिल-अजलि दीन्ही, देव विमान चढाओ—॥ सू० सा० ९/५०/४८
2. "धरि चित धीर। गये तीर, शुचि ह्वै शरीर। पितु तर्पि नीर।" —(रा० १०/३२)
3. लंका-काण्ड—७८/८५
4. अनरथु अवध अरभेउ जब ते, कुसुगुन होहि भरत कहुं तब ते।
   देखहि राति भयानक सपना, जागि करहि कटु कोटि कलपना॥"

घोर नरक भोगना पड़ेगा।[१]

अन्यत्र नारी के चरित्र में स्पष्ट शंका की गई। भाई, पिता, पुत्र अथवा किसी भी सुन्दर पुरुष को देखकर स्त्री विह्वल हो जाती है तथा अपने मन को नही रोक सकती। वह उसी प्रकार द्रवित हो उठती है जिस प्रकार सूर्य को देखकर सूर्य-मणि द्रवित हो जाती है। इस प्रकार नारी "सहज अपावनी" होती है। केवल पतिप्रेम से ही उसका उद्धार सभव है। यह अवश्य है कि नारी के सबंध मे प्रस्तुत कथन तथा अन्य टिप्पणियाँ सस्कृत-साहित्य मे पहले से ही उपलब्ध थी तथा हिंदी के कलाकारो ने वही से यह सामग्री ली है। फिर भी, इस चयन मे कवि की रुचि और सहमति का तो पता लगता ही है।

मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने भी सती सीता से "कछुक दुर्बाद" कह डाले जिन्हे सुनकर जातुधानी तक विषाद करने लगी। पुनश्च सीता का अग्नि मे रखना भी सत्य का उद्घाटन करने मे समर्थ है। आदर्श नारी चरित्रो के अन्तर्गत "सती का दुराउ"—"नारि सुभाउ प्रभाउ" के अन्तर्गत रखा गया। सती भी परिताप के फलस्वरूप नारी को "सहज जड" तथा "अगम" बताती है। कैकेयी के चरित्र से तो "नारी-विश्वास" ही जाता रहा। "नारि गति" जानना असभव समझा गया। नारी अबला कही जाती है किन्तु वही सबला होकर क्या नही कर सकती। अत. कवि नारि से सदा सशकित रहने की सलाह देता है।

लक्ष्मण-शक्ति के अवसर पर राम भी "नारि हानि विशेष छति नाही" कहकर नारी के सामाजिक महत्व को क्षतविक्षत कर डालते हैं। कवि ने कथावस्तु का मगल-मय प्रशसित भाग पुरुषपात्रो के लिए रखा है तो कलकित तथा अपश्रुत भाग स्त्री पात्रों के सिर मढ़कर उन्हे प्रपचात्मक जगत का कारण सिद्ध किया है। कवि के वैय-क्तिक क्षोभ एव तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियो ने नारी की सामाजिक स्थिति अति शोचनीय बना दी। कवि को पग-पग पर नारी-चरित्र के लिए उपालम्भ देने पड़े।

---

१. "वृद्ध रोगबस जड धन हीना, अध बधिर क्रोधी अति दीना।
ऐसेहु पति कर किए अपमाना, नारि पाव जमपुर दुख नाना।—तुलसी
"नारी तजै न आपनो सपनेहू भरतार।
पगु गुग बौरा बधिर अध अनाथ अपार।
बालक पहु कुरुप सदा कुवचन जड़ जोगी।
कलही कोही, भीरू चोर जुआरी व्यभिचारी।
अधम अभागी कुटिल कुमति पति तजै न नारी॥"—केशव
यही नही—"नारि न तर्जाहि मरे भरतारहि, ता संग सहहि धनजय झारहि।"

२. "भ्राता पिता पुत्र उरगारी, पुरुष मनोहर निरखत नारी।
होइ विकल सक मनहि न रोकी, जिमि रवि मनि द्रव रविहि बिलोकी।"
"एकइ धर्म एक व्रत नेमा, काम वचन मन पतिपद प्रेमा।"

क्षुब्ध होकर दोषों का उद्घाटन करना पड़ा तथा क्रुद्ध होकर दण्ड की व्यवस्था करनी पड़ी—

"ढ़ोल गँवार शूद्र पशु नारी ; ये सब ताडन के अधिकारी ।"

आचार्य केशवदास जी ने पतिव्रत धर्म की मर्यादा का भी निर्देश किया है। सब कुछ साधन ही क्या, जीवन की नितान्त आवश्यकताओ से भी उसको वंचित रखने का विधान किया गया है। उसकी तपस्या का कारुणिक दृश्य निम्नलिखित शब्दो में यहाँ अवलोकनीय है—

"गान बिन मान बिन हास बिन जीवही,
तात नहिं खाय जल सीत नहिं पीवही।
तेल तजि खेल तजि खाट तजि सोवही,
सीत जल न्हाय नहि उष्ण जल जोवही।
खाय मधुरान्न नहि पाँय पनही धरै,
काय मन वाच सब धर्म करिवो करै।
कृच्छ्र उपवास सब इन्द्रियन जीतही,
पुत्र सिख लीन तन जौं लगि अतीतही ॥"

दुष्ट मित्र के प्रति क्षोभ—कवि ने समाज मे सन्मित्र के आदर्श की आवश्यकता अनुभव की। राम-सुग्रीव मैत्री मे मित्रता के आदर्श की स्थापना की गई। दुष्ट मित्रों पर भी कवि की दृष्टि गई। उनके सम्बन्ध मे कवि का क्षोभ निम्नलिखित रूप मे प्रकट हुआ—

जो मित्र के दुःख में दुःखी नही होता उसको देखना भारी पाप है। अपना महान दुःख धूल के समान अल्प तथा मित्र के धूल के समान अल्प दुःख को पर्वत के समान महान समझना सन्मित्र का धर्म है। जिनको ऐसी बुद्धि सहज ही प्राप्त नही है वह दुष्ट क्यो मित्रता करते है। जो मित्र मित्र के सामने बना-बना कर मीठी बाते करते है तथा उसके पीछे उसका बुरा चाहते है तथा जिनके मन मे कुटिलता है ऐसे कपटी मित्रो के परित्याग मे ही भलाई है। कपटी मित्र शूल के समान पीडा देने वाला होता है।[1]

राजा का आदर्श—विदेशी सत्ता के अत्याचारो मे सिसकती हुई प्रजा की मूक आह कवि के कानो मे पडी, प्रजा के दुःख को दूर करने के लिए राजा उदासीन थे, अपने राज-वैभव तथा भोग-लिप्सा में राजाओ को प्रजा के दुःख की चिन्ता हीं किस प्रकार हो सकती थी ! कवि ने राजा के आदर्श की प्रतिष्ठा की। राम आदर्श

१. "जे न मित्र दुख होहि दुखारी। तिन्हहि बिलोकत पातक भारी ॥
निज दुख गिरि सम रज करि जाना। मित्रक दुख रज मेरु समाना ॥
जिन्ह के अस मति सहज न आई। ते सठ कत हठि करत मिताई ॥
आगे कह मृदु वचन बनाई। पाछे अनहित मन कटुलाई ॥
जाकर चित अहि गति सम भाई। अस कुमित्र परिहरेहिं भलाई ॥"

के रूप में समाज के सामने रखे गए, साथ ही तत्कालीन परिस्थितयों पर भी कवि ने प्रकाश डाला—जिस राजा के राज्य में प्रजा दुखी रहती है, वह राजा अवश्य ही नरक का अधिकारी होता है, इस संकेत में प्रजा को सुख एव शान्ति न मिल सकी किन्तु यह स्पष्ट है कि प्रतीकार भावना के अन्तर्गत उसकी वेदना सह्य हो गई, उसे विश्वास हो गया कि उसके दुःखों के फलस्वरूप राजा को यहाँ नही तो मरने के पश्चात् अवश्य दण्ड भोगना पडेगा। शताब्दियो से पदाक्रान्त समाज इससे अधिक और सोच ही क्या सकता था। प्रत्यक्ष विरोध करने का न उसमे साहस था न शक्ति।

आचार्य केशवदास जी ने इस तथ्य को दूसरे दृष्टिकोण से देखा है। उन्होने "राजश्री" को दुखमूल बतलाया। उसको प्राप्त कर "कहि को न नरकहि जाय" परिणाम निश्चित किया। आचार्य जी ने आगे बताया कि राजश्री धर्म, वीरता, विनय, सत्यता, शील, आचार, वेदपुराण विचार आदि को कुछ नही गिनती।[1] इस प्रकार विदेशी सत्ता के अत्याचारो के प्रति उदासीनता को प्रकट कर कवि ने जन क्षोभ को एक मोड दिया। वह यह समझने लगे कि राजश्री मे अवगुण तो होते ही हैं।

शूद्रों का स्थान—धार्मिक क्षेत्र मे वर्ण-भेद के सबन्ध मे प्राय. भक्त कवियो की उदार वृत्ति रही। भगवद् भक्ति मे "एक भगति कर नाता" मानकर वर्ण-भेद के लिए कोई स्थान नही रखा। पौराणिक कथाओ की भी सृष्टि हुई जिनके अन्तर्गत दिखलाया गया कि शूद्रवर्ण के भक्तो को भी भगवान् ने गले से लगा लिया तथा शरणागति प्रदान की किन्तु समाज मे व्यवस्था की दृष्टि से कवि को शूद्रो का विद्रोह तथा विरोध श्रेयस्कर प्रतीत नही हुआ। इसीलिए "ताडन के अधिकारी" कह कर समाज के कठोर नियत्रण मे रखने की कवि ने आवश्यकता समझी।

दर्शन—मध्ययुगीन साहित्य मे भिन्न-भिन्न दार्शनिक विचारो के विवेचन का साथ जीवन के दु.खात्मक पक्ष को सह्य बनाने की दृष्टि से दार्शनिक सरल आस्थाओ की प्रतिष्ठा की। जनसाधारण की दार्शनिक टिप्पणियो का श्रीगणेश सम्भवत इसी युग से हुआ। गूढ तात्विक विवेचन का साधारण जन समाज के पास न अवसर था न इतना बुद्धि-कौशल। अपनी असहायावस्था, निराशा, विवशता तथा वेदना मे जन-समूह कही नष्ट न हो जाय इस भय से रक्षा योजना के लिए साहित्य ने सहज एव सरल आस्थाओ को जन्म दिया।

कर्त्तव्याकर्त्तव्य के निश्चय के असमंजस में कर्ता जो कुछ उल्टा सीधा निश्चय करले उसीमे उसको अपना क्षेम समझना चाहिए, इस प्रकार से मुक्ति दिलाते हुए कवि ने कहा—

---

१. "धर्म वीरता सत्य शील आचार।
राजश्री न गनै कछू, वेद पुराण विचार॥"—(रामचन्द्रिका, पृष्ठ ४१)

"होइ है सोई जो राम रचि राखा ;
को करि तरक बढावहि साखा ।"

तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियो मे अभावगत क्षोभ प्रायः प्रतिलक्षित हुआ। भाग्यवाद के प्रश्रय मे इस क्षोभ से मुक्ति का सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया—

"सकल पदारथ हैं जग माही,
करम हीन नर पावत नाही।"

जीवन के शोकपूर्ण अवसरो को विधि-निर्दिष्ट कहकर कवि ने दुःखनिवृत्ति की योजना की—

"सुनहु भरत भावी प्रबल, बिलखि कहेउ मुनिनाथ ।
हानि लाभ जीवन मरन, जस अपजस विधि हाथ ॥"

तथा

"उमा दारु जोषित की नाई । सबहि नचावत राम गोसाई ॥"

"विधि के लिखे अक निज भाला" जलते हुए कपाल से पढ लेने की कथा ने जीवन-दर्शन को एक विशेष दृष्टिकोण दिया। इस जन्म के सभावित कार्य पूर्व से ही विधि निर्धारित है। अपनी स्वेच्छा से कोई कार्य नही किया जा सकता। शुभाशुभ सभी कार्य विधिनिर्देश के अनुसार होते है। जिस प्रकार नट कठपुतली को जिस भॉति नचाना चाहता है वह नाचती है ठीक उसी प्रकार मनुष्य अपने आप मे स्वतन्त्र नही है, विधि के अनुसार उसे भी नाचना पडता है। "विधि कर लिखा को मेटनहारा" इस चिन्तन का मूल आधार कहा जा सकता है।

अध्यात्म मार्ग मे भी राम कृपा के बिना भक्ति रूपी मणि को कोई प्राप्त नही कर सकता। उस परम सत्ता को भी वही जान सकता है जिसको वह परम सत्ता अपने आप जताना चाहे। इस प्रकार सामाजिक वेदना, लौकिक दुःख एव क्लेश तथा प्रभु भक्ति आदि सब कुछ पूर्व निर्धारित है तथा तदनुसार ही भोग्य है।[1]

जीवन के दुःखवादी दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति मस्तमौला कबीर के काव्य मे हुई। उन्होने स्पष्ट रूप से निर्देश किया कि शरीरी कोई भी सुखी नही है—

"जो देखा सो दुखिया देखा,
तन धरि सुखिया कोई न देखा।"

आचार्य केशवदास जी ने भी ससार को दुःख-मूल कहा है। जन्म-मरण ससार मे सबसे बडा दुःख है। आचार्य जी इसकी ओर सकेत करते हुए कहते है—

"सुमति महामुनि सुनिये, जग मँह सुक्ख न गुनिये।"

---

१. "सो मनि जदपि प्रगट जग अहई, राम कृपा बिन नहि कोउ लहई।
सोइ जानइ जेहि देहु जनाहि, जानत तुम्हहि तुम्हहि होइ आइ।
सो मनि जदपि प्रगट जग अहई, राम कृपा बिन नहि कोउ लहई ॥"

उपसंहार—उपर्युक्त अध्ययन के आधार पर सक्षेपतः कहा जा सकता है कि मध्ययुगीन काव्य ने जीवन के दुःखवादी दृष्टिकोण की प्रतिष्ठा की। दुःख एव वेदना को सह्य बनाने के लिए पूर्व जन्म तथा विधि-विधान की ओर सकेत किया गया। कर्म-काण्ड के प्रति क्षोभ प्रकट किया गया। सहज वृत्ति एवं सरलता की ओर जनरुचि रही जिसके फलस्वरूप साधना को सरल ही नही प्रत्युत् सरलतम बनाया गया। जीवन में एक बार नाम स्मरण ही उद्धार के लिए अलभ् समझा गया। नाम-स्मरण की व्यवस्था "भावकुभाव अनखआलसहू" मे करके साधना को अति सरल बना दिया गया।

●

: ३ :

लोक-गीतों में करुण रस

लोक-साहित्य का रचनाकाल—सृष्टि की अनुभूति के साथ ही मानव-अभिव्यक्ति की उद्भावना हुई। लोक-साहित्य के रूप मे मानव की अनुभूतियाँ मुखरित हो उठी। यह इतनी चारु तथा प्रभावात्मक थी कि लोक-गीतो की मौखिक परम्परा प्रचलित हो गई तथा यह प्रवृत्ति विश्वव्यापी रही।

शताब्दियो तक इस साहित्य की ओर शिक्षित समाज की दृष्टि ही नही गई। जब कभी इस साहित्य के श्रवण का सौभाग्य प्राप्त हुआ तो इस अवसर को शिक्षित समाज ने अपना दुर्भाग्य ही समझा।

लोकगीत-साहित्य की सृष्टि, साहित्य की सृष्टि से बहुत पूर्व प्रारम्भ हो चुकी थी। सिजविक की खोज के आधार पर कहा जा सकता है कि लोक-गीत की सृष्टि यहाँ तक कि वर्णमाला की सृष्टि से भी पहले की है, वह अनुभूति का अग है और निरक्षर जनता की सम्पत्ति है।

पुरातत्व प्रेमी विद्वानो ने इस साहित्य का सग्रह किया तथा इसको सदा के लिये लुप्त होने से बचा लिया।

लोक-साहित्य के पारावार से काव्य-साहित्य के लिये सदा अमूल्य सामग्री मिलती रही है। लोक की सरल एव प्रिय कल्पना साहित्य के लिए सदा आकर्षण की वस्तु रही है।[1]

---

१. "देश के साधारण लोगो के अन्दर पहले-पहल कई भाव छोटे-छोटे काव्य बनकर चारो ओर एकत्रित होकर चक्कर लगाते रहते है, उसके बाद कोई कवि एक बडे काव्य के सूत्र मे बाँध कर उसे बृहद्रूप दे देता है। महादेव-पार्वती की कई कथाएँ जो किसी भी पुराण मे नही है, राम और सीता की कई कहानियाँ जो मूल-रामायण में नही मिलती— ग्रामो के गायको और कथवकडो के मुखो से गाँवो के आँगनो मे टूटे-फूटे छदों और ग्राम्य भाषा के द्वारा न जाने कितने काल पर्यन्त प्रचारित होती रही हैं। भारत मे, रामायण की रचना करते समय आदि-कवि बाल्मीकि को भी राम सबन्धी नाना लोक-गीतो का सहारा मिला होगा।"

—(साहित्य—श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर १६२६, पृष्ठ ८८-८६)

लोक-गीत रचना—इन गीतो की मूल स्त्रैण प्रवृति के फलस्वरूप इन गीतो में विषयगत एक विशेषता आ गई है और वह है उनकी मार्मिक टेक। भावावेश की दशा मे यह टेक अनायास ही मुखरित हो उठती होगी तथा इसके सहारे आगे गीत बुन लेना सरल रहा होगा। एक उदाहरण द्वारा इस कथन को यहाँ स्पष्ट कर देना उचित होगा।

विदा के समय लडकी के मुख से हठात् ये शब्द फूट पडे—'बलमुआ नइहरवा छोडा दिया रे'। लडकी के यह उद्गार कितने सरल, स्वाभाविक तथा मार्मिक है। साढ़े तीन शब्दो की इस टेक मे विदा होती हुई लडकी की विवशता, बालम के प्रति रति, परिवार से विदा होने का अपार दुःख आदि सब कुछ कूट-कूट कर भरा है। इसकी मार्मिकता क्या खाली जा सकती थी। इसीलिए इसके सहारे अविलम्ब निम्न-लिखित गीत बुन लिया गया—

"बलमुआ नइहरवा छोडा दिया रे ॥ टेक ॥
आमा छोडा दिया, बाबा छोडा दिया, चाचा छोडा दिया रे।
काका छोडा दिया, काकी छोडा दिया, भइया छोडा दिया रे ॥"

इस प्रकार के गीतो के साथ गीतो की रचना के अन्य रूप भी मिलते है किन्तु लोकगीत साहित्य के मूलगीत इसी रूप मे रहे होगे यह तथ्य सारपूर्ण प्रतीत होता है।

करूणरस के लोक-गीत

यहाँ करुणरस से संबधित लोकगीतो का अध्ययन दो रूपो मे किया जायगा—(क) सामान्य लोकगीत और ख) रामकथा से सम्बन्धित लोकगीत।

(क) **सामान्य लोक-गीत**—समाज की दरिद्रता, विवश एव असहायावस्था सामाजिक विषमतागत गीतो के आधार है। आर्थिक समस्याओ के अन्तर्गत जमीदारो के अत्याचार, साहूकारो की कठोरता, सामाजिक उत्सवो एवं धार्मिक कृत्यो पर अर्थ-सकट के कारण अन्यमनस्कता एव विवशता आदि विषय रहे है। भारतीय आदर्शों के अनुकूल इन विषयो के सम्बन्ध मे लोक की वाणी प्राय मुखरित न हो सकी। इसी-लिए इन विषयो से सम्बन्धित गीतो का प्रायः अभाव है सावन के गीत, सोहर के गीत, छठी बधाई आदि के गीत आनन्द एव उल्लास के गीत, कहे जा सकते है। प्रसगानुकूल इन गीतो को यहाँ छोड दिया गया है।

व्यवहारिक समस्याओ मे लडकी की विदा, बहू के साथ सास-ससुर एव जेठ-ननद आदि का कटु व्यवहार, निपुत्रत्व तथा वैधव्य आदि विषय आते हैं। इन विषयो मे सम्बन्धित गीतो मे समाज की वेदना मुखरित हो उठी है।

उपर्युक्त सामाजिक पृष्ठभूमि के आधार पर लोक-साहित्यगत करुण मनोभावों

की विवेचना दो स्थूल शीर्षकों के अन्तर्गत की जा सकती है—अ—नारी-जीवन सम्बन्धी और आ—अन्य ।

नारी-जीवन सम्बन्धी लोकगीतों के द्वारा नारी-जीवन की वेदना का मर्मस्पर्शी चित्र उपस्थित किया गया है । नारी जीवन की प्रथम चिन्ता उस समय होती है जिस समय योग्य वर की खोज में पिता विदेश के लिए प्रयाण करना चाहते हैं । अपने भावी जीवन के सम्बन्ध मे चिन्तित बालिका लोकलाज के अन्तराल में स्वयं ही निवेदन करने के लिए विवश हो जाती है । पिता रथ में जाने के लिए प्रस्तुत हैं । "बाई ने रथ थाम लियो ।" पिता ने कहा, "बाई ए मांगण होय सो मांग, श्रो रथ म्हारो हांकण द्यो ।"

आदर्श गाथाओ मे पालितपोषित बालिका आदर्श पति तथा आदर्श सास, सुसर एव देवर-जेठ की इच्छा प्रकट करती है—

"दादाजी, वर मांगूँ भगवान, देवर छोटो लिछमणजी ;
दादाजी, सासू कौशल्या माय, ससुरो तो राजा जसरथजी ।"

विवाह के पश्चात् विदा का मार्मिक दृश्य आता है । जिसके सम्बन्ध मे अनेक करुणापूर्ण गीत प्राय प्रत्येक भाषा के लोक-साहित्य मे मिलते है । लडकी की विदा हो जाने से घर मे एक विशेष सूनापन आ जाता है । अब लडकी की अनुपस्थिति मे घर के कार्य किस प्रकार होगे—इस प्रकार की विरहजन्य भावना स्वाभाविक है । "बाबा का बाग कौन सीचेगा, बाग मे फूल फूले है उन्हे कौन तोड़ेगा, बाग मे झूला पड़ा है उस पर कौन झूलेगा, आदि विरहगत जिज्ञासाएँ तथा घर मे गुडियो का इधर-उधर पडा रहना, किसी सखी सहेली का घर न आना, माता का नीर बहाना आदि अति स्वाभाविक तथ्य विदा के गीतो मे प्रकट हुए है । उदाहरणतया यहाँ विदा का एक गीत देख लेना आवश्यक होगा—

"हरिये वन री कोयली,
थारे बाबा सां बाग लगायो ए बनडी थारे बिन कुण सीचेगा ?
म्हारे हरिये बनरी कोयली ।
थारे बागा मे फुलडा फूल्या ए बनडी,
थारे बिना कुण तोड़ेगा ? म्हारे हरिये
थारे बागा मे हीडो घाल्यो ए बनडी,
थारे बिन कुण हीडेगो ? म्हारे हरिये···
आँगणिये मांय थारो रोवत भतीजो
थारे बिन कुण खिलावेगो ? म्हारे हरिये···
गुडियां पधरी थाली आले दिवाले,
देख र जी अकलावे ए म्हारे हरिये ··

सँग री सहेल्याँ थारी घर नहिं झाँकें,
बै देख दूराँ से ही जावे ए म्हारे हरिए···
कोई य न अब म्हारे आँगण खेले,
यो तो सूनो दरसावे ए म्हारे हरिये···
थारी माता को हिवडो उलकै,
बा तो नैणा नीर बहावै ए म्हारे हरिये ।"

उधर पति के साथ जाती हुई लडकी अपने पति से एक बार ऊँट को पीछे मोडने का आग्रह करती है। उसे अपने माता-पिता की 'घणी' स्मृति हो रही है। पति आदर्श पाठ पढाता है। तुम्हारे पिता का स्थान तुम्हारे ससुर लेगे और तुम्हारी माँ के अभाव की पूर्ति तुम्हारी सास करेगी। यह वियोगजन्य वेदना कितनी मार्मिक है इसका अनुमान मूल गीत से लगाया जा सकता है—

"एक बर करला थारा मारु जी पाछा जी मोड,
राजीदा ढोला ओलूं घणी आवै म्हारा बाबो सारी।
सुन्दर गोरी ओलूं थारी परी रे निवार,
चपक वरणी, बाबो सारी मोल सुसरो जी माँगसी।
एक बर करला
राजीदाँ डोला ओलूं घणी आवे म्हारी मायरी ।
सुन्दर गोरी ओलूं थारी परी रे निवार,
मिरगानैणी माऊ जी री मोल सासूजी माँगसी ।"

सास के अत्याचार—सास के अत्याचारो ने नारी के गार्हस्थिक जीवन को नरक बना दिया तथा प्राय. गृहिणी गार्हस्थिक जीवन से भयभीत हो उठी । गृहिणी की स्थिति गृहलक्ष्मी के स्थान पर गृहदासी से भी शोचनीय हो गई । इन गीतो के अन्तर्गत इस दु खमय जीवन की सत्यता का उद्घाटन किया गया है। इन गीतो की मार्मिक अनुभूति की तीव्रता तथा असाह्यावस्था का अनुमान पाठको के शोक से लगाया जा सकता है। सास के अत्याचार सम्बन्धी लोक गीतो को पढकर शोकानुभूति के कारण डा० भगवानदास की वही दशा हो गई जो आज से शताब्दियो पूर्व आदि कवि बाल्मीकि की क्रौंच-वध के समय हुई थी। इस सम्बन्ध मे उनकी टिप्पणी लोक गीतों की मार्मिकता का प्रमाण मानी जा सकती है—

"जब पहिले पहिल यह गीत सुने तब चित्त ऐसा व्याकुल हुआ कि किसी तरह शांत ही न हो। धीरे-धीरे उस व्याकुलता ने और उसके सान्त्वना के यत्न ने मिलकर मन मे नीचे लिखे श्लोको का रूप धारण किया उनको लिखा तब मन कुछ स्थिर हुआ :—

"अहह, वेद्मि यतोऽसि जनार्दनो, ननु जगज्जनकोऽपि भवन्भवान् !
स्रवति नाति पयो जननीस्तनाद्, यदि न रोदिति वेदनयाऽर्भकः ।
परम नाटककृत्, करुणारतिर् भ्रशतरं ननु रौद्रमचीकर·,
उदयतेऽति विनाऽदयं अर्दनं, न ननु दीन जने दयनीयता ।
अपि रसेषु रस· करुणो वरो, ह्यपि भवान् रसिकोऽसि रसेवरे,
अपि ततो जगता जनकोऽपि सन्, भवसि निर्दय एव जनार्दन. ।"

[हे भगवन् ! अब मुझे जान पडा कि आप क्यो समस्त जगत् के जनक पिता होकर, जन (नाम दैत्य के भी और मानव जनता) के (भी) अर्दन करने वाले भी हो । जबतक बालक रोता नही तबतक जननी के स्तन से दूध नही बहता । हे परम कवि ! जगन्नाटककार ! भ्रशतरं करुणा का स्वाद लेने के लिए ही आप घोर रौद्र रचते हो, बिना दुर्बल को दारुण पीडा दिए, उनमे दयनीयता नही उत्पन्न होती ; इसीलिए जनता के जनक होते हुए भी जनार्दन हो जाते हो ; रसो मे करुण रस श्रेष्ठ कहा है, और आप रसिको मे श्रेष्ठ हो ।] —पुरुषार्थ, पृष्ठ १५५

डाक्टर साहेब को शोकसतप्त करने वाले लोकगीत के अवलोकन की स्वाभाविक जिज्ञासा पाठक को होगी । अतएव अविकल रूप मे यह गीत यहाँ उद्धृत किया जा रहा है—

"चन्दा सुरुज अस बहिनी सकल्प्यो हो ना
बहिनी जरि जरि मइली कोइलिया हो ना
....
कई मन कूटो भैया कई मन पीसीला हो ना
भइया कइरे मन रीन्हिला रसोइया हो ना
सासू खाँची भर बसना मंजावे ली हो ना
सबके खिआबौ भइया सबके पिआबौ हो ना
भैया बाँचि जाली पिछली टिकरिया हो ना
भैया ओहू में से ननद कलेउआ हो ना
भया ओहू मे से गोरू चरउहवा हो ना
भैया ओहू मे से कुकुरो बिलरिया हो ना
भैया ओहू मे से देवरा कलेउवा हो ना
पहिरौ मैं भइया मोरे सबकर उतरवा हो ना
भइया सरी गली फटही लुगरिया हो ना
भइया ओहू में से ननदी आइनिया हो ना
भैया ओहू मे से देवरा के भगवा हो ना
लोइवाजरे जइसे लोहरा दुकनिया हो ना
तोरी बहिनी जरे ससुरिया हो ना

ई दुख जनि कहो भइया भउजी क अँगवा हो ना
भउजी दुइ चारि घरे कहो अइहे हो ना
ई दुख जनि कहि भइया माई के अँगवा हो ना
माई छतिया बिहरि मरि जइहे हो ना
ई दुखवा मति कहो चाची के अँगवा हो ना
चाची झगड़ा लडैया ठेना मरिहे हो ना
ई दुख भइया जनि कहो बाबा के अँगवा हो ना
सभवा बइठि बाबा रोइहे हो ना
ई दुख जनि कहो भइया बहिनी के अँगवा हो ना
बहिनी हाल सुनि ससुराल न जाई हो ना
ई दुखवा कहहे भइया अगुआ के अगवाँ हो ना
भइया जे मोरी कइलन अगुवइया हो ना
ई दुख कहीह भइया बमना के अगवाँ हो ना
भइया जे मोर लगन विचरले हो ना
ई दुख भइया तू मन ही मे गोइह हो ना
भइया करम लिखल तस भोगवि हो ना
सब दुख बँधिह भइया अपनी मोटरिया हो ना
भइया नदिया मे दीह बहवाई हो ना
सभवा वइठल बाबा चितवै हो ना
आरे पूतबा आवे धिअवा आवे हो ना
जइसे उमडे बावा जमुना के पनिया हो ना
बाबा ओइसे रोवे मोरे बहिनियाँ हो ना
....

रोई-रोई माई हलिया पूछेली हो ना
पुतारोई रोई कहै कुसलतिया हो ना
सुखवा का कहौं मैया दुखवा का कहौ हो ना
भइया बहिनी लिलखे दुख लिखल हो ना
जो जनितो भैया अगुआ छल करिहे हो ना
अपनहि घूमि घर खोजितो हो ना ।"

कहना न होगा कि उपर्युक्त गीत हिन्दू समाज मे नारी जीवन की यातनाओ का जीता जागता उदाहरण है। घर के सब काम करना तथा खाने पीने के लिए सबसे पीछे बचा-खुछा मिलना जीवन की चेतना को आमूल नष्ट कर 'चाँद-सूरज' सी सुन्दर बहिन को कोयला जैसी काली बना ही देगा। उसके अन्तर का दाह उसे

जला कर भस्म कर देता तो क्या आश्चर्य ? इस पर भी परम सहनशीलता यह कि इन सब असह्य दुखो को प्रकट न करने की बहिन प्रार्थना करती है। उसे अपने दुःख से भी अधिक दुःख अपने मा, बाप, भाई-बहिन के लिए है। उसे विश्वास है कि उसके दुःखों को सुनकर माँ छाती पीटकर मर जायगी। पिता भरे समाज में रो पड़ेगे तथा छोटी बहिन इन यातनाओं की बात सुनकर अपनी ससुराल न जायगी। भाभी और चाची कलह के समय ताने मारेगी। कितनी हृदय विदारक व्यथा है। अपनी वेदना को प्रकट भी नही किया जा सकता। इससे भी अधिक व्यथापूर्ण है दरिद्रता के कारण विवशता जिसके अन्तर्गत भाई अपनी रोती हुई बहिन को ससुराल की यातनाओ मे ही छोड़कर वापिस चला आता है। अगुआ और ब्राह्मणों द्वारा विवाह सम्बन्धो का तय करना कितना परितापपूर्ण सिद्ध हो सकता है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण भाई-बहिन के घोर परिताप मे देखा जा सकता है। भाग्य का लिखा समझ कर असह्य वेदना किसी प्रकार सह्य हो जाती है।

सास के अत्याचारो की सीमा का अतिक्रमण हो जाता है जब सास-बहू की अनबन बहू के बलिदान मे समाप्त होती है। 'पपइयो" नाम से प्रसिद्ध गीत इस करुण कहानी का चित्रण करते है। पपीहे का बोलना प्रेमी हृदय की वेदना को प्रकट करता है। विदेश से लौटकर पति आता है। माँ से अपनी प्रियतमा के सबध मे पूछता है। माँ बहाने बना देती है। पति अन्त मे अनुमान लगा लेता है कि उसकी प्रियतमा माँ की भेट हो चुकी है। विकासोन्मुख वेदना तथा विकलता का आवेग निम्नलिखित गीत में देखा जा सकता है—

"माय, किथीये सैणा री धीव। पपइयो बोल्यो खावड रे खेत मे।
बेटा, ईधण पाणी बहू उई।
बेटा, छोटोडो देवरियो साथ। पपइयो बोल्यो हरियाले खेत मे।
माय, जल थल सब मे ढूँढिया।
माय, नही रे सैणा री धीव। पपइयो बोल्यो खावड रे खेत मे।
बेटा, घट्टी रे पीसण बहू गई।
बेटा, छोटोडी नणदल साथ। पपइयो बोल्यो हरियाले खेत मे।
माय, घर घर घट्टी मे जोयी।
माय, नही रे सैणा री धीव। पपइयो बोल्यो खावड रे खेत मे।"

इसी प्रकार का एक गीत गुजराती के "रढीयाली रात भाग १," गीत १८ पृष्ठ २७ के अन्तर्गत "नोदीठी" नाम से प्रकाशित हुआ है। इस गीत के अन्त में ताजे खून से सनी चूनरी, कोरी ओढ़नी तथा कोरी ढीकली का विवरण दिया गया है जो सम्पूर्ण रहस्य को प्रकट कर देता है तथा पति इनको देखकर फूट-फूट कर रोने लगता है

निपुत्रत्व—यह नारी जीवन का अभिशाप समझा जाता है। निपुत्रत्व के कारण नारी अपशकुन समझी जाती है। अन्य स्त्रियाँ उसको प्रातः देखना तक नही चाहती। सास-ननद आदि उसको "बाँझ" कह कर संबोधन करती है। ननद "भाभी" सबोधम करने में सकुचाती है। यह सब कटु व्यवहार बाँझ स्त्री को कितना हृदयविदारक लगता होगा इसका अनुमान उसकी आत्मघात की इच्छा से लगाया जा सकता है। दुःखातिरेक के कारण गगा मे डूब मरने की उसकी याचना अति मनोवैज्ञानिक है—

"गगे एक लहरी हमे देउ तो जामे डूबि जैयौ,

अरे जामें डूबि जैयौ ···।"

देवी देवता भी बाँझ की भेट लेना स्वीकार नही करते। अपनी विवशता तथा निराशा में वह कातर हो उठती है—

"और सबके डलियवा ए दीनानाथ, लिहली उठाई।
आरे बाँझ के डलियवा ए दीनानाथ, ठहरे तवाई॥"

उसकी पुत्र प्राप्ति याचना व्यर्थ सिद्ध हुई। वह बाँझ ही रही। कल्पना ने सहारा दिया और उसको पुत्र प्राप्त करने की युक्ति समझ मे आई। अलौकिक कल्पना का यह चित्र साहित्य की उडान से दूर मानव की सहज अनुभूति का उद्घाटन करती है—

"आई धन तन मन मारि राजे मेरे पिछवारे बढई कौ
लाला तू मेरौ देवरु जेठु, राजे कह्यौ मेरौ कीजिए।
काठ पुतर गढि देउ सो वाइ लैके उठिहौ, वाइ लैके बैठिहौ
राजे न्हाय धोय भई ठाढी तौ सुरजु मनामे रामु मना मे।
राजे काठ पुतर जिउ डारौ तौ जाई लैके उठिहौ—
जाइ लेके सोमे।"

इसी प्रकार की भावना अन्यत्र एक पूर्वी गीत मे प्रकट हुई है—

"मोरे पिछअरवा बढइया वेगि ही चलि आवहु हो।
बढई गढ़ि देहू काठे के बलकवा मैं जिया बुझावउँ,
मन समुझावउँ हो॥"

किन्तु इन कल्पनाओ को चरितार्थ किए बिना किस प्रकार काम चल सकता था। अतएव इस काठ के बालक से वन्ध्या याचना करती है—

"काठे का बालक गढ़ि दिहलै अगने धरी हि दिहलई हो।
बाबुल मोरे अँगने रोई न सुनावउ मैं बँझिन कहावउं हो॥"

किन्तु काठ के इस कठोर बालक को दया न आई। वह मौन ही रहता तब तक ठीक था। उस दुष्ट ने कटु सत्य का उद्घाटन कर व्यथिता की सुकुमार कल्पनाओं तथा उसके सुख स्वपनो को बुरी तरह कुचल डाला—

"दैव गढ़ल जो मैं होतेउँ तो रोइ सुनउतेउ हो।
रानी बढ़ई के गढल होरिलवा रोवन नाही जानइ हो।"

सामाजिक जीवन की कटुता का यह काल्पनिक चित्र नारी-जीवन की यातना पर स्पष्ट प्रकाश डालता है। काठ के बालक के द्वारा कटु सत्य का उद्‌घाटन नारी की सरल एवं अबोध कल्पनाओ की ओर सकेत करता है जो नारीजगत के लिए अस्वाभाविक नही कही जा सकती।

आदर्श-चरित्र नारी की करुण कथा, भिन्न-भिन्न नामो से प्राय. प्रत्येक भाषा के लोकगीतो मे मिलती है। विदेशी शासको की अनीति पर प्रकाश डालते हुए ये गीत लोक आदर्श की करुण कहानी प्रस्तुत करते है—

"अपने ओसरे रे कुसुमा झारे लम्बी केसियारे ना।
रामा तुरुक नजरिया पडि गइले रेना।
...
जैसिह अपनी बहिनि हमका काहउ देना।।"

जयसिह की बहिन कुसुमा पर मिर्जा तुर्क की दृष्टि पड जाती है तथा वह आसक्त हो जाता है। जयसिह से अपनी बहिन देने के लिए कहता है। इस विषम परिस्थिति मे जयसिह किकर्त्तव्य विमूढ हो जाता है। स्वय कुसुमा ही अपनी दूर-दर्शिता का परिचय देती है।

'जो तुहूँ मिरजा रे हमहि लोभानेउ रेना' प्रश्न के साथ कुसुमा अपनी इच्छा प्रकट कर देती है तथा भाई को मिरजा के बन्धन से मुक्त कराकर वह स्वय पालकी में बैठकर मिरजा के साथ चल देती है। मार्ग मे तालाव पड़ता है। पानी के पीने के लिए कुसुमा उतर पडती है।

"मिरजा बावा क सगरवा दुर्लभ होइ हे रेना।
एक घोट पीअली दूसर घोट पीअली रे ना।"

पानी के तीसरे घूंट के साथ कुसुमा स्वय ही सरोवर मे कूद पडती है तथा मिरजा हाथ मलते रह जाते है।

"रामा तिसरे मे भइली सरबोरवा रेना।।"

इस लोक गीत मे इस प्रकार भारतीय नारी के आदर्श सतीत्व की प्रतिष्ठा तथा अनुपम आत्मबलिदान का आदर्श उपस्थित किया गया है। तत्कालीन परिस्थितियो मे हिन्दू समाज के लिए यह त्याग जितना गर्व का कारण था उससे कहीं अधिक परिस्थितियो की विवशता के अन्तर्गत शोक एव क्षोभ का मूल आधार था। धर्म अपघात की आशंका ही इस आत्मघात एव आत्मबलिदान की मूल प्रेरणा रही है— यह स्पष्ट है।

वैधव्य—विधवा होना नारी जीवनकी परम शोकपूर्ण परिस्थिति है जिसके अन्तर्गत नारी जीवन की करुणकथा का सजीव उदाहरण उपस्थित हुआ है। उसके जीवन से सुख आनन्द, उत्साह एव उल्लास जैसी वस्तुएँ पूर्णरूपेण समाप्त हो जाती है। समाज का

अभिशाप बनकर वह येनकेनप्रकारेण अपना जीवन यापन करती है। यौवन की कामोत्तेजना उसके सात्विक जीवन में बवंडर खडा कर देती है जब उसका देवर उस से छेड़छाड़ प्रारम्भ कर देता है। सास-ससुर तथा परिवार के अन्यजन आदर्शों के संरक्षक रहते हैं। उधर छिटकी हुई चाँदनी तथा देवर की छेडछाड होती है। इस आकर्षण तथा इन प्रतिबन्धो के बीच विवश एव असहाय अबला का चीत्कार निकल उठता है—

"चननिया छटकी, मो का करौ राम
गगा मोर मइया जमुनी मोर बहिनी
चाँद सुरज दूनो भइया···मो का करौ राम।"

उसकी यह वेदना करुण कराह के रूप में वायुमण्डल में व्याप्त हो जाती है। उसकी जिज्ञासा का समाधान समाज की आदर्श निष्ठा के अन्तर्गत कभी संभव न हुआ।

लोक की प्रार्थना—लोक की प्रार्थना पूर्णतया लौकिक है। लोक को आध्यात्मिक जिज्ञासा की न लालसा है न आवश्यकता। दैनिक जीवन की विषमताएँ ही लोक के मानसिक क्षोभ का कारण बनती है। समय समय पर पुत्र-स्वास्थ्य के लिए प्रार्थना करनी पडती है। ऐसे अवसरों पर लोक की करुणा मुखरित हो उठती है। संस्कृत के श्लोकों को देवी-देवता सुने या न सुनें किन्तु लोक की यह अभिव्यक्ति अनसुनी नही रह सकती। अस्वस्थ बालक के लिए शीतला माता से प्रार्थना निम्नलिखित करुणापूर्ण गीत का विषय है। इसमे प्रार्थना की सरलता एव मार्मिकता विशेष रूप से अवलोकनीय है—

"पटुका पसारि भीखि माँगेली बालकवा के माई,
हमरा के बालकवा की भीखि दी।
मोरी दुलारी हो मइया,
हमरा के बालकवा की भीखि दी।
मोरी मानावा राखनि मइया
हमरा के बालकवा की भीखि दी।"

"पटुका पसारि" शब्दो के द्वारा लोकयाचना का सजीव चित्र उपस्थित किया गया है। इस चित्र पर कौन ऐसा निष्ठुर होगा जो दयाद्रवित न हो जाय? ऐसे ही अनेक गीत लोक की कोमल भावनाओ के अन्तर्गत प्रकट हुए हैं जिनमें वेदना विवशता तथा आर्त्त प्रार्थना के चित्र साकार हो उठे है।

अन्य प्रसंगों के अन्तर्गत दो प्रमुख शीर्षों को लिया जा सकता है—अ—सामाजिक प्रसंग और आ—पौराणिक प्रसंग।

सामाजिक प्रसंगों के अन्तर्गत भात की करुणापूर्ण कथाएँ तथा दरिद्रतागत वर्णन आते हैं। भात की कथाओं में "नरसी का भात" एक प्रबंध गीत है। इसके

अन्तर्गत नरसी की भात देने की उत्कट लालसा तथा परिस्थितिगत कठिनाइयाँ कथा को अति मार्मिक एव करुणापूर्ण बना देती है। यह प्रबध गीत-लोक में प्रायः गाया जाता है। इस प्रबन्ध गीत से इतर भात के अन्य प्रसग भी ऐसे हैं जिनके अन्तर्गत करुणा की मार्मिक अनुभूति प्रकट हुई है। ऐसा ही एक प्रसग यहाँ उदाहरणस्वरूप दिया जा रहा है।

सहोदर भ्राता के अभाव मे भात कौन दे—यह बहिन के लिए एक समस्या है। परिवार के अन्य भाई उसकी बात नही पूछते। उसका सहोदर भाई भूत-योनि मे है। अन्त में बहिन भूतयोनिगत अपने भाई को खोज लेती है। बहिन के आग्रह को न टालते हुए भूत योनि का भाई भात देने के लिए तैयार हो जाता है। घर की दौरानी, जिठानी की ईर्ष्या बहिन के इस वैभव को नही देख सकती। बहिन को भात पहिनाते समय महुए की पटली रख दी जाती है और सामाजिक आस्थानुसार भूत योनि का भाई उस पटली मे विलीन हो जाता है। इधर बहिन भात पहिनने तथा भाई से मिलने के लिए हाथ फैलाए अवाक् खडी रह जाती है। दौरानी जिठानी "भूत ने भात पहनाया" कहकर ताने मारती है। इस एक ही गीत मे लोक की गार्हस्थिक ईर्ष्या, व्यथा एव यातना सब कुछ भरी पडी है। गीत के मूलरूप का अनुशीलन करने से यह तथ्य स्पष्ट हो सकते है—

"ए बहिनि चली ए वीर के,
और भले भले सगुन 'बिचारि'।
भातुजौ नौतू अपने वीर के।"
... .

"औरु मिलि गए जी बूआ के जाए वीर,
भैना हम तौ री अपनी के वीर,
अपनौ मैया कौ जायौ ढूँढलै।"
.. . .

"भैना तिलु तिलु ढूँढी गुजराति
सबरौ तौ ढूँढयौ मालुग्रौ
मेरी मैया के जाये ना मिले।"
.. ..

"दारी सुरति लगाई मरघट घाट की,
और ढूँढ़तु डौलै अपनौ वीर।"
....

"भैया जौ कहूँ हौ तुम बैठिए
तौ भैना ऐ बोलु सुनाये।
भैया उतरि बिरछ ते आइए।"

"भैना नौति चौन भाई बूझा जाए वीर कें,
ताई जाए वीर कें ?"
"भैया वे तौ री अपनी के वीर,
उलटी दई बगदाय ।"
"भैया मेरौ हियरा हिलोरे लै रह्यो,
और छतियनु परयौ ऐ पजारु ।"
... .

"और भैना नै वैया पसारिये
और वीरन गए ऐं समाय ।
रे भैया और जिठानी बोलैं बोलने
सोति भूतु पहरायौ तोय भातु ॥"

दरिद्रतागत वर्णन के अन्तर्गत घर की शोचनीय आर्थिक स्थिति पर पूर्ण प्रकाश डालने के साथ साथ सामाजिक विषमता तथा महाजन के ऋणचक्र पर, जिस से आजीवन छुटकारा पाना असंभव है, मार्मिक शब्दो में लोक के विचार प्रकट हुए हैं। लोक के लिए यह वर्णन कल्पना की वस्तु नही है प्रत्युत दैनिक कष्ट की वह वेदनापूर्ण अभिव्यक्ति है जिसके प्रकाशन के लिए वह विवश हो गया है। यद्यपि इन प्रसंगों में भारतीय आध्यात्मिक दृष्टि तथा धनसम्पति के प्रति उदासीनता सतप्त लोक की अनुभूति के सामने कठोर वास्तविकता के अचल मे क्षुब्ध हो गई है, यह स्पष्ट है तथापि ऐसे प्रसगों पर गीतो का प्राय. अभाव रहा है तथा इनकी सख्या अति न्यून रही है। निम्नलिखित लोक गीत की सीधी-साधी अनुभूति पाठक को वास्तविकता का परिज्ञान करा सकती है—

"हे भोला बाबा केहन कयलौ दीन,
खेती पथारी भोला से हो लेला छीन ।
भाई सहोदर से हो मे गेल भीन,
घर में न खरची बाहर न मिले रीन ।
गाँव के मालिक न पड़ै दइय नीन,
एके गो लोटा छलइ भाइ मेलइ तीन,
पनिया पिवइत काल होइय छिना छीन ।
एके गो बैल बच गेल महाजन लेलक रीन
कर कुटुम्ब सब मेलइ परमीन···॥"

गोपीचन्द राजा पर विपत्ति—एक प्रसिद्ध लोक-गाथा पौराणिक गाथाओं के अनेक प्रसंगों में से है जिसके अन्तर्गत आपत्ति काल की निराशा तथा परिवार के व्यक्तियों की उदासीनता आदि तथ्यों पर प्रकाश डाला गया है। राजा गोपीचन्द रानी के आग्रह

पर अपनी ससुराल जाते हैं। ननद-भाभी के प्रश्नोत्तरो मे ननद के प्रति भाभी की स्वाभाविक ईर्ष्या का प्रकटीकरण होता है। ननद को प्रश्रय न देने की भाभी की विवशता एक ओर सकारणता का अभिनय करती है तो दूसरी ओर भाभी की अनुदारता तथा उदासीनता पर विशेष प्रकाश भी डालती है। ननद की देखकर किवाड बन्द कर लेना, पानी भी न पिलाना, ननद को दिन काट लेने की याचना तथा प्रार्थना को ठुकरा देना आदि ऐसे तथ्य है जो आपत्ति के समय की विषम परिस्थितियो की वास्तविकता का भान कराते है।

निम्नलिखित गीत के अन्तर्गत लोक की विवशतागत इस अनुभूति के दर्शन किए जा सकते है—

गोपीचन्द राजा पर परली विपतिया रे,
विपति के मारल हरवा जोते हो राम।
चलहू न पिया हो, हमरे नइहरवा, रे
चलु उहाँ विपत्ति गँवाई हो राम।
एक बन गइली दूसर बन गइली रे
बाँये दहिने बोलेला कगवा हो राम।
हमार कहनवा धनि तुहूँ नाही मन लू
आखिर असगुन भइल हो राम।
जब रानी गइली गाँव के गोइउवा,
भउजी हनेली बजर किवरिया हो राम।
खोलहू न भउजी चनन केवरिया रे,
बूद एक पनिया पीअइतू हो राम।
हमरो घइलवा ननदी फूटि फाट गइले,
बूंद एक पनिया कैसे दीहौ हो राम।
खोलहू न भउजी चनन किवरिया,
रे फटही लुगरिया हमके दीहितू हो राम।
हमरी लुगरिया ननदी धइलवा पेटरिया रे
सावन भदौआ पोतन बनी हे राम।
आहि रे दइबा आहि हो विधाता,
हमरे करमवा का लिखल हो राम।
हमरो कहनवा धनि, तुहू नाहि मनलू,
विपती के परे अपन के हून हो राम।
चलहू न धनिया अपनहि देसवा रे
चरखा ले विपति गवाइ हो राम॥"

सर्पदंश-चिकित्सा में करुण रस

लोक द्वारा सर्प-देश चिकित्सा निम्नलिखित रूप में की जाती है :—

(१) केवल मन्त्रों के द्वारा।

(२) लोक-गीतों के द्वारा जिनके अन्त मे कुछ मत्रों का भी प्रयोग किया जाता है।[१]

लोक में प्रमुखतः दूसरी पद्धति ही अधिक प्रचलित है। यहाँ इसी पद्धति पर प्रकाश डाला जा रहा है। इस पद्धति मे विभिन्न गीत गाए जाते है। उन गीतो के अन्त में मंत्रों का भी प्रयोग किया जाता है किन्तु मुख्य भाग गीतो का ही रहता है। इन गीतों एवं मंत्रों का अध्ययन करने से निम्नलिखित तत्वो का उद्घाटन होता है—

(अ) इन गीतों एवं मंत्रों का एक अंश मनोवैज्ञानिक सवेदन पर आधारित है जिसके अन्तर्गत दंशित व्यक्ति को सवेदन दिए जाते है कि विष भर रहा है, विष उतर रहा है' आदि।

(आ) नाद विज्ञान के प्रभाव को दृष्टिगत रखते हुए इन गीतो को एक विशेष लय के साथ विशेष वाद्य यंत्रों पर गाया जाता है।

(इ) करुण रस की मर्मस्पर्शी अनुभूति के प्रभाव को दृष्टिगत रखते हुए करुण रस की भाव-भूमि के सन्दर्भ में गीतो का निर्माण होता है तथा गाते हुए गीतो के करुणस्थलो की मार्मिकता पर बल तथा ममतामयी मर्मस्पर्शी अनुभूतियो की व्यजना की जाती है।

प्राणशास्त्र के वेत्ता सवेदन की शक्ति के आधार पर ही रोगो की चिकित्सा करते है और सफलता प्राप्त करते है। लोक चिकित्सा मे प्राणशास्त्र के ही सवेदनो का प्रयोग किया जाता है तथा प्रणशास्त्र की मर्यादा के अनुकूल यह ध्यान रखा जाता है कि सवेदना घनात्मक हों, ऋणात्मक न हो। सवेदनो से सबधित अश को यहाँ उद्धृत किया जा रहा है दशित व्यक्ति को घनात्मक संवेदन दिए गए है कि विष भर रहा है और वह स्वस्थ हो रहा है—

"पाइन से विष भरियन लागौ,
पीडिन पर बिसु आइगे,
पीडिन से विसु भरियन लागौ-
जघन बिसु आइगे,
जंघन से बिसु भरियन लागौ,
टुंडिन पै बिसु आइगे,

---

१. चिकित्सा अधिकारियों का कदाचित मत है कि लोक-सर्पदश चिकित्सा विषहीन सर्पदंश की अधिक सख्या होने के कारण सफलता प्राप्त कर लेती है अन्यथा विषधर सर्पदंश के लिए वह उपयोगी सिद्ध नही हो सकती।

दुंडिन में बिसु भरियन लागौ,
छतियन बिसु आइगे,
छतियन बिसु भरियन लागौ,
कंठन बिसु आइगे;
× × ×
भरियौ रे तू जार मेरे, भरियो रे तू पीर मेरे,
भरियौ अम्बर तारे,
हो चाँद सुरज वे दोऊ भरियौ,
भरियौ वासुक कारे,
विसु तोइरे भराऊँ, बिमु तोइरे भराऊँ,
तोइ भरावे··· ।"

इन लोक-गीतो को भरनी (विप भरने के) गीत कहते है। लोक चिकित्सक के साज मे निम्नलिखित वस्तुएँ होती है जो विशेप प्रकार के नादयन्त्र का निर्माण करती है।

काँसे की थाली जो एक बडे मटके के मुँह के ऊपर उल्टी रखी जाती है। एक वडा मटका जिसको चपटा या गोल भी कहते है। एक ईडुरी का कूँढी या कपडे की बनी हुई गोलाकार आसनी पर रखा जा सकता है। एक हाथ मे एक लकडी होती है जिससे थाली के किनारो पर आघात करते है, तथा दूसरे हाथ से थाली की पीठ पर थाप देते चलते है। एक पीढा या नीची कुर्सी आवश्यक होती है जिस पर बैठ कर थाली बजाई जाती है। इस प्रकार इम विशेप वाद्य यन्त्र का सयोजन होता है। और इसको थाली या ढॉक बजाना कहा जाता है। मर्पदश से इतर गडमाला जैसे अन्य विपैले रोगो मे भी थाली बजाकर स्वास्थ्य लाभ प्राप्त किया जाता है। दशित व्यक्ति या रोगी को मटके के सामने एक आसन पर विठा लेते है। उसको एक साफ सफेद चादर उढा दी जाती है। धूपदीप तथा अग्यारी[1] आदि के द्वारा वातावरण को शुद्ध कर लिया जाता है।

थाली की झन्कार सम्पूर्ण वातावरण को कम्पायमान कर देती है जिस के साथ गीतो की स्वर-लहरी गूँज उठती है। फलस्वरूप रोगी झूम उठता है और यह स्थिति वढकर ऐसी हो जाती है कि रोगी अपने सम्पूर्ण ऊर्ध्वांग को झुलाने लगता है। उसका सिर झूल-झूल पडता है और शरीर एक गोल चक्कर मे झूम उठता है। इस दशा को 'सिर आना' कहा जाता है। विश्वास किया जाता है कि दशक सर्प रोगी के सिर आ जाता है।

यह नाद का प्रभाव होता है जिसमे गीतो की कथावस्तु तथा भावो की मर्म-

१ 'अग्यारी' प्रदीप्त अंगार पर घी, लौग आदि डालना, जिसे यज्ञ का लघु रूप कह सकते हैं।

स्पर्शी अनुभूति का अपना योगदान रहता है जिस पर आगे विचार किया जायगा। लोक चिकित्सक रोगी की इस स्थिनि की उत्सुकता से बाट जोहते है। वह सिर आए हुए दंशक सर्प को समझा बुझा कर 'वाचा' में ले लेते है। अथवा उसकी कोई माग पूरी करा लेते है तथा दंशित व्यक्ति स्वस्थ हो जाता है।

इस चिकित्सा का तीसरा तत्व गीतो की कथा वस्तु एव भाव-व्यंजना मे प्रकट होता है। ये है गीतों की करुण कथाएँ और उनके रूप मे करुण रस का चिकित्सा में प्रयोग।

चरित्र-निर्माण के लिए भारतीय ही नही पाश्चात विद्वान हेगल ने स्पष्ट शब्दो में करुण रस की महत्ता प्रकट करते हुए कहा है—मानव शोक मे देवताओ की सृष्टि होती है तथा शोक अपने अधिक ठोस एव क्रियात्मक रूप मे मानव चरित्र है "मैं समझता हूँ लोक चिकित्सा के यह प्रयोग सिद्ध करते है कि करुण रस प्राण चिकित्सा का भी प्राण है जिसके स्वरूप की प्रतिष्ठा नाद विज्ञान की झकार तथा मनोविज्ञान के संवेदनों की पृष्ठभूमि मे होती है।

इन गीतो मे से यहाँ दो गीतो के अश उद्धृत किए जा रहे है। एक गीत तो प्रसिद्ध पौराणिक कथा 'सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र की कथा' पर आधारित है। दूसरा गीत लोक जीवन की अपनी कथा का उद्घाटन करता है। "श्रावण का महीना है। घर-घर झूले पडे हुए है। एक ब्राह्मण के घर 'सोहगी' आई है। लडकी की माँ अपनी बेटी को कन्डे लेने के लिए भेजती है। बिटौरे मे से कन्डे निकालते समय लड़की को काला नाग काट लेता है और इधर माता पुकारती ही रह जाती है।"

पहला गीत—रोहिताश्व को सर्प का काटना और रानी शैव्या का विलाप करना—

"भजि आयौ रे माली एक बागन पै,
भजि आयौ पै रानी पै छहियौ हो सा।
चौ भाई रानी करी पुकार,
जुवाब माली ने दीनौ।
आयु बाग के बीच जुल्म कारे नै कीनौ।
× × ×
रौसनि रौसनि फिरै कुवर की करै लखाई,
डरौ रौस पै पायौ, औ ठाडे तै खाई है पछार,
मूडु धरती पै दै मारौ।
अरे रानी अपनी बेटाए जगावै,
कोई रानी अपने बेटाए।
परि जागतु नानै हो।

का आजु समर सुत सोये,
तू अब की बोल सुनाये,
लाल का बिस मे हो खोये,

× × ×

दूसरा गीत—ब्राह्मण के घर सोहगी—

सुहावनी रितु आई सावन की,
ओ घन बरसैं ।
बरसैं मेह मेह गए नगर नारे,
घर घर झूला परे हिडौरे भारे,
ओ झूलैं नगर की नारि,
ये बिटियनु कौ त्यौहार,
सोहगी बामन कै आई, कै रितु आई सावन की ।

× × ×

अरे बडौ भात कौ हन्डा,
नेकि दौरि कै जाउ बिटौरा माउ,
तनिक मोइ लाइदै कडा, अरे खडी बाकी माता ए ।

× × ×

अरे पहुँची बिटौरा माझ,
खयेला और चुटीला बेदा दयेलिलार,
बनी पूनौ कौ सौ चन्दा ।
औ अचक तारि लिये कडा ।
जाय खाइगौ कारौ नाग
जहर कौ लग गयौ हो फदा, ठाडी टेरे बाकी मात ए ।

× × ×

खायगौ करुआ नागु,
बीरन देउ बुलाय
अब तुम में नानै साझौ, बेटी जम फटिगे, आजु
ए बासुकि हौ कारौ, ठाडी टेरैं बाकी मात ए ।"

इन गीतों की मर्मस्पर्शी अनुभूति का दर्शित व्यक्ति के अंतस् पर प्रभाव पडता है तथा करुणाभिभूति मानस का स्वास्थ लाभ निश्चित हो जाता है । जब इन की मार्मिक शब्दावलि 'तू अब की बोल सुनाय' ओ तुम मे नानै साझयौ, 'ठाडी टेरे बाकी माता ए' को नाद की झकार में बार-बार गुंजा दिया जाता है । उस समयपर उपस्थित

जन समुदाय के नेत्रों से अनायास ही अश्रु-मोचन होने लगता है। इन गीतों में करुण रस की वही आत्यंतिक एव हृदय विदीर्ण करने वाली अनुभूति भरी हुई है जिसके लिए कभी कहा गया था 'अपि ग्रावा रोदित्यापि दलित वज्रस्य हृदयम्' कहना न होगा कि लोक चिकित्सा की यह सामग्री अन्य दृष्टियों से इतर साहित्य की दृष्टि से भी संग्रहणीय है।

रामकथा से संबंधित लोकगीत

लोकसाहित्य में रामकथा—लोक-रामकथा अपनी विशेषताओं में लोक की निजी वस्तु है। वहाँ राम, सीता और लक्ष्मण तथा अन्यान्य मुख्य चरित्र उन विषमताओ मे आबद्ध है जिनके कारण जन-जीवन सदा से दु खी तथा विषण्ण है। सास के अत्याचार, भावज-ननद का आपस का द्वेष आदि ऐसी विषमताएँ है जो जन-जीवन की परिवारिक शान्ति को छिन्नप्राण किए रहती है। इनका सामान्य परिचय इससे पूर्व लोक साहित्य के अन्यान्य प्रसगो मे दिया जा चुका है। लोक-रामकथा के विवेच्य प्रसग किसी भी प्रकार लोक-साहित्य के सामान्य प्रसंगों से भिन्न नही है। यदि सामान्य प्रसगो मे रामकथा के पात्रो के नाम जोड दिए जावें अथवा रामकथा के इन प्रसगों से रामकथा के पात्रो के नाम हटा लिए जावे तो दोनों प्रसंगों की अभिव्यक्ति मे कोई अन्तर नही पडेगा। लोक के लिए राम कोई आदर्श पुरुष नही है प्रत्युत अपने जैसे सामान्य व्यक्ति तथा अपनी जैसी गार्हस्थिक विषमताओ में फँसे हुए है किन्तु यह अवश्य है कि उनका नाम किसी प्रकार लोकविख्यात हो गया है। इसलिए उनके माध्यम से जो बात कही जायगी वह जन-मानस मे सहज ही व्याप्त हो जावेगी।

यहाँ लोकगत रामकथा के कतिपय प्रसगो को निम्नलिखित रूप मे लेकर अपेक्षित प्रकाश डाला जायगा—

१ लोक की अनुपम कल्पना।

२. श्वसुरगृह के कष्ट एवं सास के अत्याचार।

३. वनवास के लिए प्रस्तुत राम को वन जाने की आज्ञा देने मे माता कौशल्या की वेदना।

४. माता कौशल्या को वनवासी राम,सीता और लक्ष्मण की सुख-सुविधा की चिन्ता।

५ भावज-ननद का द्वेष एव भावज को यातना।

६. लवकुश जन्म तथा लवकुश को देखकर राम की जिज्ञासा एव आत्म-ग्लानि।

(१) लोक की अनुपम कल्पना—यद्यपि लोक-साहित्य प्रमुखतः भावना का क्षेत्र रहा है तथापि समय-समय पर ऐसी अनुपम कल्पनाओं का भी सृजन हुआ है जिनको देखकर लोक की विलक्षण कलाकुशलता का परिचय प्राप्त होता है। ऐसा ही एक प्रसंग यहाँ विशेषरूप से अवलोकनीय है—

राम की छटी है । हरिण के मांस की आवश्यकता है। हरिणी इसलिए उदास एवं अन्यमनस्क है। हरिण हरिणी की उदासी का कारण पूछता है। वह सब व्यथा उससे कह देती है। किन्तु क्या करें, दोनों विवश है। हरिण मारा जाता है। हरिणी कौशल्या रानी से खाल माँगती है जिसको किसी वृक्ष पर लटका कर वह हरिण की स्मृति बनाए रखे। किन्तु उसकी यह याचना भी स्वीकार नही होती। कौशल्या रानी उत्तर दे देती है—खाल की खंजडी बनेगी तथा उससे राम खेलेगा। जब जब खजडी बजती है हरिणी उसके शब्द को सुनकर अपने हरिण के लिए शोक मनाती है।[1] इस प्रकार लोक ने पशु की मार्मिक शोकानुभूति के द्वारा इष्टनाश की विषम परिस्थिति तथा इष्टनाशजन्य मर्मस्पर्शी वेदना का अनुपम उद्घाटन इस लोकगीत द्वारा किया है। हरिणी के शोक के साथ जन-जन की शोकानुभूति क्रियाशील हो उठती है। मूल अभिव्यक्ति निम्नलिखित रूप में देखी जा सकती है—

"छापक पडे छिउलिया त पतवन गहवर,
अरे रामा तेहि तर ठाडी हरिनियाँ तो मन अति अनमन।
चरत चरत हरिन बात हरिनी से पूछइ।
हरिनी की तोर चरहा झुरान कि पानी बिनु मुरझिउ,
हरिना आज राजा जी के छठी तुहै मारि डारिहै।
... ...
"मचिये बैठी कौसिल्या रानी हरिनी अरज करइ,
रानी मसवा त सिझहि रोसइया खलरिया हमे देतिउ।
पेडवा से टगति उखलरिया त हेरि फेरि देखितिउ,
रानी देखि देखि मन समुझाइ जनुक हरिना जीतइ।
जाहु, हरिनी घर अपने खलरिया नाही देवइ,
हरनी, खलरीक खँजडी मिढउवइ त राम मोर खेलिहँइ।
जब जब बाजइ खँजडिया सबद सुनि अनकइ,
हरिनी ठाढि ढँकुलिया के नीचे हरिन क बिसूरह !!"

(२) **श्वसुर-गृह के कष्ट एवं सास के अत्याचार**—सीता जी पितृगृह एव श्वसुर गृह की तुलना करती हुई श्वसुर-गृह की व्यथाओ की ओर सकेत करती है। उन

---

१. इस प्रसग मे यहाँ सस्कृत का एक श्लोक भी अवलोकनीय है—

आदाय मासमखिल स्तनवर्जमंगात्
मां मुच ! वागुरिक ! याहि कुरु प्रसादम् !
अद्यापि घासकवल ग्रसनानभिज्ञो
मन्मार्गवीक्षण परस्तनयो मदीयः ॥

हे बधिक ! स्तनों को छोडकर तू मेरे सारे शरीर का मास लेकर मुझे छोड दे; मुझ पर इतनी कृपा कर ! मेरा छोटा शावक अभी तक घास खाना नहीं जानता। वह मेरी राह देख रहा होगा कि मैं आऊं और वह स्तनपान करे।

व्यथाओं का क्या फल हुआ इसी का वह उल्लेख करती हैं और व्यथाओं का विवरण पाठक की कल्पना के लिए छोड़ देती है। उनका सुन्दर शरीर घर की कुढ़न और जलन से जलभुन कर काला हो गया। सीता की यह व्यथा प्राय: प्रत्येक नववधू की समस्या होती है। सास का कठोर नियंत्रण तथा ननद आदि के ताने नववधू के जीवन को व्यथापूर्ण बना देते है।

लोक का यह हृदयस्पर्शी गीत इस प्रकार है—

"जब हम रहे जनक घर राजा रे जनक घर।
सखिया सोने के सुपेलिया पछोरौं मैं मोतिया हलोरौ।
जब हम परली रामघर राजा दसरथ घर,
जरि वरि भइउ है कोइलिया त के भसम भयउ।"

उधर लोक की उर्मिला की व्यथा भी असाधारण है। उसको मानों सपरिश्रम कारावास का दण्ड दिया गया है। उसकी सास, ननद और जिठानी ने उसको पिसनहारी बना दिया है। उस बेचारी ने कभी चक्की नहीं चलाई। उससे भारी चक्की चलती नही। वह शारीरिक कष्ट के कारण रो रही है और बिलख रही है। लक्ष्मण को यह पता नही है कि उनके घर मे इस प्रकार की विषमता का राज्य है। वह सहज स्वभाव से पूछते है कि यह कौन पिसनहारी रो रही है। अन्य स्त्रियाँ जब उनको बताती है कि तुम इतना भी नही जानते यह तो तुम्हारी ही गृहिणी उर्मिला रो रही है। लक्ष्मण उर्मिला के पास जाते है और अपने 'गमछे' से उसके आँसू पोछते हैं।

गीत के अन्त मे लक्ष्मण के पत्नी-स्नेह की सुन्दर झलक ने गीत की संपूर्ण व्यथा को सुखद मिलन में परिणत कर दिया है किन्तु इससे गीत मे व्यक्त गार्हस्थिक विषमता के प्रकाश मे आने मे कोई बाधा नही पड़ती है।

मूल गीत की मर्मस्पर्शी शब्दावली एव करुणाजनक स्वरलहरी यहाँ द्रष्टव्य है—

"केरे देले गोहुमा हो रामा, केरे देले चँगेरिया ?
कउनी बइरिनिआ हो रामा, भेजल जँतसरिया ?
सासु देले गोहुमा हो रामा, ननदी चँगेरिया।
गोतनी बइरिनिआ हो रामा, भेजल जँतसरिया।
जँतवो न चलई हो रामा, मकरी न डोलइ।
जाँता के घइले हो रामा, रोवइ जँतसरिया।
घोड़वा चढ़ल हो लछुमन, करइ पुछसरिआ—
केकरी तिरिअवा हो रामा, रोवइ जँतसरिया ?
तोहूँ नएँ जानल हो लछुमन, तोहरे तिरिअवा ?
जँतवा के दूखे हो रामा, रोवइ जँतसरिया।

बहिंग्रां पकरलन लछुमन, जँघिया बइठग्रोलन ।
ग्रपने गँमछवे हो लछुमन । पौछै नैना लोरवा ।।"

(३) **वनवास के लिए प्रस्तुत राम को वन जाने की ग्राज्ञा देने में माता कौशल्या की वेदना**—माता कौशल्या का हृदय व्यथित हुग्रा जा रहा है। वह किस प्रकार राम,सीता ग्रौर लक्ष्मण को वन जाने के लिए ग्राज्ञा दे। राम-लक्ष्मण सीता तो उनको ग्रपने कलेजे, पुतली ग्रौर चूडियो के समान प्रिय ग्रौर ग्रभिन्न है, उनको वह वन जाने की ग्राज्ञा किस प्रकार दे सकती है। वह ग्रति दु खी होकर यही कहती है कि कोई सोने की सलाई ले ग्राग्रो जिसमे इन ग्राँखो को ऐसी ग्राज्ञा देने से पूर्व फोड लूं ग्रौर राम लक्ष्मण ग्रौर सीता को वन जाता न देख सकूं। ऐसे वचन मै किस प्रकार कहूँगी वह यही सोचती है ग्रौर कह उठती है कि लाग्रो जलता ग्रँगार ले ग्राग्रो उसको मैं ग्रपनी जिह्वा पर रख लूं जिससे ऐसे वचन कहने से पूर्व ही वह जल जाय।

लोक-कलाकार की मार्मिक ग्रनुभूति एव ग्रनोखी कल्पना यहाँ गीत के मूल शब्दो मे दृष्टव्य है—

"जौने राम दुधवा पिग्रायँऊ घिऊ सेन ग्रवटेउं हो राम ।
ग्ररे मोरा भितरा से बिहरै करेजवा मैं कैसे बन भाखउँ हो राम ।
राम तो मोर करेजवा लखन मोरी पुतरिव हो राम ।
ग्ररे रामा सीतारानी हाथे कर चुरिया तै कैसे वन भाखउँ हो राम ।
ग्ररे लै ग्रावा सोने के सरइया,
नयन दूनौ फोरउ, नयन दूनौ फोरउँ हो ।
लावा जिभिया माँ धरौ हो ग्रगार,
वचन कैसे बोलिय, वचन कैसे बोलिय हो ।।"

(४) **माता कौशल्या को वनवासी रामसीता ग्रौर लक्ष्मण की सुखसुविधा की चिन्ता**—प्रिय की सुखसुविधा के ग्रनिश्चय के कारण प्रियवियोगजनित दु ख मे करुणा उत्पन्न हो जाती है। प्रिय की सुखसुविधा के सबध मे ग्राशका बनी रहना स्वाभाविक है। फिर ऐसे प्रियजनो के लिए क्या कहा जाय जो वन को गये हो जहाँ सुखसुविधा के कोई साधन ही उपलब्ध नही हो सकते। इसलिए माता कौशल्या बार-बार ग्रपने प्रिय पुत्रो तथा पुत्रवधू का स्मरण कर ग्रश्रु बहाने लगती है। ग्रब वह यह देखती है कि उनकी सुखसुविधा के सपूर्ण साधन तो ग्रयोध्या मे ही पडे है तो उनको ग्रौर भी कष्ट होने लगता है। उनको विश्वास नही होता कि उनके लाडले वन मे सुरक्षित तथा सुखी होगे। उनके ग्रनिष्ट की ग्राशका उनको खाए जाती है। निम्न-लिखित लोकगीतो मे माता कौशल्या के मानस का चित्र खीचा गया है। मनोभावो की स्वाभाविकता तथा मार्मिकता विशेषरूप से ग्रवलोकनीय है।

कौशल्या का क्षोभ—यह लोक-गीत की ग्रपनी निजी ग्रभिव्यक्ति है। वर्षा ऋतु

मे माँ का हृदय परम कातर हो उठता है जब वह सोचती है कि उनके पुत्र किसी वृक्ष के नीचे भीगते होगे—

"सावन बरसे भादो गरजे, पवन बहे चउवाई।
कवन बिरिछ तर भीजत होइहै, राम लखन सिया लाई।"

अपने पुत्रो की अनुपस्थिति मे माँ का हृदय सर्वव्यापी सूनेपन का अनुभव करता है—

"राम बिना मोर सून अयोध्या, लछिमन बिनु ठकुराई,
सीता बिनु मोर सून रसोइया, के मोरा भोजन बनाई।"

इस सूनेपन की मार्मिक अनुभूति मनोवैज्ञानिक क्षेत्र की वस्तु है लोक जिसका अनायास ही प्रकटीकरण कर सका है।

मेघ से प्रार्थना

"भितराँ मे निकसी कउसिला नैनन नीर बहा।
रामा राम लखन सीता जोडिया कवने बन होइहै।
दैवा वोहि बन जाइ जनि बरिसहु जहाँ मोर लरकिन हो राम।
राम क भीजै मटुकवा लखन सिर पटुका हो राम।
मोरी सीता क भीजै सेंदुरवा लवटि घर आवउ हो राम।"

असुविधा की अशंका

"घर क जेवना राम घर ही छोडतु है,
भूखन मरतु ह्वै है दोउ भाई।
लोटा और डोरी राम घर ही छोडतु है,
प्यासन मरतु ह्वै है दोउ भाई।
तोसक तकिया रामा घर ही छोडतु है,
नीदन मरतु ह्वै है दोउ भाई॥"

भावज-ननद द्वेष और भावज की यातना—भावज ननद का द्वेष अति प्रसिद्ध है। प्राय: ननद भावज को सुखी नही देख सकती। वह भावज के संबध मे भाई से कुछ न कुछ कहा ही करती है और उनके कान भरने का फल यह होता है कि भाई अपनी पत्नी से असतुष्ट हो जाता है। ऐसे अवसर प्राय: आ जाते है जब पति असतुष्ट होकर पत्नी को दण्ड भी देता है तथा अनेक प्रकार से उसको तग कर उठता है। ननद मन ही मन ऐसे अवसरों की प्रतीक्षा करती है और वह इन अवसरो पर प्रसन्न होती है। लोक की यह भावना निम्नलिखित लोकगीत मे प्रकट हुई है। सीता जी की ननद सीता जी से रावण का चित्र बनाने का आग्रह करती है और जब सीता रावण का चित्र बना देती है तो वह राम से शिकायत कर देती है कि देखो भइया, भाभी तो रावण का चित्र बनाती है। राम इस बात से अति असतुष्ट हो जाते है और सीता को निर्वासित कर देते है। सीता-निर्वासन की यह लोक की अपनी कल्पना है जिसको

अभी तक कही साहित्य में प्रश्रय प्राप्त नही हुआ है । विवश सीता अयोध्या छोडती है । चलते समय वह लक्ष्मण तथा अन्य प्रियजनो के दर्शन करना चाहती है । यह भाव वास्तव मे बडा ही करुणाजनक है । मूलगीत की सहज एव स्वाभाविक शब्दावली मे यह भाव अति मर्मस्पर्शी बन गया है –

ननद— "भौजी जौन रवन तुहे हरि लेगई उरेहि दिखावहु ।"
सीता— "जो मै रवना उरेहौ उरेहि दिखावहु,
सुनि पैइहै बिरन तोहार ते देसवा निकारहै ।"

बहन— "भइया जौन रवन तोर बैरी त भौजी उरे है ।"
राम— सीता के देसवा निकारहु रवना उरेहै ।"

चलते समय अन्तिम बार स्वजनो को जी भर देख कर रोने की इच्छा की अभिव्यक्ति निम्न गीत मे हुई है—

"कहँवा गए लछमन देवरा त हमे न बतयउ ।
हिरदइया भर देखतेऊँ नजर भर रोउतेऊँ ।।"

लवकुश-जन्म तथा लवकुश को देखकर राम की जिज्ञासा एवं आत्मग्लानि

लवकुश का जन्म—लवकुश का जन्म वन मे होता है । लोक की कल्पना मे केवल एक ही पुत्र का जन्म कदाचित् मान्य है । इमीलिए लोकगीतो मे केवल एक पुत्र के होने के सबध मे उल्लेख हुआ है । 'लवकुश' अतएव एक ही शब्द का द्योतक है ।

सीता जी को परिस्थितिगत क्षोभ हो रहा है जब वह देखती है कि पुत्र-जन्म जैसे परम हर्ष के अवसर पर कोई हर्ष मनानेवाला उसके पास नही । साथ ही राजपुत्र के लिए कोई व्यवस्था नही । वही कुश ओढना और वही कुश बिछौना है । इस अभावानुभूति से वह क्षुब्ध होकर सोचने लगती है कि यदि कही अयोध्या मे पुत्रजन्म होता तो कितनी खुशियाँ मनाई जाती तथा कितने ठाठबाट से यह रहता । सीता की विवशता तथा असहायावस्था का करुणाजनक दृश्य इस लोकगीत की प्रथम पक्ति से ही आँखो के सामने आ जाता है—

"तुम पूत भयहु विपति मे बहुतै सासति मे,
पूत कुसै ओढन कुस डासन वन फल भोजन ।
जो पूत होते अयोध्या मे वही पुर पाटन,
राजा दसरथ पटना लुटौते कौसल्या रानी अभरन ।"

पुत्र को देखकर राम की जिज्ञासा और आत्मग्लानि

राम सीता के पुत्र को देखते है और उसके सौन्दर्य आदि को देखकर चकित रह जाते है । उस बालक के सबध मे कुछ जानने की जिज्ञासा उनको सहज ही हो उठती है । उनके पूछने पर बालक जो उत्तर देता है उससे उनको निश्चय हो जाता है कि यह बालक तो उनका ही पुत्र है । विधि की इस विडम्बना पर उनको बडी

आत्मग्लानि होती है और वह अश्रु बहाने लगते है। बालसुलभ शब्दावली तथा उत्तर की सरलता लोक-गीत की अपनी विशेषता है जो लोकगीतो की शैली पर प्रकाश डालती है—

"केकर तू पुतवा नतिअवा केकर हौ मतिजवा।
लरिकौ कौनी मयरिया कै कोखिया जनमि जुडवायउ।
बाप क नौवों न जानौ लखन के भतिजवा हो।
इम राजा जनक के है नतिया सीता कै दुलरुवा हो॥
....
रामा तरत तरर चुवै आँसु पटुकवान पोछई।"

उपसंहार—लोकगीतो के उपर्युक्त अध्ययन के आधार पर निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले जा सकते है—

विषयगत—१. करुण प्रसग प्राय· पारवारिक विषमतागत परिस्थितियो मे प्रकट हुए है जो जन-जीवन के लिए क्षोभ के कारण है।

२ स्त्री वर्ग इन विषमताओ से क्षुब्ध रहता है। उनकी अपनी समस्याएँ है जिनका निराकरण नही होता। उनका जीवन प्रायः दु ख मे ही कटता है।

३ पौराणिक कथाओ तथा रामकथा को लोक ने अपनी भावनाओ के रूप मे डालकर प्रकट किया है। इन कथाओ के आदर्श चरित्र भी पारिवारिक विषमताओ मे आबद्ध तथा उनके कारण विषण्ण दिखलाए गए है।

४. पौराणिक कथाओ तथा रामकथा के सम्बन्ध मे लोक की अपनी जो मान्यताएँ है जिनमे से कतिपय अभी तक साहित्य मे प्रश्रय नही पा सकी है जैसे रावण का चित्र बनाने के कारण सीता का निर्वासन।

५ लोक-गीतो के विषय मनुष्य समाज तक ही सीमित नही रहे है। उन मे पशु-पक्षियो को समान अधिकार मिला है तथा वे मानव समाज के अभिन्न अग के रूप मे प्रकट हुए है।

६. कथानक सुस्पष्ट तथा प्राय लघु होते है।

शैलीगत—१ करुणरस की विभिन्न परिस्थितियो मे विभिन्न प्रकार की शब्दावली तथा पदयोजना एव गीत की स्वर-लहरी लोकगीतों की अपनी विशेषता है। इस दृष्टि से लोक कलाकार की सूझ बूझ स्तुत्य है।

२. कोमलकात पदावली तथा सरल अभिव्यक्ति की ओर लोक-कलाकारो का विशेष स्थान है। गीत सहज ही फूट पडते है। इसलिए उनमें सरलता स्वाभाविकता तथा मर्म-स्पर्शिता सहज ही आ जाती है।

३. लोक के अपने प्रतीक है, जिनकेसहारे अभिव्यक्ति को सशक्त तथा प्रभावशाली बनाया जाता है।

४. गीतों की गेयता शैली का आधार है, इसलिए करुण रस की अभिव्यक्ति का मर्मस्पर्शी स्वर-लहरी से सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। इस प्रकार के गीतो की शब्दावली अथवा भाषा से अपरिचित होते हुए भी स्वरलहरी मात्र से गीत की करुण अभिव्यक्ति का अनुमान लग सकता है।

: ४ :

सूर की रामकथा में करुण रस

कवि का दृष्टिकोण—साहित्य के 'सूर्य' सूर हिन्दी-साहित्य के ही क्यो विश्व-साहित्य के उन गिनेचुने कलाकारो मे से है जिनकी लेखनी से कविता सरसप्रवाह के रूप मे प्रवाहित हुई तथा अबाधगति से बहती गई और एक दिन वह प्रवाह सागर बन गया। वह सागर जिसमे अगाध जल है तो अनन्त रत्नराशि भी पडी है जिनकी प्राप्ति के लिए जनमानस प्रयत्नशील है और जिनको प्राप्त कर अपने आप को धन्य समभता है। समभे भी क्यो न, उन रत्नो के मूल मे है जनजीवन की करुणापूर्ण दशा जो कवि-हृदय सूर के लिए शोकजनक सिद्ध हुई थी, तथा जिसकी अभिव्यक्ति हुई निम्नलिखित दोहे मे जो प्रमाणापेक्षी होते हुए भी कवि के कोमल एव करुणापूर्ण मानस का दिग्दर्शन कराने मे पूर्ण समर्थ है। ऐसा लगता है कि 'निबल' जनजीवन का हाथ छुडाकर समर्थ भगवान् चला गया हो और असहाय जन-मानस यातनाओ के भार मे कराह रहा हो।

"हाथ छुडाए जात हौ निबल जानि के मोहि,
हिरदे ते जब जाहुगे मरद बदौगो तोहि।"

जन-मानस मे उस समर्थ शक्ति की स्थापना का प्रश्न आया तो स्वभावानुकूल सूर घिघियाने लगे।

आचार्य जी ने सूर की प्रतिज्ञा देखी और इन शब्दो मे एक निश्चित मार्ग का निर्देश किया—

"जो सूर है के ऐसौ घिघियात काहे को है। कुछ भगवत्लीला वर्णन करि।"[1]

प्रयत्नपक्ष और उपभोगपक्ष अथवा साहित्य की साधनावस्था तथा सिद्धावस्था का सतुलन तब भी तुलसी सूर जैसे विश्वविश्रुत कलाकारो की दृष्टि मे रहा। फल-स्वरूप तुलसी ने कृष्ण लीला को अछूता न छोडा तो सूर ने रामकथा के प्रति उदासीनता न दिखलाई। यह अवश्य है कि तुलसी की दृष्टि मे साधनावस्था प्रमुख तथा

---

१. चौरासी वैष्णवो की वार्ता

सिद्धावस्था गौण थी तो सूर की दृष्टि मे सिद्धावस्था प्रमुख तथा साधनावस्था गौण; किन्तु यह स्पष्ट है कि दोनों ही एकागीपक्ष के पक्ष मे न थे।

कहना न होगा कि सूर का मन जितना साहित्य की सिद्धावस्था के चित्रण मे रमा उतना उसकी साधनावस्था मे नही। यही कारण है कि रामकथा का प्रसग एक स्कंध[1] मे ही समाप्त कर दिया गया है जिसके कारण कथा अबाध गति से प्रवाहित नही हो सकी है। कहीं-कही तो अति सक्षिप्ति होने के कारण कथा का रूप सुग्राह्य नही रह सका है। फिर भी करुणरस के जिन स्थलो को सूर ने अकित किया है उनमे करुणरस की श्रेष्ट अभिव्यक्ति सभव हुई है।

शैली—सूर सगुनपद गाने चले है। इसलिए रामकथा का यह सम्पूर्ण प्रसग भी पदो मे ही अवतरित हुआ है। साहित्य के साथ सगीत के मेल से सूर की कृति द्विगुणित प्रभावशाली बन गई है। और किसी रस के साथ सगीत आवश्यक रहे चाहे न रहे किन्तु शोक (रोना और गाना) के साथ तो उसका सहज सम्बन्ध है। शोक का रुदन गाने का रूप ले लेता है। यह शोक-प्रदर्शन मे नित्यप्रति देखने मे आता है।

अयोध्याकाड से लकाकाड तक निम्नलिखित प्रकार के रागो मे पदो की रचना हुई है—

राग	पदसख्या	राग	पदसख्या	राग	पदसख्या
मारू	७७	बिलावल	२	गौरी	१
सारग	२९	आसावरी	२	मलार	१
केदारौ	१३	रामकली	२	टोडी	१
कान्हरौ	१०	नट	२	बसत	१
धनाश्री	१०	गूजरी	२	सोरठ	१

कुल सख्या—१५६ पद

सूर की पद-रचना अपनी सरसता, सरलता तथा भावानुभूति के लिए विशेष महत्व रखती है। गेय होने के साथ यह पद इतने सरल तथा मर्मस्पर्शी है कि पाठक के समक्ष अनायास ही अभिप्रेत वस्तु का बिम्ब खीच देते है। शैली के साथ भाषा का प्रसादगुण भावो की अभिव्यक्ति मे बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव स्थापित हो जाता है जिसमें सूर की महत्ता तथा श्रेष्ठता निहित है।

करुणरस के प्रसंगों की योजना—सूर के परपरानुगत रूप मे रामकथा का मूल आधार जयविजय की शापकथा को ही माना है किन्तु इस ओर कवि ने अपने पद मे सकेत-मात्र ही किया है —

१. सूरसागर (ना०प्र० सभा सस्करण) नवम स्कध ४६० से ६१६ तक के पद।

"जय अरु विजय पारषद दोई। विप्र-सराप असुर भए सोइ॥
रावन कुंभकरन सोइ भए। राम जनम तिनकै हित लए॥"

इस प्रकार राम-जन्म का कारण सूर इसी शापकथा को मानते हैं। रामकथा के अन्तर्गत मुख्यतः "प्रिय-बन्धुवान्त्रव एव पुत्रादि के वियोग एव मरण" को सूर ने लिया है। जिसमे दशरथमरण, सीताहरण तथा लक्ष्मणशक्ति प्रसग करुणरस की अभिव्यजन की दृष्टि से उल्लेखनीय है।

सूरसागर में करुणरस के प्रसंग

१ — राम-वनगमन	१. महाराज दशरथ का सोच, विलाप, पश्चाताप एव मरण।
	२. भरत-विलाप।
	३. दशरथ-मरण के समाचार को पाकर रामसीता का विलाप।
२—सीता-हरण	१. राम-विलाप।
	२. अशोक वाटिका मे सीता।
	३. सीता का परिताप।
३—लक्ष्मण-शक्ति	१. राम-विलाप।
	२. करुणमनोभाव-कौशल्या, सुमित्रा का विलाप और उत्साह।
४—सीता-राम मिलन	१ करुण का एक अप्रिय प्रसंग।
५—विपक्षी पात्रो की शोकानुभूति	१. रावण-वध पर मदोदरी और विभीषण का विलाप।
६—बन्धन	१. राम-लक्ष्मण का नागपाश-बधन।
७—पराभव	१ रावण-पराभव।

करुणरस के प्रसंगों की अभिव्यक्ति—

रामवनवास-प्रसंग—महाराज दशरथ चारो पुत्रो का विवाह करके जनकपुर से अयोध्या लौटे। इस उल्लास और आनन्द मे पितृ-हृदय की ललक और लालसा पूर्ण हुई। उनका उत्साह राम के राजतिलक के लिए सहज ही मुखरित हो उठा—

"अवधपुरी को राज रामदै, लीजै व्रत बनचारी।"

महारानी कैकेयी पास ही बैठी इस विचार को सुन रही थी। उन्होने तुरन्त महाराज के उत्साह को भंग करके महाराज को आकाश से पृथ्वी पर ला पटका—

"यह सुनि बोली नारि कैकेई, अपनी बचन सँभारौ।
चौदह वर्ष रहै बन राघव, छत्र भरत-सिर धारौ॥"

महाराज के मनोरथों तथा सुखद विचारो पर अप्रत्याशित प्रहार ने महाराज को हतबुद्धि बना दिया। उनसे "कछू कहत" न बना—

"यह सुनि नृपति भयौ अति व्याकुल, कहत कछू नहि आई।"

महाराज दशरथ तथा महारानी कौशल्या कैकेयी द्वारा मागे गए वचन के परिणाम को सोचकर विकल हो उठे और उनके नेत्रो से आँसू बहने लगे—

"महाराज दशरथ यो सोचत।
हा रघुनाथ, लछन, वैदेही, सुमरि नीर दृग मोचत॥"

तथा

"कौशल्या सुनि परम दीन ह्वै, नैन नीर ढरकाए।
विह्वल तन-मन, चकृत भई सो, यह प्रतच्छ सुपनाए॥"

कर्त्तव्य और प्रेम के द्वन्द्व मे महाराज की दशा अति करुणापूर्ण हो गई। प्राणपण से वचन निर्वाह अथवा प्रेम के लिए बलिदान मे से महाराज दशरथ ने वचन निर्वाह को ही हृदय पर पत्थर रख कर चुना परन्तु पुत्र-वियोग की विषमवेदना से वह तिलमिला उठे। ऐसे अवसरो पर दैन्य तथा कल्पना जीवन का आधार बनती है। महाराज दशरथ एक ओर राम से जैसे अब वह उनके अतिथि हो, पराए हो गए हो, एक दिन रुकने के लिए अनुनय विनय करते है तो दूसरी ओर वचन वृथा होजाने की कल्पना भी उनके मन मे उदय होती है कि चाहे वचन वृथा हो जाय पर राम रुक जाँय—

रघुनाथ प्यारे आज रहो (हो)।
चारि जाम विश्राम हमारै, छिन-छिन मीठे वचन कहौ (हो)।
वृथा होहु बर बचन हमारौ, कैकेई जीव क्लेस सहो (हो)।
. ...
बिछुरन प्रान पयान करेगे, रहौ आजु पुनि पथ गहौ (हो)।

महाराज दशरथ अपने लाडलो के विरही रूप की कल्पना करते है और असह्य वेदना के कारण बिलख उठते है। जिन राजकुमारो पर सम्पूर्ण राज-वैभव लुटाया जाता था वे ही राजकुमार आज विरक्त होकर सिर पर जटा धारण किए, समस्त देह मे भस्म लगाए बिना पदत्रान के वन-वन मारे फिरेगे। कदमूल फल का भोजन करेगे और पत्तो पर सोवेगे। इन्ही कष्टो को उनकी अनुगामिनी कोमलागी जनकपुत्री भी सहेगी। उस भोली-भाली अबोध बाला पर महाराज की दृष्टि जम जाती है और उसको देखकर वह अति अधीर होकर बिलख उठते है। इस कल्पना मे

करुण की कैसी मर्मभेदी अनुभूति का विकास होता है यह पद की टेक के गिने-चुने शब्दो में प्रकट है—

"फिरि-फिरि नृपति चलावत बात ।"

दु खो तथा कष्टो का एक घटाटोप होता है जो बरबस बार-बार आर्त्त ए- व्यथित व्यक्ति के समक्ष अपनी कटुता का अनुभव कराता रहता है । मनोविज्ञान का यह तथ्य कवि की दृष्टि मे था, इसीलिए इतनी सुन्दर अभिव्यक्ति सम्भव हो सकी । कवि के मूल शब्दो मे यह प्रसग यहाँ अवलोकनीय है—

"फिर-फिरि नृपति चलावत बात ।
कहुरि सुमति कहा तोहि पलटी, प्रान-जिवन कैसे बन जात ।
ह्वै विरक्त, सिर जटा धरै, द्रुम-चर्म भस्म सब गात ।
हा हा राम, लछन अरु सीता, फल भोजन जु डसावै पात ।
बिन रथरूढ, दुसह दुख मारग, बिन पद-त्रान चलै दोउ भ्रात ।
इहि विधि सोच करत अतिही नृप, जानकी ओर निरखि बिलखात ।।"

आखिर प्रयाण की वह अशुभ घडी आ ही गई और राम-सीता-लक्ष्मण वन को चल दिए । पुरजन यह समाचार पाकर विह्वल हो उठे । महाराज दशरथ 'ऊँचे चढि लोचन भरि सुत-मुख' देखने लगे । उनकी दारुण व्यथा निम्नलिखित शब्दो मे फूट पडी ।—

"रामचन्द्र से पुत्र बिना मैं भूँजब क्यो यह खेत ।"

पुत्र-वियोग की वेदना महाराज के लिए असह्य हो गई और वह 'तात-तात' कहते हुए अचेत होकर गिर पडे—

"देखत गमन नैन भरि आए, गात गह्यौ ज्यो केत ।
तात-तात कहि बैन उचारत, ह्वै गए भूप अचेत ।।"

उधर कौशल्या पुकारती ही रह गई 'रामहि राखौ कोउ जाइ ।' दु.खी मानस मानो कल्पनाओ के सहारे ही जीवन को आगे बढाता है । आशा की एक चिनगारी बुझकर दूसरी को जन्म दे देती है । इस प्रकार आशा निराशा मे परिणित हो जाती है परन्तु उसके साथ दूसरी आशा उदय होती है । जब वह भी निराशा मे परिणित होती है तो व्यथा असह्य होने के साथ-साथ घातक बन जाती है । इसे अन्तिम निराशा कह सकते है जो अपने पश्चात् किसी और आशा के अकुर को जन्म नही देती । महाराज दशरथ की मृत्यु इसी प्रकार के सहज मानस व्यापार मे हुई ।

महाराज की प्रथम आशा के दर्शन उनकी अनुनय-विनय तथा वचनवृथा होने

१ सूरदार ६/३८/४८२

की कल्पना में होते है। वह समझते है तथा आशा करते है कि राम उनकी अनुनय-विनय को मानकर रुक जायेगे किन्तु ऐसा नही होता तथा महाराज की आशा निराशा मे परिणित हो जाती है। इसके साथ ही महाराज को एक और उपाय सूझता है और इसके साथ दूसरी आशा का उदय होता है। सुमत्र राम को रथ मे बैठाकर वन ले जॉय तथा घुमाकर लौटा लावे। यह उपाय वचन-पालन का पूर्ण समाधान करता था। बनवास भोगकर वापिस आ गए और इसीलिए इसके साथ महाराज की आशा बलवती तथा विश्वास की ओर उन्मुख थी। वियोगी एव शोक-कातर महाराज के प्राण इसी आशा पर टिके हुए थे। रथ के लौटने के साथ वह अपने लाडलो के वापिस आने के सुख-स्वपन देख रहे थे किन्तु जब मन्त्री अकेला ही वापिस आया और महाराज को उसने समाचार दिया कि—

"· ···रघुवर (रथ) फेरि दियौ।
भुजा छुडाइ, तोरि तृण ज्यो हित, कियौ प्रभु निठुर हियौ।"

तब तो महाराज को घोर निराशा ने घेर लिया। वह अति व्याकुल हो कर बिलख उठे। उनकी असह्य वेदना घातक सिद्ध हुई। आशा और विश्वाश के प्रतिकूल इस प्रकार अप्रत्याशित घोर निराशा की प्राप्ति घातक बन जाती है। सूर ने इसी तथ्य को सम्भवत दृष्टिगत रखते हुए और अधिक विवरण देने के स्थान मे अविलब महाराज के जीवन-त्याग की व्यवस्था करदी—

"यह सुनि भूप तुरत तन त्यागौ, बिछुरन ताप तयौ।"

सूर ने राम-विरह मे सतप्त अयोध्या तथा पशु-पक्षी आदि की विरह-वेदना का वर्णन महाराज दशरथ के निधन के सदर्भ मे ही किया है और इस प्रकार महाराज दशरथ के निधन को सकार्‌ता भी प्रदान की—

"पसु-पछी तृन-कन त्यागयौ अरु बालक पियौ न पयौ।
सूरदास रघुपति के बिछुरै, मिथ्या जन्म भयौ।"

तथा

"आजु अयोध्या जल नाहि अँचवौ ·· ।"

भरत का शोक—भरत ननिहाल से वापिस आए। उन्होने अयोध्यापुरी की दीन अवस्था देखी तो वह अनिष्ट की आशका से कॉप उठे। जब राजभवन मे आकर उनको यह ज्ञात हुआ कि यह सब आपत्तियाँ उन्ही के हित-साधन के कारण आई है। उनकी शुभ चिन्तक माता ने ही यह सब कुछ किया है। शोक और उसके साथ आत्म ग्लानि दोनो मर्मस्पर्शी भावो से भरत तथा शत्रुघ्न की दशा अति करुणापूर्ण हो गई। उनको दिखाई देने लगा कि वह इस काण्ड के हेतु है एतदर्थ वह अपराधी है। दोनो भाइयों को विषम वेदना का चित्रण कवि ने असह्य विकलता के द्वारा किया है। दोनों भाई अति व्याकुल होकर पृथ्वी पर इसी प्रकार तडफडा रहे थे जैसे विषम विष को पीकर मनुष्य तडफडाता है—

"मो अपराधी के हित कारन, ते रामहिं बनवास दियौ।

कौन काज यह राज हमारे इहिं पावक परि कौन जियौ ?
लोटत सूर धरनि दोउ बधू, मनो तपत-विष विषम पियौ ॥"

भरत और शत्रुघ्न की यह वेदना प्रलाप के रूप मे प्रकट होती है। स्थान की शून्यता प्रि: के अभाव का स्मरण कराती है। वह स्थान जहाँ प्रिय जन उठते बैठते, खाते-पीते तथा जीवन के अन्य दैनिक कार्य करते थे। उसके अभाव में सूने दिखलाई देते है और यह शून्यता ही भावों के उद्दीपन का काम करती है। इस शून्यता को देखकर भावुक कवि हृदय किस प्रकार मौन रहता। सूर ने इस सूनेपन को ही भरत के प्रलाप का मुख्य आधार बनाया है।

सूर ने इस शून्यता का वर्णन करने के साथ ही मानस की विश्लेषणात्मक वृत्ति को भी अवसर के उपयुक्त क्रियाशील बना दिया। भरत का मानस शून्यता को जन्म देने वाली पुत्राहितसाधक माता के सकीर्ण विचारो, अपनी साध तथा विधि-विधान का सहज ही विश्लेषण करने लगता है। मानो इस प्रकार "शून्यता क्यो"—इस जिज्ञासा का मानस स्वय ही समाधान करना चाहता। शून्यता की अनुभूति सहज जिज्ञासा से ही तो प्रारम्भ होती है। "राम जू कहाँ गए री माता"--कवि के मूल शब्दो मे ही इस अभिव्यक्ति का अनुशीलन किया जा सकता है—

"रामजू कहाँ गए री माता ?
सूनौ भवन सिहासन सूनौ, नाही दसरथ ताता।
धृग तब जन्म, जियन धृग तेरौ, कही कपट-मुख बाता।
सेवक राज, नाथ बन पठए, यह कब लिखी विधाता।
मुख अरविंद देखि हम जीवत, ज्यो चकोर ससि राता।
सूरदास श्री रामचद्र बिनु कहा, अजोध्या नाता॥"

दु:खी मानस की सहज कल्पना ने भरत को भी आशा दिलाई। उन्होने सोचा यदि महाराज राम से वन जाकर साग्रह निवेदन किया जाय कि बहुत हो लिया अब आप चलिए तो सभव है वह वापिस आ जावे। माता कौशल्या की दीनदशा की सूचना जब उनको दी जायगी तो उतका हृदय भी द्रवीभूत हो जायगा और वह वन से वापिस आने के लिए सहमत हो जावेगे। इस आशा को लेकर भरत वन को चल दिए। भगवान् राम के चरण हठपूर्वक पकड लिए और अयोध्या वापिस चलने के लिए अनुनय-विनय तथा अति आर्त्त निवेदन करने लगे—

"तुमहि विमुख रघुनाथ, कौन बिधि जीवन कहा बनै।
चरन-सरोज बिना अवलोके, को सुख धरनि गनै।
हठ करि रहे, चरन नहि छाँडे, नाथ तजौ निठुराई।
परम दु:खी कौशल्या जननी, चलौ सदन रघुराई॥"

दृढ प्रतिज्ञ राम को भरत की अनुनय-विनय तथा हठ अपने मार्ग से विचलित न कर सकी। वह पिता-वचन पालन के लिए तत्पर रहे और भरत को निराशाजनक उत्तर मिला—

"चौदह बरष तात की आज्ञा, मोपै मेटि न जाई।"

भरत की निराशा, विवशता, विकलता, वेदना तथा व्यथा अनिर्वचनीय बन कर रह गई। एक शब्द से ही कवि ने इन मर्मस्पर्शी अनुभूतियो का समावेश कर दिया। विवशता दोनो ओर थी, अतएव सक्षिप्त रूप मे ही इस प्रसग का समाप्त करना उचित समझा गया। साथ ही प्रभु की 'पाँवरी की प्राप्ति' आशिक सतोष का विषय भी थी—"सूर स्वामि की पाँवरि सिर धरि, भरत चले बिलखाई।"

महाराज दशरथ के मरण का समाचार पाकर रामसीता का शोक—भरत वन में भगवान् राम से मिले। भरत के "मुडित केस-सीस" को देखकर भगवान् राम को अनिष्ट की आशंका हुई और वह उदास हो गए। भरत से जब उनको यह ज्ञात हुआ कि महाराज नहीं रहे तो वह और सीता दारुण दु ख के कारण अति विकल हो गए। शोक की असह्य वेदना के कारण वह मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। करुण रस की मार्मिक वेदना अभावगत परिताप तथा पश्चाताप मे प्रकट होती है। रामसीता को भी यही सोचकर असह्य वेदना हो रही है कि अब पिता के दर्शन भी दुलर्भ हो गए—

"तात-मरन सुनि स्रवन कृपानिधि धरनि परे मुरझाइ।
मोह-मगन, लोचन जल-धारा, विपति न हृदय समाइ।
लोटति धरनि परी सुनि सीता, समुझति नहिं समुझाई।
दारुन दु ख दवारि ज्यो तृन-बन, नाहिन बुझति बुझाई।
दुरलभ भयौ दरस दशरथ कौ, सो अपराध हमारे।
सूरदास स्वामी करुणामय, नैन न जात उधारे॥"

परिताप के अन्तर्गत दृष्टि अन्तर्मुखी हो जाती है। शोकसतप्त प्राणी शोक का कारण अपने ही अपराधो को समझता तथा आत्मग्लानि मे तडप उठता है। महाराज दशरथ के मरण का कारण राम अपने ही अपराध को समझते है और इस प्रकार उनका परिताप आत्मग्लानि मे परिणित हो जाता है। राम के शोक के साथ सीता का शोक द्विगुणित पीडायुत बन जाता है। इसीलिए जहाँ राम "धरनि परे मुरझाई" तो सीता "लोटति धरनि परी सुनि सीता, समुझति नहिं समुझाइ।" यहाँ रामसीता के शोक मे कवि ने उस जनसामान्य अनुभूति का वर्णन किया है जो प्रत्येक दुःखी पुत्र के लिए स्वाभाविक है। मर्यादा अथवा आदर्श के अन्तर्गत इस शोकानुभूति को धैर्य-धारण के द्वारा अथवा शोक की सामान्य अभिव्यक्ति के द्वारा चलता नही कर दिया। इसी विशेषता के कारण यह अनुभूति विशेषरूप से मार्मिक बन गई है।

सीता-हरण पर रामविलाप—राक्षसो के विनाश के लिए भगवान् राम ने जो योजना बनाई उसमें सीता प्रमुख पात्री बनाई गई। उनके हरण तथा उनकी मुक्ति के प्रयत्नो मे हुआ राक्षस-सहार तथा जनजीवन की राक्षसी यातनाओ से मुक्ति। इस योजना में कार्य करने के लिए एक छाया सीता की रचना की गई।

"जनक-तनया धरी अगिनि में, छाया रूप बनाइ ।
यह न कोऊ भेद जानै, बिना श्री रघुराई ।।"

इस रहस्य को जानते हुए भी सीताहरण पर भगवान् राम ने किसी स्थल पर रस-निष्पति मे कोई बाधा उपस्थिति नही की ।

सीता की खोज दो रूपो मे हुई—

(१) सीता के सबध मे आशका तथा कोई पता न लगने तक निराशा ।

(२) सीता का पता लग जाने पर खोज के लिए प्रयत्न तथा मिलने की आशा ।

प्रस्तुत विवेचन के अन्तर्गत प्रथमरूप ही अपेक्षित है। राम की असह्य विरह-वेदना के विश्लेषण के अन्तर्गत[1] वाणी और नेत्रों की दशा का अति सूक्ष्म निरीक्षण यहाँ विशेषरूप से द्रष्टव्य है —

वाणी—"कहि प्रिय नाम पुकारत ।"
"हा सीता, सीता कहि ।"

नेत्र—"चकित भए दिसि-विदिसि निहारत ।"
"निरखत सून भवन ।"
"जल भरि-भरि ढारत ।"

परिस्थितिजनित आशका के कारण चित्त की विकलता, व्यग्रता, अस्थिरता तथा तीव्र क्रियाशीलता का प्रादुर्भाव होता है जिसकी अभिव्यक्ति उपर्युक्त रूप मे वाणी तथा नेत्रो के द्वारा होती है । इस दशा की सहज अनुगामिनी होती है प्रलाप तथा उन्माद की दशाएँ, जिनके अन्तर्गत विरह-वेदना का समुचित विकास होता है । राम पशुपक्षी तथा लता-द्रुमो से सीता का पता पूछते फिरते है । यह कवि की कोरी ऊहा नही प्रत्युत मनोविज्ञान की वह ठोस आधार भूमि है जिस पर मानव-व्यवहार का अध्ययन किया जाता है- -अपने रंग मे चराचर जगत को रगा देखना ।

"फिरत प्रभु पूछत बन-द्रुम-बेली ।
अहो बधु, काहूँ अवलोकी, इहि मग वधू अकेली ?
अहो बिहग, पन्नग-नृप, या कदर के राइ ।
अबकै मेरी विपति मिटावौ, जानकि देहु बताइ ।"

इस प्रसग मे कला और कल्पना जन्य रुपकातिशयोक्ति के रूप मे भी तथा सीताहरण के कारण का उल्लेख हुआ है । सूर की कल्पना यहाँ द्रष्टव्य है---

"सुनौ अनुज इहि बन इतनिनमिलि जानकी प्रियाहरी ।
कछु इक अगनि की सहिदानी, मेरी दृष्टि परी ।

१. "रघुपति कहि प्रिय नाम पुकारत ।
हाथ धनुष लीन्हे, कटि माथा, चकित भए दिसि-विदसि निहारत ।
निरखत सून भवन जड ह्वै रहे, खिन लोटत घर बधु न सँभारत ।
हा सीता, सीता कहि सियपति, उमड़ि नयन जल भरि-भरि डारत ।।"

कटि केहरि, कोकिल कल बानी, ससि मुख-प्रभा धरी ।
मृग मूसी नैननि की सोभा, जाति न गुप्त करी ।
चंपक-बरन, चरन-कर कमलनि, दाडिम दसन लरी ।
गति मराल अरु बिब अधर-छबि, अति अनूप कबरी ।
अति करुना रघुनाथ गुसाईं, जुगज्यौ जाति धरी ।
सूरदास प्रभु प्रिया-प्रेम-वस, निज महिमा बिसरी ।"

सीता की करुणापूर्ण दशा—सीता की करुणापूर्ण दशा का वर्णन सपाती और हनुमान के द्वारा कराया गया है । लका मे सीता रावण के बन्धन मे है और इस कारण अति दु खी है । सपाती "गीधहि दृष्टि अपार" के फलस्वरूप समुद्र के इस पार से ही सीता जी की करुणापूर्ण दशा को देख लेता है और हनुमान आदि बानरो के सम्मुख उस दशा का निम्नलिखित शब्दो मे वर्णन करता है । सीता जी की करुणापूर्ण दशा प्रत्येक सहृदय को द्रवीभूत कर देगी, विशेष कर जब वह देखेगा कि सीता के रूप मे जन-जीवन अत्याचारो के नीचे कराह रहा है—

"बिछुरी मनौ सग तैं हिरनी ।
चितवत रहत चकित चारौ दिसि, उपजी विरह तन जरनी ।
तरुवर-मूल अकेली ठाढी, दुखित राम की घरनी ।
वसन कुचील, चिहुर लिपटाने, बिपति जाति नहि वरनी ।
लेति उसास नयन जल भरि-भरि, धुकि सो परै धरि धरनी ।
सूर सोच जिय पोच निसाचर, राम नाम की सरनी ।।"

लका मे पहुँचकर हनुमान भी सीता के इसी करुणापूर्ण रूप के दर्शन करते है—

"पुनि आयौ सीता जहँ बैठी, बन अशोक के माँहि ।
चारो ओर निसिचरी घेरे, नर जिहि देखि डराहि ।
....
वह निसाचरी मध्य जानकी, मलिन बसन तन माँहि ।
बारबार बिसूरि सूर दुख, जपत नाम रघुनाहू ।
ऐसी भाँति जानकी देखी, चद गह्यौ ज्यो राहू ।।"

महारानी सीता की ऐसी दीन मलीन तथा करुणापूर्ण दशा को देखकर कौन ऐसा होगा जो उनके साथ पुकार-पुकार कर हनुमान् से यह न कहे —

"सूरदास स्वामी सौ कहियौ अब बिरमाहि नही ।"

सीता का परिताप—त्रिजटा प्रभात की बेला मे देखा हुआ अपना स्वप्न सीता जी को सुनाती है कि उसने देखा—

"कुसुम-विमान बैठी वैदेही, देखी राघव पास ।
स्वेत छत्र रघुनाथ सीस पर ।

भयौ पलायमान दानवकुल व्याकुल सायक-त्रास ।।"

इस स्वप्न की सुखद बातो को सुनकर "वैदेही अति दुख से उसास लेने लगीं ।"

जिस स्वप्न के द्वारा रामविजय, रामसीता-मिलन तथा राक्षस-विनाश का सुखद समाचार सुनाया जाय, उसको सुनकर सीता के अति दुःखी होने की क्या बात हो सकती है ? इस जिज्ञासा मे मनोविज्ञान के पडित सूर के सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विवेचन का अध्ययन करना होगा ।

इस प्रसग पर पुनः दृष्टिपात कर लेना आवश्यक होगा—

"त्रिजटा वचन सुनत बैदेही अति दुख लेति उसास ।

हा हा रामचन्द्र, हा लछिमन, हा कौशल्या सास ।

त्रिभुवननाथ नाह जो पावै, सहै सो क्यों बनबास ?"

सीता के मानस को निम्नलिखित भाव आलोडित कर रहे थे—

१—त्रिजटा के स्वप्न को सुनकर आंतरिक अपार हर्ष ।

२—वर्त्तमान अपार कष्ट की अनुभूति, वनवास, राक्षस के यहाँ बंधन, राक्षस-त्रास ।

३— सुखद स्वप्न साकार होने की उत्कट लालसा तथा शीघ्र साकार क्यो नही हो रहा यह सोचकर असह्य मानसिक क्लेश ।

कहना न होगा कि अन्तिम भाव ही प्रमुख हो गया है और उसका कारण यह है कि विलंब के साथ सीता का परिताप कष्टकर रूप में प्रकट होने लगा है । उनके मन मे यही विचार बार-बार आता है और मन को तिलमिला जाता है कि "कौन पाप मैं पापिन कीन्हौ, प्रगट्यौ जो इहि बार" इस विचार के साथ निम्नलिखित दो अपराध उनको स्मरण हो आते है और इस प्रकार पूरा प्रसग हर्ष के स्थान मे वेदना तथा दुख को प्रकट करने लगता है । सूर की कला यहाँ विशेष रूप से अवलोकनीय है—

१—मृगहित दियौ हथियार ।

२—नाघ्यौ धनुष-प्रकार ।

लक्ष्मण शक्ति—लक्ष्मण शक्ति के अवसर पर राम की शारीरिक तथा मानसिक दशाओ का कवि ने अति समीप से अध्ययन किया है । कवि के सूक्ष्म निरीक्षण में कवि की श्रेष्ठ कला का उद्घाटन हुआ है ।

मानसिक दशा—राम के मन में तत्कालीन परिस्थितियो का ध्यान सबसे पहले आता है । वह देखते हैं कि आपत्तियो का एक तांता बँध गया है, दशरथ-मरण हुआ, सीता-हरण हुआ; और तो और यह शूरवीर भाई भी साथ छोड़कर चल दिया । युद्ध में बैरियों की भीड लग रही है । अब ऐसे समय मे कौन साथ देगा और कौन धैर्य बँधावेगा । दूसरी ओर वचन-बद्धता का विचार आता है और वह सोचने लगते

है कि सब कुछ विनाश सही पर शरणागत विभीषण को लका का राज्य किस प्रकार दिया जा सकेगा। अब विभीषण को दिया यह वचन कैसे पूरा होगा ?

राम की वेदना को निम्नलिखित तीन स्थितियों मे देखा जा सकता है—

१—लक्ष्मण के मरण से जो क्षति होगी उसकी पूर्ति नही हो सकती। किस को साथ लेकर युद्ध करूँ।

२—शत्रु का मनचीता हो गया। अब तो पराजय है ही। साथ मे स्त्री भी गई।

३—विभीषण को लंका का राज्य देने का वचन पूरा न हो सकेगा।

राम की वेदना सामाजिक के लिए अति मर्मस्पर्शी बन गई जब वह "बार-बार सिर लै लछिमन कौ, निरखि गोद पर राखै" तथा अति विकल हो कहने लगे—"बोलत नही मौन कहा साध्यौ बिपति-बँटावन वीर।"

शारीरिक दशा—शोक के कारण राम की मानसिक कष्टकर वेदना के साथ उनका शरीर अति शिथिल तथा बेचैन हो गया है और उनके नेत्रो से आँसू बह रहे है।

सूर की कल्पना—दु.ख समुद्र के रूपक मे विशेष रूप से दृष्टव्य है। रिपु-सैना-समूह-रूपी जल उमड आया है और केवट बीच मझधार मे ही थक गया। इस विपत्ति से कोई कैसे पार पावे।

" ...भूतल बंधु पर्यौ।
करुना करत सूर कोसलपति नैननि नीर भरयौ।।"

तथा

"निरखि मुख राधव घरत न धीर।
गए अति अरुन बिमाल कमल दल-लोचन मोचत नीर।
बारह बरस नीद है साधी तातै बिकल सरीर।
बोलत नही मौन कहा साध्यौ, बिपति-बँटावन वीर।
दशरथ-मरन, हरन-सीता कौ, रन बैरिन की भीर।
दूजौ सूर सुमित्रा-सुत बिनु, कौन धरावै धीर।।"—९/१४५/५८९

तथा

"अब हौ कौन कौ मुख हेरौ ?
रिपु-सैन-समूह-जल उमडयौ, काहि सग लै फेरौ ?
दुख-समुद्र जिहिं वार-पार नहि, तामै नाव चलाई।
केवट थक्यौ, रही अधबीचहि, कौन आपदा आई ?
....
बीचहि भई और की औरै, भयौ शत्रु कौ भायौ।
... .
ह्वै है कहा बिभीषन की गति, यहै सोच जिय गुनि कै।
बार बार सिर लै लछिमन कौ, निरखि गोद पर राखै।।"—९/१४६/५९०

करुण मनोभाव—हनुमान् के द्वारा लक्ष्मण-शक्ति का दुःखद समाचार भरत तथा राजपरिवार को मिलता है और सब लोग विलाप करने लगते हैं। उनकी विकलता करुणरस की अनुभूति का सृजन करती है किन्तु अविलम्ब सुमित्रा जो अभी "त्राहि-त्राहि कहि, पुत्र-पुत्र कहि" रो रही थी, साहस और धैर्य का परिचय देते हुए उत्साह का अनुभव करने लगती है और इस प्रकार करुणरस की स्थिति बदल कर वीररस के मनोभावो का उदय हो जाता है। भावसंश्लिष्टि की दृष्टि से सूर का यह पद विशेष रूप से अवलोकनीय है—

"वन मैं बसत, निसाचर छलकरि, हरी सिया मम मात।
ता कारन लछिमन सर लाग्यौ, भए राम बिनु भ्रात।
यह सुनि कौसिल्या सिर ढोर्यौ, सबनि पुहुमि तन जोयौ।
त्राहि-त्राहि कहि, पुत्र-पुत्र कहि, मातु सुमित्रा रोयौ।
धन्य सुपुत्र पिता-पन राख्यौ, धनि सुबुधू कुललाज।
सेवक धन्य अत अवसर जो आवै प्रभु के काज।
....
कौसिल्या सौ कहति सुमित्रा, जनि स्वामिनि दुख पावै।
लछिमन जनि हौं भई सपूती, राम-काज जो आवै॥"

करुण का अप्रिय प्रसंग—हेगल ने करुण के दो रूपो की कल्पना की है—अप्रिय (या असत्य), प्रिय (या सत्य)। भारतीय साहित्य मे इस प्रकार के पात्रो की कभी कल्पना नही हुई जो अप्रिय करुण का सृजन करते। कतिपय ऐसे प्रसंग अवश्य प्रकट हुए है जिनमे करुण की अनुभूति वेदना से आगे बढ़कर घृणा में परिणित होती प्रतीत होने लगती है। ऐसा ही एक प्रसग रामकथा के अन्तर्गत निम्नलिखित रूप मे प्रकट होता है—

रावण-वध के पश्चात् सीता को लाने के लिए लक्ष्मण लकापुरी मे गए। वहाँ उन्होने सीता की अति करुणापूर्ण दशा देखी—

"लछिमन सीता देखी जाइ।
अति कृस, दीन, छीन-तन प्रभू बिनु, नैननि नीर बहाइ।"

करुणा की प्रतिमूर्ति, दीन, मलीन, क्षीण तथा अति दुःखी सजलनयन सीता जब मर्यादापुरुषोतम राम के सम्मुख उपस्थित होती है तो श्रीराम उनकी ओर से मुख मोड लेते है। यह कैसी विडम्बना है ? यह कितना मर्मस्पर्शी तथ्य है ? इसका अनुमान प्रत्येक सहृदय सहज ही लगा सकता है—

"पुहुप विमान बैठी बैदेही, त्रिजटी सब पहिराइ।
देखत दरस राम मुख मोर्यौ, सिया परी मुरझाइ॥"

राम के इस कष्टकर व्यवहार के फलस्वरूप सीता का मूर्च्छित होकर गिर पड़ना स्वाभाविक ही है। यही क्यो उनके साथ सामाजिक का हृदय भी क्षुब्ध हो जाता

है। बड़े कष्ट के साथ ही वह इस अनुभूति को सहन कर पाता है। इसीलिए इस प्रसग को कवि ने संकेत-मात्र रूप देकर परम्परा का अनुपालन किया है जो लोक-मगल एवं लोक-मर्यादा की प्रतिष्ठा के लिए आवश्यक समझा जाता रहा है।

विपक्षी पात्रों की शोकानुभूति—विपक्षी पात्रो की शोकानुभूति के साथ सामाजिक का तादात्म्य नही हो पाता। इस तथ्य को दृष्टिगत रखकर ही कवियो की दृष्टि इन प्रसंगों के प्रति उदासीन रही है। विपक्ष विनाश पर कवि सुख की साँस लेता दिखलाई देता है जो पक्ष की विजय तथा विपक्ष की हार के अवसर पर स्वाभाविक है। इस सुख और संतोष के साथ समाजिक की अनुभूति का तादात्म्य हो जाना है। इसका रूप विपक्षीपात्रों की शोकानुभूति मे उन तथ्यो के अन्तर्गत प्रकट हुआ है जिनमे विपक्षी पात्र प्रियजन के लिए शोक करने के स्थान मे उसके दोषो का वर्णन करते है।

सूर ने एक ही पद मे रावण-वध पर मंदोदरी तथा विभीषण के विलाप का उपर्युक्त रूप में वर्णन किया है—

"करुना करति मदोदरि रानी !
चौदह सहस सुन्दरी उमहीं, उठै न कत महा अभिमानी।
बार-बार बरज्यौ, नाहि मान्यौ, जनक-सुता तै कत घर आनी।
ये जगदीस ईस कमलापति, सीता तिय करि तै कत जानी ?
लीन्हे गोद विभीषन रोवत, कुल कलक ऐसी मति ठानी।
चोरी करी, राजहूँ खोयौ, अल्प मृत्यु तब आइ मुलानी।
कुंभकरन समुझाई रहे पचि, है सीता, मिलि साँरगपानी।
सूर सबनि कौ कह्यो न मान्यौ, त्यौ खोई अपनी रजधानी॥"

बन्धन—बन्धन का एक प्रसग "नाग-पाश बन्धन" के अन्तर्गत आया है किन्तु इस बन्धन में करुण की अनुभूति नही हो सकी है। पक्ष के प्रमुख पात्र का बन्धन है। इसलिए कवि की दृष्टि प्रसग का सकेतमात्र कर देने तक रही है। उसके अपकर्ष को दिखाना उसके लिए सभव न था।

"हँसि-हँसि नाग-फाँस सर साँधत, बधु समेत बँधायौ।"

संभव था इस बधन-मुक्ति के लिए चिन्ता, व्यग्रता अथवा क्लेश उत्पन्न होता किन्तु कवि ने ऐसा अवसर भी नही आने दिया। बीच मे ही आकर नारद युक्ति बता देते है और पूरा प्रसग प्रभु-लीला के रूप मे समाप्त हो जाता है।

"नारद स्वामी कह्यौ निकट ह्वै, गरुडासन काहै बिसरायौ ?
भयौ तोष दशरथ के सुतकौ, सुनि नारद कौ ज्ञान लखायौ।"

पराभव—पराभव का एक सकेतमात्र प्रसग विषय मे अगद-रावण-सवाद के अन्तर्गत प्रकट हुआ है। अंगद ने एक प्रस्ताव रखा—

"कोपि अंगद कह्यौ धरौं धर चरन मैं, ताहि, जो सकै कोऊ उठाई।
तौ बिना जुद्ध कियै जाहि रघुबीर फिरि॥"

इस प्रस्ताव को रावण तथा रावण के दरबार ने सहर्ष स्वीकार किया और अगद के पैर को उठाने के लिए दरबार के लब्ध प्रतिष्ठ योद्धा "सुनतइ उठे रिसाई" किन्तु "रहे पचिहारि, नहि टारि कोऊ सक्यो।" यह देखकर रावण को बड़ा क्षोभ हुआ और वह स्वय अगद का पैर उठाने के लिए चल दिया। इस अवसर पर अगद ने अपने वाक्चातुर्य्य से रावण-पराभव की निम्नलिखित रूप मे योजना की—

"कह्यौ अगद, कहा मम चरन कौ गहत,चरन रघुबीर गहि क्यौ न जाई।

सुनत यह सकुचि कियौ गवन निज भवन कौ······।"

सक्षेपतः कहा जा सकता है कि महाकवि सूर ने रामकथा मे करुणरस का जो चित्रण किया है उसमे निम्नमिखित विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती है—

विषय एवं शैलीगत—१. कथा सक्षिप्त कर दी गई है। इस कारण कही-कही कथा का पूर्वापर सम्बन्ध भी लुप्त होता-सा प्रतीत होता है।

२. करुणरस की अभिव्यक्ति मुख्यत. "इष्टनाश एव प्रियजनवियोग" के अन्तर्गत ही प्रगट हुई है। करुणरस के अन्य आलबनो के प्रति या तो उदासीनता दिखलाई गई है या उनको छोड दिया गया है।

३. विपक्षी पात्रों की शोकानुभूति के प्रति कवि की स्पष्ट उदासीनता दिखलाई देती है। वह समझता है कि विपक्षी पात्रो की शोकानुभूति के साथ सामाजिक का तादात्म्य नही हो सकता।

४. पदशैली मे ही विषय का विवेचन किया गया है। पदो मे राग मारू की सबसे अधिक सख्या है।

अभिव्यक्तिगत—१. कवि की प्रवृत्ति भावो के मनोवैज्ञानिक अध्ययन की ओर रही है।

२ शोकानुभूति का आधार कवि ने विवश एव असहाय परिस्थितयो को बनाया है।

३· स्मरणगत रूप मे प्रियजनो के कष्ट की कल्पना तथा अनिष्ट की आशका ने अनुभूति को गति प्रदान की है।

४. विरह की वेदना को चराचर जगत मे व्याप्त दिखलाया गया है।

५. आशा-निराशा के उत्थान-पतन के अन्तर्गत अनुभूति को स्वाभाविकता प्रदान की गई है।

६. प्रियजन के अभाव मे स्थान तथा वस्तु की शून्यता की ओर कवि का ध्यान गया है। यह शून्यता शोकानुभूति मे उद्दीपन का सृजन करती है।

७ शोकानुभूति के प्रवाह मे आत्मग्लानि तथा परिताप प्रस्फुटित हुए है।

८. मनोभावो तथा बाह्याभिव्यजको का सुन्दर समन्वय हुआ है।

९. प्रकृति के साथ आत्मीयता दिखाई गई है तथा चेतन-रूप मे उस की कल्पना की गई है।

१०. मनोभावों की संश्लिष्ट योजना कर मानव के सहज स्वभाव का उद्‌घाटन किया गया है ।

११. कर्त्तव्यपरायणता तथा आदर्शों की प्रतिष्ठा पर कवि की दृष्टि रही है ।

: ५ :

तुलसी का मानस तथा गीतावली

कवि का दृष्टिकोण—तुलसीदास 'स्वान्तः सुखाय' रघुनाथगाथा लिखते हैं। उनके राम परमब्रह्म है किन्तु वह "देह धरि" नर लीला भी करते है तथा "ग्यानधाम श्रीपति असुरारी" होकर भी "अग्य इव" सीता खोज मे परम व्याकुल होते है। इस प्रकार तुलसी के मानस मे "हरि नर" एव "नर हरि "का यह समाधान ही कवि का प्रमुख दृष्टिकोण है। मानस के पात्रो को परमब्रह्म के नररूप धारण करने मे शंका होती है तथा उनकी नर लीला मे उनको परमब्रह्म का आभास प्राप्त नही हो पाता अतएव नरलीला के इन प्रसगो पर कवि "परम ब्रह्मत्व" की छाप लगाता चलता है—

'मनुज चरित्र कर अज अविनासी।"

नर परमब्रह्मस्वरूप की प्रतिष्ठा के लिए कवि नरलीला के स्वाभाविक प्रसगो के साथ परमब्रह्मस्वरूप की विनय, प्रार्थना, गुणकथन आदि का आयोजन कर देता है जिससे नरलीला का रूप पृथक् तथा स्वतन्त्र होते हुए भी भक्तो को परमब्रह्मस्वरूप के दर्शन कराने मे समर्थ रहता है। सामाजिक की वासनागत अनुभूति लौकिक नर-लीला के समय अश्रु मोचन का कारण बनती है तो ब्रह्मस्वरूप की स्तुति के समय उस को गद्-गद् होने का अवसर देती है।

नरलीला तथा परमब्रह्मस्वरूप का क्रमिक विकास—मानस-प्रसगो के अन्तर्गत नरलीला में परमब्रह्मस्वरूप का क्रमिक विकास सहज ही सभव हो गया है। नरलीला से प्रारम्भ हो कर ब्रह्मस्वरूप के पर्यवसान मे मानस का कथानक अग्रसरित होता है। कौशल्या की प्रार्थना, "तजहु तात यह रूपा" नरलीला की भूमिका है जिसके अन्तर्गत परमब्रह्म का अहं अपने ब्रह्मत्व के प्रकाशन के लिए मानो उतावला हो उठा था जिसको 'माँ' के दुलार तथा 'माँ' की ममता ने सिर पर हाथ फेर कर शान्त कर दिया। विवाह के उल्लास तथा आनन्दोत्सव वनवास प्रसग तक पहुँच कर दुखान्त बन जाते है। राम की सहज शालीनता के समक्ष जनता व्यथित हो उठती है। करुणा स्वयं बिलख उठती है। दशरथ मरण मे इन प्रसंगो का चरम उत्कर्ष दिखलाई देता है। इस से आगे सीताहरण के अवसर पर राम की कातरता बरबस प्रकट हो जाती है। ब्रह्मत्व का

कवच झंकृत हो उठता है। उसकी कड़ियाँ बिखर जाती है। इसी प्रकार लक्ष्मण-शक्ति के अवसर पर भी नरलीला का स्पष्ट रूप प्रकट हो जाता है। इन घटनाओ के साथ ब्रह्मस्वरूप की धारा क्षीणरूप में बहती चलती है जिसका कार्य नरलीला के असभव स्थलों को संभव करके नररुपगत कथानक की लुप्त कडियो का सृजन करना है।

उत्तरकाण्ड में ब्रह्मस्वरूप की यह धारा प्रबल रूप मे नर लीला के ऊपर हावी हो जाती है तथा उसके गर्भ मे नर लीला अपना अस्तित्व विलीन कर देती है। तुलसी इसी का आयोजन करना चाहते थे। यही उनको अभीष्ट था।

मानस के लौकिक प्रसंग—मानस मे नरलीला के पक्षगत प्रसग अपने मूलरूप मे लौकिक प्रसगो की ही योजना करते है। इनके साथ विपक्षगत प्रसग विशेष रूप से लौकिक प्रसंगो के अन्तर्गत आते है। इन प्रसगो मे कवि को अतिमानवीय रूप देने की आवश्यकता नही हुई। राक्षसो के राक्षसी कर्मों मे भी मानवीय करुणभावनाओ की सहज अनुभूति इन स्थलो को जितना मार्मिक बना देती है उतनी ही कवि की विपक्षी भावनाओं के प्रति उदासीनता इन प्रसगो को अपर्याप्त तथा अपूर्ण छोड देती है। प्राय. प्रसंग एक-दो चौपाइयो मे चलते कर दिए गए है।

मानस में करुण प्रसंगों की योजना—कवि ने कथास्वतु की साधारण घटनाओ के साथ विशेष प्रेरक शक्तियों की योजना की है। रामवनवास इसी प्रकार की दैवी योजना का फल है। इस प्रकार की योजना द्वारा सामाजिक भाग्यवाद अथवा प्रभु इच्छा में अपनी शोकानुभूति का पर्यवसान कर सतोष की साँस लेता है। आदर्श एवं शुभ कर्मों की सुखान्तता की इस प्रकार रक्षा हो जाती है। मूल धारा की इस योजना के साथ "प्रतापभानु" नरेश का एक ऐसा भी आख्यान है जिसके अन्तर्गत नरेश अपनी सम्पूर्ण शुभ लालसाओ के क्रोड में प्रवचना का शिकार बन जाता है। तुलसीदास कदाचित् इसका समाधान नही कर सके। यह आख्यान सामाजिक की आदर्शोन्मुख आस्था को हिलाने के लिए पूर्णतया समर्थ होता यदि इसको कथावस्तु की मूलधारा मे स्थान दिया जाता। आश्रित एव पोषक गाथा के रूप मे प्रकट होने के कारण उसकी दारुण दुखान्त अनुभूति प्रभावहीन हो गई है, यह स्पष्ट है।

सन्देह तथा मोह के अन्तर्गत सती कथा तथा नारद मोह प्रसंग आते है। सती तथा नारद स्वकर्मसंभूत परिरिस्थितियो के कटु फल भोगते है। सती का परिताप के मानव के कर्म-स्वतन्त्र मे बन्धन तथा विवशता की विषादयुत गाथा है जिसके प्रायश्चित्त के लिए सती को आत्म-बलिदान करना पडता है। नारदमोह की योजना भक्त के अहकारशमन का उदाहरण है। कामजित नारद को काममोह का कटु पाठ पढना पडता है तथा उनकी कामजय पराजय बन कर रह जाती है। नारद हरिमाया रचित सम्पूर्ण दृष्टान्त में मानव कठपुतली की पगुता का उद्घाटन करते हुए मानव की असहायावस्था की प्रतिष्ठा करते है।

मानवीय चरित्रों की योजना के अन्तर्गत दैवी घटनाओ द्वारा अपकार करने

के लिए विवश एवं असहाय पात्रों की ग्लानि का निरुपण किया गया ह। कैकेयी प्रमुख रूप से इस ग्लानि में जलती हुई दिखलाई देती हैं।

युद्ध के हताहत पात्रों के प्रति शोकानुभूति का प्रदर्शन किया गया है। विपक्ष के नाश का मुख्य कारण राम विरोध दिखलाया गया है। इस तथ्य को विपक्ष के पात्र जानते है। इसीलिए वह राम-विरोध करने का आग्रह एवं उपदेश करते हुए दिखलाई देते है। विभीषण इसी प्रसंग में 'घर के भेदी" बन जाते है।

मानसगत करुणरस के प्रसंगों की शैली—तुलसीदास जी ने प्रभुगुणगान को ही अपने जीवन का लक्ष्य बनाया था। उनका मत था—

"कीन्हे प्राकृत जन गुन गाना,
सिर धुनि गिरा लाग पछिताना।"

अतएव तत्कालीन सभी प्रचलित शैलियो मे अपनी कुशलता का परिचय देते हुए भी उन्होने अपने लक्ष्य के परिवर्तन का विचार नही किया। इसीलिए कथानक का यथास्थान पिष्टपेषण भी दिखलाई देता है। शैली के साथ यह पिष्टपेषण भी मौलिक प्रतीत होता है इस प्रकार राम कथागत करुणरस के प्रसग उनकी सभी शैलियो मे प्रकट हुए है।

दोहा-चौपाई शैली—दोहा-चौपाई की शैली मानस की प्रांजल शैली है जिसके अन्तर्गत प्रसादगुण की विशदता मे स्वभाविकता को प्रमुख स्थान मिलता है। करुण रस के स्थलो पर कवि का शब्दविन्यास अति सरल और स्वाभाविक बन पडता है जिस के फलस्वरूप भाव तथा शैली एकाकार हो जाते है।

मानस के अन्तर्गत आये हुए करुणरस के सभी प्रसग इस दोहा-चौपाई शैली मे प्रकट हुए है। करुणरस की अभिव्यक्ति के लिए यह शैली उपयुक्त होगी, इस तथ्य को भलि-भाँति जानते हुए ही तुलसीदास जी ने करुणरस के प्रसगो के लिए इस शैली को अपनाया। जहाँ शोकानुभूति के साथ ब्रह्मस्वरूप की आस्था का पात्रगत द्वन्द्व प्रकट होता है वहाँ पर दोहा, चौपाई शैली के साथ "छन्द" का प्रयोग हुआ है।

इस प्रकार का एक स्थल रावणमृत्यु पर मन्दोदरी विलाप के समय उपस्थित हुआ है। मदोदरी का विलाप दोहा-चौपाई शैली मे समाप्त हो जाता है। ब्रह्मस्वरूप राम को "मनुज करि जान्यो" के फलस्वरूप इस गीत को प्राप्त होने का सकेत करते हुए ऐसे "परद्रोहरत पापोधमय तनु" को निजधाम देने की उदारता के प्रति कृतज्ञ मंदोदरी के नमस्कार का वर्णन छद के अन्तर्गत किया गया है।

करुणरस के प्रसंग में तुलसी की काव्य-कुशलता—तुलसी कवि और संत दोनो रूपो मे अवतरित हुए है। उनका मानस भावो से ओतप्रोत है तो उनका मस्तिष्क कला के अगप्रत्यंगो का सूक्ष्म द्रष्टा। इसलिए तुलसी के काव्य से भक्तो की पिपासा जितनी शान्त होती है उससे कही अधिक सतुष्ट होती है साहित्यमनीषियो की कला कौतूहलपूर्ण शास्त्रीय जिज्ञासा। करुणरम के प्रसगो मे तुलसी की कला निम्नलिखित

रूप में अवलोकनीय है ।

उक्तिवैचित्र्य—उक्तिवैचित्र्य के सम्बन्ध मे डाक्टर माताप्रसाद गुप्त ने लिखा है, "अपने किसी विश्वास की दृढता अथवा अपनी कथा के किसी पात्र अथवा किसी विषय के प्रति तीव्र सहानुभूति अथवा तीव्र विद्वेष के कारण उमग में आकर कवि एक युक्ति पर दूसरी युक्ति, एक उक्ति पर दूसरी उक्ति अथवा एक कल्पना चित्र पर दूसरी कल्पना चित्र समान और बहुत सी बातो मे पूर्व कथित के अनुरूप प्रस्तुत करके अपनी व्यजना को एक अद्भुत अश तक प्रभावशाली बना देता है ।" करुणरस के प्रसगों मे तुलसीदास जी की यह प्रवृत्ति प्राय पाई जाती है किंतु करुण-रस के इन प्रसगो के सम्बन्धो मे प्रकट कवि की इस प्रवृत्ति को "उमग मे आकर · प्रस्तुत करना" नही कहा जा सकता है । वस्तुत कवि की यह प्रवृत्ति मनोवैज्ञानिक तथ्य पर आधारित है । शोकानुभूति, आत्मग्लानि एव आत्मभर्त्सना के अवसरो पर व्यथित प्राणी एक युक्ति अथवा एक उक्ति अथवा एक कल्पना-चित्र प्रस्तुत करके सतुष्ट नही हो पाता । वह स्वभावतया ही एक के बाद दूसरी बात कहने के लिए विवश हो जाता है । मनोवेगो की यह स्वाभाविक दशा कही जा सकती है । तुलसीदास जी ने मनोवेगो की इस दशा का अध्ययन किया था । भरत के घोर क्षोभ तथा आत्मग्लानि के अन्तर्गत उक्तिवैचित्र्य के सुन्दर उदाहरण प्रकट हुए है । अन्य प्रसगो मे रामविरह, मदोदरी-विलाप, पुरजनो द्वारा कैकेयी की निन्दा तथा सुमत्र परिताप के अन्तर्गत भी इस प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं ।

रस-व्यंजना—यह कवि का मुख्य उद्देश्य है । वर्णन-विशदता की ओर कवि प्रायः उदासीन रहा है । इसीलिए उसका भाव-चित्रण परम उत्कृष्ट बन पडा है । सूक्ष्म विश्लेषण तथा मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त भावचित्रणगत कल्पना के आधार है तथा सात्विक एव सचारीभाव अपने बाहुल्य मे अनुभूति की गभीरता को प्रकट करते है ।

अलंकारों का प्रयोग—अलकारो का प्रयोग स्वाभाविक रूप मे यथास्थान हुआ है । करुणरस के प्रसगो मे उत्प्रेक्षा, उत्प्रेक्षा-पुष्टरूपक तथा सागरूपक विशेषरूप से प्रयुक्त हुए है । इन अलकारो के प्रयोग के साथ तुलसी की अलौकिक कल्पना के भी दर्शन होते है । तुलसी को रूपको का तो सम्राट कहा जा सकता है । लम्बे-लम्बे रूपको का क्रम ठीक बनाए रखने मे तुलसी सिद्धहस्त है । करुणरस के रूपको मे "अयोध्या मसान', "कैकेयी किरातिन" आदि अति सुन्दर रूपक है जिनमे कवि की कल्पना के साथ भावो की गभीरता का पुट भी लगा हुआ है ।[1]

१. इस प्रसग मे यहाँ करुणरस का एक रूपक देख लेना असगत न होगा
"आश्रम सागर सातरस पूरन पावन पाथु ।
सेन मनहुँ करुना सरित लिए जाहि रघुनाथ ।।"—२७५ अयो०
"बोरति ग्यान विराग करारे । वचन ससोक मिलत नद नारे ।।
सोच उसास समीर तरगा । धीरज तट तरुवर कर भगा ।।
विषम विषाद तुरावति धारा । भयभ्रम भँवर अवर्त अपारा ।।
....
आश्रम उदधि मिली जब जाई । मनहुँ उठेउ अबुधि अकुलाई ।।
सोक विकल दोउ राज समाजा । रहा न ग्यानु न धीरजु लाजा ।।
भूप रूप गुन सील सराही । रोवहि सोक सिधु अवगाही ।।"

कथावस्तु में परिवर्तन—कवि ने यथास्थान आधार-ग्रन्थों से इतर अपनी कल्पना के आधार पर करुणरस के प्रसंगों मे गम्भीरता लाने की दृष्टि से कथावस्तु में परिवर्तन भी किए हैं। "त्रिजटा-सीता-संवाद" की योजना ऐसा ही एक प्रसग है जिसके अन्तर्गत कवि ने सीता की निराशाजनित घोर व्यथा का सुन्दर चित्रण किया है। इस विषय का पृथक् से विवेचन किया जायेगा।

चरित्र-चित्रण—चरित्र-चित्रण के अन्तर्गत कवि ने आधार ग्रन्थों में आए हुए पात्रों के क्रोध एवं अमर्ष के प्रसंगों को निकाल कर करुणरस की विवश एव असहाय अनुभूति की योजना की है जिसके फलस्वरूप शोकानुभूति की परमवेदना में परिस्थिति के प्रति सामाजिक की घृणा प्रकट नही हो पाती तथा शोकानुभूति की शुद्ध अनुभूति में भी कोई व्यवधान नही पडता।

मानस में करुण रस के प्रसंग—मानस में करुण रस के प्रसंग संक्षेप्तः निम्नलिखित रूप मे प्रकट हुए है—

अ—प्रिय बन्धुबान्धव एवं पुत्रादि का वियोग एवं मरण—

१—रामवनवास—१ दशरथ की दशा।

२. कौशल्या तथा अन्य रानियो की दशा।

३. कैकेयी की आत्मग्लानि।

४. भरत की आत्मग्लानि एव स्वाभाविक चिन्ता,
भय एव विषाद;
मनोभावो का सघात,
घोर परिताप,
गीतावली मे यही प्रसग,
आत्मनिन्दा,
व्याज निन्दा,
भाग्य निन्दा;
दु.खों का तुलनात्मक अध्ययन।

५. सुमत्र की शोकानुभूति।
सोच, विकलता,
निराशा,
परिताप,
ग्लानि।

६. पशुपक्षीगत विरह।
राम के घोडे;
पशु खगमृग;
गीतावली मे घोड़ों का प्रसंग!

७. पुरजनो की विषम शोकानुभूति।
अशुभ की आशंका;
विषम शोक;
ग्लानि एवं क्षोभ;
सामान्यदशा;
अयोध्या-वर्णन;
राम-वियोग पर शोक;
मार्ग के नर-नारियो का शोक।

२—**सीता-हरण**—१. सीता का करुण-क्रन्दन,
सीता की निराशा।

३—**लक्ष्मण-शक्ति**—भाई का उपकार,
राम का प्रलाप,
गीतावली मे यही प्रसग।

४—**विपक्षी पात्रों की शोकानुभूति**—तारा विलाप,
रावण शोकानुभूति,
मदोदरी विलाप,
विभीषण शोकानुभूति।

आ—पराभाव, पराजय, वध, बन्धन—

१—**पराभाव**—सीतास्वयबर समय राजाओ का पराभाव,
रावण पराभव।

२—**पराजय**—सुग्रीव पराजय,
मेघनाद पराजय।

३ **बन्धन**—हनुमान-बन्धन,
नागपाश द्वारा राम-बन्धन।

४—**वध** — अक्षयवध,

इ—धर्म अपघात एवं शाप—

प्रतापभानु नरेश आख्यान;
सती परित्याग,
नारद मोह;
शिव-शाप कागभुशुण्डि को;
लोमस-शाप कागभुशुण्डि को।

ई—क्लेश एवं दुःख-प्राप्ति—

क्लेश—कवितावलीगत् प्रसग।

करुण रस के प्रसंगों की अभिव्यक्ति

रामवनवास प्रसंग—कैकेयी द्वारा वनवास के वरदान को सुनकर महाराज दशरथ अवाक् रह जाते है। अपने कर्त्तव्य एव आदर्श के समक्ष वात्सल्य का बलिदान करने की उनकी विवशता जीवन-मरण का प्रश्न बन जाती है। अकस्मात् ही इस अप्रिय समाचार को सुन कर महाराज किंकर्त्तव्यविमूढ हो जाते है। उनकी दशा का परिचय गोस्वामी जी निम्नलिखित गिनेचुने किन्तु अति मार्मिक शब्दो द्वारा कराते है--

"गयउ सहमि न कछु कहि आवा।"

महाराज दशरथ की अति शोकपूर्ण दशा का समीप से अध्ययन करते हुए कवि ने लिखा—

"बिबरन भयउ निपट नरपालू,
दामिनि हनेउ मनहुँ तरु तालू।
माथे हाथ मूँदि दोउ लोचन,
तनु धरि सोचु लाग जनु सोचन॥"

महाराज की शोकानुभूति असह्य हो जाती है जब राम वल्कल वस्त्र धारण करके वन के लिए विदा माँगने उपस्थित होते है। मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तो के अनुकूल कवि ने इस असह्य दशा मे महाराज की मूर्च्छा का वर्णन किया है। "मुर्छित नरनाहू" कहकर कवि ने महाराज की अति शोकपूर्ण दशा का प्रकटीकरण किया है।

इसी प्रसंग मे महाराज दशरथ के मानस का सूक्ष्म अध्ययन करते हुए कवि ने महाराज की अति स्वाभाविक कल्पनाओ का निम्नलिखित रूप मे उद्घाटन किया है—

"हृदय मनाव भोरु जनि होई,
रामहि जाइ कहै जनि कोई।"

तथा

"तुम प्रेरक सब के हृदय सो मति रामहि देहु,
वचन मोर तजि रहहि घर परिहरि सीलु सनेहु।"

परम शोकानुभूति के अन्तर्गत महाराज की उपर्युक्त कल्पनाएँ कितनी स्वाभाविक एव सार्वजनीन है इसका अनुमान कोई भुक्तभोगी भलीभाँति लगा सकता है। जिसके लिए अपने स्वजन की मृत्यु इसीप्रकार की कल्पनाओ का कारण बन चुकी हो—चिता मे जलकर भस्म हो जाने से पूर्व तक जो यह कल्पना करता रहा हो कि उसका स्वजन अब जीवित होकर उठने वाला है।

महाराज दशरथ के कल्पनागत यह स्वप्न सत्य न हो सके। यहाँ महाराज की कर्त्तव्य निष्ठा की ओर स्वाभाविक जिज्ञासा उठाते हुए कहा जा सकता है कि इस अवसर पर महाराज ने इन कल्पनाओ के साथ अपने वचन वापिस लेने की बात क्यों नही सोची ? इसका समाधान निम्नलिखित रूप में हो सकता हैं—

शोकानुभूति के अन्तर्गत विवेक तथा विश्लेषण को कोई स्थान नही मिल पाता इसलिए विवेक सम्बन्धी अति समीप की बात भी अप्रत्यक्ष बनी रहती है। साथ ही कर्त्तव्यनिष्ठ की वासना वासनागत रूप मे महाराज के दृष्टिकोण को एक ओर उन्मुख किए रही थी—यह मानना भी आवश्यक है। यह अवश्य है कि वह स्वय यह कभी न सोच सके कि उनके महान शोक के मूल कारण वही है तथा अपने वचन को वापिस लेकर उद्धार पा सकते थे।

महाराज दशरथ की शोकानुभूति की अन्तिम अवस्था का प्रकटीकरण "सुत वचन" सुनकर होता है। महाराज को विश्वास था कि राम-लक्ष्मण-सीता वन घूम कर वापिस आ जावेगे। अपने विश्वास के प्रतिकूल जब उन्होने सुना कि—

"तेहि अवसर रघुवर रुख पाई केवट पारहि नाव चलाई।
रघुकुलतिलक चले एहि भाँति देखउ ठाढ़ कुलिस धरि छाती॥"

तो महाराज परम निराश एव परम कातर हो उठे। इस अति करुणापूर्ण प्रसग को कवि ने अपने सूक्ष्म अध्ययन सहित निम्नलिखित शब्दो मे रखा है—

"जाइ सुमत्र दीख कस राजा अमिय रहित जनु चद ।"

तथा

"आसन सयन विभूषन हीना परेउ भूमितल निपट मलीना।
लेइ उसास सोचु एहि भाँति सुरपुर ते जनु खसेउ जजाती।
लेत सोच भरि छिनु छिनु छाती जनु जरि पख परेउ सपाती॥"

प्रान कठगत भयउ भुआलू मनि विहीन जनु व्याकुल व्यालू।
इन्द्री सकल विकल भईं भारी जनु सर सरसिज बनु बिनु बारी।
कौसल्या नृपु दीख मलाना रविकुल रवि अँथयउ जियँ जाना॥"

सूत के वचनो का घातक परिणाम कवि निम्नलिखित रूप मे प्रकट करता है—

"सूत वचन सुनतहि नरनाहू परेउ धरनि उर दारुन दाहू।
तलफत विषय मोह मन मापा माजा मनहुँ मीन कहुँ व्यापा॥"

इस विषम स्थिति मे महाराज को जीवन से घृणा होने लगी। उनका अन्तिम करुणापूर्ण प्रलाप अति मर्मस्पर्शी बन गया—

"सो तनु राखि करब मै काहा जेहि न प्रेम पनु मोर निबाहा।
हा रघुनन्दन प्रान पिरीते तुम बिन जिअत बहुत दिन बीते॥"
तापस अध साप सुधि आई···
··· ··· ···
बिलपत राउ बिकल बहु भाँती भइ जुग सरिस सिराति न राती॥"

इसी प्रलाप मे महाराज ने शरीर [त्याग] किया—

"राम राम कहि राम कहि राम राम कहि राम।
तनु परिहरि रघुबर बिरहँ राउ गयउ सुरधाम॥"

—(अयो० १५५)

इस प्रकार कवि ने महाराज की शोकानुभूति की अन्तिम स्थिति मरण-दशा मे दिखलाकर करुणरस की पूर्ण अभिव्यजना की है। वर्णन की मार्मिकता तथा अनुभूति की गम्भीरता का मुख्य कारण कवि का मनोवैज्ञानिक अध्ययन है। दूसरी शैलियों मे भी कवि की इस विशेषता के कारण मौलिकता का सृक्त हुआ है। गीतावली मे दशरथ तथा सुमत्र मिलन मनोवैज्ञानिक विशेष अध्ययन नहीं कर पाते कि राम वनवास की बात महाराज से कह दे तथा उधर महाराज दशरथ सदेश की निराशा से सशकित होकर स्वय साहस नही कर पाते कि सुमंत्र से पूछ ले कि राम वन से वापिस आ गए या नही ? सुमंत्र और महाराज दशरथ के मानस की द्वन्द्वात्मक अन्तर्वृत्तियो का सहज प्रकटीकरण कवि के निम्नलिखित शब्दो में हुआ है—

"सुन्यो जब फिरि सुमंत्र पुर आयो।
कहि है कहा प्राणपति की गति नृपति विकल उठि धायो।
पाँय परत मत्री अति व्याकुल नृप उठाय उर लायो।
दशरथ दशा देखि न कह्यो कछु हरि जो सँदेश पठायो।
बूझि न सकल कुसल प्रीतम की हृदय यहै पछितायो।
साँचेहु सुत वियोग सुनिबे कहै धिग विधि मोहि जिआयो॥"

कौशल्या तथा अन्य रानियों की दशा—रामवनवास प्रमग मे राम राजतिलक की पृष्ठभूमि के साथ माता कौशल्या का शोक अति असह्य बन जाता है जब वह राम के मुख से सहज एव सरल रूप मे राम वनवास की बात सुनती है। कवि से बाह्य-व्यंजको द्वारा ही माता के शोक का प्रकटीकरण करना उचित समझा है। हृदय के असह्य विषाद मे वाणी का मौन होना स्वाभाविक है।

कौशल्या राम की "शीतल बानी" को सुन कर सहम जाती है, सूख जाती है तथा नेत्र सजल हो जाते है, शरीर थर-थर काँपने लगता है[1] विषाद की इस विषय स्थिति मे गम्भीर मौन तिम्नलिखित कटूक्ति मे फूट पड़ती है—

"जाहु सुखेन बनहि बलि जाऊँ।
करि अनाथ जन परिजन गाऊँ॥"

इस प्रकार की उक्ति शोकानुभूति की अति मार्मिक एव दारुण स्थिति मे प्रकट होती है। इसलिए इस उक्ति के साथ कौशल्या विलाप कर अति व्याकुल हो जाती हैं।

१ "सहमि सूखि सुनि सीतल बानी कहि न जाइ कछु हृदय विषाद।
नयन सजल तन थर थर काँपी माजहि खाइ मीन जनु मापी॥"

"बहु विधि बिलपि चरन लपटानी,
परम अभागिनी आपुहि जानी।
दारुन दुसह दाहु उर ब्यापा,
बरनि न जाहि बिलाप कलापा॥"

दशरथ मरण से राजमहल में कुहराम मच जाता है कवि शोकानुभूति की गम्भीरता में अपने आप को पृथक् नहीं रख पाता तथा इस प्रसंग को वर्णनातीत कह कर स्थल-स्थल पर उसे मौन हो जाना पड़ता है। कवि की यह मूकवाणी अपनी मौन के ही कारण अति मार्मिक बन जाती है। रानियों की शोकानुभूति का वर्णन कवि सबसे पहले करता है—

"करि बिलाप सब रोवहि रानी
महा बिपति किमि जाइ बखानी।
सुनि बिलाप दुखहू दुखु लागा
धीरजहू कर धीरजु भागा॥"

इस महाविपत्ति का वर्णन किया जाना वास्तव में कठिन है। इसकी ओर कवि का संकेत अलम् कहा जा सकता है। सामाजिक अपनी अनुभूति एवं कल्पना के आधार पर इसका अनुमान सहज ही लगा सकता है। उस प्रकार की परिस्थितियों में विश्लेषण तथा सूक्ष्म विवेचन को कोई स्थान नहीं मिल पाता साधारणतया जो कुछ दृष्टि गोचर होता है—वह होता है रोना तथा मूर्च्छित होना। अतएव कवि इसी स्वाभाविक दृश्य की ओर संकेत करता है—

"सोक बिकल सब रोवहि रानी,
रूपु सीलु बलु तेज बखानी।
करहि बिलाप अनेक प्रकारा,
परहि भूमितल बारहि बारा।
बिलपहि बिकल दास अरु दासी,
घर-घर रुदनु करहि पुरबासी॥"

विलाप एवं शोक की गम्भीरता का संकेत कवि निम्नलिखित रूपों में करता है—

१. अनेक प्रकार विलाप कर रही है।

२ पृथ्वी पर बार-बार गिर रही है।

चित्रकूट प्रसंग—चित्रकूट प्रसंग में राम सम्पूर्ण समाज को दुःखी देखते हैं। इसी अवसर पर दशरथ-मरण का दुःखद समाचार सुनाया जाता है तथा स्थिति अति गम्भीर बन जाती है। एक बार पुनः अति विषादपूर्ण दृश्य को देखकर कवि का अनुमान लगाना, मानो महाराज दशरथ का आज ही निधन हुआ हो, विषादपूर्ण स्थिति की गम्भीरता का उद्घाटन करने के साथ सामाजिक की स्वाभाविक प्रवृत्ति की ओर भी संकेत करता है जिसके अन्तर्गत शोकानुभूति की गम्भीरता अनुभूतिगत स्मृति को

प्रत्यक्षरूप दे देती है। अपने प्रति प्रेम को महाराज की मृत्यु का कारण समझ कर राम अति विकल हो जाते है।[1] उनके साथ लक्ष्मण, सीता तथा सब रानियाँ एव सम्पूर्ण समाज परम शोक के कारण अति व्याकुल हो जाता है।

दूसरा अति कारुणिक चित्र जनक आगमन के समय उपस्थित होता है। सीता जी की सास जनकराज के रनिवास मे पहुँचती है। वैधव्य के साथ रामवनवास की कालिमा दृश्य को अति मर्मस्पर्शी बना देती है। कवि के सूक्ष्म अध्ययन के अन्तर्गत इस दृश्य का यथातथ्य चित्रण निम्नलिखित रूप मे हुआ है—

"सावकास सुनि सब सिय सासू,
आयउ जनकराज रनिवासू।
..
सीलुसनेहु सकल दुहु ओरा
द्रवहि देखि सुनि कुलिस कठोरा।
पुलक सिथिल तन बारि बिलोचन,
महि नख लिखन लगी सब सोचन।
सब सिय राम प्रीति कि सि मूरति,
जनु करुना बहु बेष बिसूरति॥"

शोकानुभूति के अन्तर्गत यहाँ गोस्वामी जी ने एक विशेष अनुभाव "महि नख लिखन लगी सब सोचन" का वर्णन किया है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से शोकानुभूति के अन्तर्गत यह क्रिया अति स्वाभाविक है। मानो अप्रत्यक्षरूप मे शोकाभिभूत प्राणी शोकशमन का कोई हल निकालना चाह रहा हो। इसलिए पृथ्वी पर नाखून से कुछ लिखने लगा हो।

कैकेयी की आत्मग्लानि—कैकेयी की आत्मग्लानि भरत की राजतिलक के लिए उपेक्षा तथा मातृभर्त्सना के अप्रिय प्रसग के फलस्वरूप प्रकट होती है। प्रारम्भ मे कैकेयी मौन दिखलाई देती है। साथ ही उसकी सुनता कौन ? भरत अपने आपको मातृसम्मत समझ कर परिताप के कारण जितना कहना चाहते थे उसका एक अंश भी किसी की सुनने को तैयार न थे। अपनी विषम वेदना मे भरत शीघ्र ही माता को अवहेलना करने के लिए विवश हो जाते है—

"जो हसि सो हसि मुहँ मसि लाई,
आँखि ओट उठि बैठहि जाई।"

वास्तव मे कैकेयी की दशा अपेक्षाकृत शोचनीय थी। दशरथ-मरण पर सब रानियाँ, पुरजन तथा प्रियजन सब उसकी ओर ही देखते होगे, और वह इस देखने

१. "नृप कर सुरपुर गवनु सुनावा, सुनि रघुनाथ दुसह दुख पावा।
... ...
सोक बिकल अति सकल समाजू, मानहुँ राजु अकाजेउ आजू॥"

भरत को दो बातों का सबसे अधिक सोच है—

१—पिता के अन्तिम दर्शन न हो सके।

२—वात्सल्य के अभिलाषी भरत को महाराज राम के सुपुर्द न कर सके।

सरल एवं कोमल चित भरत के मानस का यह स्वाभाविक परिताप है जो पितृ एवं भ्रातृ-भक्ति के प्रश्रय मे अति मर्मस्पर्शी बन गया है।

भरत की आत्मग्लानि—करुणरस के अन्तिम स्तर पर भरत की आत्मग्लानि अमर्ष के आभास मे दृष्टिगोचर हो उठती है जब माँ कैकेयी उनके लिए ही यह सब प्रपच रचे जाने की कुटिल कथा उनको सुनाती है। उनकी शोकानुभूति असह्य होकर अमर्ष का रूप धारण कर लेती है किन्तु अन्ततोगत्वा पर्यवसान उनकी असह्य आत्मग्लानि मे ही होता है। कुशल कलाकार तुलसी करुणरस की आदर्श अभिव्यक्ति का निर्वाह करना भलीभाँति जानते थे।

भरत की आत्मग्लानि का क्रमिक विकास तुलसी की अभिव्यक्ति की निजी विशेषता है। जीवन के प्रति घृणा से भरत की आत्मग्लानि का प्रारम्भ होता है। उनकी विवशता निम्नलिखित शब्दो मे प्रकट होती है—

"जौ पै कुरुचि रही अति तोही,
जनमत काहे न मारेस मोही।
पेड काटि तै पालउ सीचा,
मीन जिअन हित वारि उलीचा।"

इस आत्मग्लानि के साथ विधि के समक्ष भरत की विवशता पूर्व असहायावस्था के दर्शन निम्नलिखित रूप मे होते है—

"हम बसु दशरथु जनकु राम लखन से भाइ,
जननी तू जननी भई विधिसन कछु न बसाइ।"

इस विधिविधानगत विवशता के साथ भरत का अमर्ष भी प्रकट हुआ। माता की काली करतूत पर वह क्षुब्ध हो उठते है। अनुभूति की असह्य अवस्था ने विवेक को अवसर न दिया और भरत माता को अपशब्द कहने के लिए विवश हो गए। भरत के आत्मग्लानिपूर्ण अमर्ष का क्रमिक विकास निम्नलिखित रूप मे हुआ—

"जब तै कुमति कुमत जियँ ठयऊ,
खड खड होइ हृदयु न गयऊ।
बर माँगत मन भइ नहि पीरा,
गरि न जीह मुँह परेउ न कीरा।
... ..."

भे अति अहित रामु तेउ तोही,
को तू अहसि सत्य कहु मोही।
जो हसि सो हसि मुँह मसि लाई,
आँखि ओट उठि बैठहि जाई॥"

भरत के इस अमर्ष को आत्मग्लानि का प्रबल-प्रवाह कहा जा सकता है जिसके आवेग में भरत का मानसिक क्षोभ अति दारुण बन गया। उन्होने अपनी ओर देखा और अपने आपको महान् पातकी समझकर घोर आत्मग्लानि मे जल उठे—

"राम विरोधी हृदय ते प्रगट कीन्ह विधि मोहि,
मो समान को पातकी बादि कहउँ कछु तोहि।"

भरत के मनोभावों का संघात—शोक-सतप्त माता कौशल्या के दर्शन करके भरत के मानस में दीनता, ग्लानि, प्रलाप, परिताप आदि भिन्न-भिन्न मनोभावो का एक साथ ही उदय भावसघात दशा को प्रकट कर देता है। अपने आप को सम्पूर्ण अनर्थों का हेतु समझकर वह परम कातर हो उठते है।

माता कौशल्या को देखकर भरत को स्वाभाविक रूप से ही तात तथा भ्रात की स्मृति हो आती है। वह गंभीर शोकानुभूति के फलस्वरूप प्रलाप कर उठते है—

"मातु तात कहँ देहि दिखाई,
कहँ सिय रामु लखन दोउ भाई।"

माता कौशल्या की दीन दशा देखकर तथा इस सबका मूल कारण कैकेयी को जानकर भरत का अमर्ष पुन. जाग्रत हो उठता है—

"कैकेइ कत जनमी जग माँझा,
जौ जनमि त भइ काहे न बाँझा।"

कैकेयी के साथ शीघ्र ही उनको अपनी सहमति की आशका का स्मरण हो आता है तथा इस सब प्रपंच को अपनी हित-साधना का साधन देखकर अपने आपको कोसने लगते हैं—

"को त्रिभुवन मोहि सरस अभागी,
गति असि तोरि मातु जेहि लागी।"

भरत की यह आत्मग्लानि अन्त मे घोर परिताप तथा उद्वेग में परिणत हो जाती है। वह अपने आपको धिक्कारने लगते है—

"पितु सुरपुर बन रघुबर केतू,
मैं केवल सब अनरथ हेतू।
धिग मोहि भयउ बेनु बन आगी,
दुसह दाह दुख दूषन भागी।"

का तात्पर्य समझती और मन ही मन घुलती रही होगी। कैकेयी की इस गम्भीर अनुभूति ने ही संभवत. उनको मौन रहने के लिए बाध्य कर दिया।

चित्रकूट प्रसंग में भी कैकेयी मौन रहती है। कवि एक विशेष प्रसंग की योजना कर उसकी दशा का अनुमान कराना चाहता है तथा इस प्रसग मे वह स्वयं कुछ नही कहता। पाठक स्वयं अनुमान लगाले कि इस स्थिति मे कैकेयी की क्या दशा रही होगी तथा उसने राम से क्या कहा होगा। राम सबसे पहले माता कैकेयी से भेट करते है अपने सरल स्वभाव तथा भक्ति से माता को द्रवित कर देते है। बहुत प्रकार से माता का प्रबोध करते है तथा काल, कर्म एव विधि को दोष देकर माता को सान्त्वना देते है। इस प्रसग मे कैकेयी के मौन का क्या तात्पर्य है, पाठक इसका सहज ही अनुमान लगा सकते है।

कैकेयी की ग्लानि का एक दूसरा अवसर और उपस्थित होता है। सीता की सेवा से सब सास प्रसन्न हो जाती है। सीता तथा राम-लक्ष्मण की सरलता को देखकर कैकेयी भी अति प्रसन्न एव मुग्ध हो जाती है। ऐसे सरल एव निर्दोष व्यक्तियो को अपने कुचक्र के कारण वन-वन घूमते हुए देखकर वह अति क्षुब्ध हो उठती है। ग्लानि की चरम सीमा पर कैकेयी की अभिव्यक्ति मृत्यु की याचना मे प्रकट होती है—

"लखि सिय सहित सरल दोउ भाई
कुटिल रानि पछितानि अघाई।
अवनि जमहि जाचति कैकेई,
महि न बीचु विधि मीचु न देई॥"

कैकेयी की आत्मग्लानि का तीसरा अवसर चित्रकूट मे जनक आगमन के समय प्रकट होता है। जनक के साथ सीता की माँ तथा रनिवास की अन्य महिलाएँ भी आई है। इस अवसर पर कैकेयी की आत्मग्लानि (अपने आत्मसम्मान को ठेस लगने के विचार से) द्विगुणित दारुण बन जाती है। वह सीता की माँ तथा जनकपुर की अन्य महिलाओं के लिए सम्माननीय है। आज भी उसको सम्मान मिलेगा किन्तु इस सम्मान के साथ होगी इन लोगो की मूक घृणा—"ये है कैकेयी जिन्होने यह सब किया" मनोभावों की इस द्वन्द्वात्मक स्थिति को तुलसीदास जी "गरइ ग्लानि" कह कर प्रकट करते है—

"गरइ ग्लानि कुटिल कैकेई,
काहि कहै केहि दूषन देही।"

अवधी के पश्चात् अयोध्या वापिस जाते हुए राम से भेट करते हुए भी कैकेयी को सकोच होता है। कहना न होगा कि कैकेयी का यह उसकी आत्मग्लानि का वह क्षोभ है जो उसके जीवन का एक अङ्ग बन गया और उससे पृथक नही हुआ।

"रामहि मिलत कैकेई हृदय बहुत सकुचानि।"

भरत की आत्मग्लानि—मानस के पात्रो मे भरत के चरित्र का अध्ययन तुलसी

के मनोवैज्ञानिक पण्डित्य का विशिष्ट उदाहरण है। भरत के मृदु सरल स्वभाव की पृष्ठभूमि मे करुणरस की अति मार्मिक अनुभूति की योजना करके इस प्रसग को कवि ने विशेष रूप से मर्मस्पर्शी बना दिया है।

भरत ननिहाल मे है। जब से अयोध्या मे "अनरघु" आरम्भ हुइ तभी से उन को अपशकुन होने लगे। रात को कुस्वप्न देखने लगे जिसके फलस्वरूप जग कर "कटु कोटि कल्पना" करते थे, ब्राह्मणो को भोजन कराते तथा दान देते थे। "हृदय महेस मनाइ" माता-पिता परिजन तथा भाइयो की कुशलक्षेम की प्रार्थना करते थे।

"गुर बोलाइ पटयउ दोउ भाई" इस सदेश को सुन कर भरत के मानस की स्वाभाविक चिन्ता भरत को उदासीनता तथा अन्यमनस्क बना देती है। मार्ग की दूरी उनको अखरने लगती है। ऐसा सोचते है कि उडकर पहुच जाऊँ। उनकी ऐसी कल्पनाएँ मानव मानस की मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति का सहज प्रकाशन कही जा सकती है।

"हृदय सोचु बड कछु न सोहाई,
अस जानहि जियँ जाउँ उडाई।"

भरत अयोध्या के समीप पहुचते है। नगर के निकट "खर सिग्रार बोलहि प्रतिकूला" सुनकर भरत के 'मन मे सूला" होना स्वाभाविक है। नगर के नागरिक केवल अभिनन्दन करके चुप रह जाते है। इससे भरत को और भी आशका होती है। अशुभ सदेश की आशका से वह स्वय भी कुछ पूछने का साहस नही कर पाते। भरत के सरल एव सहज स्वाभाव का यथातथ्य वर्णन तुलसीदास जी भरत की इस आशका द्वारा करते है। ननिहाल मे भरत के मानस की "कोटि कल्पना" भरत की इस आशका की पृष्ठभूमि है जिनके आधार पर नगर-प्रवेश का यह दृश्य विशेष रूप से मार्मिक बन जाता है।

भरत का शोक—भरत का शोक दशरथमरण समाचार को सुनकर प्रबल वेग के साथ प्रकट हो जाता है। वह परम व्याकुल होकर पृथ्वी पर गिर पडते है उनके शोकापूर्ण उद्गार प्रलाप के रूप मे बरबस फूट पडते है[२]—

"तात तात हा तात[१]।"

---

१. "असगुन होहि नगर पैठारा, रटहि कुभाति कुखेत करारा।
खर सिग्रार बोलहि प्रतिकूला, सुनि सुनि होई भरत मन सूला॥
पुरजन मिलहि न कहहि कछु गँवहि जोहारहि जाहि।
भरत कुसल पूँछि न सकहि भय बिषाद मन माहि॥"

—(अयो० १५८)

२. "तात तात हा तात पुकारी, परे भूमितल व्याकुल भारी।
चलत न देखन तोही, तात न रामहि सौपेहु मोही॥"

—(अयो० ५६/३)

भरत का घोर परिताप—परिस्थितिवश भरत कैकेयी के वरदान में अपनी सहमति मानने के लिए विवश हो जाते है। सरल एव निर्दोष होते हुए भी परिस्थितियाँ उनको निर्दोष सिद्ध नहीं कर सकती थी। जो कार्य भरत-हित मे हो उसमे भरत की सहमति न हो ऐसा किस प्रकार सभव है तथा इसका कौन विश्वास कर सकता है, यही विचार भरत के मन के विषाद, चित्त की विकलता तथा घोर आत्मग्लानि का कारण बन जाता है। इस घोर परिताप के फलस्वरूप भरत माता कौशल्या के सामने अनेक शपथ लेते है तथा लोक के गर्हित कृत्यो के कुत्सित परिणामो को भोगने की कामना करते है। इस प्रसग मे भरत अपने घोर परिताप के कारण बार-बार भावावेश दशा को पहुँच जाते है। एक उक्ति के बाद दूसरी उक्ति तथा एक कल्पना के बाद दूसरी कल्पना करते चले जाते है। उनको सतोष नही होता। अपनी सफाई देने के लिए कितना कहे और किस प्रकार कहे। घोर पातकों की जितनी वह याचना करते हैं, एक लम्बी तालिका बन जाती है। दुर्गति प्राप्त करनेवाले व्यक्तियो की एक नामावली प्रस्तुत कर देते है और शपथ के साथ बार-बार यही कहते है कि यदि मैं मातृमत होऊँ तो यह दुर्गतियाँ मुझे प्राप्त हो[१]।

भरत के द्वारा प्रस्तुत इस प्रसंग को संक्षेपतः निम्नलिखित रूप मे रखा जा सकता है—

अ—पाप जिनकी भरत याचना करते है यदि वह मातृमत मे हो—

१. "जे अघ मातु पिता सुत मारे, गाइ गोठ महिसुर पुर जारे।
जे अघ तिय बालक बध कीन्हे, मीत महीपति माहुर दीन्हे।
वे पातक उपपातक अहही, करम बचन मन भव कवि कहही।
ते पातक मोहि होहु विधाता, जौ यहु होइ मोर मत माता।
वे परिहरि हरि हर चरन भजहि भूतगन घोर।
तेहि कर गति मोहि देउ विधि जौ जननी मत मोर॥"
"बेचहि बेदु परमु दुहि लेही, पिसुन पराय पाप कहि देही।
कपटी कुटिल कलहप्रिय क्रोधी, वेद विदूषक विस्व विरोधी।
लोभी लपट लोलुपचारा, जे ताकहि परधनु परदारा।
पावौ मैं तिन्ह कै गति घोरा, जौ जननी यहु संमत मोरा।
जे नहि साधुसंग अनुरागे, परमारथ पथ विमुख अभागे।
जे न भजहि हरि नर तनु पाई, जिन्हहि न हरि हर सुजसु सोहाई।
तजि श्रुति पथु बाम पथ चलही, बंचक बिरचि बेष जगु छलही।
तिन्ह कै गति मोहि सकर देऊ, जननी जौ यहू जानौ मेऊ।
मातु भरत के बचन सुनि साँचे सरल सुभायँ।
कहति राम प्रिय तात तुम्ह सदा बचन मन कायँ॥"
—(अयो० १६७-१६८)

१. माता-पिता और पुत्र को मारने के पाप।
२. गौशाला और ब्राह्मणो के नगर को जलाने के पाप।
३. स्त्री और बालहत्या के पाप।
४. मित्र और राजा को विष देने के पाप।
५. मनवचनकर्म से होनेवाले संभव पातक एव उपपातक।

आ—दुर्गति प्राप्त होनेवाले व्यक्ति जिनकी गति भरत माँगते है यदि वह मातृमत में हों। दुर्गति जो उन लोगों को मिलानेवाली है जो –

१. भगवान् विष्णु तथा भगवान् शिव को छोडकर भूतप्रेतो का भजन करते है।
२. वेदो को बेचते है, दूसरो की बुराई करते है।
३. कपटी, कुटिल, कलहप्रिय तथा क्रोधी है।
४. वेदो की निन्दा करनेवाले तथा वेदविरोधी है।
५. लोभी, लपट तथा लालचियो के आचरण करनेवाले है।
६. वे अभागे जो परमार्थ मार्ग से विमुख है।
७. मानव शरीर पाकर भगवद्भजन नही करते।
८. वेदमार्ग ो छोडकर वाममार्ग का अनुसरण करते है।
९. ठग है तथा वेष बनाकर जगत् को छलते है।

कहना न होगा कि इस तालिका मे तुलसीदासजी ने समाज की प्रत्येक अनीति का समावेश किया है जिनके अन्तर्गत मनवचनकर्म द्वारा सपादित सभी पापाचारो का वर्णन हो जाता है।

भरत की यह ग्लानि लोक की ग्लानि है। लोक-धर्म का आर्त्तरूप भरत की आत्मग्लानि मे प्रकट हुआ है। तुलसी के मनोवैज्ञानिक अध्ययन के आधार पर यह प्रसंग अपने आपमे मौलिक तथा अलौकिक है, यह स्पष्ट है।

भरत की आत्मग्लानि का यही प्रसंग गीतावली मे अपनी निजी विशेषता मे प्रकट हुआ है। निम्नलिखित पद के अन्तर्गत अपने आपको निर्दोष सिद्ध करने मे भरत की विवशता तथा असहायावस्था विशेषरूप से अवलोकनीय है—

"जो पै हौ मातु मते महँ ह्वै हौ।
तौ जननी जग मे या मुख की कहा कालिमा ध्वैहौ ?
क्यो हौ आजु होत सुचि सपथनि कौन मानिहै साँची ?
... ...
गहि न जात रसना काहू की, कह्यौ जाहि जोइ सूझै।
दीनबंधु कारुण्यसिंधु बिनु कौन हिये की बूझै ?"

तुलसीदास मानव मानस की अपूर्णता से भलीभाँति परिचित है। दूसरे के मनोभावों की मूल अनुभूति का परिज्ञान सभव नही होता। इसलिए भरत को विश्वास नहीं होता कि "मानस" के अन्तर्गत उन्होने जो अनेक शपथे खाई है उनसे लोगो को विश्वास हो जायगा कि वह निर्दोष है। अपनी विवशता एव असहायावस्था मे कातर भरत एक प्रभु-आधार का ही भरोसा करते है। वह अन्तर्यामी है। इसलिये उनकी निर्दोषता को वही भलीभाँति जान सकते है।

चित्रकूट-प्रसंग में भरत की आत्मग्लानि—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस प्रसग पर अपने विचार प्रकट किए है। उनको यहाँ देख लेना आवश्यक है—"किसी बुरे प्रसग में यदि निमित्त रूप से भी हमारा नाम आ जाता है तो हमे लज्जा होती है— चाहे ऐसा हमारी जानकारी मे हुआ हो, चाहे अनजान मे। यदि बिना हमे जताए हमारे पक्ष मे कोई कुचक्र रचा जाय तो उसका वृत्तान्त फैलने पर हमे लज्जा क्या, ग्लानि तक हो सकती है अपमान होने पर यदि क्रोध के लिए स्थान हुआ तो क्रोध का, नही तो अपनी तुच्छता का अनुभव होता है। दूसरो के चित्त मे हमारे प्रति जो प्रेम या प्रतिष्ठा का भाव रहता है उसका ह्रास किसी कुचक्र के साथ अपना नाम मात्र का सबध समझकर भी, हम समझे बिना नही रह सकते। जब स्थिति ऐसी होती है कि इस ह्रास का न समाधान द्वारा निराकरण कर सकते है, न क्रोध द्वारा प्रतीकार तो सिवा इसके कि हम अपनी हीनता का अनुभव करे, और कर ही क्या सकते है? भरत को इसी दशा मे पाकर राम ने उन्हे समझाया था—

"तात जीय जनि करहु गलानी।
ईस अधीन जीव-गति जानी।
तीनि-काल त्रिभुवन मत मोरे,
पुन्यसलोक तात उर तोरे।
उर आनत तुम पर कुटिलाई,
जाइ लोक परलोक नसाई॥"

जिसने इतनी बुराई की वह मेरी माता है, इस भावना से जो लज्जा भरत को थी उसे दूर करने के लिए ही आगे का वचन है—

"दोष देहि जननिहि जड तेई,
जिन गुरु-साधु-सभा नही सेई।"[१]

भरत की आत्मनिन्दा- भरत को राजतिलक करने का प्रश्न आता है किन्तु भरत इसके लिए तैयार नही होते। अपने आपको अवगुणी समझकर वह अपनी अस्वीकृति को सकारण सिद्ध करते है। भरत की आत्मनिन्दा का यह प्रसग निम्नलिखित में प्रकट हुआ है। भरत अपने अवगुणो को प्रकट करते हुए बताते है।[२]

१. चिन्तामणि : १९५६, पृष्ठ ६२
२. "कैकेई सुअ कुटिलमति राम बिमुख गत लाज।
तुम्ह चाहत सुखु मोहबस मोहि से अधम के राज॥"
—(अयो० १७८)

१. कैकेयी सुत हूँ जिस कैकेयी की प्रपंचात्मकता के कारण रामवनवास तथा दशरथमरण आदि सब कुछ हुआ।

२. कुटिलमति हूँ—इस प्रपच मे सहमति के कारण।

३. रामविमुख हूँ—राम को बनवास दिलाने के कारण।

४. गतलाज हूँ—इतना सब कुछ करने के पश्चात् भी मुंह दिखा रहा हूँ।

भरत की आत्मनिन्दा का यह प्रसग मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अति स्वाभाविक है। गोस्वामीजी ने इस अवसर पर केवल तथ्यो का उद्घाटन किया है। संभावित कारणों को पाठक की कल्पना के लिए छोड दिया है। वह समझते है कि सामाजिक एव पाठक अपनी शोकानुभूतिगत वासना के आधार पर सहज ही अनुमान लगायेगे कि किन कारणो से भरत राजतिलक के लिए सहमत नही होते तथा क्यो राजभोग के प्रति उदासीन है।

व्याजनिन्दा—भरत उपर्युक्त प्रसग मे ही व्याजनिन्दा द्वारा कैकेयी के कार्यों की आलोचना करते है। कैकेयी के इन कार्यो की प्रशसा मे भरत की मार्मिक वेदना के दर्शन हो सकते है जब इस प्रशसा एव स्तुति की गभीरता की ओर पाठक का ध्यान बरबस आकर्षित हो जाता है। व्यजना की अपूर्व अभिव्यक्ति ऐसे स्थलों पर देखी जा सकती है। वाच्यार्थ के नितान्त प्रतिकूल अभिव्यक्ति का अर्थ होता है तथा उस अर्थ के साथ वेदना का मर्मस्पर्शी रूप प्रकट हो जाता है। भरत भी गुरुजन तथा प्रजाजन के आग्रह से आहत होकर राजतिलक का वर प्राप्त करनेवाली माँ की व्याजस्तुति करने लगते है—

"कैकेयी ने बडे अच्छे कार्य किए है—राम, लक्ष्मण तथा सीता को वनवास दिया, स्वर्ग भेजकर पति का कल्याण किया, स्वय वैधव्य तथा अपयश प्राप्त किया, प्रजाजन को शोक और सताप दिया, मुझको सुयश तथा उत्तम राज्य दिया। वास्तव में कैकेयी ने सभी काम बना दिए। इससे अच्छा मेरे लिए अब और क्या होगा? उस पर भी आप मुझे राज्य देने की कह रहे है, राजतिलक का आग्रह कर रहे हैं।"[1]

भरत एवं भाग्यवाद—जब भरत देखते है कि किस प्रकार यह अप्रिय घटना दैवी-योजना के आधार पर घटित हुई है तो अपने दुर्भाग्य को कोसते हुए वह भाग्यवाद की शरण लेते है। भरत की अनुभूति का क्रमिक विकास तुलसी की विशेष

१. "लखन रामसिय कहुं बन दीन्हा, पठइ अमरपुर पति हित कीन्हा।
लीन्ह विधवपन अपजसु आपू, दीन्हेउ प्रजहि सोक सतापू।
मोहि दीन्ह सुखु सुजसु सुराजू, कीन्ह कैकेई सब कर काजू।
एहि ते मोर काह अब नीका, तेहि पर देन कहहु तुम टीका।।"
—(अयो० १८०)

योजना है जिसको निम्नलिखित रूप मे देखा जा सकता है[1]—

प्रथम चरण—वात्सल्य का सुख-सन्तोष स्मरण होता है। राम के दुलार का स्मरण उन्हे गद्-गद् कर देता है।

द्वितीय चरण—माँ की करतूत का स्मरण होना है।

तृतीय चरण—माँ की भर्त्सना का प्रसग आत्मनिन्दा मे परिणत हो जाता है।

चतुर्थ चरण—आत्मनिन्दा एवं घोर आत्मग्लानि मे कातरता।

पंचम चरण—परिताप तथा भाग्यवाद।

भरत द्वारा दुःखों का तुलनात्मक अध्ययन—राम-वियोग मे परम दुःखी पात्रों की दशा को देखकर भरत परम व्याकुल होकर यह सोचने लगते है कि उनका शोक अभी तक उस दशा को क्यो प्राप्त नही हुआ जिसके अन्तर्गत प्राणत्याग सभव हो जाता है। अपने चारो ओर भरत को रामविरहकातुर व्यक्ति ही दिखलाई देते है जो उनके शोक एव विषाद के लिए उद्दीपन का कार्य करते है। निम्नलिखित पात्रो की शोकानुभूति का भरत पर विशेष प्रभाव पडा है[2]—

१—राजा दशरथ मृत्यु को प्राप्त हुए।

२—माताओ की विरह-विकलता देखी नही जाती।

३—अवधपुरी के नर-नारी विरह-ताप से जल रहे हैं।

---

१. **प्रथम चरण**—"विधि न सकेउ सहि मोर दुलारा।"

द्वितीय चरण—"नीच मीचु जननी मिस मारा।

तृतीय चरण—"यहउ कहत मोहि आजु न सोभा।
अपनी समुझि साधु सुचि कोभा॥

चतुर्थ चरण—"मातु मद मै साधु सुचाली।
उर अस आनत कोटि कुचाली।
करइ कि कोदव बालि सुसाली
मुकता प्रसव कि सबुक काली।"

पंचम चरण—"सपनेहुं दोसक लेसु न काहू।
मोर अभाग उदधि अवगाहू।
बिनु समुझे निज अघ परिपाकू
जारिउँ जायँ जननि कहि काकू॥"

—(अयो० २६०/२६१)

२. भूपति मरन पेम पनु राखी—
देखि न जाहि विकल महतारी। जरहिं दुसह जर पुर नरनारी॥
मही सकल अनरथ कर मूला। सो सुनि समुझि सहिउँ सब सूला॥
सुनि बन गवनु कीन्ह रघुनाथा। करि मुनि वेष लखन सिय साथा।
बिनु पानहिन्ह पायदेहि पाएँ। सकरु साखि रहेउँ एहि घाएँ॥"

—(अयो० २६१/१,२,३)

उपर्युक्त पात्रों के दुःख का मूल कारण भरत अपने आपको समझते हैं तथा अपने विरह के साथ अपने इस कलंक की मार्मिक अनुभूति में वह परम दुःखी हो जाते है—

१. राम, सीता तथा लक्ष्मण का वनवास हुआ इसको सुनकर भी प्राण न निकले।

२. निषादराज का आदर्श प्रेम देखा, अपने प्रेम को उसकी समता-योग्य न पाकर हृदय न फटा।[1]

यह सब कुछ सुना और देखा किन्तु प्राण न निकले। दुसह दुःख सहने के लिए जीवित रहा। भरत की यह आत्मग्लानि शोक की परम कारुणिक अनुभूति का प्रकटीकरण करती है।

उपर्युक्त अध्ययन के आधार पर स्पष्ट है कि भरत की परम शोकानुभूति का एवं असह्य आत्मग्लानि का वर्णन कवि की कला-कुशलता के साथ कवि के सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक अध्ययन का भी परिच देता है जिसके कारण ये प्रसग अपनी नवीनता तथा अपनी मौलिकता मे अलौकिक तथा अद्वितीय बन गए है। भरत का पूरा चित्र ही करुण की प्रतिमूर्ति है। गोस्वामी जी ने भरत के चरित्र-चित्रण द्वारा करुणरस की अनुभूति के प्रत्येक रूप का प्रकटीकरण किया तथा मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तो के आधार पर उस की सकारणता सिद्ध की।

सुमंत्र की शोकानुभूति—सुमत्र महाराज दशरथ के सचिव है। महाराज के राजनीतिक जीवन के विश्वस्त सहयोगी होने के साथ वह राजपरिवार के भी अभिन्न अग है। गोस्वामीजी प्रत्येक पात्र को रामभक्ति का पाठ पढाना चाहते है। सुमंत्रजी भी उनकी पाठशाला के एक विद्यार्थी है।

सुमंत्र अति मृदु एव कोमल स्वभाव के व्यक्ति है। महाराज की शोचनीय दशा देखकर किसी अमगल की आशका से भयभीत हो जाते है। "सचिव सभीत सकय नहि पूछी"—लिखकर कवि ने सुमत्र की मनोव्यथा तथा सशकित हृदयगत चिन्ता की ओर सकेत किया है। कैकेयी ने मुँह खोला भी किन्तु "हेतु जान जगदीसु" कहकर प्रसंग को और गभीर बना दिया। सुमत्र के राजनीतिक अनुभव ने सकेत किया—"लखी कुचालि कीन्हि कछु रानी" किन्तु इस गूढ समस्या को वह सुलझा न सके। वह अनुमान हीन लगा सके कि "रामहि बोलि कहिहि का राऊ।" इस समस्या की गंभीरता इतनी असह्य हो जाती है कि 'सोच विकलता" के कारण मग मे सुमत्र के भलीभाँति पैर नही पढते।

सुमत्र की यह "सोच विकलता" बाह्यव्यजको को जन्म देती है तथा सुमंत्र की करुणापूर्ण दशा से विषम परिस्थिति का प्रकटीकरण हो जाता है। तुलसीदासजी इस

१. "बहुरि निहारि निषाद सनेहू, कुलिस कठिन उर भयउ न बेहू।"

प्रसंग की ओर निम्नलिखित शब्दों मे सकेत करते है—

"राम कुभाँति सचिव सँग जाही,
देखि लोग जहँ-तहँ बिलखाही ।"

सुमंत्र की निराशा—महाराज दशरथ सुमत्र को आज्ञा देते है—

"बनु देखाइ सुरसरि अन्हवाई,
आनेहु फेरि बेगि दोउ भाई ।"

महाराज की इस आज्ञा का पालन करते हुए सुमंत्र राम-लक्ष्मण-सीता को वन ले जाते है ।

वन में पहुँचकर राम "सुचि सुजान बट छीर" मँगाते है तथा "अनुज सहित सिर जटा" बना लेते है । इस दृश्य को देखकर सुमत्र को विश्वास हो जाता है कि राम अब अयोध्या वापिस नही लौटेगे । वह पूर्ण निराश होकर अति दु खी हो उठते है । सुमंत्र की विवशता इस प्रसग को विशेष मर्मस्पर्शी बना देती है । उनकी असाधारण व्यथा असह्य बन जाती है जब वह देखते है कि महाराज दशरथ की आज्ञा का पालन होना संभव नही है । उधर महाराज बिना राम के जीवित नही रह सकते, यह भी स्पष्ट है । इन परिस्थितियो मे सुमत्र यही प्रयत्न करते है कि राम किसी प्रकार वापिस चले चले । वह अनेक प्रकार से राम मे वापिस चलने के लिए प्रार्थना विनय तथा आग्रह करते है किन्तु उनके ये सब प्रयत्न राम की दृढता के समक्ष व्यर्थ सिद्ध हो जाते है । विवश एव अति दु:खी सुमत्र किकर्तव्यविमूढ होकर बालक की भाँति रोने लगते है—

"करि बिनती पायँन परेउ, दीन बाल जिमि रोइ ।"

अपनी विवशता तथा असहायावस्था मे राजभक्त सुमत्र अति दीन होकर रोने लगे । उनका यह रोना गम्भीर शोकानुभूति तथा परम असहायावस्था के अन्तर्गत अति स्वाभाविक था, मनोविज्ञानशास्त्री तुलसी इस तथ्य से भली-भाँति परिचित थे ।

सुमंत्र का राम, सीता तथा लक्ष्मण को वनमें छोडकर अयोध्या वापिस आना—"सोक-सिथिल" सुमंत्र "रथु सकइ न हाँकी—" इसलिए निषाद "सुसेवक चारि" साथ में कर देते है । शोकानुभूति के अन्तर्गत शरीर की शिथिलता अति स्वाभाविक होती है । इस मनोवैज्ञानिक तथ्य के आधार पर सुमत्र की शोकानुभूति की मार्मिकता स्पष्ट हो जाती है ।

सुमंत्र का परिताप—सुमंत्र को विश्वास था कि राम इतने कठोर नही हो सकते कि उनको वन से अकेला ही लौटना पडे । अतएव विश्वासगत आशा के निराशा में परिणत हो जाने पर सुमत्र का परिताप दारुण बन गया । "रघुवीर विहीना" जीवन को वह धिक्कारने लगे । सुमत्र की दारुण शोकानुभूति का स्पष्ट प्रकटीकरण हो सके इस दृष्टि से तुलसीदासजी ने समकक्ष अन्य दारुण अनुभूतियो के उदाहरणो का निम्न-

लिखित रूप में संकलन किया[1]—

सुमंत्र हाथ मीडते हुए सिर धुनकर इस प्रकार पछताते है, जैसे कि—

अ—कृपण मनुष्य धनराशि खोकर शोकविह्वल हो जाता है ।

आ—श्रेष्ठ वीर युद्ध में पराजित होकर शोकाकुल हो जाता है ।

इ—वेदविद साधु तथा विवेकी ब्राह्मण धोखे मे मद-पान कर शोकसंतप्त हो उठते है ।

ई—कुलीन एवं पतिव्रता, साधु एवं सयानी स्त्री भाग्यवश पति से पृथक रहकर दुःखी होती है ।

बाह्यव्यंजको द्वारा सुमंत्र की दशा का प्रकटीकरण करते हुए कवि कहता है—सुमंत्र के नेत्र अश्रुपूर्ण है, दृष्टि सकुचित हो गई है, कानो से सुनाई नही देता, अत्यन्त व्याकुल है, अधर सूख रहे है, मुख विवर्ण हो गया है । उनको देखा नहीं जाता । ऐसा लगता है कि मानो—

अ—उन्होने माता-पिता की हत्या कर डाली हो, एतदर्थ घोर परिताप भोग रहे हो ।

आ—उनके मन मे अत्यन्त ग्लानि एवं हानि व्याप्त हो रही है जिस प्रकार पापी मनुष्य को यमपुर का सोच अत्यन्त व्याकुल कर देता है ।[2]

कहना न होगा कि उपर्युक्त वर्णन मे कवि ने सुमंत्र का अति समीप से सूक्ष्म अध्ययन किया है; इसीलिए सूक्ष्म से सूक्ष्म तथ्य की स्पष्ट अभिव्यक्ति सभव हो सकी है ।

---

१. अ—"सोच सुमत्र विकल दुख दीना, धिग जीवन रघुवीर बिहीना ।
मीजि हाथ सिर धुनि पछिताई, मनहुँ कृपन धन-रासि गवाँई ।।"

आ—"बिरिद बाँधि बीरु कहाई, चलेउ समर जनु सुघट पराई ।"

इ—"विप्र विवेकी वेद बिद सम्मत साधु सुजाति ।
जिमि धोखे मद पानि कर सचिव सोच तेहि भाँति ।।"
—(अयो० ११४)

ई—"जिमि कुलीन तिय साधु सयानी, पति देवता करममनबानी ।
रहै करम बस परिहरि नाहू, सचिव हृदय तिनि दारुन दाहू ।"

२. "लोचन सजल दीठि भई थोरी ।
सुनइ न स्रवन विकल मति भोरी ।"
"सूखहि अधर लागि मुँह लाटी, जिउ न जाय उर अवधि कपाटी ।"
बिवरन भयउ न जाइ निहारी, मारिसि मनहु पितामहतारी ।
हानि गलानि विपुल मनव्यापी, जमपुर पंथ सोचि जिमि पापी ।"

सुमंत्र की ग्लानि—राम, सीता तथा लक्ष्मण के सबंध में विरह-व्यथित अयोध्या के पुरवासियो, शोकगतप्त महाराज दशरथ तथा राजमाताओ की जिज्ञासा का वह क्या उत्तर दे सकेंगे, इस विचार से सुमत्र अति कातर हो उठते है तथा उनकी दशा अति करुणापूर्ण बन जाती है। उनकी आत्मग्लानि, आत्मभर्त्सना तथा व्याज-निन्दा के प्रसग निम्नलिखित रूप मे प्रकट हुए है[1]—

अ—अयोध्या के पुरजन एव प्रियजनो के (राम के सबध में किये गये) प्रश्नो के वह क्या उत्तर देंगे, यह सोचकर सुमत्र किकर्तव्यविमूढ हो जाते है।

आ—रामविहीन रथ को जो कोई देखेगा वह स्वय सुमत्र को देखकर सकुच जायगा। इन दर्शको की ग्लानि का विचार कर सुमत्र अति क्षुब्ध हो जाते है।

इ—जब राम-माता बछड़े की स्मृति मे व्याकुल गाय की भाँति दौडती हुई आवेगी तथा राम के सम्बन्ध मे पूछेगी तो यही उत्तर देना पड़ेगा—

"गे बनु राम लखनु बैदेही।"

ई—अन्य और कोई राम के सम्बन्ध मे पूछेगे तो यही उत्तर देकर सुख प्राप्त किया जायगा।

उ—जब दुखी तथा दीन महाराज दशरथ जिनका जीवन रघुनाथ आधीन है, राम के सम्बन्ध मे पूछेगे तो किस मुँह से उत्तर दूँगा कि कुमारो को सकुशल पहुँचा आया।

सुमत्र की आत्मग्लानि कितनी असह्य हो गई इसका अनुमान सुमत्र के अयोध्या-प्रवेश-प्रसग से लगाया जा सकता है। दिन मे वह नगर-प्रवेश का साहस नही कर पाते। उनको इसी प्रकार का सकोच हो रहा है मानो गुरु, ब्राह्मण एवं गाय की हत्या कर डाली हो। इसीलिए किसी वृक्ष के नीचे छुपे-छुपे दिन बिताकर सध्या होने पर अंधकार मे नगर-प्रवेश की बात सोचते है। मनोविज्ञानाश्रित मौलिक उद्भावना के आधार पर गोस्वामीजी ने सुमत्र की शोकानुभूति को अति मार्मिक रूप दे दिया है। सुमत्र की रामभक्ति का गोस्वामीजी ने इस रूप मे विकास दिखलाया है कि रामकथा के अन्य भक्त पात्रो के समान ही सुमंत्र की दशा अति करुणापूर्ण दिखलाई देती है तथा उनकी राजभक्ति रामभक्ति मे विलीन हो जाती है।

---

१. बचनु न आब हृदय पछिताई, अवध काह मै देखब जाई।"
"राम रहित रथ देखिहि जोई, सकुचिहि मोहि बिलोकत सोई।"
"राम जननि जब आइहि धाई, सुमिरि बच्छु जिमि धेनु लवाई।
पूछत उतरु देव मै तेही, गे बनु राम लखनु बैदेही।"
"जोइ पूँछिहि तेहि ऊतरु देवा, जाइ अवध अब यहु सुखु लेवा।
"देहउँ उतरु कौन मुहु लाई, आयउ कुसल कुँवर पहुँचाई।"
—(अयो० १४५)

पशुपक्षीगत विरह-दशा—रघुनाथजी के घोडे इस प्रसंग में विशेष उल्लेखनीय है। राम ने उनकी सदा देखभाल की थी। साहचर्यगत भावना के अन्तर्गत राम के वियोगी घोडो की दशा किसी भी रामवियोगी पात्र से कम कारुणिक नही है।

राम के घोडे दक्षिण दिशा की ओर मुँह करके हिनहिनाते है। वह इस प्रकार परम व्याकुल हो रहे है जिस प्रकार बिना पखों के कोई पक्षी अति विकल हो रहा हो। खाना-पीना उन्होने छोड दिया है। उनकी आँखों से अविरल अश्रुपात होता रहता है।[1]

रामविहीन रथ को वापिस ले जाना राम के घोडे के लिए भी परम वेदना का कारण बन जाता है। उनकी शोकसतप्त दशा का चित्रण तुलसीदासजी निम्नलिखित रूप में करते है—

१. तडफडा रहे है तथा मार्ग में आगे नही बढते मानो वनमृग जोत दिए गए हो।
२. चलते-चलते यकायक मार्ग मे रुक जाते है तथा मुडकर पीछे देखते है।
३. जो कोई "राम लक्ष्मण वैदेही" कहता है तो उसी की ओर "हिंकरि-हिंकरि" कर देखने लगते है।

घोडो की दशा सहानुभूतिगत शोकानुभूति का कारण बन जाती है जब उनकी दीन दशा को देखकर अन्य व्यक्ति दुखी हो उठते है। उस मनोवैज्ञानिक तथ्य का निम्नलिखित रूप मे प्रकटीकरण हुआ है जबकि घोडों की उपर्युक्त दीन दशा को देखकर अन्य लोग भी व्याकुल हो जाते है—

"व्याकुल भए निषाद रघुबर बाजि निहारि।"
तथा
"भयउ निषाद विषाद बस देखत सचिव तुरग।"

अयोध्या वापिस पहुँचकर घोडो की करुणापूर्ण दशा रामवनवास के विषाद-पूर्ण प्रसग को जन-जन मे अविलम्ब प्रसारित कर देती है। रथ को देखकर अयोध्या वासियो का एकत्रित होना स्वाभाविक था तथा उसको पहचानकर एव घोड़ो की दीन दशा को देखकर यह अनुमान लगा लेना भी सहज था कि राम वापिस नही आए। इसीलिए बिना कुछ पूछे ही पुरवासी अति व्याकुल होने लगते है—

---

१. देखि दखिन दिसि हय हिनहिनाही, जनु बिनु पख विहग अकुलाई।
नहि तृन चरहि न पिअहि जलु मोचहि लोचन बारि॥"
—(अयो० १४२)
"तरफराहि मग चलहि न घोरे बन मृग मनहुँ आनि रथ जोरे।
अडुक परहि फिरि हेरहि पीछें, राम वियोगि बिकल दुख तीछे।
जो कह रामु लखनु बैदेही, हिंकरि-हिंकरि हित हेरहिं तेही।
बाजि बिरह गति कहि किमि जाती; बिनु मनि फनिक बिकल जेहि भाँती।"
—(अयो० १४१/३, ४)

"रथु पहिचानि विकल लखि धोरे।
गरहिं गात जिमि आतप ओरे ।।"

चित्रकूट प्रसंग पशुखगमृग—महाराज के निधन-समाचार को सुनकर चित्रकूट विशेषरूप से शोकाभिभूत हो जाता है। राम-लक्ष्मण तथा सीता की परम शोकानुभूति एक बार पुनः अति करुणापूर्ण दृश्य को उपस्थित कर देती है जिसके फलस्वरूप ऐसा प्रतीत होने लगता है मानो महाराज का निधन उसी दिन हुआ हो। इस महाशोक में चित्रकूट का सम्पूर्ण चराचर जगत् दुखी दिखलाई देता है।

शोकानुभूति के अन्तर्गत भोजन के प्रति उदासीनता एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है। गोस्वामीजी ने समागत सम्पूर्ण समाज की भोजन के प्रति उदासीनता का प्रकटीकरण किया है किन्तु इस तथ्य को गोस्वामीजी इस प्रकार सीधे-साधे रूप मे नही रखते। वे पशुखगमृग की दशा का चित्रण करते है तथा उसके द्वारा समाज की दशा का अनुमान लगाना पाठक के लिए छोड देते है—

"पसु खग मृगन्ह न कीन्ह अहारू,
प्रिय परिजन कर कौन विचारू।"

गीतावली में घोड़ों का प्रसंग—गीतावली मे दिए हुए इस वर्णन को यहाँ देख लेना आवश्यक होगा। इसके अभाव मे "पशुपक्षीगत विरह प्रसग" अपूर्ण ही रह जावेगा।

सूर का "अति कृसगात भई है तुम बिन परम दुखारी गाय" पद पशुपक्षीगत शोकानुभूति का आदर्श उदाहरण सिद्ध हुआ तथा इसका अनुकरण अन्य कवियो के लिए आवश्यक हो गया। तुलसीदासजी भी इस रूप मे शोकानुभूति को प्रकट करने के लिए विवश हुए तथा पद-शैली मे ही उन्होने राम के घोडो का प्रसग लगभग इसी रूप मे प्रस्तुत किया।

कवि ने माँ का सदेश लिखा और उसमे पशुपक्षीगत विरह-वेदना का मार्मिक शब्दों में प्रकटीकरण किया—

"राघौ, एक बार फिर आवौ।
ए बर बाजि बिलोकि आपने बहुरो बनहि सिधावौ।
जे पय प्याइ पोसि कर-पकज बार बार चुचुकारे।
क्यों जीवहि मेरे राम लाडिले ते अब निपट बिसारे।
भरत सौगुनी सार करत है अति प्रिय जानि तिहारे।
तदपि दिनहि दिन होत झाँवरे मनहु कमल हिम मारे।
सुनहु पथिक जो राम मिलहि बन कहियो मातु सँदेसो।
तुलसी मोहि और सबहिनते इन्हको बडो अदेसो ।।"

तुलसी की कला-कुशलता का परिचय उपर्युक्त पदगत अपूर्व अभिव्यक्ति से सहज ही प्राप्त हो सकता है जब माता के इस सन्देश की गम्भीरता, पशुओ की अपनी

विवशता, राम की वनवास की अवधि को पूरा करने की दृढ़ता, दूसरों की शोकानु-भूति में सहानुभूति तथा माता कौशल्या के अचेतनमनगत राम दर्शनलालसा का एक सश्लिष्ट चित्र पाठक की आँखो के सामने नाचने लगता है।

बेचारे पशु वनवास-अवधि को क्या समझे। उनके लिए तो रामवियोग पूर्णतया निरपेक्ष एवं परम निराशाजनक है। इसीलिए उनकी दशा दिन-दिन अति शोचनीय होती जा रही है। उनकी इस असह्य दशा को देखकर "क्यो जीवहि" की आशका होने लगती है तथा वह (माता) संदेश भेजने के लिए विवश हो जाती है। इस संदेश को माता का एक स्वप्न कहा जा सकता है। वह जब स्वस्थ हुई होगी तो इस सदेश की निरर्थकता का ध्यान कर स्वय दुःखी हो उठी होगी—क्या इस सदेश को प्राप्त कर राम अयोध्या वापिस आ जावेगे ?

पुरजनों की विषम शोकानुभूति

अशुभ की आशंका—जब पुरजन "कुभाँति सचिव" के साथ राम को महाराज दशरथ के पास जाते हुए देखते है तो किसी अशुभ की आशका "जहँ तहँ" बिलखने लगते है। मत्री का असाधारण क्षोभ भावी घोर आपत्ति का प्रतीक बनकर उनके लिए असह्य हो जाता है।

आशंकागत करुण—रामवनवास के अवसर पर विषम शोक का दृश्य उपस्थित हो जाता है। अशुभ की आशका से अति दीन दशा को प्राप्त पुरजन अशुभ प्राप्ति के समय किस प्रकार अपने आपको सम्हाल सकते थे और फिर सब रामवनवास की "सुतीखी बात"[1] अनायास एव यकायक ही नगर मे व्याप्त होगई तब तो उनकी दशा और भी असह्य एव दारुण बन गई। गोस्वामीजी ने इस असह्य व्यथा का वर्णन निम्नलिखित रूप मे किया है[2]—

१. इस दुःखद सवाद को सुनकर सम्पूर्ण नर-नारी व्याकुल होगए (जिस प्रकार बेलि-विटप दावाग्नि को देखकर कातर हो उठता है।)
२. जो जहाँ इस दुःखद संवाद को सुनता है, शोकानुभूति के कारण वही अपना सिर धुनने लगता है।
३. सम्पूर्ण नगर में अति विषाद व्याप्त हो रहा है कोई धैर्य धारण नही कर पा रहा।
४ सब के मुख सूख रहे है।

---

१. "नगर व्यापि गई बात सुतीछी, छुअत चढी जनु सब तन बीछी।
सुनि भए बिकल सकल नरनारी, बेलि विटप जिमि देखि दवारी॥"

२. "जो जहँ सुनइ धुनइ सिरु सोई, बड़ विषादु नहि धीरजु होई।
मुख सुखाहि लोचन स्रवहि सोकु न हृदय समाइ।
मनहुँ करुन रस कटकई उतरी अवध बजाइ।"

—(अयो० ४६)

५. नेत्रों से अश्रुमोचन हो रहा है। शोक हृदय मे नही समा रहा। ऐसा प्रतीत होता है मानो करुण रस अपने कटक के साथ अयोध्या मे आ गया है।

चित्रकूट में माता कौशल्या को भरत के सम्बन्ध मे विशेष चिन्ता है। राम के प्रति भरत के गूढ स्नेह को देखकर माता को यह सोच है कि राम के वियोग में भरत जीवित कैसे रहेगे! माता की यह आशका ही करुणरस का सचार करती है। मूल प्रसग यहाँ निम्नलिखित रूप मे अवलोकनीय है—

"तौ भल जतन करब सुबिचारी, मोरे सोचु भरत कर भारी।
गूढ स्नेह भरत मनमाही, रहे नीक मोहि लागत नाही।
लखि सुभाउ सुनि सरल सुबानी सबभइ मगन करुनरस रानी।"
—(अयो० २८३/२-३)

उपर्युक्त प्रसंग मे गो० तुलसीदासजी ने करुणरस के क्षेत्र का विस्तार किया है। मूल मनोभाव आशका एव चिन्ता है जो वक्ता की सहज सरलता मे विशेष प्रभावोत्पादक बन गए है तथा करुणरस की योजना करते है।

पुरजनों की ग्लानि एवं क्षोभ—पुरजनो की ग्लानि एव क्षोभ, शोक की असह्यावस्था मे अमर्ष की ओर उन्मुख हो जाता है जब वे सुनते है कि यह सब आपत्ति कैकेयी के कारण उत्पन्न हुई है। इसीलिए उनकी मनोव्यथा का सारा वेग कैकेयी को बुराभला कहने मे निकल पडता है।[1]

१—जहाँ तहाँ लोग कैकेयी को गाली देते है।
२—उसके इस कार्य की कटु आलोचना करते है।
अ—कैकेयी ने भवन पर छान छा कर आग लगादी है।
आ—वह अपने हाथो से अपनी आँखे निकालकर देखना चाहती है।
इ—वह सुधा फेक कर विष चखना चाह रही है।
ई—रघुवश रूपी वन के लिए वह आग बन गई है।
उ—शाखा पर बैठकर इसने पेड को काटा है।
ऊ—सुख मे शोक का ठाठ रच दिया है।

अतएव यह कैकेयी पापिन है, कुटिल, कठोर, कुबुद्धि अभागिन है।

पुरजनों की सामान्य दशा—पुरजनो की सामान्य दशा का वर्णन गोस्वामीजी

---

१. "मिलेहि माझ बिधि बात बेगारी, जहँ तहँ देहि कैकेइहि गारी।
एहि पापिनिहि बूझि का परेऊ, छाइ भवन पर पावकु धरेऊ।
निज कर काढ नयन चह दीखा, डारि सुधा विषु चाहत चीखा।
कुटिल कठोर कुबुद्धि अभागी, भइ रघुवस बेनु बन आगी।
पालव बैठि पेडु एहि काटा, सुख महुँ सोक ठाटु धरि ठाटा।"
—(अयो० ४६/१, २, ३)

बाह्यव्यंजको द्वारा करते है। ऐसा प्रतीत होता है मानो कवि ने शोकसंतप्त एक-एक पुरजन का समीप से अध्ययन किया है तथा यथातथ्य चित्रण करने में इसी कारण वह इतना सफल हो सका है[1]—

१—प्रत्येक जन सोचता है कि यह क्या हुआ ?

२—हृदय मे असह्य दाह है।

३—उत्साह नष्ट हो गया है।

४—विषम दाह मे जलते हुए वे दीर्घ श्वासे ले रहे है।

५—विपुल वियोग मे प्रजा व्याकुल है। उनका शरीर कृश है, मन दु खी है, बदन मलीन है, वे हाथ मीडकर सिर धुनते है तथा पखविहीन पक्षी की भाँति तडफडा रहे है।

बाह्यव्यजको के वर्णन के साथ अनुभूति की गभीरता का प्रकटीकरण करने के लिए कवि समकक्ष दारुण अनुभूतियो के उदाहरण देता जाता है जिससे पात्रगत बाह्य एवं आन्तरिक दशा का वास्तविक प्रकटीकरण सभव हो जाता है। पुरजनो की विकल तथा व्यथापूर्ण दशा के स्पष्टीकरण के लिए कवि ने कहा कि पुरजन इस प्रकार व्याकुल है जिस प्रकार मधुमक्खियाँ मधु के छिन जाने पर परम अधीर तथा विकल हो जाती है। इस उदाहरण द्वारा कवि ने पुरजनो की विकलता का सजीव चित्र उपस्थित किया है।

अयोध्या-वर्णन —वनवास के लिए प्रस्तुत राम के प्रस्थान के समय नगर की दशा अति शोचनीय हो जाती है। चारो ओर कुहराम मच जाता है। नागरिको का आर्त्तनाद सुना नही जाता। अयोध्या की इस शोकपूर्ण दशा का कवि ने निम्नलिखित रूप मे वर्णन किया है[2]।

---

१. "जरहि विषम जर लेहि उसासा, कवनि राम बिनु जीवन आसा।
विपुल वियोग प्रजा अकुलानी, जनु जलचर गन सूखत पानी।"
"तन कृस मन दुखु बदन मलीने, विकल मनहुँ माखी मधु छीने।
कर मीजहि सिरु धुनि पछिताही, जनु बिनु पख बिहग अकुलाही।"
"देखे लोग बिरह दब दाढे।" —(अयो० ५०/३)

२. "राम चलत अति भयउ विषादू, सुनि न जाइ पुर आरत नादू"।
लागति अवधि भयावन भारी, मानहुँ कालिराति अँधियारी।
घोर जतु सम पुर नरनारी, डरपहि एकहि एक निहारी।
घर मसान परिजन जनु भूता, सुत हित मीत मनहुँ जमदूता।
बागन्ह बिटप बेलि कुम्हिलाही, सरित सरोवर देखि न जाही॥
हय गय कोटिन्ह केलिमृग पुरपसु चातक मोर।
पिक रथाँग सुक सारिका सारस हंस चकोर॥"
"राम वियोग विकल सब ठाड़े, जहँ तहँ मनहु चित्र लिखि काढे।"
—(अयो० ८३)

१—अयोध्या अति भयानक लगती है मानो अँधेरी कालरात्रि हो ।

२—नगर के नर-नारी घोर जुन्तुओ के समान है जो एक-दूसरे को देखकर डरते है ।

४—परिजन भूतों जैसे लग रहे है ।

५—पुत्र, मित्र तथा अन्य हितैषी यमदूत के समान दिखलाई दे रहे है ।

६—उपवनों में वृक्ष तथा लताएँ मुरझा गई है ।

७—नदी-तालाब देखते नही बनते ।

८—हाथी, घोडा तथा पुर के अन्यान्य पशु, चातक, मोर, पिक, शुक, सारिका, सारस, हस, चकोर आदि सब राम-वियोग मे विकल खडे है मानो चित्रलिखे हो ।

९—सम्पूर्ण नगर तथा वन में "विपुल" खगमृग तथा "सकल" नरनारी कैकेयी द्वारा दसों दिशाओ मे लगादी गई दुसह दावाग्नि से कातर होकर भागने लगे है ।

इस वर्णन के अन्तर्गत कवि का सकेत नगर की उस बाह्य दशा की ओर है जिसका अभास प्रथम दर्शन मे संभव होता है । कवि ने शोकानुभूति के समय नगर की अति सामान्य दशा का अवलोकन किया है । शोकाभिभूत नगर का श्मसान के ममान दिखलाई देना अति स्वाभाविक है ।[1]

अपनी भावनाओ के रग मे रगने की मानवी प्रवृत्ति ऐसे अवसरो पर क्रिया-शील रहती है तथा मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि मे इन प्रसगो की स्वाभाविक अभिव्यक्ति संभव हो जाती है ।

रामवियोग पर पुरजनों का शोक—रामवनगमन के समय राम के साथ दुखी एवं कातर पुरजन तमसा नदी तक पहुँच जाते है । रात मे जब सब लोग सो जाते है तो भगवान राम सुमत्र को जगाकर मार्ग-चिन्हो को मिटाते हुए आगे बढ़ जाते है । इधर उधर तमसा के तीर पर प्रातः जब पुरवासी जगते है तो राम को न देखकर परम विकल हो उठते है । "राम राम" पुकारते हुए वे चारो दिशाओ मे उद्भ्रान्त होकर दौडने लगते है किन्तु रथ की खोज नही कर पाते । इस प्रकार पूर्ण निराशा छा जाती है । कलाकार तुलसी पुरजनो की विषय-अनुभूति की अभिव्यक्ति

---

१. "नगर सकल बनु गहबर भारी, खगमृग विपुल सकल नरनारी ।
विधि कैकेई किरातिन कीन्ही, जेहि दव दुसह दसहु दिसि दीन्ही ।
सहि न सके रघुबर बिरहागी, चले लोग सब व्याकुल भागी ।।"

बड़े सुन्दर ढग से करते है ।

समुद्र में जहाज के डूब जाने पर जिस प्रकार बनिक-समाज बडा विकल हो जाता है उसी प्रकार राम के चले जाने पर पुरजन परम व्याकुल एव दुःखी हो रहे है। वे आपस मे एक दूसरे को समझाते है कि हम लोगो को साथ रखने मे राम को क्लेश होता यही सोचकर राम ने हम लोगो की त्याग दिया है[1] ।

विरह मे व्यथित पुरजन मीनप्रेम की सराहाना करते है तथा अपने आपको धिक्कारते है । विरह मे कातर होकर वे मृत्यु की याचना करते है किन्तु "माँगे मरनु" कहाँ मिलता है । पुरजनों की यह करुणापूर्ण दशा अयोध्या पहुँचते पहुँचते सह्य बन जाती है तथा इस प्रकार करुण रस का प्रसग समाप्त हो जाता है ।[2]

मार्ग के नर-नारियों का क्षोभ—राम-सीता-लक्ष्मण को वन-मार्ग से जाते हुए देखकर मार्ग के नर-नारी उनके सहज-सौन्दर्य पर मुग्ध हो जाते है किन्तु जब उनको यह ज्ञात होता है कि इनको वनवास दिया गया है तो अति दुःखी हो उठते है। राम-वनवास को असगत एव अनीतिपूर्ण समझकर तथा दैव को इन सबका मूल कारण जानकर वे दैवनिन्दा करने लगते है। इस प्रसग में प्रकट यह वह सात्विक क्षोभ है जिसने अपने पराए के संकुचित विचारो को पार करके आदर्श के अपघात को देखकर मार्ग के नर-नारियों को क्षुब्ध होने के लिए विवश कर दिया ।

वे समझते है कि विधाता के सब कार्य उल्टे होते है, क्योंकि वह स्वय "निपट निरंकुस निठुर निसकू" है। इसीलिए जो मन मे आता है वही करता है। चन्द्रमा को सकलंक बना दिया, सागर के जल को खारा बना दिया तथा कल्पतरु को वृक्ष-योनि दी । निश्चय ही उसी विधाता ने इन राजकुमारो को वन मे भेज दिया है ।

ये सुन्दर राजकुमार सुख-वैभव भोगने योग्य थे। इनको वनवास देकर वास्तव में संसार की भोग्य वस्तुएँ व्यर्थ सिद्ध हो गईं। भिन्न-भिन्न प्रकार के वाहन व्यर्थ है जब ये राजकुमार ही नगे पैरो चल रहे है। सुभग शय्या व्यर्थ है जब इन राजकुमारो को पृथ्वी पर कुशपत्र बिछाकर सोना पडता है। धवलधाम व्यर्थ है जब ये राजकुमार वृक्षो के नीचे निवास करते है। "विविध भाँति भूषन-वसन" भी व्यर्थ

---

१. "रथ कर खोज कतहुं नहि पावहि, राम राम कहि चहुँ दिसि धावहि ।
मनहुँ बारिनिधि बूड जहाजू, भयउ विकल बड बनिक समाजू ।
एकहि एक देहि उपदेसू, तजे राम हम जानि कलेसू ॥"—(अयो० ८४/१,२)

२. "निदहि आपु सराहहिं मीना, धिग जीवन रघुबीर विहीना ।
जो पै प्रिय वियोगु बिधि कीन्हा, तौ कस मरनु न माँगे दीन्हा ॥"

हैं जब ये सुन्दर राजकुमार केवल वल्कल वस्त्र धारण किए हुए हैं ।[1]

सीताहरण—सीताहरण प्रसग मे सीता की करुण पुकार रक्षा-याचना कही जा सकती है । जटायु रक्षा करने के लिए आता भी है । इस पुकार से राम का स्मरण भी वह रक्षा-भाव के अन्तर्गत ही करती है । इस प्रकार यह पूर्ण प्रसग करुण के अन्तर्गत आता है ।

सीता का करुणक्रन्दन—सीता अपने हरण को अपने किसी अपराध का परिणाम समझती है तथा अपनी आत्मग्लानि मे अति कातर हो उठती है । भगवान् राम को स्मरण करते हुए उनको प्रभु के निम्नलिखित चार रूपो का स्मरण होता है[2]—

१—जग मे एक वीर ।

२—आरति हरन ।

३—सरन सुखदायक ।

४—रघुकुलसरोजदिननायक ।

प्रभु के इन गुणो की सार्थकता मे सीता "सीताहरण" रहस्य को समझ नही पाती । इसीलिए अपने दोषो की ओर दृष्टि डालने के लिए विवश हो जाती है । उनके मुख से हठात् यही शब्द निकल पडते है—"केहि अपराध बिसारेहु दाया ।"

राम के साथ सीता को लक्ष्मण का स्मरण होता है तथा लक्ष्मण की स्मृति उन को लक्ष्मण के प्रति अपने रोष तथा कहे गए कटु वचनों का स्मरण करा देती है तथा सीता इनका स्मरणकर आत्मग्लानि की दारुण वेदना मे विलख उठती है—"हा लछिमनु तुम्हार नहिं दोसा ।"

---

१. "फिरत नारि-नर अति पछिताही, दैअहि दोषु देहिं मनमाही ।

... ...

निपट निठुर निरकुम निसकू, जेहिं ससि कीन्ह सरुज सकलकू ।
रूख कलपतरु सागरु खारा, तेहि पठए बन राजकुमारा ।
जौ पै इन्हहि दीन्ह वनवासू, कीन्ह बादि बिधि भोग बिलासू ।
ए विचरहिं मग बिनु पदत्रना, रचे बादि बिधि बाहन नाना ।
ए महि परहि डासि कुस पाता, सुभग सेज कत सृजत बिधाता ।
तरुअर बास इन्हहि विधि दीन्हा, धवल धाम रचि-रचि श्रमु कीन्हा ।
....बिबिध भाँति भूषन बसन बादि किए करतार ॥"

—(अयो० ११८/१९)

२. "हा जग एक वीर रघुराया, केहि अपराध बिसारेहु दाया ।
आरति हरन सरनसुखदायक, हा रघुकुल सरोजदिननायक ।"

*

"आरत बचन कहति बैदेही।
बिलपति भूरि बिसूरि दूरि गए मृग सँग परम सनेही।"
—(गीतावली)

इस आत्मग्लानि से आहत सीता करुण विलाप करने लगती है। उनका विलाप चराचर जगत् को दुःखी बना देता है। वह विविध प्रकार से विलाप करती हुई जा रही है। सीता की असहाय दशा का दिग्दर्शन कवि भयभीत मृगी के उदाहरण से कराता है जो (मृगी) बधिक के वशवर्ती होकर उसके साथ जाने के लिए विवश है। इस सम्पूर्ण प्रसंग मे सीता की असहायावस्था विशेषरूप से कवि की दृष्टि में रही है जिसके फलस्वरूप यह प्रसग अति मार्मिक बन गया है।[1]

सीता का चीत्कार विदेशी सत्ता रूपी रावण से प्रपीडित जनता की वह करुण पुकार है जिसने कवि को द्रवीभूत कर दिया।

अशोक वाटिका में सीता की करुणदशा—अशोक वाटिका में सीता की करुण-दशा का हनुमान दर्शन करते है। हनुमान विरहाकुल सीता की परम करुणापूर्ण दशा को देखकर "परम दुखी" होते है।

कृश शरीर, सिर पर जटा तथा एक वेणी धारण किये हुए, हृदय में प्रभुगुणगान करती हुई, नेत्रो को नीचे किए हुए तथा मन को प्रभुचरणो मे लीन किए हुए दीन सीता की करुणापूर्ण दशा हनुमान को असह्य हो गई है।[2] परम निराशा मे सीता ने जब आत्मघात का निश्चय कर लिया तथा "आनि काठ रचु चिता बनाई, मातु अनल पुनि देहि लगाई" प्रार्थना की तब तो हनुमान किंकर्तव्यविमूढ हो गए। शोक सतप्त प्राणी को प्रलाप एव परिवेदन मे आश्रय मिल सकता है। किन्तु निराश प्राणी के लिए विवशता मे आत्मघात के सिवाय कोई चारा ही नही रहता है। सीता की विवशता विकल व्यथा मे परिणत हो गई जब त्रिजटा स्पष्ट उत्तर दे गई—

"निसि न अनल मिलि सुनु सुकुमारी।"

अति व्यथित होकर सीता आकाश के तारो, अशोक के रक्तवर्ण से आग की याचना करने लगी। इस परम निराशाजन्य दृश्य को देखकर हनुमान परम दुःखी हो उठे तथा उनको एक क्षण एक कल्प के सामान भारी हो गया। अवसर का लाभ उठा कर हनुमान ने मुद्रिका डाल दी तथा इस प्रकार स्थिति को सम्हाल लिया। गोस्वामीजी ने इस प्रसंग को अन्य पुरुषानुभूति के अन्तर्गत रखकर विशेष मर्मस्पर्शी बना दिया है।

सीता की करुण दशा रौद्र मनोभाव की प्रतिक्रिया के रूप में करुण मनोभाव के अन्तर्गत निम्नलिखित रूप मे प्रकट हुई है—

रावण—"मास दिवस महुँ कहा न माना, तौ मैं मारबि काढ़ि कृपाना।"

---

१. "करत विलाप जाति नभ सीता, व्याघ बिवस जनु मृगी सभीता।"
२. "कृस तनु सीस जटा एक बेनी, जपति हृदयँ रघुपति गुन श्रेनी।"
निज पद नयन दिए मन, राम पद कमल लीन।
परम दुखी भा पवनसुत, देखि जानकी दीन॥"—(सु० का० ९/५)

सीता—"मास दिवस महुँ नाथु न आवा तौ पुनि मोहि जिअत नहिं पावा।"
—(सु० २६/३)

लक्ष्मण-शक्ति

लक्ष्मण-शक्ति एक अति करुणापूर्ण प्रसंग है जिसके अन्तर्गत राम भ्रातृप्रेम के उत्कृष्ट आदर्श की स्थापना करते हैं। उनका ब्रह्म-स्वरूप उनके नर-रूप में पूर्ण विलीन हो जाता है तथा प्रभु इस अवसर पर अति साधारण मनुष्य की भाँति शोक प्रकट करते है।

हनुमान मूर्च्छित लक्ष्मण को उठाकर अपने कटक मे ले आते है। लक्ष्मण-मूर्च्छा को सुनकर राम को बडा दुःख हुआ किन्तु धैर्य और विवेक ने साथ न छोडा। अविलम्ब उपचार का प्रबन्ध किया गया। हनुमान सजीवनी बूटी लेने के लिए भेजे गए।

आधी रात बीत गई किन्तु हनुमान नही आये। "भोर" होते-होते लक्ष्मण की दशा असाध्य हो जायगी, इस विचार से राम आहत हो उठे। उनकी निराशा ने उन को अधीर बना दिया। वह धैर्य और विवेक को खो बैठे। भाई को उठाकर हृदय से लगा लिया तथा दारुण शोकानुभूति प्रलाप बनकर फूट पडी।

भाई का उपकार—भाई के उपकार का राम को सर्वप्रथम स्मरण हुआ। "मृदुल सुभाउ" लक्ष्मण अपने बडे भाई को कभी दुःखी नही देख सकते थे। राम की सेवा के लिये ही उन्होने माता-पिता तथा बन्धुबान्धवो को छोड दिया था। वन मे राम के साथ "हिम आतप वाता" जनित अनेक कष्ट सहते फिरे थे। ऐसे परम उपकारी भाई के निधन के कारण अपने आपको निस्सहाय समझ लेना राम के लिए अति स्वाभाविक था।

राम-प्रलाप—राम का ध्यान इस आपत्ति के मूल कारण की ओर जाता है और वह कह उठते है—"वन में बन्धुविछोह होगा" इस तथ्य को यदि मैं जानता तो मै पिता की आज्ञा को न मानता, और वन न आता।[1]

भ्रातृक्षति की पूर्ति को असभव समझकर राम की वेदना असह्य बन जाती है। वह परम विकल होकर कहते है —"सुत, बित, नारि, भवन तथा परिवार" ससार मे नष्ट हो जाते है और फिर प्राप्त हो जाते है किन्तु सहोदार पुन. नही मिलता; इसलिये हे भाई! लक्ष्मण उठो और इस घोर आपत्ति से मुझे मुक्त करो।

भ्रातृक्षति के पश्चात् जीवित रहने की कल्पना राम को अति दुःखी बना देती है। वह सोचने लगते है, यदि भ्रातृवियोग के पश्चात् मै जीवित रहा तो मेरा जीवन

---

१. "जौ जनतेउ बन बध बिछोहू, पिता वचन मनतेउ नहिं ओहू।
सुत बित नारि भवन परिवारा, होहि जग बारहि बारा।
अस बिचारि जिय जागहु ताता, मिलइ न जगत सहोदर भ्राता।"
—(लंका—६०)

उसी प्रकार अति करुणापूर्ण हो जायगा जिस प्रकार पंखरहित पक्षी, मणिरहित सर्प तथा कररहित हाथी का जीवन अति व्यथापूर्ण होता है।

रामनन की पीड़ा—अयोध्या से राम सीता और लक्ष्मण के साथ वन आए थे। वह यह सोचकर परम अधीर हो उठते है कि अब उनको अकेला ही वापिस लौटना पड़ेगा। यदि किसी प्रकार सीता मिल भी गई तब भी लक्ष्मण तो साथ न होगे। छोटे भाई लक्ष्मण के बिना अयोध्या में राम किस प्रकार मुँह दिखलावेंगे, यह विचार राम की मन की पीडा का कारण बन जाता है। वह सोचते है कि लोग यही कहेगे कि राम ने स्त्री के लिए छोटे भाई को "गवाँ" दिया। इस प्रकार इन घोर यातनाओं की कल्पना राम को अति कातर बना देती है और वह सोचने लगते है कि इससे तो यही अच्छा था कि 'सीता-हरण' के पश्चात् ही हम दोनों भाई अयोध्या वापिस चले जाते क्योंकि स्त्रीक्षति से विशेष हानि नही होती[1]। भ्रातृ एव स्त्रीक्षति का यह तुलनात्मक अध्ययन राम की शोकानुभूति के अन्तर्गत अति स्वाभाविक रूप में प्रकट हुआ है। भ्रातृ-क्षतिगत दारुण शोकानुभूति इसकी पृष्ठभूमि है। इस रूप में राम ने आदर्श भ्रातृस्नेह की प्रतिष्ठा की है।

गीतावली में यही प्रसंग—गीतावली में यह प्रसंग अति मार्मिकरूप में प्रकट हुआ है। गीतावली के वर्णन के आधार पर राम की दारुण शोकानुभूति निम्नलिखित रूप में देखी जा सकती है—

राम की आत्मग्लानि तथा आत्मनिन्दा इस वर्णन मे मुखरित हो उठी है। राम कहते है कि मुझसे तो कभी कुछ हुआ ही नही[2]।

१—माता-पिता पुरजन तथा सम्पूर्ण सुखो को छोडकर वन-वन लक्ष्मण मेरे साथ घूमे। मेरी विपत्ति में हाथ बँटाया तथा अपने कर्तव्य को भली-भाँति पूरा

---

१. "जथा पख बिनु खग अति दीना, मनि बिनु फनि करिबर कर हीना।
अस मम जिवन बन्धु बिनु तोही, जौ जड दैव जिआवै मोही।
जैहउँ अवध कौन मुहु लाई, नारि हेतु प्रिय भाइ गँवाई।
बरु अपजस सहतेउँ जग माँही, नारि हानि बिसेष छति नाही॥"
—(लका—६१)

२. "मो पै तौ न कछू ह्वै आई।
ओर निवाहि भली विधि भायप चाल्यौ लखन सो भाई।
पुर पितुमातु सकल सुख परिहरि जेहि वन विपति बटाई।
ता सँग हौं सुरलोक शोक तजि सक्यो न प्रान पठाई।
जानत हौ या उर कठोर ते कुलिस कठिनता पाई।
सुमिरि सनेह सुमित्रा-सुत को दरकि दरार न जाई।
तात मरन तिय हरन, गीधवध, भुज दाहिनी गँवाई।
तुलसी मैं सब भाँति आपने कुलहिं कालिमा लाई॥"

किया। आज ऐसा भाई लक्ष्मण स्वर्ग को चल दिया और मैं अपने प्राण उसके साथ न भेज सका।

२—प्रिय भ्राता लक्ष्मण के निधन पर मेरा हृदय शोक भी न मना सका। कुलिश से कठोर हृदय मे फटकर दरार भी न पडी।

३—मैंने सभी प्रकार से अपने कुल को कलंक ही लगाया। पिता की मृत्यु हुई, स्त्री का हरण हुआ, गीधवध हुआ तथा दक्षिण भुजा के समान भाई लक्ष्मण को गँवा दि ा किन्तु मै इन सबको अन्यथा करने के लिए कुछ न कर सका।

दूसरे पद में राम के पुरुषार्थ को शिथिल दिखाते हुए कवि ने राम की असहाय स्थिति का प्रकटीकरण किया है।[1]

"विपत्ति बँटाने वाले" भाईरूपी बाहु के अभाव मे राम किसका भरोसा करें। समर-संकट के समय लक्ष्मण-जैसे वीर भाई का वियोग राम की सम्पूर्ण आशाओ पर पानी फेर देता है। उनको यही सोच है कि—

अा—भालु-बन्दर गिरिकन्दराओ मे चले जावेगे। वह अकेले रह जावेगे। उनको "अनुजसघाती" होने का घोर परिताप है। अतएव समर मे वह कुछ पुरुषार्थ न दिखला सकेगे।

इ—विभीषण को राज्य देने का वचन दिया था। वह वचन कैसे पूरा होगा? कर्त्तव्यगुरुता तथा वचनवद्धता के कारण राम विकल हो उठते है। उनकी व्यथा द्विगुणित गंभीर बन जाती है। कर्त्तव्य के आदर्श के साथ शोकानुभूति तथा भाई के अभाव के साथ असहायावस्था इन तथ्यो का समन्वय एक समस्या है जिसके कारण राम की दशा अति विषम बन गई है। गोस्वामीजी इस प्रकार की विषम परिस्थितियों का सुन्दर मगठन कर स्थल की मार्मिकता का उद्घाटन करने में सिद्धहस्त है।

विपक्षी पात्रों की शोकानुभूति

१. **तारा विलाप**—सुग्रीव की मित्रता बालि-वध की रहस्यमय योजना का कारण बनती है। राम छिपकर बालि पर बाण छोडते है और बालि आहत होकर पृथ्वी पर गिर पडता है। पतिवध का समाचार सुनकर तारा शोकविकल हो जाती

---

१. "मेरो सब पुरुषारथु थाको।

विपति बँटावन बधु-बाहु बिनु करौ भरोसो काको।

.. ..

गिरिकानन जैहै साखामृग हौं पुनि अनुज सघाती।

ह्वै है कहा विभीषन की गति रही सोच भरि छाती।"

है।[1] उसके केश छूटे हुए है, देह की "सँभार" नहीं है। नाना प्रकार से विलाप कर रही है। तारा की शोकानुभूति का यह स्वाभाविक वर्णन बीच में शान्त हो जाता है जब तुलसीदासजी "दीन्हि ग्यान हरि लीन्ही माया" लिखकर तारा को ज्ञानी भक्त के रूप में अविलम्ब मौन होने के लिए विवश कर देते है। अतः यहाँ रस का भली-भाँति परि-पाक नहीं हो पाता।

२. **रावण शोकानुभूति**--अक्षयकुमारवध के अवसर पर रावण संभवतः जीवन में प्रथम बार दुःख का अनुभव करता है। हो सकता है इसीलिए शोकानुभूति अधिक गंभीर न हो सकी। यद्यपि इसका मुख्य कारण विपक्षी पात्रों की शोकानुभूति की ओर से गोस्वामीजी की उदासीनता ही है। अक्षयवध प्रसग को आधी चौपाई मे ही चलता कर दिया जाता है—"सो सुनि रावन भयउ दुखारा"। इस प्रकार यह प्रसग करुण की अभिव्यक्ति नही करा पाता।

दूसरा प्रसंग कुंभकरण मृत्यु पर उपस्थित होता है। कुभकरण जैसे जगत्-विख्यात योद्धा के लिए रावण की गभीर वेदना स्वभावत. ही दारुण बन जाती है[2]। रावण इस अवसर पर "बहु विलाप" करता है तथा "बधुसीस" को पुनः पुनः गोद मे रखता है।

रावण की शोकानुभूति का तीसरा तथा अन्तिम प्रसग मेघनादवध के समय उपस्थित होता है। रावण मेघनादवध के दुःखद समाचार को सुनकर परम व्याकुल हो जाता है। "अक्षयवध" के अवसर के सदृश केवल दुःखी होकर नही रह जाता प्रत्युत मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पडता है।

सम्पूर्ण लंका के लिए ही मेघनाद दारुण शोकानुभूति का कारण बन जाता है। सब लोग शोकविकल तथा लका की क्षेम के सम्बन्ध मे विशेष चिन्तित हो जाते है।

मंदोदरी-विलाप—मेघनादवध के समय मदोदरी का विलाप गभीर शोकानुभूति को प्रकट करता है। मदोदरी भारी रुदन करती है। अनेक प्रकार से पुकार-पुकार कर विलाप करती है तथा बार-बार छाती पीटती है। शोकानुभूति के अन्तर्गत स्त्रियो का छाती पीटना शोकानुभूति बाह्यव्यजकों की एक विशेषता है जिसका उल्लेख तुलसीदासजी ने किया है।

---

१. 'नाना विधि विलाप कर तारा, छूटे केस न देह संभारा।
तारा विकल देखि रघुराया, दीन्ह ग्यान हरि लीन्ही माया॥"

२. "बहु विलाप दसकंधर करई, बंधु सीस पुनि पुनि उर धरई।
रोवहि नारि हृदय हति पानी, तासु तेज बल बिपुल बखानी॥"

रावणवध के अवसर पर मदोदरी की शोकानुभूति अपेक्षाकृत निम्नरूप में प्रकट होती है। गोस्वामीजी ने राम के ब्रह्मस्वरूप में मंदोदरी की आस्था दिखलाई है जिसके फलस्वरूप वह समय-समय पर रावण से राम को भगवान मानने का आग्रह तथा सीता को लौटा देने की प्रार्थना करती हुई दिखलाई देती है। अन्य अवसरो पर रावण की विफलताओ का दिग्दर्शन कराती हुई राम-विरोध के दुष्परिणाम से रावण को अवगत कराती है। इसीलिए मंदोदरी का विलाप करुण मनोभावों के रूप में प्रगतिशील होकर धृति मे परिणत हो जाता है। मदोदरी की शोकानुभूति का निम्नलिखित रूप मे वर्णन हुआ है—

शारीरिक दशा—पति का कटा हुआ सिर देखकर मदोदरी व्याकुल तथा मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पडती है। केश कटे हुए है तथा शरीर की सम्हाल नही हो रही। वह नाना प्रकार से विलाप करती तथा छाती पीटती है[1]।

मानसिक दशा—विलाप करती हुई मन्दोदरी रावण के प्रताप का वर्णन करती है—

१. तुम्हारे बल से पृथ्वी हिलती थी।
२. पावक, शशि तथा सूर्य तुम्हारे सामने तेजहीन थे।
३ शेष तथा कमठ तुम्हारे भार को नही सह सकते थे।
४. वरुण, कुबेर, सुरेश तथा वायु मे से कोई भी रण मे तुम्हारा सामना नही कर सका।
५ तुमने अपनी भुजाओ के बल से काल को भी जीत लिया था।
६ तुम्हारी प्रभुता ससार मे विदित है।
७ तुम्हारे अधीन सारे "विधिप्रपच" थे। भयसहित तुमको सब सिर नवाते थे।

रावण के मृत शरीर का वर्णन जो मदोदरी की शोकानुभूति को उद्दीप्त करता है—

अ—धूल में पडा है।
आ—अनाथ की भाँति पडा हुआ है।
इ—सिर तथा भुजाओ को गीदड खा रहे है।
ई—कुल मे कोई रोनेवाला भी नही रहा।

मंदोदरी की यह शोकानुभूति रामभक्ति में विलीन हो जाती है जब वह अपने पति की इस दशा का कारण खोजती हुई इस निष्कर्ष पर पहुँचती है कि "राम

---

१. "पति सिर देखत मन्दोदरी,
मुरुछित विकल धरनि खसि परी।"
"पति गति देखि ते करहि पुकारा, छूटे केस नहिं वपुष सँभारा।
उर ताड़ना करहि विधि नाना, रोवत करहि प्रताप बखाना॥"

बिमुख यह अनुचित नाही ।"

कहना न होगा कि इस टिप्पणी द्वारा मंदोदरी का करुणक्रन्दन व्यर्थ सिद्ध हो जाता है। वह केवल परिपाटी का निर्वाहमात्र करती हुई दिखलाई देती है। राम के कार्यों को उचित सिद्ध कराने की कवि की चिन्ता ने मंदोदरी की शोकानुभूति को इस प्रकार प्रभावहीन बना दिया। जहाँ तक शोकानुभूति के प्रकटीकरण का प्रश्न है। गोस्वामीजी ने केवल मंदोदरी की शोकानुभूति का ही विस्तृत एवं अपेक्षित वर्णन विपक्षीपात्रों की शोकानुभूति के अन्तर्गत किया है।

"तब बल नाथ डोल नित धरनी, तेजहीन पावक ससि तरनी।
सेष कमठ सहि सकहि न भारा, सो तनु भूमि परेउ मरि छारा।
बरुन कुबेर सुरेस समीरा, रन सनमुख धरि काहुँ न धीरा।
भुजबल जितेहु काल जम साईं आजु परेहु अनाथ की नाईं।
जगत विदित तुम्हार प्रभुताई, सुत परिजन बल बरनि न जाई।
राम विमुख अस हाल तुम्हारा, न कोउ कुल रोवनहारा।
तक बस बिधि प्रपच सब नाथा, सभय दिसिप नित नावहि माथा।
अब तक सिर भुज जबुक खाही, राम बिमुख यह अनुचित नाही ।।"
—(लंका १०५)

विभीषण की शोकानुभूति—विभीषण की शोकानुभूति का संकेतमात्र वर्णन रावण-मृत्यु के अवसर पर गोस्वामीजी निम्नलिखित शब्दों में करते है। रामभक्ति के प्रश्रय में संभवत. विभोषण को रावण-वध मगलमय ही दिखलाई दिया—

"रुदन करत देखी सब नारी,
भयउ बिभीषन मन दुख भारी।"
तथा
"बधु दसा विलोकि दुख कीन्हा,
तब प्रभु अनुजहि आयसु दीन्हा।
लछिमन तेहि बहु विधि समुझायो।"
—(लका १०४/२,३)

यहाँ विभीषण के अनुभाव आदि को प्रकट होने का अवसर नही दिया गया। कवि दर्शक की भाँति विभीषण की दशा का दिग्दर्शन कराकर सतोष कर लेता है।

पराजय, पराभव, बन्धन, और बध

पराजय, पराभव, वध, बन्धनगत प्राय: प्रसग अपने मूल रूप मे करुणरस की अभिव्यक्ति नही करा सके हैं। उनके द्वारा सकेतमात्र स्थिति अथवा भावमात्र दशा का प्रकटीकरण हो सका है। यहाँ सक्षेप में इन प्रसगो पर इस दृष्टि से दृष्टिपात करलेना अप्रासगिक न होगा कि ये परिस्थितियों पर प्रकाश डालते है जिनमें उपर्युक्त शीर्षों

के अन्तर्गत करुणरस की अनुभूति संभव हो सकती थी।

पराभव का प्रथम प्रसंग सीता स्वयंवर के अवसर पर उपस्थित होता है। "देस-देस के भूपति नाना" सीता स्वयंवर मे भाग लेने के लिए उपस्थित हुए हैं किन्तु कोई भी राजा धनुष को न उठा सका। उनकी पराभवगत दशा गोस्वामीजी ने केवल "चलहिं लजाइ" शब्दो द्वारा व्यक्त की है। "श्रीहत भए हारि हिय राजा" कहकर पराभवजन्य वदनमलीनता की ओर सकेत किया गया है। इस प्रसग मे इन श्रीहत राजाओं की स्वानुभूति के प्रकटीकरण की कोई आवश्यकता न थी इसीलिए गोस्वामीजी ने उनको "नतमुख" दिखलाकर ही सतोष कर लिया।

रावण-पराभव--रावण-पराभव के निम्नलिखित स्थूल मानस मे प्रकट हुए है।

१—सेतु-बंध पर रावण की विकलता।

२—छत्रमुकुट ताटंक हनन।

३—रावण सभा मे अगद का प्रण तथा रावण-पराभव। सेतुबंध की सूचना पाकर रावण अति विकल हो जाता है।

रावण को विश्वास नही होता कि "सेतुबंध" किस प्रकार संभव हो गया। रावण की विकलता का मनोवैज्ञानिक सूक्ष्म अध्ययन गोस्वामीजी ने "सेतुबंध" सूचना की पुष्टि के अन्तर्गत किया है। रावण समुद्र के पर्यायवाची विभिन्न शब्दो द्वारा इस सूचना की पुष्टि करता है। उसके दसोमुख एक साथ पुकार उठते है—सेतु (बन्ध गया) ? बननिधि बँध गया) नीरनिधि ? उदधि ? पयोधि ?···(बँध गया)।

गोस्वामीजी दसमुखो के लिए समुद्र के दस पर्यायवाची शब्दो को रखकर रावण की विकलता का सजीव चित्रण उपस्थित कर देते है। उनका मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण कला के सौन्दर्य मे प्रस्फुटित हो उठा है। इस विकलता के साथ रावण के पराभव का सकेत-मात्र वर्णन निम्नलिखित रूप मे हुआ है—

" निज बिकलता बिचारि बहोरी
बिहँसि गयउ गृह करि भय भोरी।"

रावण के इस "बिहँसि" मे कितना त्रास तथा कितनी विकलता भरी हुई है, इसको मनोविज्ञान का विद्यार्थी सहज ही समझ सकता है।

छत्रमुकुट ताटंक हनन दूसरा प्रसग है। इस अवसर पर भी गोस्वामीजी रावण की पराभवगत शोकानुभूति का प्रकटीकरण नही होने देते। सभा को सशकित तथा भयभीत देखकर रावण हँसकर युक्तिपूर्ण बात बना देता है—

"सिरउ गिरे सतत सुभ जाही,
मुकुट परे कस असगुन ताही॥"

रावण सभा मे अगद का प्रण तीसरा प्रसग है। अगद रावणसभा मे पैर जमा देते है। "फिरहि रामु सीता मै हारी" प्रण के साथ अगद का पैर जमाना विशेषरूप से

महत्वपूर्ण बन जाता है। सम्पूर्ण सभा हार मान जाती है। कोई सभासद अंगद के पैर को हटा नही पाता। अन्त में रावण स्वयं उठता है तथा अगद का पैर पकडकर हटाना चाहता है। अंगद प्रत्युत्पन्नमति का परिचय देते हुए कह उठते हैं—

"मेरे पैर पकड़ने से तेरा उद्धार न होगा। हे दुष्ट, तू जाकर राम के चरण पकड़ प्रभु से क्षमायाचना माँग।"

इस तिरस्कारपूर्ण उत्तर को सुनकर रावण का लज्जित हो जाना स्वाभाविक था। फिर वह अपनी सभा का सभापतित्व कर रहा था तब तो उसका यह कार्य उस के लिए और भी लज्जा का कारण बन गया। अतएव श्रीहत होकर सिहासन पर जा बैठा।

रावण की अनुभूति की ओर कवि निम्नलिखित रूप मे संकेतमात्र करके रह जाता है—

"भयउ तेजहत श्री सब गई, मध्य दिवस जिमि ससि सोहई।
सिहासन बैठेउ सिर नाई, मानहुँ संपति सकल गवाँई।"

पराजय के दो प्रसंग उल्लेखनीय कहे जा सकते है किन्तु इसमे भी करुणरस का परिपाक न हो सका—पक्षमे सुग्रीवपराजय, विपक्ष मे मेघनादपराजय। इन दोनो प्रसंगो में करुण के स्थान पर अपमान और लज्जा का ही प्रकटीकरण होता है। सुग्रीव पराजय मे सुग्रीव राम से अन्य कोई प्रबंध करने की प्रार्थना करते हुए दिखलाई देते है—

"मै जो कहा रघुवीर कृपाला,
बधु न होइ मोर यह काला।"

मेघनाद रावण के समक्ष विजयगर्वोक्ति करके युद्ध के लिये प्रस्थान करता है। इसीलिये अपनी पराजय पर वह लज्जित दिखलाई देता है—

"मेघनाद कै मुरछा जागी। पितहि बिलोकि लाज अति लागी।"

बन्धन के दो प्रसंग मानस मे आये है—

१—हनुमान् बन्धन, २—रामबन्धन (नागपाश द्वारा)। इन दोनो ही प्रसगो मे बन्धन करुण की अभिव्यक्ति नही कर पाते।

१—हनुमान "कीन्ह चहउँ निज प्रभु काजा" की धुन मे मस्त है। इसलिए उन्हे "कछु बाँधे कइ लाजा" कैसे हो सकती है। इस प्रकार यह प्रसग करुण के अन्तर्गत ही नही आता।

२—"व्यालपास बस भए खरारी" कहकर गोस्वामीजो प्रभु की शक्ति एव स्वेच्छा का उल्लेख करते है। इस प्रकार करुण का प्रश्न ही नही उठता।

वध के प्रसंग रावण की शोकानुभूति के अन्तर्गत आ चुके है। यहाँ पृथक्

विवेचन की आवश्यकता नहीं है। वध के निम्नलिखित दो प्रसग आये है—

१—अक्षयवध

२—मेघनादवध

धर्म अपघात एवं शाप—धर्म अपघातगत प्रसगों में परिताप, प्रायश्चित्त तथा आर्त्त निवेदन की भावनाओं का प्रकटीकरण हुआ है। करुणरस की अभिव्यक्ति के उपर्युक्त स्थलों की ओर सकेत करते हुए इन प्रसगो मे कवि की दृष्टि शोकानुभूति की अभिव्यक्ति की ओर इतनी नही रही है जितनी इन कथाप्रसगो द्वारा सगुण की प्रतिष्ठा, गर्वनिवारण, भावीप्रबल की ओर है।

सती-संदेह—निर्गुण ब्रह्म की आस्था मे सती को विश्वास नही होता कि—

"ब्रह्म जो व्यापक विरज अज अकल अनीह अभेद।
सो कि देह धरि होइ नर जाहि न जानत वेद।"

तथा शंका होती है कि—"खोजइ सोकि अग्य इव नारी।"

इस शका-समाधान के लिए सती सीता का रूप धारण करके परीक्षा लेने के लिए विवश हो जाती है तथा इस परीक्षा के फलस्वरूप उनको घोर परिताप भोगना पड़ता है। उनसे निम्नलिखित दो अपराध बन पडे थे—

१. रघुपति का अपमान किया।
२. पति वचन मृषा करि जाना।

इन दोनो घोर अपराधो का विचार सती के लिए दारुण बन गया। उधर इस सम्पूर्ण प्रसग को जानकर महादेव जी स्वय असमजस मे पड गए। वह सोचने लगे—

"जौ अब करउँ सती सन प्रीती,
मिटइ भगति पथु होइ अनीती।"

इसके साथ ही महादेवजी सकल्प कर लेते है—

"एहि तन सतिहि भेट मोहि नाही।"

इस तीसरी आपत्ति के साथ सती की वेदना असह्य बन गई। उनकी आत्म-ग्लानि उनके जी को जलाने लगी—

"निज अघ समुझि न कछु कह जाई,
तपइ अवाँ इव उर अधिकाई।"

विवश होकर सती ने पिता के घर जाने का विचार किया जिससे कुछ दिन कट जायं किन्तु वहाँ पर सती को सतोष न मिला। सती के लिए एक और असह्य आपत्ति आई तथा उनका घोर परिताप उनके आत्मघात का कारण बन गया। गोस्वामीजी इस कार्य की पुष्टि करते हुए कहते है, ठीक है—

"जद्यपि जग दारुन दुख नाना,
सबते कठिन जाति अवमाना।"

इस प्रसंग में गोस्वामीजी ने परितापगत शोक से संतप्त प्राणी की मानसिक विक्षुब्ध दशा का चरम उत्कर्ष दिखलाया है जिस स्थिति में प्राणी अपने आत्मघात मे ही अपना त्राण समझता है। इस प्रसंग द्वारा साथ ही गोस्वामीजी ने सगुण की इस रूप मे प्रतिष्ठा की है कि इस सम्बन्ध मे शका करने के घातक परिणामो को सोचकर कोई शंका करने का साहस ही न कर सके।

नारद मोह—भक्तगर्वनिवारण की मूलकथा नारद मोह प्रसग के अन्तर्गत प्रकट होती है। भगवान भक्त के अहकार को दूर करने के लिए हरिमायारचित राजकुमारी के स्वयवर की योजना करते है। इस योजना का रहस्य नारद नही जान पाते तथा प्रभु को शाप तक दे डालते है। किन्तु—"जब हरि माया दूरि निवारी, नहि तहँ रमा न राजकुमारी।" तथ्य स्पष्ट होता है तो नारद आत्मग्लानि मे विकल हो जाते हैं, परमकातर हो उठते है। उस समय उनका आर्त्त निवेदन अति मर्मस्पर्शी बन जाता है—

"तब मुनि अति सभीत हरि चरना।
गहे पाहि प्रनतारित हरना।
मृषा होउ मम शाप कृपाला।

. ...

मैं दुर्वचन कहे बहुतेरे।
कह मुनि पाप मिटिहिं किमि मेरे।"

प्रतापभानु नरेश आख्यान—एक षड्यन्त्र कथा है। राजा पूर्णतया निर्दोष है किन्तु परिस्थितिवश उसको ब्राह्मणों के घोर शाप का दुष्परिणाम भोगना पडता है। "बिप्रवृंद उठि-उठि गृह जाहू, है बडि हानि अन्न जनि खाहू", यह आकाश-वाणी ब्रह्मणों को धर्म-अपघात से बचा देती है। "ईश्वर राखा धर्म हमारा" कहकर ब्राह्मण आपत्तिमुक्तजन्य संतोष प्राप्त करते है किन्तु यह प्रवचना उनके लिये असह्य हो जाती है तथा वे राजा को घोर शाप दे डालते है—

"सवत् मध्य नास तव होऊ।"

निर्दोष राजा इस घोर शाप को सुनकर अति विकल हो जाता है तथा मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पडता है। जब इस सम्पूर्ण षड्यन्त्र का पता लगता है तो शाप-दाता तथा शापित दोनो व्यक्तियों को दुःख होता है। किन्तु गोस्वामीजी की दृष्टि इस शोकानुभूति की ओर नही थी। वह कदाचित् "भावी प्रवल" सिद्ध करना चाहते थे तथा चाहते थे उन लोगों के लिये एक शास्त्रीय उत्तर खोज लेना जो शुभ कर्मों के

करते हुए भी घोर यातनाओ को सहने के लिये विवश हो जाते है। इसीलिये कवि ने इस स्थल पर शापित अथवा शापदाता की शोकानुभूति की अभिव्यक्ति की विशेष चिता न की।

शाप-कथाएँ—निम्नलिखित शाप-कथाएँ मानस मे प्रकट हुई है—१. तापस अन्ध शाप, २. शिव शाप और ३. लोमश शाप।

इन शाप-कथाओ मे भी करुणरस की अभिव्यक्ति सभव न हो सकी। इन शाप-कथाओं के द्वारा मूलरूप मे कवि निम्नलिखित तथ्यो की पुष्टि करना चाहता है—

१. दशरथ का पुत्रवियोग मे मरण।
२ गुरु-अवज्ञा का दारुण परिणाम तथा "गुरुकर कोमल सील सुभाऊ।"
३ भक्तिमार्ग मे वाचाल की दशा।

इन कथाओ का सक्षिप्त परिचय निम्नलिखित है—

तापस अन्ध शाप—इस कथा का महाराज दशरथ को मृत्यु शय्या पर स्मरण होता है। मूल रूप मे यह प्रसग मानस मे प्रकट नही हुआ। पुत्रवियोग मे छटपटाते हुए अन्धतापसयुग्म का करुणापूर्ण चित्र महाराज की निर्वाणोन्मुख दशा मे घातक सिद्ध होता है तथा इस चित्र के साथ उनका वह शाप "पुत्रवियोग मे प्राण त्याग करो" महाराज की अन्तिम श्वासो को गतिशील बना देता है तथा महाराज सदा के लिये आँखे बन्द कर लेते है।

काकभुशुण्डि के लिये शिव-शाप—काकभुशुण्डि द्वारा गुरु-अवज्ञा को देखकर यद्यपि गुरु कुछ नही कहते तथापि शिवजी इस अनीति को सहन नही कर पाते तथा शाप दे डालते है—"सर्प हो जा"। इस घोर शाप को सुनकर गुरुजी परम विकल हो जाते है तथा हा-हाकार करने लगते है। अपने शिष्य का अहित उनकी वेदना का कारण बन जाता है। वह अति विनय कर शापशमन की व्यवस्था कराते है। इस प्रकार इस सम्पूर्ण प्रसग मे गुरु के उदार चरित्र एव कोमल स्वभाव का वर्णन है। शापित काकभुशुण्डिजी की किसी अनुभूति के दर्शन भी नही होते। उनकी वेदना निम्नलिखित परिताप मे द्रष्टव्य है—

"एक सूल मोहि बिसर न काऊ,
गुरुकर कोमल सील सुभाऊ।"

लोमश-शाप—काकभुशुण्डिजी की तर्कबुद्धि के कारण दु.खी होकर लोमश ऋषि भुण्डि जी को "काग हो जाने" का शाप दे डालते है। काकभुशुण्डिजी इस अवसर पर सहनशीलता का परिचय देते है। उनकी "महत सीलता" तथा "रामचरन विश्वास बिसेखी" को देखकर लोमश ऋषि को व्यर्थ शाप देने का परिताप होता है। शोकानुभूति के अन्तर्गत प्रकटीकरण नही हो पाता। ऋषि अविलम्ब भुशुण्डिजी को दूसरे रूप में कृतार्थ कर सतुष्ट कर देते है। वह उनको राम मत्र दे देते है

और इस प्रकार शाप की कटुता समाप्त हो जाती है[1]।

क्लेश एवं दु:खप्राप्ति—क्लेश एवं दु:खप्राप्ति के प्रसंग तुलसीदासजी की स्वानुभूति के अन्तर्गत कवितावली तथा बाहुक में प्रकट हुए है। तुलसीदासजी बाहु-पीडा तथा संभवतः महामारी से पीडित हुए थे। उन्होने हनुमानजी तथा शिवजी से क्लेश एवं दु:ख मुक्ति की आर्त्त प्रार्थना की "परन्तु जान पड़ता है कि रोग का शमन नही हुआ[2]।"

तुलसी की आर्त्त प्रार्थना

अ—"अधिभूत वेदन बिषम होत, भूतनाथ,
तुलसी बिकल, पाहि पचत कुपीर हौ।
मारिये तो अनायास कासीबास खास फल,
ज्याइये तौ कृपा करि निरुज सरीर हौ।"
—(कवि० १६६)

आ—"रोग भयो भूत-सो, कुसूत भयो तुलसी को,
भूतनाथ, पाहि पदपकज गहतु हौ।
....
मारिये तो मागी मीचु सूधियै कहतु हौ।"
—(कवि० १६७)

इस आर्त्त प्रार्थना में तुलसीदासजी की वेदना "ताना मारती हुई" दिखलाई देती है—"मारिये तौ अनायास" तथा "मारिये तो मागी मीचु" द्वारा मृत्यु की याचना तुलसीदासजी की घोर वेदना पर प्रकाश डालती है। दारुण वेदना में मृत्यु की याचना अति स्वाभाविक होती है।

---

१. शाप की इतर दो कथाएँ निम्नलिखित है—
अ—नारदका हरगण को शाप।
आ—शिव का कामदहन।
हरगण अपना वास्तविक परिचय देकर तथा अनुनय-विनय कर शाप-अनुग्रह प्राप्त कर लेते है तथा शापजन्य शोकानुभूति का प्रकटीकरण सभव नही हो पाता। कामदहन प्रसग में रतिविलाप—इष्ट-नाश के अन्तर्गत आ जाता है तथा शोकानुभूति प्रकट करता है—"पतिगति सुनत रति मुरछित भई" तथा "रोदति बदति बहुभाँति सकर पहि गई" किन्तु शंकरजी के पास पहुँचकर उसकी शोकानुभूति प्रार्थना तथा विनय मे परिवर्तित हो जाती है तथा वह वरदान पाकर शान्त हो जाती है।

२. रामचन्द्र शुक्ल—तुलसीदास, पृष्ठ १५६

सीता-वनवास

गोस्वामी तुलसीदासजी ने इस प्रसंग का समावेश रामचरितमानस में नहीं किया है। लवकुशकाण्ड के नाम से अष्टमकाण्ड की रचना जो कुछ प्रकाशकों द्वारा प्रकाशित रामचरितमानस के कतिपय संस्करणों मे समाविष्ट की गई है,प्रक्षिप्त अंश मानी जाती है।

गीतावली मे अवश्य गोस्वामीजी ने इस प्रसंग का उल्लेख किया है। इस प्रसंग की मर्मस्पर्शी प्रकृति से कलामर्मज्ञ गोस्वामीजी भली-भाँति परिचित थे। इसीलिए इस प्रसंग की चर्चा से पूर्व उन्होने राम-सीता के सहज स्नेह का दिग्दर्शन कराया है—

"राम-सीयासनेह बसत अगम सुकवि सकाहिं।
राम-सीय-रहस्य तुलसी कहत राम-कृपाहिं।"

सीता के सबध मे जनसमाज में फैली चर्चा को दूतो से सुनकर भगवान् राम ने महारानी जी से उनकी दोहद जानने की इच्छा प्रकट की। सहज सकोच के साथ सीता ने अपनी वही इच्छा प्रकट की जो तत्कालीन परिस्थितियों में राजा राम को अभीष्ट थी।

"तीय-तनय समेत तापस पूजिहौं बन जाइ।"

भगवान् राम ने इसको "भावी—विवस सकल सहाइ" समझकर संतोष किया। इस बहाने लोकमत के समर्थन मे सीता-निर्वासन की योजना बनाई गई और लक्ष्मण को आदेश हुआ कि—"बालमीकि मुनीस आश्रम आइयहु पहुँचाइ।"

लक्ष्मण-जैसे आज्ञकारी सेवक अविलब आज्ञापालन के लिए चल दिए। भोली-भाली सीता को इस प्रयाण में अपनी अभिषित रुचि की पूर्ति के साथ प्रभु की कर्त्तव्य-परायणता की पूर्ति का भी भान हो चला था किन्तु उन्होंने धैर्य धारण किया और शान्तिपूर्वक लक्ष्मण के साथ वाल्मीकि के आश्रम को चल दीं।

जब भावीदेवर आश्रम पहुँचे तो महर्षि को स्थिति का ज्ञान होने में देर न लगी क्योंकि उन्होने देखा कि—"व्याकुल लषन गरत गलानि।"

साथ ही सद्गुणधाम प्रभु के इस प्रकार के कार्य को देखकर उनको खेद भी हुआ—"राम सदगुन-धाम परिमिति भई कछुक मलानि।"

महारानीजी को अब स्पष्ट हो चुका था कि उनको ऋषि आश्रम भेजने का क्या तात्पर्य था? लक्ष्मण की विकलता, वेदना तथा ग्लानि ने महारानीजी की वेदना को भी मुखरित कर दिया—

"दीनबन्धु दयालु देवर देखि अति अकुलानि।
कहति वचन उदास तुलसीदास त्रिभुवनरानि।"

महारानीजी की शब्दावली में व्यंग्य, वेदना, पीडा, विवशता, कर्त्तव्यपरायणता तथा लोकमर्यादा के प्रति मर्मस्पर्शी कटाक्ष आदि का अनुपम समावेश किया गया है। कवि की उत्कृष्ट कला के यहाँ साकार दर्शन होते है। इस मर्मस्पर्शी अभिव्यक्ति ने स्वयं महर्षि को भी द्रवीभूत कर दिया और उनके नेत्र भी सजल हो गये। करुण रस की इतनी सुन्दर अभिव्यक्ति स्यात् किसी अन्य कलाकार से सभव न थी। मनोविज्ञान और रस के समन्वय का ऐसा अनुपम एव उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करना गोस्वामी जैसे मनोविज्ञान तथा रस के पडित की लेखनी का ही काम था—

"तौलौ बलि, आपुही कीबी विनय समुझि सुधारि।
जौलौ हौ सिखि लेउँ बन रिषि-रीति बसि दिनचारि।
तापसी कहि कहा पठवति नृपनि को मनुहारि।
बहुरि तिहि बिधि आइ कहिहै साधु कोउ हितकारि।
लषनलाल कृपाल निपटहि डारिबी न बिसारि।
सुनत सीता-बचन मोचत सकल लोचन-बारि।
बालमीकि न सके तुलसी सो सनेह सँभारि॥"

पद का एक-एक शब्द हृदयतत्री को झकझोर डालता है। विशेषता यह है कि पद मे उन सब तथ्यो के होते हुए भी जिनसे अप्रिय, कटु एव घृणोत्पादक अनुभूतियों का सृजन होता, अति मार्मिक रूप मे करुणरस की विवश एव असहाय परिस्थितियो का ही उद्घाटन हुआ है। राम के प्रति सामाजिक का क्रोध जाग्रत नही होता, उसके हृदय मे उनके प्रति घृणा का भी उदय नही होता, दूसरी ओर सीता कहने मे कुछ कसर भी नही उठा रखती। इस मार को भुक्तभोगी लक्ष्मण ही जान सकते थे जो इन शब्दो को सुनकर तिलमिला उठे, व्याकुल होकर विलख उठे, अपने भाग्य तथा जीवन को कोसने लगे किन्तु उत्तर मे एक शब्द न कह सके—

"सुनि व्याकुल भए उतरु कछु कह्यो न जाइ।
जानि जिय विधि बाम दीन्हो मोहि सरुष सजाइ।"

उनको वास्तव मे यह सजा मिली थी। एक ओर सीता के प्रति अपार श्रद्धा थी तो दूसरी ओर थी प्रभु की कठोर आज्ञा। इसीलिए तो बेचारे बिलखकर रह गए। बार-बार महारानीजी के पैरों मे पडकर मौन ही वापिस चल दिये—

"गौने मौन ही बारहि बार परि-परि पाय।"

परिताप, ग्लानि, पश्चात्ताप और विधाता की वामता के कटु परिणाम पर ग्लानि, ये थे लक्ष्मण के सश्लिष्ट मनोभाव जिनका कवि ने सूक्ष्म अध्ययन किया।

वह बेचारे सोचते थे कि उन्ही के कारण पहले सीताहरण हुआ था, उसकी सजा उनको शक्ति लगकर मिली किन्तु हनुमान ने सजीवनी लाकर उनको फिर जीवित

कर दिया। उस जीवन का अब यह सुफल रहा कि वे ही सीता को निर्वासित करने आये। विधि की कैसी विडम्बना है !

"असन बिनु बन, बरभ बिनु रन, बच्यो कठिन कुघाय।
दुसह साँसति सहन को हनुमान ज्यायो जाय।
हेतु हौ सियहरन को तब, अबहु भयो सहाय।
... ...
घोर हृदय कठोर करतब सृज्यौ हौ विधि बाम।"

सक्षेपत: कहा जा सकता है कि महाकवि तुलसीदास ने रामकथा मे करुणरस का जो चित्रण किया उसमे निम्नलिखित विशेषताए॑ प्रकट हुई है—

विषयगत—१. कथा का सविस्तर वर्णन किया गया है। कथा मे कतिपय ऐसे प्रसगो की भी योजना की गई है जिनका कथा से सीधा कोई सम्बन्ध नही है। केवल "भावी प्रबल" के सिद्धान्त की पुष्टि के लिये उनका उल्लेख हुआ है। साथ ही करुणरस के प्रसगो मे गम्भीरता लाने के लिए कथा मे कुछ हेरफेर भी किया गया है।

२. करुणरस की अभिव्यक्ति प्राय: सभी आलंबनो के रूप मे हुई है। यह अवश्य है कि "प्रिय बन्धुबान्धव का मरण अथवा वियोग एव अनिष्ट प्राप्ति" के अन्तर्गत प्रकट प्रसगो को ही विशेषता दी गयी है।

३. विपक्षीपात्रो की शोकानुभूति के वर्णन मे कवि की उदासीनता प्रतिलक्षित होती है। कवि को विश्वास है कि प्रसगो के साथ सामाजिक की अनुभूति का तादात्म्य न हो सकेगा।

शैली एवं अभिव्यक्तिगत—१ दोहा-चौपाई शैली मे ही विषय का चित्रण हुआ है। द्वन्द्वात्मक स्थिति मे छन्द का प्रयोग किया गया है। गीतावली मे पदो का प्रयोग हुआ है जिनमे करुण की मनोविज्ञानाश्रित उत्कृष्ट अभिव्यक्ति सभव हो सकी है।

२. शोकानुभूति के अन्तर्गत "अवर्णनीयता" का उल्लेख हुआ है। यह उल्लेख कवि की असमर्थता के स्थान मे अनुभूति की गभीरता को ही प्रकट करता है।

३. शोकानुभूति के वर्णन को सुग्राह्य बनाने के लिए प्रसग के अनुकूल पौराणिक प्रतीको के उदाहरण दिए गए है तथा समकक्ष दारुण अनुभूतियों की उपमा दी गई है।

४ कवि की दृष्टि विशेषरूप से अभिव्यक्ति के मनोवैज्ञानिक पक्ष को चित्रित करने की ओर रही है जिसके फलस्वरूप करुणरस की अलौकिक एवं उत्कृष्ट अभिव्यक्ति सभव हो सकी है।

५ आत्मग्लानि, परिताप तथा आत्मनिन्दा का विकसित रूप शपथग्रहण तथा पापगति-याचना में प्रकट हुआ है। प्रायश्चित्त के अन्तर्गत आत्मोत्सर्ग में प्रसगो की भी योजना की गई हैं।

६. करुणरस की अनुभूति के लिए आश्रय की नितात विवशता तथा अति असहायावस्था को ही प्रधानता दी गई है ।

७. विरह-वेदना की अनुभूति चराचर जगत् में व्याप्त दिखलाई गई है। पशु-पक्षियो की आत्मीयता का प्रकटीकरण किया गया है। शोकसंतप्त आश्रम के साथ चराचर जगत शोकाभिभूत दिखलाया गया है ।

८. विशेष अनुभावों की उद्भावना की गई है ।

९. कतिपय स्थलो पर व्यग्य एव मर्मस्पर्शी कटाक्षो के अन्तर्गत करुणरस की अनुभूति अति वेदनापूर्ण बन गई है ।

१०. अशुभ समाचारो की आशंका एवं भय का विशेष दृश्य उपस्थित किया गया है। एक ओर आश्रम को समाचार पूछने का साहस नही होता तो दूसरी ओर आलंबन को समाचार-निवेदन का साहस नही होता, करुणरस की मौनगत विशेष अनुभूति का इस रूप मे सुन्दर दिग्दर्शन कराया गया है ।

११. मनोभावो एवं बाह्य-व्यंजको की सुन्दर योजना की गई है।

१२. कर्त्तव्यपरायणता तथा मर्यादा की प्रतिष्ठा कवि का लक्ष्य रहा है। शोकानुभूति के अन्तर्गत विवेक एव विश्लेषण की प्रवृत्ति लुप्तप्रयः प्रतीत होती है किन्तु आदर्शनिष्ठा से अभिभूत मानस कर्त्तव्यपरायणता से विमुख नही दिखलाया गया है।

१`. मानस की सहज अनुभूतियो तथा कल्पनाओ का उद्घाटन किया गया है।

१४. कतिपय समर्थ पात्रों की शोकानुभूति का क्रम निम्नलिखित रूप में प्रकट होता है—

शोक-रोष-शोक—इस रूप मे प्रथम शोक के अन्तर्गत आलबन की क्षति दृष्टिगत रहती है तथा दूसरी स्थिति मे रोषजन्य ग्लानि एवं क्लेश होता है, जो शोक का कारण बनता है।

१५. शोकानुभूति के अन्तर्गत अपने प्रियजनो की महत्ता और लघुता की तुलना की गई है तथा एक के नाश मे दूसरे की निन्दा तथा उपेक्षा की गई है जो अप्रिय अनुभव होती है ।

१६. शोकानुभूति मे मृत्यु की कामना की गई है। शोक की चरम अवस्था में आत्मघात के प्रयत्न भी प्रतिलक्षित है)।

१७. व्याजनिन्दा एवं व्यग्य के अन्तर्गत शोक की मर्मभेदी अनुभूति प्रकट हुई है।

: ६ :

केशव की रामकथा में करुण रस

कवि का दृष्टिकोण—ग्रन्थ रचना का कारण बताते हुए कवि ने अपने एक स्वप्न का उल्लेख किया है—

"बालमीकि मुनि स्वप्न महँ दीन्हो दर्शन चारु।
तिनसों केशव यों कह्यो "क्यो पाऊँ सुख सारु॥"

"मुनि "रामदेव गाइये" तथा "देव लोक पाइये" उपदेश करते हैं तथा उसी समय से केशव के "रामचन्द्र जू इष्ट" हो जाते हैं तथा वह संकल्प कर लेते हैं—

"तिन के गुण कहिहौं सब सुख लहिहौ पाप पुरातन भागें।"

पुरातन पापों से मुक्ति तथा सब सुखों की प्राप्ति के लिए प्रभुगुणगान एक अमोघ साधन है। प्रभुगुणगान से मानव-मानस का परिष्कार हो जाता है इस मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त से आचार्य जी परिचित थे और इसी दृष्टिकोण को लेकर उन्होंने अपना ग्रन्थ प्रारम्भ किया—

"जागत जाकी ज्योति जग एक रूप स्वच्छन्द।
रामचन्द्र की चन्द्रिका वर्णत हौ बहु छन्द॥"

इस प्राक्कथन मे कवि के ध्येय रामचन्द्र जी की कथा-वर्णन के साथ "बहु छन्द" की विशेषता और आ गई जिसके द्वारा कवि की कलारुचि का सकेत ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही हो जाता है।

लोक के सामने कवि जिस रामचरित को "रामचन्द्रिका" के रूप में उपस्थित करता है तथा जिसको सुनने का फल" ताहि पुत्र कलत्र संपति देत श्रीरघुराय" बताता है वह रामचरित तुलसी के "रामचरित" की भाँति सहज, सुपाच्य तथा स्वान्तः सुखाय नहीं है अपितु वह विद्वज्जन-हियहार, श्रमसाध्य कलाकृति है जिसको जनसाधारण न समझ सकता है और न प्रशसा कर सकता है।

कवि का व्यक्तित्व—कवि को अपने पाण्डित्य, कला निपुणता तथा अपने कुल और वंश का गर्व है। उनके पिता पितामह संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे। यही नहीं

उनके कुल के दास तक संस्कृत बोलते थे । भाषा बोलना नही जानते थे । अतएव केशवदास की भाषा में कविता करने का अपार दुःख है—

"भाषा बोलि न जानही जिनके कुल के दास ।
भाषा कवि यों मन्दमति, तेहि कुल केशवदास ॥"

रामचन्द्रिका के प्रारम्भ में अपना परिचय देते हुए भी कवि ने इसी तथ्य का ओर संकेत किया है—

"उपजयों तेहि कुल मदमति शठकवि केशवदास ।
रामचन्द्र की चन्द्रिका भाषा करी प्रकास ॥"

कवि की इसी आत्मग्लानि ने कवि को पाण्डित्य प्रदर्शन के लिए विवश कर दिया । कल्पना की ऊँची उडान, अलकारो की भरमार, वस्तुवर्णन की विशदता तथा छन्दों की बहुलता, संस्कृत शब्द ही नही प्रत्युत सस्कृत के समस्त पदों तक के प्रयोग द्वारा कला एवं पाण्डित्य का ही प्रकाशन कवि रामचन्द्रिका मे कर सका । रामकथा जिसको प्रमुख उद्देश्य मानकर ग्रन्थारम्भ हुआ था, गौण रूप मे कला एव पाण्डित्य की अनुगामिनी होकर ही रह सकी ।

रामचन्द्रिका में कथावस्तु—रामचन्द्रिका मे कथावस्तु विशेष सँक्षिप्त रूप मे प्रकट हुई है । ग्रन्थ का कलेवर महाकव्य के लिए अपेक्षित विविध वर्णनो से ओतप्रोत है । मूलकथा वस्तुत इतनी सक्षिप्त हो गई है कि जिससे भक्त की कथा-पिपासा शान्त नही हो पाती तथा इसी कारण भक्तहृदय रामचन्द्रिका के प्रति इतनी रुचि प्रकट नही कर पाता जितनी रुचि तुलसी के मानस के प्रति की जाती है ।

रामकथा के प्रारम्भ मे अवतार आदि होने के विभिन्न कारणो की ओर कवि ने ध्यान नही दिया है । कथा मूलतः विश्वामित्र आगमन प्रसग से प्रारम्भ होती है । आगे चलकर ग्यारहवे प्रकाश मे अगस्त्य के मुह से अवतार के कारणो की ओर कवि ने सकेत किया है ।

कथा को सक्षिप्त करने की प्रवृत्ति का विशेष प्रभाव करुणरस के स्थलो पर पड़ा है । प्रायः स्थल सकेतमात्र रूप मे चलते कर दिए गए है । इन प्रसगो पर तुलसीदास जी पर्याप्त प्रकाश डाल चुके थे तथा पुनः उन्ही प्रसगो पर लिखना पिष्टपेषण होता अथवा महाकाव्य के लिए करुणरस की शास्त्रीय निषेधात्मक मर्यादा के कारण कवि ने इन प्रसगों को इस रूप मे रखा । यह भी संभव है कि वह अपने "रामचन्द्र जू इष्ट" तथा उनसे सबधित अन्य श्रेष्ठ पात्रो द्वारा साधारण मनुष्यो की भाँति करुण की अनुभूति एव अभिव्यक्ति न कराना चाहते हो । इस तथ्य की ओर लक्ष्मण-शक्ति प्रसंग मे सकेत किया गया है । राम-विलाप से पूर्व कवि निम्न टिप्पणी दे देना आवश्यक समझता है—

"यद्यपि है अति निर्गुणताई, मानुष देह धरे रघुराई ।"

कुछ हो इन स्थलों पर कवि की यह उपेक्षा रस की दृष्टि से 'विशेष अखरती है।

करुण रस के प्रसंगों में शैली—रामचन्द्रिका मे कवि ने पिंगलशास्त्र की पूरी रूपरेखा दी है। प्रत्येक प्रकार का सभव छद ही नही प्रत्युत कुछ नवीन छदो को भी बनाकर उनका कवि ने सुन्दर प्रयोग किया है।

करुणरस के प्रसगो का अध्ययन करने से प्रकट होता है कि कवि ने छद-प्रयोग मे किसी विशेष क्रम का ध्यान नही रखा। कवि की दृष्टि विभिन्न छदो के प्रयोग की ओर ही थी। उदाहरणत हनुमान द्वारा भरत की करुणापूर्ण दशा तथा अशोकवाटिका मे सीता की करुणापूर्ण दशा का अवलोकन दो विभिन्न छदो मे (चतुष्पदी तथा भुजगप्रयात मे क्रमशः) हुआ है।

शोकानुभूति की अभिव्यक्ति प्रायः दोधक छद मे हुई। उदाहरणतः भरत द्वारा शोकसतप्त अयोध्या का अवलोकन, चित्रकूट मे दशरथनिधन समाचार पर विलाप, लक्ष्मण-शक्ति पर राम-विलाप, लवकुश द्वारा रामदल को हत देखकर सीता का शोक आदि प्रसग दोधक छद मे ही प्रकट हुए है।

अन्य स्थलो पर तारक, चचरी, तोमर, भुजगप्रयात, चाचला आदि अनेक छदो का प्रयोग हुआ है।

छदो के प्रयोग मे कवि की कलाकुशलता के दर्शन होते है। एकाक्षरी छंद से लेकर क्रमश अष्टाक्षरी छद तक के उदाहरण पहले प्रकाश मे ही ८ से लेकर १६ तक प्रयुक्त छदो मे प्रकट हुए है। इनके साथ वर्णिक छदो की भी रामचन्द्रिका मे भरमार है।

अलकारो का प्रयोग—आचार्य केशवदास जी ने छदो के समान अलकारो का प्रयोग भी विशेष रूप से किया है। उत्प्रेक्षा, रूपक और परिसख्या के तो स्थल-स्थल पर दर्शन होते है। करुणरस के प्रसग मे उत्प्रेक्षा का विशेष प्रयोग हुआ है। इसके साथ अन्य स्थलो पर सदेह तथा श्लेष का भी प्रयोग हुआ है।

अभिव्यक्ति—अभिव्यक्ति के अन्तर्गत आचार्य जी की अलौकिक कल्पना के उत्कृष्ट उदाहरण प्रकट हुए है। विशद वर्णनो के अन्तर्गत कवि की ऊँची उडान के दर्शन होते है। करुणरस के मार्मिक प्रसगो मे कवि ने प्राय मनोवैज्ञानिक विश्लेषण तथा मानस के सूक्ष्म तत्वो का उद्घाटन किया है। इन स्थलो पर कवि को अपूर्व सफलता प्राप्त हुई है। यह अवश्य है कि करुणरस के इन प्रसगो को सूक्ष्म एव सक्षिप्त कर देने से रसनिष्पत्ति मे व्यवधान पडा है किन्तु इसके लिए कवि को दोषी नही ठहराया जा सकता। कवि करुणरस की अभिव्यक्ति न तो करना ही चाहता था और न उसने की है। यह स्थल तो कथा-प्रसग मे बरबस आ पडे है इसलिए कवि को इनका निर्वाह करने के लिये करुणरस की अभिव्यक्ति करनी पड़ी है जिसमे कवि की उदासीनता के स्पष्ट दर्शन होते है।

रामचन्द्रिका में करुणरस के प्रसंग संक्षेप्त : निम्नलिखित रूप प्रकट हुए हैं—

प्रिय बन्धुबान्धव एवं पुत्रादि का वियोग एवं मरण

१—रामवनगमन—१—विश्वामित्र के साथ रामवनगमन, दशरथ का विषाद ।

२—दशरथ मरण ।

३—भरत का शोक ।

४—भरत की आत्मग्लानि ।

५—चित्रकूट में दशरथमरण पर शोक ।

२—सीताहरण—१—सीता का करुणक्रन्दन ।

२—अशोकवाटिका मे सीता की करुण दशा ।

३—लक्ष्मण-शक्ति—१—रामविलाप ।

४—विपक्षी पात्रों की शोकानुभूति—१—रावण शोकानुभूति—

अक्षयवध, मेघनादवध, मकराक्षवध ।

२—मदोदरी विलाप ।

पराभव, पराजय, वध, बन्धन

१—रावण पराभव—छत्रमुकुटहनन प्रसग ।

२—मंदोदरी पराभव—मखविध्वस प्रसग ।

३—पराजय—लक्ष्मण पराजय ।

४—बन्धन—हनुमान् बन्धन ।

नागपाश में रामलक्ष्मण-बन्धन ।

५—वध—अक्षय, मेवनाद, एवं रावण वध ।

६—विभीषण शरणागति ।

५—अन्य प्रसंग—करुणरस की विशेष अनुभूति,

जनकपुर में जनक द्वारा भोजन के लिए निमंत्रण ।

रामचन्द्रिका उत्तरार्द्ध—

प्रियबन्धुबान्धव मिलन एवं वियोग—

१—अवधि काल में भरत की करुण दशा ।

२—माताओं से मिलन ।

३—सीतानिर्वासन ।

अ—राम का शोक ।

आ—भरत का विषाद ।

इ—सीता की आशंका।
ई—लक्ष्मण का शोक।
४—सीता का शोक।
अ —लव के लिए,
आ—रामलक्ष्मण आदि के लिए।
५—राम का शोक,
शत्रुघ्न के मारे जाने पर।
६— भरत की मन-जल्पना।

पराभव— १—राम का सम्पूर्ण सेना को हत देखना।
२—अंगद का गर्व हरण।

करुण की अभिव्यक्ति

प्रियबन्धुबान्धव एव पुत्रादि का वियोग

रामवनगमन—रामवनगमन के अन्तर्गत दो प्रसग प्रकट हुए है—
१—विश्वामित्र के साथ यज्ञ रक्षाहेतु रामवनगमन।
२—रामवनवास।

विश्वामित्र के साथ यज्ञरक्षाहेतु राम के वन-गमन से ही रामचन्द्रिका का प्रारम्भ होता है। विश्वामित्र जी राम की याचना करते है तथा बडे असमजस के पश्चात् महाराज दशरथ राम को देने के लिए प्रस्तुत होते है किन्तु महाराज को राम-वियोग से बडा दु.ख होता है। दु खातिरेक मौन को जन्म देता है आचार्य जी इस मनोवैज्ञानिक तथ्य से भली-भाँति परिचित थे। अतएव वह बाह्यव्यजको (दोनो नेत्र अश्रुपूर्ण तथा लाल) द्वारा ही करुणापूर्ण परिस्थिति का परिज्ञान करा देते हैं—

"रामचलत नृप के युग लोचन,
बारि भरित भये बारिद लोचन।
पायन परि ऋषि के सजि मौनहि,
केशव उठि गये भीतर भौनहि॥"
—(रा० च० २।२७)

यहाँ "सजि मौनहि, उठि गए भीतर भौनहि" शब्द आचार्य केशव के सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक अध्ययन, मानव-मानस की स्वाभाविक गति तथा दुःखी प्राणी के विशेष व्यवहार की ओर सकेत करते है। इन गिनेचुने शब्दो द्वारा ही आचार्य जी ने उस गभीर अनुभूति का परिचय दिया है जो अन्यत्र देखने को नहीं मिल सकती। यह गभीर अनुभूति आगे आनेवाले "रामवनवास" प्रसंग के लिए यह भी सूचित करती है कि उस परम करुणापूर्ण स्थिति में महाराज दशरथ की क्या दशा होगी ?

रामवनवास के अन्तर्गत इसीलिए दशरथ के प्रलाप आदि के दर्शन नहीं होते।

कैकेयी के वरदान की बात महाराज को किस प्रकार घातक सिद्ध हुई इसका दिग्दर्शन आचार्य जी स्वयं कराते है—

"यह बात लगी उर वज्र तूल,
हिय फाट्यो ज्यौ ज्यौ जीरन दुकूल।"

दशरथ-मरण—इसके पश्चात् शीघ्र ही रामचन्द्र जी के वनगमन की सूचना महाराज के कानो मे पडती है। इस दारुण समाचार का घातक प्रभाव होता है तथा महाराज दशरथ अपनी असहायावस्था मे अति आर्त्त एव दीन होकर प्राण त्याग देते है—

"रामचन्द्र धाम ते चले सुने जबै नृपाल!
बात को कहै सुनै सुह्वै गये महा बिहाल !!
ब्रह्मरंध्र फोरि जीव यौ मिल्यो जुलोक जाय!
गेह तूरि ज्यो चकोर चन्द्र मे मिलै उडाय !!"
—(रा० च० ९/३१)

महाराज दशरथ के शव को अन्त्येष्टि क्रिया के लिए ले जाते समय सम्पूर्ण नगर में हाय-हाय होने लगती है। नगर के सब नर-नारी अन्तिम दर्शनार्थ बाहर निकल आते है। सरजूतट पर दाह-सस्कार होता है। इस अवसर पर रानियो समेत भरत-शत्रुघ्न दोनो भाई बहुत विलाप करते है[1]।

यद्यपि कवि का यह वर्णन सक्षिप्त रूप मे प्रकट हुआ है तथापि इस वर्णन मे दशरथमरणगत शोकाकुल दृश्य को भलीभाँति चित्रित करने की पूर्ण क्षमता है।

भरत का शोक—ननिहाल से भरत वापिस आते है तथा अयोध्या की शोकाकुल दशा को देखकर स्तम्भित हो जाते है। इस प्रसग मे आचार्य जी ने अति सूक्ष्म निरीक्षण की योजना कर शोकानुभूति को अति मर्मस्पर्शी बना दिया है। ऐसा प्रतीत होता है कि भरत एक-एक वस्तु को देखते फिर रहे है। एक वस्तु को देखने के पश्चात् वह दूसरी वस्तु को देखते है और इस प्रकार मानो अपनी शका का समाधान करते फिरते है। आचार्य जी की यह योजना निम्नलिखित रूप मे देखी जा सकती है[2]—

---

१. "हाय हाय जहा तहाँ सब ह्वै रही सिगरी पुरी,
धाम धाम नृप सुन्दरी प्रगटी सबै जे रही दुरी।
लै गये नृपनाथ को सब लोग श्री सरजू तटी,
राजपत्नि समेत पुत्रनि विप्रलाप गटी रटी ॥"—(रा० च० १०/१०)

२. "आनि भरत्थ पुरी अवलोकी। थावर जगम जीव ससोकी ॥
भाट नही बिरदावलि साजै। कुजर गाजै न दुदुभि बाजै ॥
राजसभा न विलोकिय कोऊ। सोकगहे तव सोदर दोऊ ॥
मदिर मातु बिलोकि अकेली। ज्यो बिन वृक्ष विराजति बेली ॥"
—(रा० च० १०।१, २)

१—भरत ने नगर देखा—स्थावर, जंगम, जीव सब शोकाकुल थे।
२—भाट देखे—विरदावली नही गा रहे थे।
३—हाथी देखे—प्रसन्न न थे, न दुंदुभी बज रही थी।
४—राजसभा देखी—कोई न था।
५—महल देखा—माता अकेली थी।

नगर की उपर्युक्त दशा को देखकर भरत परम विकल हो उठते हैं। शोक-संतप्त भरत को माता कैकेयी के पास पहुँच कर जब यह ज्ञात होता है कि माता ने यह सब कुछ उनके लिए ही किया है तो वह अति कातर हो जाते है। आचार्य जी ने भरत के मानस का अति समीप से अध्ययन किया। उन्होने देखा कि भरत को इन सबसे अधिक दु ख एव ग्लानि यही जानकर हुई कि यह सब उनके लिए ही किया गया है। अतएव माता कौशल्या तथा अन्य जन अवश्य ही यह समझते होगे कि इस कार्य मे भरत की सहमति रही होगी। इस विचार से भरत काँप उठते हैं, एक क्षणभर के लिए महाराज के निधनजन्य दु ख को भूल जाते है। परम दु खी होकर वह अविलब माँ कौशल्या के पास अपनी सफाई देने के लिए पहुँच जाते है। एक निर्दोष व्यक्ति के सिर जब इतना भारी दोष मढ दिया जाय तो उसकी क्या दशा होगी इस तथ्य से भरत के मन की ग्लानि तथा परिताप का अनुमान लगाया जा सकता है।

मनोविज्ञान के कुशल आचार्य केशवदास जी ने इस प्रसग मे भरत के मन की मनोवैज्ञानिक दशा का वास्तविक परिचय दिया है—

"सुनु मातु भई यह बात अनैसी।
जुकरी सुत-भई विनाशिनि जैसी॥
यह बात भई अब जानत जाके।
द्विज दोष परैं सिगरे सिर ताके॥
जिनके रघुनाथ बिरोध बसैं जू।
मठधारिन के तिन पाप ग्रसैं जू॥
रस राम रस्यो मन नाहिन जाको।
रण मे नित होय पराजय ताको॥"

—(रा० च० १०/७,८)

उपर्युक्त विवरण के अन्तर्गत भरत अपनी सत्यता तथा माता के मत से असह-मति प्रकट करने के लिए निम्नलिखित घोर पापो के लगने की शपथ लेते है—

१—यदि उनकी सहमति हो तो उनको ब्रह्महत्या का पाप लगे।
२—यदि रघुनाथ से उनका विरोध हो तो उनको मठधारियो का पाप लगे।
३—विरोध न सही यदि राम से प्रेम भी न हो उनके प्रति उदासीन भाव हो तो भी रण मे सदा पराजय हो।

भरत इस प्रकार इन तीन गतियों का दिग्दर्शन कराकर निम्नलिखित रूप में परम शोक का अनुभव करते है—

१—ब्रह्महत्या द्वारा समाज में तिरस्कार जन्य मानसिक शोक।
२—मठधारियों की अधोगतिजन्य शोक[1]।
३—पराजयजन्य घोर ग्लानि एवं शोक।

चित्रकूट प्रसंग—माताओ के साथ भरत चित्रकूट पहुँचते हैं। माताओ से कुशलक्षेम पूछते हुए राम पूछ उठते है—

"सुख है पिता तन माइ।"

इस मिलन प्रसंग में विषाद का स्मरण मनोवैज्ञानिक विषम परिस्थिति को जन्म देता है, सारा समाज अविलम्ब शोकग्रस्त हो जाता है। मनोवैज्ञानिक सूक्ष्म-निरीक्षण के अन्तर्गत कवि ने इस प्रसंग को निम्नलिखित रूप मे रखा है—

"तब पुत्र कौ मुख जोइ,
क्रमते उठी सब रोइ।"

इस रोने के साथ अश्रुप्रवाह के प्रवाह का वर्णन करते हुए कवि अतिशयोक्ति के अन्तर्गत शोकगत प्रबल अनुभूति का दिग्दर्शन कराता है—

"आँसुन सो सब पर्वत धोये।
जडजगम को सब जीवहु रोये॥
सिद्ध बधू सिगरी सुन आई।
राजबधू सबई समुझाई॥" —(रा० च० १०/३१)

उपर्युक्त वर्णन मे कवि ने मानस की मनोवैज्ञानिक निम्नलिखित प्रवृत्ति की ओर भी सकेत किया है।

जब हम प्रसन्न होते है तो सब कुछ सुन्दर, आशामय, प्रकाशमय तथा प्रसन्न दिखलाई देता है किन्तु जब हम दुःखी होते है तो ससार भी हमारे साथ रोता हुआ निराशामय, अन्धकारमय तथा अवसन्न दिखलाई देता है।

सीताहरण—सीताहरण के अन्तर्गत सीता का करुणाक्रन्दन त्रसित सीता की बन्धनमुक्ति के लिए करुणपुकार है। इसलिए इस प्रसग को सीताबन्धन प्रसग भी कहा जा सकता है। इस करुण पुकार मे शोक की मार्मिक अनुभूति हुई है। सीता के मुख से हठात् निम्नलिखित पुकार फूट पडती है—

"हा राम, हा रमन, हा रघुनाथ धीर।

---

१. मठधारियो को अन्त मे घोर नरक भोगना पडता है केशव ने इस विश्वास की प्रतिष्ठा की है। रामचन्द्रिका के उत्तरार्द्ध मे श्वान प्रसग के अन्तर्गत इस विश्वास की ओर सकेत किया है। श्वान अपनी पूर्व जन्म की कथा सुनाता हुआ बताता है कि मठधारी के यहाँ से नाखून मे लगे हुए घी को, जो उसके पिता द्वारा उसके लिए दूध ठंडा करते हुए दूध मे गिर गया था, पान करने से उसको श्वान-योनि प्राप्त हुई है।

लंकाधिनाथ बश जानहु मोहि बीर ।।
हा पुत्र लक्ष्मण, छुडावहु बेगि मोही ।
मार्तण्डबश यश की सब लाज तोही ।।"

—(रा० च० १२ २१)

इस करुण पुकार के द्वारा सीता यह बता देना चाहती है कि वह किस परिस्थिति मे है । इसको बता देने के पश्चात् वह अपनी करुणदशा का निवेदन करती हुई अविलम्ब बन्धनमुक्ति की याचना करती है । सीता की यह करुण पुकार त्रसित एव आर्त्त जन की करुण पुकार बन कर जन-जन मे व्याप्त हो जाती है और ऐसी पुकार ही प्रभुअवतार का कारण होती है । रामावतार की सार्थकता भी इसी जन पुकार पर आधारित है, यह स्पष्ट है ।

रामविरह मे विप्रलभ की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है[1]। प्रकृतिगत उपमानो मे सीता की खोज करते हुए सुग्रीवमैत्री का प्रसग प्रकट होता है तथा हनुमान् सीता-खोज के लिए लंका जाते है ।

अशोकवाटिका मे सीता की करुणदशा का हनुमान अवलोकन करते है तथा अन्यपुरुषानुभूति के अन्तर्गत उनकी वेदना अति मर्मस्पर्शी बन जाती है । सीता की करुणापूर्ण दशा का चित्र कवि ने निम्नलिखित रूप मे प्रकट किया है—

"धरे एक बेणी मिली मैल सारी ।
मृणाली मनो पकते काढि डारी ।।
सदा राम नामै रटै दीन बानी ।
चहूँ ओर है राकसी दुःखदानी ।।"

—(रा० च० १३,५३)

"मृणाली मनो पकते काढि डारी" कहकर कवि सीता की मलीन एव दीन दशा का वास्तविक चित्र उपस्थिति करना चाहता है । इस तथ्य का यथातथ्य भान कराने के लिए कवि विभिन्न उत्प्रेक्षाओ की योजना करता है । एक के पश्चात् दूसरी तथा दूसरी के पश्चात् तीसरी उप्रेक्षा देता हुआ कवि मानो हनुमान के चित्त की दशा का सूक्ष्म अध्ययन करता है । हनुमान का दुःखी चित्त किन-किन वस्तुओ की ओर जाता है इसका अवलोकन कवि ने विशेष रूप से किया है । इसको कवि की कला की धुन नही कहा जा सकता । यह कवि का मनोवैज्ञानिक सूक्ष्म अध्ययन है । यह अवश्य है कि कवि का वह अध्ययन एक शास्त्रमर्मज्ञ पण्डित की ऊँची उडान है ।

कवि ने इस प्रसग मे निम्नलिखित उत्प्रेक्षाओ की योजना की है—

१—"असी बुद्धि सी चित चितानि मानो ।"
२—"किन्धौ जीभ दतावली मे बखानो ।"

---

१. इसीलिए यहाँ इस प्रसग को स्थान नही दिया गया है ।

३—"किधौ घेरि के राहु नारीन लीनी,
कलाचन्द्र की चारु पीयूष भीनी।"
४—"किधौ जीव की ज्योति मायान लीनी।"
५—अविद्या के मध्य विद्या प्रवीनी।"
६—"मानो सवर-स्त्रीन मे काम-बामा,
हनूमान ऐसी लखी राम रामा।"
(राम० च० १३ ५४,५५)

इस अवसर पर रावण आता है तथा सीता रावण के आने के समाचार को सुनकर अति दुःखी हो उठती है। महारानी की वेदना का कवि ने समीप से अध्ययन किया तथा उनकी एक-एक मुद्रा को तूलिका से रग देकर चित्रित कर डाला—

"तहाँ देवद्वेषी दसग्रीव आयो।
सुन्यो देवि सीता महा दुःख पायो॥
सबै अंग लै अंग ही मे दुरायो।
अधोदृष्टि कै अश्रुधारा बहायो॥"—(राम० च० १३ ५६)

इस वर्णन मे सीता की कितनी विवशता, कितनी परवशता, कितनी असहायावस्था तथा कितनी करुणा भरी हुई है यह यहाँ विशेषरूप से अवलोकनीय है। कवि ने कहने सुनने के स्थान मे बाह्यव्यजको द्वारा यथातथ्य चित्रण कर दिया है और वह एक ओर मौन खडा देख रहा है कि इस करुणचित्र का पाठक पर क्या प्रभाव पडता है। सीता की अश्रुधारा के साथ प्रत्येक सहृदय पाठक की अश्रुधारा वह उठती है जैसे ही उसे इस करुणापूर्ण चित्र के दर्शन हो जाते है, यह कहना अत्युक्ति न होगी।

लक्ष्मण-शक्ति पर रामविलाप—इस प्रसग मे भी कवि की दृष्टि मनोवैज्ञानिक तथ्यो के उद्घाटन की ओर रही है। इसीलिए यह प्रसग अति स्वाभाविक तथा मर्मस्पर्शी बन गया है।

राम धीर एव वीर है। अतएव लक्ष्मण-शक्ति का समाचार पाकर वह धैर्य धारण करते हुए दिखलाई देते है। आहत लक्ष्मण उनके सामने लाए जाते है तो वह अपना धैर्य खोकर अति सामान्य पुरुष की भाँति विलाप करने लगते है—

"लक्ष्मन राम जही अवलोक्यो,
नैनन ते न रह्यौ जल रोक्यौ।"—(राम० १७/४३)

इस अश्रुमोचन के साथ राम का प्रलाप भी प्रारम्भ हो जाता है। उनके प्रलाप मे मर्मस्पर्शी वेदना के दर्शन होते है। मूलरूप मे यह वेदना जनसामान्य की अनुभूति के अति समीप होने के कारण जनवेदना का रूप ले लेती है और इसीलिए अति मर्मस्पर्शी बन गई है। कवि के शब्दो मे राम का प्रलाप निम्नलिखित रूप मे अवलोकनीय है—

"बारक लक्ष्मण मोहि बिलोको, मो कहँ प्राण चले तजि रोको।
हौं सुमिरो गुण केतिक तेरे, सोदर पुत्र सहायक मेरे॥
लोछन वान तुही धनु मेरो, तू बल विक्रम बारक हेरो।

तो बिनु हौं पल प्रान न राखौं, सत्य कहौ कछु झूठ न भाखौ।
मोहि रही इतनी मन शंका, देन न पाई विभीषण लका।
बोलि उठौ प्रभुको पन पारो, नातरु होत है मो मुख कारो।"

—(राम० च० १७/४४, ४५/४६)

राम के विलाप के अन्तर्गत "बारक लक्ष्मण मोहि बिलोको" तथा "बारक हेरो" शब्द शोकगत सामान्य लालसा का उद्घाटन करते है। कवि ने इन शब्दो के द्वारा राम की अनुभूति को असाधारण विशेषता प्रदान की है। राम-लक्ष्मण के गुणो का स्मरण करते है, अपने बलवैभव का उनको आधार समझते हुए विभीषण को लका देने के प्रण की पूर्ति मे आशका करते हुए अति कातर हो उठते है। उनकी बन्धुवियोगजन्य अनुभूति जनजन की अनुभूति के रूप मे प्रकट होती है तथा उनके साथ जनजन के कंठ से यही शब्द बरबस निकल पडते है—

"बारक लक्ष्मण मोहि बिलोको।"

विपक्षी पात्रों की शोकानुभूति

रावण शोकानुभूति—अक्षयवध तथा कुभकर्णनिपात के अवसर पर कवि ने रावण की शोकानुभूति का सकेतमात्र वर्णन किया है। अक्षयवध पर "रावण के पछिताने की" ओर सकेत किया गया है तथा कुभकर्णनिपात पर "शोक ग्रस्यो" कह कर शोकानुभूति की ओर सकेत किया गया है। इस प्रकार इन प्रसगो मे करुण की अभिव्यक्ति संभव न हो सकी।[1]

मेघनादवध पर रावण की शोकानुभूति प्रकट हुई है। रावण आसन लगाए हुए ध्यानावस्थित बैठा था। इसी समय उसकी "अ जुलि मे" मेघनाद का कटा हुआ सिर आ गिरा। रावण मेघनाद के कटे हुए सिर को देखकर हा-हा कार करने लगा, मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पडा। रावण रोता तथा विलाप करता है। सम्पूर्ण महल मे कुहराम मच गया है। कोई धैर्य धारण नही कर रहा। इस परम शोकानुभूति मे रावण का प्रलाप प्रकट होता है। परम निराश होकर उसने प्राणत्याग करने का सकल्प कर लिया है। इसीलिए आज वह विपक्षियो को आनन्द मानने की सुविधा देना चाहता है। उसकी निराशाजन्य विषम व्यथा के दर्शन निम्नलिखित शब्दों मे किए जा सकते है—

पुत्र-शोक मे वह स्वय आज प्राण दे देगा। अतएव अब उसके शत्रुओं को उस का आतंक एवं भय न रहेगा। आदित्य, जल, पवन, पावक, चन्द्र आदि देवगण आनद मनावे, किन्नर आनन्दगान गावे, गधर्व नृत्य करे तथा ब्रह्मरुद्रादि देव इन्द्र का अभि-

---

१. "मारो अक्ष सुना जही रावण अति पछिताय,
इन्द्रजीत सो यो कही बानर जियत न जाय॥"—(राम० च० १३/९६)
"दशग्रीव शोक ग्रस्यो लोकहारी
मयो लंक के मध्य आतंक भारी।"—(रा० च० १८/२८)

षेक कर दे, सीता राम को दे दी जाय, लका विभीषण को देदी जाय तथा ब्राह्मण लोग पुण्यानुष्ठान हेतु यज्ञादि करे ।[1]

मंदोदरी विलाप—रावण वध पर मदोदरी विलाप करती है। इष्टनाशगत इस विलाप मे शोक की अभिव्यक्ति की जानी चाहिए थी किन्तु कवि ने इस प्रसग को अति सक्षिप्त बनाकर एक छद मे ही समाप्त कर दिया है। समय-समय पर मदोदरी ने रावण को समझाया तथा सीता को वापिस देने के असफल प्रयत्न किए। मदोदरी के इन प्रयत्नो मे कवि ने अप्रत्यक्ष रूप मे अपने पति के कार्यों के प्रति मदोदरी की असहमति तथा राम के प्रति निष्ठा को प्रकट किया है। इसलिए सभवत. इस परम शोकपूर्ण अवसर पर कवि ने मदोदरी विलाप को गुणकथन रूप मे चलता कर दिया।

मदोदरी निम्नलिखित रूप मे विलाप करती है—

"तुमने दिग्पालो को जीत लिया था। तुम्हारे डर से इन्द्र स्वर्ग से भाग गए थे। विरहिणी शची की गर्म श्वासो से आकाश गगा सूख गई। राजाओ और देवताओ की सपति दिनरात तुम्हारे कारण पीडित थी। तीनो लोको की स्त्रियो की (तुम्हारी सेवा करने के लिए) दो दो 'दण्ड" की पारी बँधी हुई थी। वही तुम आज कुत्तो और सियारो से सेवित भूमि पर पडे सो रहे हो।"[2]

पराभव पराजय वध बन्धन

पराभव—पराभवगत प्रसगो मे विपक्ष के दो प्रसग प्रकट हुए है—

१—छत्रमुकट हनन मे रावण पराभव।

२—रावण मख विध्वस मे मदोदरी पराभव।

---

१. "देख्यो सिर अजुलि मे जब ही, हा हा करि भूमि पर्यो तबही।
आये सुत-सोदर मत्री तबै, मदोदरि रयो तिय आई सबै।
कोलाहल मदिक माझि भयो, मानो प्रभु को उडि प्राण गयो।
रोवै दसकठ विलाप करै, कोऊ न कहूँ तन धीर धरै॥"—(राम० च० १६/२)

"आजु आदित्य जल पवन पावक प्रबल चन्द अनन्द मय,
त्रास जग को हरौ, गान किन्नर करौ नृत्य गधर्व।
....

ब्रह्मरुद्रादि दै देव तिहूँ लोक के राज को जाय अभिषेक इन्द्रहि करौ।
आजु सिय राम दै, लक कुलदूषणहि, यज्ञ को जाय सर्वज्ञ विप्रहु वरौ।"
—(रा० च० १६/३)

२. "जीत लिए दिगपाल, सची की उसासन देवनदी सब सूकी
बासरहू निसि देवन की नरदेवन की रहै संपति हूकी
तीनहु लोकन की तरुनीन की बारी बँधी हुती दडहि दूकी
सेबित स्वान सिगार सो रावण सोवत सेज परे अब चूकी।" (रा० च०१६/५४)

छत्रमुकुट हनन प्रसंग—छत्रमुकट हनन प्रसंग का संकेतमात्र रूप में वर्णन किया गया है। पराभवगत अनुभूति का संकेत केशवदासजी रावण की पराभवगत लज्जा के अन्तर्गत करते है। रावण इस लज्जा के कारण भागकर भवन मे घुस जाता है—

"लज्जित खल तजि सुनहु भज्जि भवन मे गयो।

लक्ष्मण-प्रभु तत्क्षण गिरि दक्षिण पर सोभयो॥" (राम० च० १५/४६)

रावण की शोकानुभूति के प्रकटीकरण के अभाव मे यह प्रसग अपूर्ण है तथा करुण की अनुभूति नही करा पाता। इस प्रसग मे रावण की उन परिस्थितियों पर प्रकाशमात्र पडता है जिनके अन्तर्गत पराभवगत शोकानुभूति सभव हो सकती थी।

मंदोदरी पराभव—रावण के मख-विध्वंस प्रसग मे मदोदरी पराभव का वर्णन आता है। इस प्रसग मे भी कवि ने मदोदरी को पराभवगत शोकानुभूति के प्रकट करने का कोई अवसर नही दिया। कवि स्वय ही सम्पूर्ण दृश्य का अवलोकन करता है और उसका तथ्य वर्णन करता है। रावण का मख विध्वस करने के लिए वानरो के साथ अगद रावण के साथ महल मे घुस आते है तथा मंदोदरी को पकड़ लेते है। मदोदरी को घसीटते हुए वाहर ले आते है।

"सुआनी गहे केश लकेशरानी,
गहे बाँह ऐचै चहूँ ओर ताको,
मनो हम लीन्हे मृगाली लता को।" (राम० च० १६/२६)

अंगद द्वारा खीचातानी मे मदोदरी की वेशभूषा अस्तव्यस्त हो जाती है। उसकी कंचुकी फट जाती है तथा उसके कुच दिखलाई देने लगते है। इस अवसर पर कवि मदोदरी के इन कुचो का वर्णन करने लगता है। "लकरानीन की दीन बानी" जन्य करुणापूर्ण दृश्य मे कवि का कुच वर्णन सगत प्रतीत नही होता। यह ठीक है कि विपक्ष है तथा विपक्ष का पराभव भी सामाजिक के लिए मनोरजन का साधन बन सकता है किन्तु इस प्रसग के लिए यह दृष्टिकोण सनीचीन नही प्रतीत होता। इस प्रकार स्पष्ट है कि इस प्रसंग मे भी करुण की अभिव्यक्ति संभव न हुई

पराजय प्रसंग—पराजय प्रसग का सकेत कवि ने रावणलक्ष्मण युद्ध के अन्तर्गत किया है। रावण के युद्ध पाण्डित्य तथा राक्षसी माया के सामने लक्ष्मण हार मान जाते है। वह रावण के सिरो को काट काट कर फेकते है किन्तु उनके

---

१. "छुरी कठमाला लुरै हार टूटे, खसै फूल फैले लसै केश छूटे ;
फटी कचुकी किंकिनी चारु छूटी, पुरी काम की सी मनो रुद्र लूटी।"
(राम० च० १६/३०)

"बिना कचुकी स्वच्छ वक्षोज राजै,
किधौ सौचहू श्रीफलै सोभ साजै,
किधौ स्वर्ण के कभ लावण्य पूरे।" (राम० च० १६/३१)

स्थान मे दूसरे नए सिर उत्पन्न हो जाते है। इस प्रकार लक्ष्मण रावणवध-प्रयत्न में असफल रहते है।

इस प्रकार का प्रसंग रामचरितमानस मे प्रकट नही हुआ। मानस में राम स्वय ही रावण से युद्ध करते है। रावण लक्ष्मण के युद्ध का अवसर ही नही आता। यहाँ पर भी यह प्रसग रावण की अजेय दिखाने के साथ प्रभु की परम शक्ति की ओर ही संकेत करता है। ऐसे अजेय रावण को भी जय कर लिया। साथ ही इस प्रसंग में लक्ष्मण की किसी शोकानुभूति की भी अभिव्यक्ति नही हुई है। इस प्रकार इस प्रसंग की योजना प्रभु की परमशक्ति की प्रतिष्ठा के लिए ही जान पड़ती है। हो सकता है मेघनाद वध के फलस्वरूप लक्ष्मण को अपने रणपाण्डित्य का गर्व हो गया हो तथा सर्वगर्वहारी प्रभु ने इस योजना द्वारा लक्ष्मण के गर्व को नष्ट किया हो। भग्नमनोरथ लक्ष्मण अन्त मे प्रभु से यही प्रार्थना करते है—

"अब टरै न टारौ मरै न मारौ,
हौ हठि हारौ धरि शायक।" (राम० च० १९/५०)

प्रभु के समक्ष प्रकट लक्ष्मण की यह विवशता पराजय एवं पराभवगत शोकानुभूति की ओर सकेतमात्र करती है। करुणरसानुभूति के अन्तर्गत नही आ सकती।

बन्धन—रामचन्द्रिका मे बधन के दो प्रसग प्रकट हुए है—

१—हनुमान बन्धन।

२—नागपाश द्वारा रामलक्ष्मण बन्धन।

हनुमान बन्धन प्रसग अति सुक्ष्म एव सकेत रूप मे प्रकट हुआ है। साथ ही यह बंधन साभिप्राय "मन शुद्ध कै" के अन्तर्गत प्रकट हुआ है। इस प्रकार यह प्रसंग करुणरस के अन्तर्गत नही आता।

नागपाश द्वारा राम लक्ष्मण बन्धन—मेघनाद राम लक्ष्मण को नागपाश में बाँध लेता है।

"सायक सो अहिनायक साँध्यो,
सोदर सो रघुनायक बाँध्यो।" (राम० च० १७/९)

इस प्रसग मे भी बन्धनगत राम लक्ष्मण की किसी शोकानुभूति का प्रकटीकरण नही होता। इसलिए यह प्रसग भी करुण की अभिव्यक्ति के अन्तर्गत नही आता। इस प्रसग मे कवि ने एक मौलिक योजना करके अति करुणापूर्ण दृश्य का उद्घाटन अवश्य किया है जिसको यहाँ देख लेना अप्रासगिक न होगा।

नागपाश मे बँधे हुए रामलक्ष्मण को रावण सीता को दिखाता है और इस प्रकार सीता की दारुण वेदना एव परम निराशा को प्रकट करना चाहता है। मूल प्रसग निम्नलिखित है—

"लै विमान अधिरुढित धायो,
जानकीहि रघुनाथ दिखायो।" (राम० च० १७/१०)

इस रूप में यह प्रसग विशेष मर्मस्पर्शी बन जाता है। यद्यपि कवि ने सीता की निराशा तथा परम विकलता का दिग्दर्शन नही कराया तथापि यह प्रसंग अपने इस मूल रूप मे सीता की दयनीय दशा की ओर सकेत अवश्य करता है। नागपाश में बँधे हुए राम-लक्ष्मण को देखकर एक क्षण के लिए सीता की क्या दशा हो गई होगी, यह तथ्य कवि ने, ऐसा प्रतीत होता है, पाठक की कल्पना के लिए छोड दिया है। इस दृश्य मे निहित सीता की घोर निराशा, परम वेदना तथा परम विकलता, रावण का उल्लास, उत्साह तथा परम प्रसन्नता आदि सब कुछ एक साथ ही पाठक के मर्म को भेद डालते है। यह प्रसग जितना सक्षिप्त एवं सूक्ष्म दृष्टिगोचर होता है उतना ही यह गभीर एव प्रभविष्णु है। गागर मे सागर की उक्ति यहाँ अक्षरशः सत्य है।

कवि इस प्रसग की गभीरता से परिचित था। इसलिए इस आशका से कि कही इसका प्रभाव घातक न सिद्ध हो जाय, कवि निम्नलिखित टिप्पणी देकर शीघ्र ही इस प्रसग को सह्य एव प्रभावहीन बना देता है जिससे सीता एवं सामाजिक की अवरुद्ध श्वासप्रश्वास पुन साधारण रूप मे चलने लगती है तथा एक लम्बी संतोष की साँस के साथ इस प्रसग का पटाक्षेप हो जाता है।

"पन्नगारि प्रभु पन्नगसाई,
क ल-चाल कछु जानि न जाई।" (राम० च० १७/१२)

"पन्नगारि प्रभु" कहकर कवि इस प्रसग की वास्तविकता का उद्घाटन करने के साथ आगे आने वाले बधनमुक्ति-प्रसग की ओर सकेत भी कर देता है।

वध—वध के प्रसग विपक्ष की शोकानुभूति के अन्तर्गत आ चुके है। अक्षब-वध, मेघनादवध, कुभकर्ण, रावणवध विशेष उल्लेखनीय है। इनके सम्बन्ध मे यहाँ पृथक् विवेचन की आवश्यकता प्रतीत नही होती।

विभीषण-शरणागति—रावण सभा मे विभीषण का निरादर हुआ—

"सिर माँझ लात पग लागत मार्यो,
करि हाय हाय उठि देह सँभार्यो।"

और भाई से इस प्रकार निराहृत तथा अति दुखी हो कर "उर रामचन्द्र जगती पति" जानकर विभीषण प्रभु शरण मे आया तथा निम्नलिखित रूप मे भगवान् को पुकारने लगा—

"दीनदयाल कहावत केशव हौ अति दीन दशा गहो गाढो।
रावण के अघ ओघ समुद्र मे बूडत हौ बर ही गहि काढो॥
ज्यो गजकी प्रहलाद की कीरत त्यो ही विभीषण को जस बाढो।
आरत बधु पुकार सुनौ किन आरत हौ तौ पुकारत ठाढो॥" (रा० च० १५/२४)

"केशव आपु सदा सह्यो दुख पै दासन देखि सके न दुखारे।
जाको भयो जेहि भाँति जहाँ दुःख त्यों ही तहाँ तेहि भाँति सँभारे॥
मेरिय बार अबार कहा कहूँ नाहि न काहू के दोष विचारे।
बूड़त हौं महामोह समुद्र मे राखत काहे न राखनहारे॥" (राम च० १५/२५)

विभीषण की इस करुण पुकार मे कवि की अन्तरात्मा पुकार उठी है। गज, प्रह्लाद की कीर्ति के उदाहरण दिए, आरतबंधु, दीनदयाल, राखनहारे आदि विरदों के द्वारा प्रभु की कृपा-याचना की तथा "मेरिय बार अबार कहा" एव "राखत काहे न राखनहारे" कहकर प्रभुहृदय को द्रवित कर लिया। प्रभु ने प्रसन्न होकर "लंकेश आउ चिर जीवहि लंका धाम, राजा कहाउ जग जौ लगि राम नाम" कहा और विभीषण के लोक और परलोक दोनो को सुधार दिया। विभीषण की शरणागति के साथ जनजन की शरणागति का प्रसग प्रकट हो जाता है तथा विभीषण की करुण पुकार के साथ जनपुकार बार-बार यही आग्रह करती है—"राखत काहे न राखनहारे।"

विभीषण-शरणागति के साथ कवि की लालसा का भी स्मरण हो आता है कवि ने जिसका निर्देश ग्रन्थारम्भ मे निम्नलिखित रूप मे किया है—

"जिनको यशहसा, जगतप्रशसा, मुनिजन मानस रता।
लोचन अनुरुपिनि श्यामसरूपिनि अजनअजित सता॥
कालत्रय दरशी निर्गुण-परशी होत बिलब न लागै।
तिनके गुण कहिहौ सब सुख लहिहौ पाप पुरातन भागै॥" (राम० च० १/२०)

करुणरस की विशेष अभिव्यक्ति—आचार्य केशव ने अतिनिवेदन तथा मिलन को करुणरस के अन्तर्गत ही लिया है। ऐसे दो प्रसग रामचन्द्रिका मे प्रकट हुए है—

१—जनक बरात को भोजन के लिए निमत्रण देते है।

२—अवधि के पश्चात् राम का अयोध्या आगमन तथा माताओ से मिलना।

महाराज जनक तथा ऋषि सतानद बरात को भोजन के लिए निमंत्रण देने आते है और कहते है—

"बिनती करिये जन जो जिय लेखो[1]।
दुख देख्यो ज्यो ज्यों कालिह त्यो आजहु देखो[2]॥
यह जानि दिये ढिठई मुख भाषा।
हम है चरणोदक के अभिलाषा॥" (राम० च० ६/१)

इस विनय को सुनकर सब करुणरस मे डूब गये—

"जब ऋषिराज विनै कर लीनो।
सुनि सब के करुणा रस भीनो॥"

ऋषि सतानद तथा महाराज जनक की विनय तथा अतिनिवेदन को सुनकर सब के चित्त करुणरस में द्रवित हो गए।

---

१. "विनती करिये जन जो चित दीजै।" पाठान्तर—

२. "कष्ट कियौ ज्यों कालिह त्यों आजहु कीजै।" पाठान्तर—

इसी प्रकार राम के अयोध्या आगमन पर रामजननी मिलन को करुणरस के अन्तर्गत रखा गया है—

"मिले जाय जननीन कों जबही श्री रघुराइ।
करुणारस अद्भुत भयो मो पै कह्यो न जाइ॥"
(रा० च० २२/१३।)

उपर्युक्त उदाहरणो से स्पष्ट है कि आचार्य जी की दृष्टि विकास एव विस्तार की ओर थी। वह रूढि के पक्ष मे न थे। इन दो प्रसगों के द्वारा निश्चय ही करुण-रस के क्षेत्र का विकास एव विस्तार हुआ है।

रामचन्द्रिका उत्तरार्द्ध

अवधिकाल में भरत की करुण दशा—हनुमान जी भरत को रामागमन का शुभ सदेश देने के लिए आते है तथा अन्यपुरुषानुभूति के अन्तर्गत भरत की अति करुणापूर्ण दशा का अवलोकन करते है[1]—

१—भरत शोकसतप्त है तथा सम्पूर्ण अग मलीन है।
२—वल्कलवस्त्र पहने है, सिर पर जटा है, फलमूल का आहार करते है।
३—सम्पूर्ण सुखो से विरक्त है।
४—प्रभुचरणपादुकाओ की मनवचनकर्म से सेवा कर रहे है।

भरत की इस करुणापूर्ण दशा से भरत की निष्ठा, विरक्ति, उदासीनता तथा मार्मिक शोकानुभूति का अनुमान लगाया जा सकता है जो अपने मूल रूप मे रामवनवास प्रसग से भी अधिक कष्टकर तथा दारुण है।

सीता-निर्वासन

राम का शोक—दूत ने प्रभु से आकर रजक का विचार प्रकट किया जिसको सुनकर महाराज राम बडे दुखी हुए। प्रात. जब तीनो भाई आए तो राम के बाह्य-व्यंजको से उनकी दारुण वेदना का अनुमान लगा लिया—"रामचन्द्र देखियो प्रभात चन्द्र के समान" और इसलिए तीनो भाइयो ने "बहुभाँति बदनता करी" किन्तु महाराज राम "हँसि बोलियो न दयाधरी।"

अन्त मे अति दुखी एव शोकसंतप्त राम ने कहा—"क्या कहा जाय, कुछ

१. "हनुमत बिलोके भरत सशोके अंग सकल मलधारी।
बलका पहरे तन सीस जटागन है फलमूल अहारी॥
बहु मंत्रिनगन मै राज्यकाज में सब सुखसो हित तोरे।
रघुनाथ पादुकनि, मन वचप्रभुगनि सेवत अंजुलि जोरे॥"
—(रा० च० २१/२२)

कहा नहीं जाता । कहने में जी बहुत डरता है," तथा तब प्रभु ने दूत की सारी बात किसी प्रकार कह सुनाई[1]

भरत का शोक—रजक निन्दा के कारण प्रभु सीता को निर्वासित करना चाहते हैं यह जानकर भरत को बडा दु ख हुआ । वे प्रभु को समझाने लगे[2]—

१—सीता को अति शुद्ध मानकर आप घर लाए ।

२—अग्नि-परीक्षा मे सीता जी शुद्ध सिद्ध हुई ।

३—शिव, ब्रह्म, धर्म तथा स्वय पिताजी उनकी शुद्धता के साक्षी हुए ।

४—सीता पवित्र, प्रियवादिन, पतिव्रता, अतिशुद्ध, तथा जग की पूज्या है । वे इस समय गर्भिणी है । अतएव उनका निर्वासन धर्मविरुद्ध है ।

५—यवनादि के कहने से क्या ब्रह्मण गाय को त्याग देगा ।

६—चन्द्रमा वियोगियों को दु.खदायी है । वे चन्द्रमा की निन्दा करते है तो क्या इसीलिए शिवजी उसको मस्तक पर से हटा देगे ?

७—इसलिए रजकनिन्दा को सत्य समझना सुधा छोड़कर विष पीने के समान अहितकर होगा ।

भरत के इस समझाने बुझाने का कोई परिणाम न हुआ । महाराज राम सीतानिर्वासन के लिए दृढ निश्चय ही दिखलाई दिए । यह देखकर भरत को अति

---

१. "कहिये कहा न कही परै । कहिये तो ज्यो बहुतै डरै ।
तब दूत बात सबै कही । बहुभाँति देह दशा दही ।।"
—(रा० च०२१/२१)

२. "मम मानिकै अति शुद्ध सीतहि आनियो निज धाम ।
अवलोकि पावक अक ज्यो रविअक पकज दाम ।।
केहि भाँति ताहि निकारिहौ अपवाद-वादि बखान ।
शिव ब्रह्म धर्म समेत श्री पितु साखि बोल्यो आन ।।"
यवनादि के अपवाद क्यों द्विज छोडिहै कपिलाहि ?
विरहीन को दुखदेत क्यों हर डारि चन्द्र कलाहि ?
यह है असत्य जु होहिगो अपवाद सत्य सनाथ।
प्रभु छोडि शुद्ध सुधाहि पीवत विषहि अपने हाथ ।।
—(रा० च० ३३/३२, ३३)

दुःख एव शोक हुआ। अपने दुर्भाग्य को कोसते हुए वह कहने लगे—[1]

१—माता वैसी मिली, पिता वैसे मिले (जिन्होने मेरे लिए राम को वनवास दिया तथा मुझे कलंकित होना पड़ा।)

२—केवल आप जैसे धर्मात्मा भई के यश के फलस्वरूप अपने आपको अबतक यशस्वी समझता था।

३—वह आप भी सीतानिर्वासन द्वारा कलंकित हुए जा रहे हो।

अब तो मैं माता-पिता, भाई सभी को निंदित पाकर अति निंदित हुआ हूँ। मैं संसार मे कौन मुंह दिखलाऊँगा। साथ ही भरत ने पुनः एक बार राम को समझाने का प्रयत्न किया।[2]

यदि आपको सीता को छोडना ही है तो संतान-प्रसव के पश्चात् केवल सीता को छोड देना। गर्भिणी स्त्री को तो दो पल के लिए भी यहाँ तक कि स्वप्न मे भी न छोडना चाहिए। ऐसी दशा मे सीता को छोडकर लोकलोकातर मे अपयश न लीजिए। इस पर भी जब भरत ने राम को दृढ-निश्चय देखा तो अति दुःखी होकर कहने लगे—

"घर घर प्रति सब जग सुखी, राम तुम्हारे राज,
अपनेहि घर कत करत हो, शोक अशोक समाज।"

यही नही अति क्षोभ एवं उदासीनता के अन्तर्गत उनके मुंह से हठात् यह शब्द निकल पडे—"और होइ तो जानिये, प्रभु सो कहा बसाय" साथ ही यह सोचकर कि सीता निर्वासन का अति दुष्कर कार्य उनको ही न सौप दिया जाय भरत तथा शत्रुघ्न अति दुःखी होकर वहाँ से चल दिए।[3]

सीता की आशंका—सीता ने प्रथम दोहद को प्रकट करते हुए प्रभु से प्रार्थना की—

"जो सब ते हित मोपर कीजत, ईश दया करिके बरु दीजत,
है जिसने ऋषि देव नदी तट, हौ तिनको पहिराय फिरौं पट।"

जब लक्ष्मण सीता को साथ लेकर वन मार्ग की ओर चले तो सीता ने प्रभु की स्वीकृति "पट पहिरावन ऋषिन को, जैयो सुन्दरि प्रात" के अनुकूल यही समझा कि उनकी दोहद के अनुकूल ही लक्ष्मण उनको ऋषि-आश्रमो को ले जा रहे है—

---

१. "वा माता वैसे पिता तुम सो भैया पाय।
भरत भयो अपवाद को भाजन भूतल आय॥" (रा०च० ३३/३५)

२ "स्वप्नहू नहिं छोडिये तिय गुर्बिनी पल दोय।
छोडियो तब शुद्ध सीतहिं गर्भ मोचन होय।
पुत्र होय या पुत्रिका यह बात जानि न जाय।
लोक लोकन में अलोक न लीजिए रघुराय॥"—(रा०च० ३३/४०)

३. "यह विचारि के शत्रुहा, भरत गये अकुलाय।"—(रा०च० ३३/४४)

किन्तु निर्जन मार्ग को देखकर उनकी आशका मुखरित हो उठी—

"सुनों न वेद की गिरा, न बुद्धि होति है थिरा।
ऋषीन की कुटी कहाँ, पतिव्रता बसैं जहाँ।।"
मिलै न कोइयै कहूँ, न आवतै न जातहूँ,
चले हमें कहाँ लिये, डराति हौं महा हिये।।"

महारानी की उपर्युक्त आशका को समझकर लक्ष्मण को बहुत दुःख हुआ, उनके नेत्रों में आँसू भर आए तथा वह कुछ भी उत्तर न दे सके। लक्ष्मण की ऐसी दशा को देखकर सीताजी अति व्याकुल होकर सज्ञाशून्य होकर पृथ्वी पर गिर पडी मानो घने वन में बिजली गिर गई हो।

लक्ष्मण का शोक—लक्ष्मण परम आज्ञाकारी प्रभु-सेवक है। भरत की भाँति कुछ कह सुनकर वह अपनी शोकानुभूति को शात नही कर सकते थे। यह दुष्कर कार्य उन्हे करना पडा। इसको करने या न करने के सम्बन्ध मे अपनी सहमति या असहमति देने का प्रश्न ही नही उठा। प्रभु ने उनको आज्ञा इस रूप मे दी—

"सीतहि लै अब सत्वर जैये,
राखि महावन मे फिरिपैये।
लक्ष्मण, जो फिर उत्तर दैहौ,
शासनग को पातक पैहो।"—(रा० च० ३३।४५)

इस कठोर आज्ञा के पालन मे विवश लक्ष्मण, सीता को सज्ञाशून्य देखकर परम दुःखी होकर बिलख उठे। एक हाथ से सज्ञाशून्य सीता के मुख पर उन्होने छाया की तथा दूसरे हाथ से वायु करते हुए इतने रोये कि उनके आँसुओ से सीता जी का सम्पूर्ण शरीर भीग गया। लक्ष्मण की इस मौन व्यथा की गभीरता को कोई क्या जान सकता था। भरत ने एक स्थल पर लक्ष्मण की घोर आत्मग्लानि की ओर निम्नलिखित शब्दो मे सकेत किया है—

"लक्ष्मण सीय तजी जब ते बन,
लोक अलोकन पूरि रहे तन।
छोडन चाहत ते तब ते तन,
पाय निमित कर्यो मन पावन।"—(रा० च० ३६।३०,३१)

घोर आत्मग्लानि मे आत्मघात ही चित्त की शाति उत्पन्न कर सकता है इस तथ्य को आचार्य जी भलीभाँति जानते थे। इसलिए उन्होने घोर आत्मग्लानि मे लक्ष्मण के "शरीर छोडने" के विचार को प्रकट किया।

सीता का शोक

अ--लव मूर्च्छा प्रसंग—शत्रुघ्न के साथ युद्ध करते हुए लव मूर्च्छित हो गए। लव की मूर्च्छा की सूचना जब सीता को प्राप्त हुई तो पुत्रशोक मे परम दुःखी सीता

स्वयं अचेत हो गई। उन्हे बडा आश्चर्य हुआ कि श्री रघुनाथ का पुत्र अजेय है वह शत्रु के हाथ किस प्रकार पड गया। परम शोक से विकल होकर उन्होने अपने पातिव्रत की शपथ ली। ऋषि और कुश मे से उस समय आश्रम मे कोई न था ऐसी दशा मे लव को शत्रु से कौन छुडावे। इस विवशता मे उनकी आर्त पुकार वनप्रात मे गूंज उठी तथा अति आकुल कुश शीघ्र उनकी सहायता के लिए आगए और इस स्थल पर इस प्रसगगत शोकानभूति शात हो गई।[1]

आ--रामदल पर कुश की विजय—कुश ने सम्पूर्ण रामदल को पराजित किया तथा अपनी विजय की प्रसन्नता मे रण-हत वीरो के अच्छे आभूषणादि तथा बदी किए हुए हनुमान तथा जामवत को लेकर वह माता के पास पहुचे। सीताजी ने "चीन्हि देवर के विभूषण देखि कै हनुमत" समझ लिया कि उनके वीर पुत्रो ने किन शत्रुओं पर विजय प्राप्त की है। अतएव परम शोकाकुल होकर वह पुकारने लगी।[2]

१—अरे, यह तुमने कैसा दुरत कार्य किया। तुमने तो मुझको ही विधवा बना दिया।

२—अपने पिता तथा सब चाचाओं को मारकर और हनुमान को बाँधकर तुम मेरे लिए कलक ही लाए हो।

३—एक साथ ही तुमने अपनी माता तथा सब काकियो को ही विधवा कर दिया।

४—मेरे समान कौन पापिन है जिससे तुम जैसे कुलविनाशक पुत्रो ने जन्म लिया।

५—अरे, पापियो पिता को मारकर तुम कहाँ जाओगे। चौदह लोको मे तुमको कही स्थान न मिलेगा।

६—तुमको कोई रामपुत्र न कहेगा। तुम जारज पुत्र कहलाओगे।

कहना न होगा कि इस प्रसग मे सीता की परम शोकानुभूति परम आत्मग्लानि के साथ अति मर्मस्पर्शी बन गई है। कवि ने अपने मनोवैज्ञानिक अध्ययन के आधार पर इस परम शोकानुभूति का क्रमिक विकास भी दिखलाया है जो आत्मग्लानि की ओर उन्मुख है।

राम का शोक—शत्रुघ्न को रण-हत सुनकर रामचन्द्र जी को पहले तो बडा आश्चर्य हुआ।

---

१. "सीता गीता पुत्र की सुनि कै भई अचेत।" (रा० च० ३५/२४, २५)

२. "चीन्हि देवर के विभूषण देखि कै हनुमत,
पुत्र हौ विधवा करी तुम कीन काम दुरत।"
पापि, कहाँ हति बापहि जैहौ, लोक चतुर्दश ठौर न पैहौ॥
रामकुमार कहै नहि कोऊ, जारज जाय कहावहु दोउ॥" (रामच० ३६/३)

शत्रुघ्न तो बड़ा गुणी, शत्रुओं को मारने वाला, बालकपन से ही रणाभ्यस्त, दशरथ जैसे यशस्वी महाराज का पुत्र, मेरा भाई तथा लवणासुर का हंता था। आज यह क्या हुआ, ऐसे विकट भट को दो छोटे मुनि बालको ने मार डाला। इस आश्चर्य के साथ राम की शोकानुभूति द्विगुणित गभीर हो जाती है। "काल की कुटिलता" समझकर इस शोकानुभूति को राम किसी प्रकार सह्य बना लेते है।[1]

"यहि जगत जाल के करम काल के कुटिल भयानक भारे।"

इस प्रसग मे कवि राम की शोकानुभूति की अभिव्यक्ति न कर सका। सकेतमात्र रूप में ही इसका प्रकटीकरण हुआ है।

भरत के मन का क्षोभ तथा आत्मग्लानि—सीतानिर्वासन के कारण भरत विशेष रूप से क्षुब्ध रहे है। उन्होने प्रभु को सभी प्रकार से समझाया किंतु सीता को निर्वासित ही किया गया। उनके मन को बडी ठेस पहुंची। उनका यह प्रस्ताव भी ठुकरा दिया गया कि यदि सीता को निर्वासित करना ही है तो प्रसव के पश्चात् कर दिया जाय। इन परिस्थितियो मे भरत का मन आत्मग्लानि तथा आन्तरिक क्षोभ से जल उठा। जब उन्होने यह सुना कि शत्रुघ्न तथा लक्ष्मण रण मे पराजित होकर धराशायी हो गए तो भ्रातृवियोगजन्य शोक से उनका अतर्दाह अति असह्य हो गया।

लवकुश की विजय को देखकर मनुष्य भिन्न-भिन्न प्रकार की कल्पनाएँ करने लगे। कोई इन बालको को रावण का सहायक समझता था तो दूसरा लवणासुर का हितैषी बताने लगा किन्तु भरत को तो स्पष्ट ही ये बालक "निज पातक वृक्षन के फल" जान पडे।

यही नही शत्रुघ्न एव लक्ष्मण पराजय मे भी उन्होने सीता निर्वासनजन्य शोकानुभूति को ही पराजय का मुख्य कारण समझा। जब से लक्ष्मण सीता को वन में छोड आए है तभी से घोर आत्मग्लानि मे जल रहे थे तथा आत्मघात करने की सोच रहे थे। इस अवसर पर इस निमित्त को पाकर उन्होने अपने विचार को पूरा कर लिया—

"पाय निमित करयो मन पावन।"

ऐसे परम शोक संतप्त लक्ष्मण को मार डालने मे किस की विजय समझी जा सकती है। वह तो स्वयं ही मरने के लिए कोई बहाना खोज रहे थे। इस प्रकार भरत की आत्मग्लानि उत्तरोत्तर बढती गई तथा शत्रुघ्न एव लक्ष्मण के हत होने के

१. गुणगण प्रतिपालक, रिपु कुल घालक बालक ते रणरंता,
दशरथ नृप को सुत, मेरो सोदर लवणासुर हंता।
कोऊ द्वै मुनि सुत काकपक्षयुत सुनियत है तिन मारे,
यहि जगत जाल के करम काल के कुटिल भयानक भारे।"
—(राम० च० ३६/८)

समाचार से परम दुःखी होकर उन्होंने प्रभु से कह ही डाला—

"पातक कौन तजी तुम सीता।
पावन होत सुने जग गीता॥
दोष विहीनहि दोष लगावै।
सो प्रभु ये फल काहे न पावै॥" —(राम० च० ३६/३२)

परम शोक सतप्त भरत घोर आत्मग्लानि से आहत होकर स्वयं भी आत्मघात की सोचने लगे। प्रभु ने निर्दोष सीता को निर्वासित किया और वह प्रभु के भाई है अतएव उनको भी सगदोष लगा। अपने आत्मघात के द्वारा भरत इस सगदोष मे भी मुक्त होना चाहते है। इसीलिए उनके मुख से बरबस निम्नलिखित शब्द फूट पड़े—

"हौ तेहि तीरथ जाय मरौगो,
सगति दोष अशेष हरौगो।" (राम० च० ३६/३३)

पराभवगत प्रसंग

अंगद पराभव—राजतिलक के समय अंगद को अपने बल का गर्व हुआ तथा उन्होने रामदल को युद्ध के लिए ललकारा—

"आजु मोसन युद्ध माँडहु एक एक अनेक कै।
बाप को तब हौ तिलोदक दीह देहुं विवेक कै।" —(राम० च० २६/३४)

अगद की इस ललकार को स्वीकार करके प्रभु ने अगद की इच्छापूर्ति के लिए वरदान दिया—

"कोऊ मेरे वश मे करिहै तोसो युद्ध।
तब तेरो मन होइगो अगद मोसो शुद्ध॥" —(राम० च० २६/३५)

इसीलिए प्रभु ने लवकुश से युद्ध करने के लिए अगद को आदेश दिया। इस आदेश मे अगद के उन शब्दो की ओर भी महाराज राम सकेत करते है—

"अगद जीति इन्है गहिल्यावौ, कै अपने बल मारि भगाओ॥
बेगि बुझावहुचित्त चिता को, आजु तिलोदक देहु पिताको॥"

"अगद तौ अंग अग न फूले" क्योकि वह तो इस अवसर की तलाश मे थे ही। अविलम्ब रणक्षेत्र मे कूद पडे किन्तु लवकुश के सामने डटना सहज न था। बाणो की विकट मार के कारण अगद का शरीर शिथिल हो गया, वाणी क्षीण हो गई, शरीर त्रिशकु की भाँति अधर लटक गया और इस प्रकार बलवीर्य का सम्पूर्ण गर्व नष्ट हो गया। प्राणरक्षा का प्रश्न उठा और अगद के मुंह से बरबस यह करुण पुकार फूट पडी—"रक्षहु गर्व गयो सब मेमो"[1]

---

१. "बोल घट्यो सु भयो सुर मगी, ह्वै गयो अंग त्रिशंकु को संगी।
हा रघुनायक हौ जन तेरो, रक्षहु गर्व गयो सब मेरो।"
—(राम० च० ३८।१४)

अंगद की इस करुण पुकार में पराभवजन्य वह शोकानुभूति निहित है जिसके अन्तर्गत 'रणगर्व मे कहे हुए वचनो के प्रति परिताप, प्रभु से विरोध करने के कारण ग्लानि तथा अपनी विवश एव असहायावस्था पर आन्तरिक क्षोभ सब कुछ भरा हुआ है। कवि ने अगद की पराभवगत शोकानुभूति का वर्णन अति सक्षेप मे किया है'किन्तु जिन गिने चुने शब्दो मे इस शोकानुभूति की अभिव्यक्ति हुई है वे शब्द परितापगत शोक को प्रकट करने मे पूर्ण क्षम है।

राम का पराभव—शत्रुघ्न तथा लक्ष्मण के रण-हत होने के समाचार को सुनकर स्वय राम रणक्षेत्र मे पहुचे। लवकुश की रणकुशलता देखकर वह दग रह गए तो उधर अपने दल की पराजय को देखकर अति उदासीन जब भगवान राम ने अपनी सम्पूर्ण सेना को बाणविद्ध देखा तो वह स्वय अति दुःखी एव उदासीन होकर रण से विमुख हो गए। इस अवसर पर कवि ने केवल सकेतमात्र वर्णन देकर सतोष कर लिया। राम के पराभवगत शोक को प्रकट न करके कवि ने निम्नलिखित सकेत से ही काम चला लिया—

"बाण बिधे सबही जब जोये,
स्यदन मे रघुनदन सोये।" (राम० च० ३८/१७)

उपसंहार—सक्षेपत. आचार्य केशवदास की रामकथा मे प्रकट करुणरस की निम्नलिखित विशेषताएँ है—

विषयगत—१ यद्यपि करुणरस के सभव सभी प्रसगो पर कवि की दृष्टि गई तथापि इष्टनाशगत प्रसगो की ही विशेष अभिव्यक्ति सभव हुई है।

२. करुणरस के ये प्रसग अपने मूलरूप मे पिष्टपेषित न सिद्ध हो इसलिए कवि ने मनोवैज्ञानिक अध्ययन के आधार पर इन प्रसगो को विशेषता तथा मौलिकता प्रदान की है जिससे अपनी नवीनता मे ये प्रसग अति प्रिय बन गए है।

३. करुणरस के प्रसगो को कवि ने सक्षिप्त रूप मे ही प्रकट किया है। गोस्वामी तुलसीदास की प्रसिद्ध रचना ने सामाजिक मे इन प्रसगो के लिए अपेक्षित संस्कार जाग्रत एव पुष्ट कर दिए है, ऐसा कदाचित् आचार्य जी ने सोचा हो। साथ ही उनकी दृष्टि मुख्यतः कला को ओर थी। इसलिए भाव-अपेक्षी ऐसे प्रसग उनका अधिक ध्यान आकृष्ट न कर सके।

४. शोकानुभूति के वर्णन मे परपरागत रूप का आचार्य जी ने अनुपालन किया है। यह अवश्य है कि अपनी सूझ-बूझ से उसमे आवश्यक परिवर्तन कर दिए हैं। इस प्रसग मे यह विशेष रूप से अवलोकनीय है कि आचार्य जी वाल्मीकि का अनुकरण करना चाहते है और इसलिए रावण की मायायोजना तथा सीता-निर्वासन के प्रसंगों का उन्होने उल्लेख किया है जबकि उनके पूर्ववर्ती गो० तुलसीदास ने उनको छोड दिया है।

५. कवि ने विभिन्न छंदों का प्रयोग किया है। भाव के स्थान में कवि कला का पोषक है। कतिपय छंद करुण की मार्मिक स्वर लहरी का भी आयोजन करते हैं, यथा विभीषण की पुकार का प्रसंग।

अभिव्यक्तिगत—१. कवि की दृष्टि रूढि की पोषक नही है। करुणरस के क्षेत्र को विकसित करते हुए कवि ने अतिनिवेदन तथा मिलन प्रसगो को करुणरस के अन्तर्गत ही रखा है। इस दृष्टि से भक्त के अतिनिवेदन के सम्बन्ध मे प्रकट शका (कि भक्त का अति निवेदन करुण के क्षेत्र मे आ सकता है या नही) का समाधान हो जाता है।

२. आत्मग्लानि, परिताप एव आत्मनिन्दा के विकसित रूप शपथ-ग्रहण तथा पापगतियाचना मे प्रकट हुए है।

३. प्रसग की गुरुता से अवर्णनीयता का सहारा लिया गया है—"मोपै कह्यौ न जाय"।

४. विवश एव असहाय परिस्थितियो के साथ आर्त्तनिवेदन, सकारण विनय तथा परिस्थितिगत विषमताओ का भी प्रकटीकरण किया गया है।

५. सवेदनात्मक रूप मे शोक के प्रसार का चित्र कवि ने उपस्थित किया है।

६ शोकानुभूति का विस्तार जडजगम तक दृष्टिगोचर होता है।

७. करुण की मर्मस्पर्शी अनुभूति को हृदयगम कराने के लिए समकक्ष अन्य अनुभूतियो के उदाहरण दिए गए है।

८. शोकानुभूति के प्रकटीकरण मे गुणकथन, क्षतिपूर्त्ति असभव, असहायावस्था, कर्त्तव्यपूर्ति मे आशका आदि विभिन्न तथ्यो का वर्णन किया गया है जिसके फलस्वरूप शोकानुभूति का सहज एव स्वाभाविक रूप सभव हो सका है।

: ६ :

मध्ययुगीन हिन्दी-रामकथा में करुण रस

मध्ययुगीन हिन्दी-रामकाव्य की पूर्वपीठिका—इसके अन्तर्गत सस्कृत एव अपभ्रंश साहित्यगत रामकाव्य तथा चारणकाल मे करुणरस की स्थिति का विवेचन कर चुके है। यहाँ इस पूर्वपीठिका तथा हिन्दी-रामकाव्य की अभिव्यक्ति के सबध पर विचार करना अभीष्ट है। सस्कृत साहित्यगत रामकाव्य का हिन्दी-रामकाव्य की अभिव्यक्ति से विशेष संबध है। इस सबध को निम्नलिखित दो रूपो मे देख सकते है—

१. दृष्टिकोणगत।
२. कथावस्तुगत।

हिन्दी रामकाव्य के कलाकारो—सुर, तुलसी और केशव मे तुलसी के 'मानस' को ही हिन्दी रामकाव्य की उत्कृष्ट कृति होने का गौरव प्राप्त है। गो० तुसलीदास ने मानस मे अध्यात्म रामायण के अनुकूल 'नर' के स्थान मे भगवान के 'नारायण' स्वरूप को प्रमुखता दी है तथा उसी रूप की प्रतिष्ठा की है। फिर भी, तुलसी के नारायण का चरित्र नर रूप की प्रतिष्ठा मे कोई बाधा उपस्थित नही करता। अध्यात्म रामायण मे नारायण का स्वरूप नर रूप को प्रस्फुटित नही होने देता। अध्यात्म रामायण मे नर लीला के प्रसगो के रहस्य को नारायण स्वरूप के सदर्भ मे उनके घटित होने से पूर्व ही प्रकट कर दिया जाता है। मानस मे यह कार्य प्राय: प्रसग के अन्त मे किया जाता है जब रस की पूर्ण निष्पत्ति हो चुकती है। इस प्रकार अध्यात्म रामायण तथा मानस की भिन्न योजनाओ के अन्तर्गत एक ही दृष्टिकोण दो रूपों मे प्रकट होता है जिसके फलस्वरूप कथा में विशेष अन्तर न होते हुए भी करुणरस की निष्पत्ति मे विशेषता आ जानी है। अध्यात्म रामायण मे उपर्युक्त योजना के कारण रसनिष्पत्ति मे बाधा उपस्थिति होती है, वहाँ मानस की अपनी विशेष योजना रसनिष्पत्ति मे योग देती है।

मानस की कथावस्तु के विस्तार का संबध वाल्मीकि रामायण से है। यहाँ पर भी गो० तुलसीदास जी ने करुणरस के निम्नलिखित प्रसगों को प्रश्रय नही दिया है—

पारिवारिक कलह एव द्वेष को प्रकट करने वाले प्रसंग— १. कौशल्या कहती है कि पति का प्रेम मिला नही। अब सौतो की सेवा करनी पडेगी। फिर भी कैकेयी की दासी के बराबर भी पूछ न होगी।

२. राम महाराज दशरथ से कहते है कि माता कौशल्या का ध्यान रखे तथा उसका उचित सम्मान एव सत्कार करे।

३ सुमत्र के द्वारा राम सदेश देते है कि भरत कौशल्या को अपनी माता ही समझे तथा इस सदेश को देते समय राम का बहुत रोना।

४. कौशल्या महाराज दशरथ से कहती है कि चौदह वर्ष की अवधि के पश्चात् राम लौटेंगे तो भरत उनको राज्य और कोष न देंगे।

५ कौशल्या भरत से कहती है (राज्यकामी) तुमने निष्कटक राज्य प्राप्त कर लिया।

६ सीताहरण पर राम का लक्ष्मण से कहना ···भरत से कहना कि वही राज्य करे।

७ राम के कटे हुए (मायानिर्मित) सिर को देखकर सीता कहती है—

"सकामा भव कैकेयि हतोऽय कुलनदन।'

कटूक्तियाँ—१. कैकेयी राम से कहती है —'जबतक तुम बन को न जाओगे तबतक महाराज ऐसे ही बैठे रहेंगे, न स्नान करेंगे न भोजन करेंगे।'

२. कौशल्या का राम के साथ महाराज के पास जाना तथा कटूक्तियाँ कहना।

३. कौशल्या का महाराज से उनकी मरणासन्न अवस्था मे कहना कि यह सब तो आपने ही किया है, अब आप क्यो रोते हो ?

४. रावण-वध के पश्चात् सीता का राम के पास आना तथा राम का सीता के प्रति कटूक्तियाँ कहना।

५. सीता-निर्वासन प्रसग के लिए अपवाद।

अन्य प्रसंग—१. लक्ष्मणमूर्छा-प्रसग पर राम का विलाप।

२ मूर्च्छित राम-लक्ष्मण को देखकर विभीषण की निराशा तथा मूर्च्छा से जगने पर उनकी आँख धोना।

३. सीता को राम का कटा हुआ (मायानिर्मित) सिर दिखलाना।

४. माया-निर्मित सीता का युद्धस्थल मे हनुमान की उपस्थित मे वध।

५. नागपाशवद्ध रामलक्ष्मण को वायुयान से सीता को दिखाना।

६. अंधतापसशाप-प्रसग का पूरा विवरण।

७ अयोध्या नगर की शोकसंतप्त माताएँ रामवनगमन की दुःखद बात को सुनकर अपने बडे पुत्रो को देखकर आनंदित न हुई ।

वाल्मीकि की कथावस्तु के उपर्युक्त प्रसगो का अवलोकन करने से ऐसा लगता है कि कतिपय प्रसगो मे महर्षि वाल्मीकि आचार्य अरस्तू की भाँति करुण के लिए त्रास और भय की योजना करने के पक्ष मे है । अरस्तू ने अपने काव्यशास्त्र मे त्रासदी (ट्रेजेडी) का विवेचन करते हुए उसके लिए त्रास और भय को आवश्यक बतलाया है । करुण का यह स्वरूप सामाजिक अथवा पाठक की करुणा को जाग्रत करने के स्थान मे एक मिश्रित भाव की अनुभूति कराता है जिसमे करुणा, भय और त्रास का समन्वय होता है । करुणा का उद्रेक विवश और असहाय परिस्थितियो के स्थान मे त्रास और भय की परिस्थितियो से होता है जिसके द्वारा अरस्तू इन भावो के विवेचन की कल्पना करते है । भारतीय रस-सिद्धान्त इस अभाव की स्थिति से आगे आनन्द-प्राप्ति को अपना लक्ष्य मानता है । इसीलिए करुणरसानुभूति मे तथा त्रासदी की रसानुभूति मे विशेष अन्तर प्रतिलक्षित होता है । कदाचित् इसी तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए पाश्चात्य विद्वानो मे हेगल ने करुण के दो रूपो की कल्पना की है—

१. प्रामाणिक शोक । २ अप्रामाणिक शोक ।

वाल्मीकि की करुणरस की उपर्युक्त योजना स्यात् संयोगवश ही रही हो अथवा इसके लिए तत्कालीन समाज मे प्रचलित लोककथाओ का महर्षि को प्रचुर आधार मिला हो जैसाकि श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर का विचार है, " —रामायण की रचना करते समय आदि कवि वाल्मीकि को भी रामसबधी नाना लोकगीतो का सहारा मिला होगा ।"—(साहित्य २९, पृ० ८८/८९)

हिन्दी रामकाव्य मे करुणरस की जो अभिव्यक्ति हुई उसको करुणरस का विकसित रूप कह सकते है क्योकि हिन्दी रामकाव्य के कलाकारो ने इस प्रकार के प्रसगो को या तो छोड दिया या सकेतमात्र रूप मे चलता कर दिया जिसके फलस्वरूप करुण का प्राचीन वाल्मीकीय रूप अपनी प्रमुखता खो बैठा और लुप्त प्राय. हो गया ।

सूर और केशव की कथा का दृष्टिकोण भी वाल्मीकि के स्थान मे अध्यात्म रामायण की ओर ही उन्मुख है । आचार्य केशवदास जी ने यद्यपि स्वप्न मे वाल्मीकि ऋषि से "रामदेव गाइए" और "देवलोक पाइए" संदेश प्राप्त किया है फिर भी उन्होने अपनी कृति मे वाल्मीकि के अप्रिय प्रसगो को प्रश्रय नही दिया । जो एक-दो प्रसंग उन्होने लिए है वे सकेतमात्र रूप मे ही प्रस्तुत किए गए है । उदाहरणस्वरूप नागपाश बंधन प्रसग को ले सकते है । भय और त्रास की अनुभूति से पूर्व ही "पन्नगारि प्रभु पन्नगसाई, काल-चाल कछु जानि न जाई" कहकर इस प्रसग को समाप्त कर दिया जाता है ।

कथा के विस्तार की ओर तो सूर और केशव की दृष्टि गई ही नही है प्रत्युत दोनो कवियो ने कथा को सक्षिप्त करने का प्रयत्न किया है । इस विषय मे इन कवियो की अपनी सूझबूझ ही प्रमुख रही है ।

अपभ्रशकाल के महान कवि स्वयभू के पउमचरिउ (रामायण) की शैली अभिव्यक्तिगत विशेषता (बिबग्रहण कराने की शक्ति एव मर्मस्पर्शिता) तथा अनुभावो की विशेष अभिव्यक्ति विशेष रूप से उल्लेखनीय है जिनका प्रभाव रामकाव्य की कृतियो और विशेषकर मानस पर पडा होगा। अभी तक मानस के स्रोतो को खोज करते हुए सस्कृति काव्यो एव सस्कृति के कवियो की ओर ही प्राय अनुसधित्सुओ का ध्यान रहा है । अपभ्रंश की दिशा मे कोई उल्लेखनीय कार्य नही हुआ है । अतएव यहॉ इस विषय पर सक्षेप मे विचार कर लेना असगत न होगा । सस्कृत से मानस के स्रोत खोजने वाले विद्वानो ने पर्याप्त सामग्री एकत्रित की है तथा तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर इस बात की पुष्टि की है कि मानस का आधार सस्कृत काव्य रहे है । अतएव यह सभव है कि सस्कृत की भॉति अपभ्रश की महान् कृति पउमचरिउ का मानस पर कोई प्रत्यक्ष प्रभाव न रहा हो तथापि यह समझ लेना कि इतनी महत्वपूर्ण कृति का गो० तुलसीदास को पता न था या उन्होने इसको देखा न हो, भ्रमात्मक होगा । जैनमतानुयायी परिवारो मे इसका पठन-पाठन एव पारायण होता रहे और रामकथा का तुलसी जैसा महान् गायक कान बद किए हुए अपनी ही धुन मे मस्त रहे, ऐसा सोचना असगत ही है । गोस्वामी जी ने चाहे इस कृति से प्रत्यक्षत कोई लाभ न उठाया हो किन्तु यह निश्चित है कि इस कृति के वह प्रशसक रहे होगे तथा अप्रत्यक्ष प्रभाव भी उन पर पडा होगा ।

मानस की चौपाई शैली का रूप पउमचरिउ की पज्झडिया मे प्राप्त होता है । इस शैली को अपनाने से पूर्व गो० तुलसीदास जी ने पउमचरिउ मे इसके सफल प्रयोग को देखा होगा, अभिव्यक्ति एव अनुभावो के उत्कृष्ट उदाहरण भी गोस्वामी जी की दृष्टि मे रहे होगे। कुछ हो सस्कृत रामकाव्य तथा हिन्दी रामकाव्य की उत्कृष्ट अभिव्यक्ति के बीच की ज्योतिष्मती जैनकृति 'पउमचरिउ' अवलोकनीय है जिसके सदर्भ मे करुणरस की धारा का अखण्डरूप प्रकट हो जाता है । आलबन के क्षति का प्रभाव, शोक मे प्रकृति के सहज व्यापारो की सहेतुक कल्पना, उपमानजन्य उद्दीपन, मानवीकरण, अनुभावो का विस्तृत चित्रण आदि तथ्य स्वयभू के पउमचरिउ मे विशेष रूप से उल्लेखनीय है जिनकी छाया मे मानस की विभिन्न अभिव्यक्तियाँ द्रष्टव्य है ।

पूर्वपीठिका की उपर्युक्त सामग्री को हिन्दी रामकाव्य के कलाकारो के लिए अनुकृति का साधन समझना भूल होगी । पूर्वपीठिका प्रेरणा का स्रोत होती है तथा कवि उसके सदर्भ में अपनी मौलिक उद्भावना करता है । इसी रूप मे हिन्दी कला-

ग्रारो ने पूर्वपीठिका का ग्राश्रय लिया है। जहाँ कही पूर्वपीठिका की ग्रभिव्यक्ति को ग्रविकल रूप मे लेना ग्रभीष्ट रहा है वहाँ पर भी हिन्दी कलाकारो की ग्रपनी मौलिकता एव विशेषता ग्रवलोकनीय है। उदाहरणस्वरूप यहाँ एक प्रसग ले सकते हैं।

वाल्मीकि— "त्व नित्य सुविषण्ण मामाश्वासयसि लक्ष्मण।
गतासुर्नाद्य शक्तोऽसि मामार्तमभिभाषितुम्।" —(युद्ध ४६/१३)

मानस—"सकहु न दुखित देखि मोहि काऊ, बन्धु सदा तव मृदुल सुभाऊ।
मम हित लागि तजेउ पितु माता, सहेहु बिपिन हिम ग्रातप बाता।
सो ग्रनुराग कहाँ ग्रब भाई, उठहु न सुनि मम बच बिकलाई।"
—(लका ६०/२, ३)

साथ ही हिन्दी कलाकारो ने नए प्रसगो की भी उद्भावना की है। 'चित्रकूट दरबार' मानस का एक ऐसा ही प्रयास है जो एकाकी ही कवि की महानता का उद्घाटन करने के लिए ग्रलम् है। चित्रकूट दरबार मे ग्राचरण के उत्कृष्ट ग्रादर्शों की प्रतिष्ठा के साथ करुणरसानुभूति के सभव सभी प्रसगो का सुन्दर चित्रण हुग्रा है।

वनपथ मे रामसीतालक्ष्मण को जाते हुए देखकर ग्रामीण नरनारियो की सहानुभूति का प्रसग विश्वबन्धुत्व तथा प्रेम के निष्कपट, सरल एव परम प्रिय रूप को प्रकट करता है! ग्रन्य प्रसगो मे कवि ने करुणरसानुभूति से त्रास ग्रौर भय के तत्वो को बिलीन करके विवश ग्रौर ग्रसहाय परिस्थितियो को प्रमुखता दी है तथा इस रूप मे प्रत्येक प्रसग को प्रिय एव मर्मस्पर्शी बनाकर बहुत बडा काम किया है। कवि द्वारा ग्रायोजित करुणरस की सहज, सरल एव ग्रबोध ग्रभिव्यक्तियाँ देखते ही बनती है। इस मनोवैज्ञानिक तथ्य से गोस्वामी जी भलीभाँति परिचित थे कि यदि दुखी एव विपन्न व्यक्ति व्यग्य एव कटूक्तियो की शरण ले लेता है तो करुण की वैसी मर्मस्पर्शिनी ग्रनुभूति सभव नही होती जैसी दुख एव क्लेश के होते हुए भी उसकी मौन, विवशता एवं सहनशीलता मे प्रकट होती है। इस दृष्टि से देखे तो वाल्मीकि की कथावस्तु से ग्रप्रिय एव उद्वेगजनक प्रसगो का हिन्दी कलाकारो ने परिष्कार किया है तथा उसमे उनको ग्रभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई।

करुणप्रसंगगत मध्ययुगीन हिन्दी-रामकथा

हिन्दी-काव्य के करुणप्रसगो का ग्राधार सस्कृत साहित्यगत रामकथा के विभिन्न ग्रन्थ रहे है किन्तु कथा का जो रूप हिन्दी के कलाकारो ने ग्रहण किया है वह ग्रापस मे एक कलाकार से दूसरे कलाकार की कृतियो मे तथा ग्राधार ग्रथो की कथा से कुछ ग्रशों मे भिन्न है।

हिन्दी-कलाकारों की कृतियो में कथागत जो विभिन्नता है उस पर यहाँ संक्षेप

में विचार किया जा रहा है। यहाँ करुणरस के उन्ही स्थलों की ओर संकेत किया जायगा जिनके अन्तर्गत कुछ भिन्नता प्रकट हुई है। शेष स्थल समान है ऐसा समझ लेना चाहिए।

भरत का राम को अयोध्या वापिस आने के लिए आग्रह करने वन जाना—सूर के वर्णन से ज्ञात होता है कि भरत अकेले ही वन को गए है। भरत राम से अयोध्या वापिस चलने के लिए आग्रह करते हुए कहते है कि माता कौशल्या अति दुःखी है। उनके हित मे ही वापिस चलिए। इस उल्लेख से प्रकट होता है कि माता कौशल्या उनके साथ नही है प्रत्युत वह अयोध्या मे है। कवि के मूल शब्दो मे इस प्रसग को देख लेना असगत न होगा—

> "हठ करि रहे चरन नहि छाँडे, नाथ तजौ निठुराई।
> परम दुखी कौशल्या जननी, चलौ सदन रघुराई॥"

इसके विपरीत रामचरितमानस तथा रामचन्द्रिका मे माताओ के साथ भरत चित्रकूट पहुँचते है। इस प्रसग मे केशवदास जी ने महाराज जनक, राजसमाज तथा पुरवासी आदि का उल्लेख नही किया है जिनका उल्लेख गोस्वामीजी ने मानस मे किया है। केशवदासजी ने स्थान-स्थान पर कथा को सक्षिप्त कर दिया है। अतएव यह सभव है कि उसी प्रवृत्ति के अन्तर्गत यह प्रसग भी सक्षिप्त कर दिया गया हो। गोस्वामी जी की भाँति चित्रकूट-दरबार की योजना तो न सूर ने की है न केशवदास ने।

सीताहरण पर रामविलाप—इस प्रसग को सूर तथा तुलसी दोनो ने प्राय एक ही रूप मे लिया है। दोनो कवियो की कृतियो मे राम की भावावेश दशा का मुख्यत. वर्णन है। वह खगमृग तथा द्रुमवेली आदि सबसे सीता का पता पूछते है। सीता के अभाव मे सब उपमान प्रबल हो गए है और प्रकट दिखलाई दे रहे है। सीता के सम्मुख इनको प्रकट होने का साहस ही नही होता था। रामचन्द्रिका मे यह प्रसग किसी प्रकार छोड दिया गया है।

मेघनाद एव कुभकरण के वध पर रावण की शोकानुभूति का वर्णन कदाचित् सूर ने नही किया है। हो सकता है इन प्रसगो के पद अभी प्राप्त न हो। साथ ही प्रियबन्धुबान्धव के वियोग एव इष्टनाश से इतर पराभव, पराजय, बधन आदि प्रसगो को सभी कवियो ने सकेतमात्र रूप मे लिया है तथा प्राय चलते कर दिया है।

सस्कृत-साहित्यगत करुणरस के प्रसंगो को हिन्दी-कलाकारो ने प्राय सक्षिप्त रूप मे लिया है तथा उस प्रसगो मे यथास्थान कमी कर दी है।

हिन्दी-रामकथा के करुण प्रसग मे अपेक्षाकृत जो कमी की गई उसको निम्नलिखितरूप मे देखा जा सकता है—

(१) दशरथ-शोक एवं मरण-प्रसंग को वाल्मीकि रामायण से कही संक्षिप्त रूप दिया गया है। इसका कारण यह हो सकता है कि वाल्मीकि के लिए यह प्रसग नवीन था तथा इस प्रकार के प्रसग के लिए समाजिकों मे उपयुक्त सस्कार न थे। श्रवण के अंधे मातापिता का बलिदान न होकर आत्मघात् ही कहा जायगा। चिता पर चढकर ही उन्होने अपने प्राण त्याग दिए थे। इस रूप में भी शोक की अनुभूति कम वेदना पूर्ण नही होती किन्तु वियोग मे छटपटाते हुए ही प्राणत्याग देना निश्चय ही उससे कही अधिक दारुण तथा करुणापूर्ण था। इस तथ्य को हृदयंगम कराने के लिए ही महर्षि ने उसका विस्तृत वर्णन किया और उसके प्रत्येक रूप पर प्रकाश डाला। आगे आनेवाले कवियो के लिए महर्षि वाल्मीकि का यह प्रयत्न सफल सिद्ध हुआ तथा वासना रूप में इस प्रकार के शोक की अनुभूति होने लगी। अतएव विस्तृत विवेचन की आवश्यकता न रही। इसीलिए इस प्रसग के वर्णन मे कमी हुई।

(२) विपक्षी पात्रों की शोकानुभूति के वर्णन मे विशेष कमी हुई। वाल्मीकि रामायण में ऐसा प्रतीत नही होता कि ये पक्ष के और ये विपक्षी पात्र हैं। शोकानुभूति किसी भी प्रकार से पक्ष के पात्रों से कम नही है। इन स्थलों पर विपक्षी-पात्रो की शोकानुभूति के साथ कवि की पूर्ण सहानुभूति रही है तथा पक्ष-विपक्ष का कोई अन्तर विशेषकर शोकानुभूति के अन्तर्गत करना कवि ने उचित नही समझा है। स्वयं राम विपक्ष की सीमा निश्चित करते हुए अपनी सहानुभूति प्रकट करते है—

"मरणान्तानि वैराणि निर्वृत्त न प्रयोजनम्।
क्रियतामस्य संस्कारो ममाप्येष यथा तव।"

मरने के पश्चात् फिर बैर कैसा और विपक्ष कैसा? विपक्षी नेता के शोक संतप्त परिवार से पूर्ण सहानुभूति अतएव उचित ही है।

हिन्दी-कवियो के समय तक आकर विपक्षी पात्रो का न तो समकक्ष स्थान रहा न उनके शोक के प्रति सहानुभूति ही रही। रामलीला मे रावण के पुतले का जलाया जाना तथा जन-समाज की अपार प्रसन्नता प्रकट करना सामाजिक की वासना-परिवर्तन का ही रूप है जिसका काव्य मे प्रकट होना स्वाभाविक ही था। सामाजिक की परिवर्तित वासना के अनुकूल ही विपक्षीपात्रो की शोकानुभूति के प्रति हिन्दी-कवियों की उदासीनता रही तथ प्राय. प्रसंग चलते कर दिए गए। इन प्रसगों का रूप-परिवर्तन भी हुआ। शोकानुभूति के स्थान में पक्ष के पात्रों के कार्यों की सम्पुष्टि तथा अपने अपराध की स्वीकृति और फलस्वरूप दण्ड-प्राप्ति का वर्णन हुआ जिसके कारण ऐसा आभास होने लगा कि यह तो अपराधियो को दण्ड दिया गया है जो उचित ही था। इस प्रकार विपक्षीपात्रों की शोकानुभूति के प्रसंग उत्तरोत्तर सूक्ष्म एवं संक्षिप्त होते चले गए। वाल्मीकि रामायण में जिन शब्दो में पक्ष की शोकानुभूति का वर्णन किया

है उन्ही शब्दो मे विपक्षी-पात्रो की शोकानुभूति का वर्णन किया गया। उदाहरण-स्वरूप कुंभकरण के वध पर रावण भी राम के समान यही कहता है कि बधुवियोग पर अब मुझे जीवित रहने से क्या प्रयोजन है, मैं भी वही जाऊँगा जहाँ मेरा भाई गया है। हिन्दी-रामकथा मे वर्णनगत विभिन्नता भी दृष्टिगोचर होती है। वाल्मीकि रामायण के वर्णनों से सहज में यह पता लगा लेना सभव नही है कि यह पक्ष के पात्र की शोकानुति है अथवा विपक्ष के पात्र की। किन्तु हिन्दी-रामकथा मे पृथक्-पृथक् वर्णनों से स्पष्ट दिखाई देता है कि पक्ष और विपक्ष के लिए पृथक् शब्दावली तथा पृथक् अनुभूतियों का प्रयोग हुआ है।

(३) मायारचित राम के कटे हुए सिर का सीता को दिखाना तथा माया सीता का युद्धस्थल मे मेघनाद द्वारा वध, रामबधन के अन्तर्गत रामलक्ष्मण का आहत तथा असहाय अवस्था मे सीता को दिखाना[1] ऐसे प्रसग है जो हिन्दी-रामकथा के करुणप्रसंगो मे छोड दिए गए है। कहना न होगा कि पक्ष के पात्रो के उत्कर्ष के लिए यह कार्य आवश्यक था। उपर्युक्त प्रसग साथ ही अति दारुण तथा हृदयविदारक थे। पक्ष के साथ अति ममत्व एव सहानुभूति रखनेवाले सामाजिको के लिए ऐसे प्रसगो से अति कष्ट होता, करुण के अप्रिय रूप से वह विचलित हो उठते, यही सोचकर हिन्दी के कवियो ने इन प्रसगो को छोडना ही उचित समझा। साथ ही वाल्मीकि के समय से लेकर हिन्दी कवियो के समय तक सामाजिक की वासना भी परिष्कृत हो चुकी थी जिससे हिन्दी के कवि अवगत थे। वाल्मीकि के समय मे राम का नर पक्ष प्रबल था। इसलिए इस प्रकार के प्रसगो की योजना असह्य थी किन्तु हिन्दी-कवियो के समय तक आकर राम का नररूप हरिरूप मे परिवर्तित हो गया। इसी कारण जहाँ वाल्मीकि के राम महान् पुरुष के रूप मे वदनीय रहे, हिन्दी-कवियो के राम परम-आराध्य हो गए। अतएव पक्ष के इतने उत्कर्ष के साथ उपर्युक्त प्रसगो को रखना मर्यादा के अनुकूल न कहा जाता। इसीलिए उनका छोडना ही सगत रहा।

इसके साथ तुलसीदास जी ने तो रामचरितमानस से सीतानिर्वासन[2] प्रसग

१. इस प्रसग का यद्यपि केशवदास जी ने उल्लेख किया है किन्तु वह सकेत-मात्र ही है।

२ सीता-निर्वासन प्रसग तुलसीदास की गीतावली मे अवश्य प्रकट हुआ है। आचार्य केशवदास ने भी रामचन्द्रिका के उत्तरार्द्ध खण्ड मे इस प्रसग को लिया है। दोनों ही कवियों की कथा का आधार सस्कृत-साहित्य-सम्मत लोकनिन्दा है जिसके कारण सीता का निर्वासन किया गया किन्तु लोक-साहित्य मे निर्वासन का एक दूसरा कारण दिया गया है जो अभी तक साहित्य मे प्रश्रय नही पा सका। वह है भावज-ननद का द्वेष। सीता की ननद रावण का चित्र बनाने का आग्रह करती है और उनके चित्र बनाने पर अपने भाई श्रीराम से सीता की शिकायत कर देती है कि वह तो तुम्हारे शत्रु का चित्र बनाती है और राम इसी बात पर सीता को निर्वासित कर देते हैं।

को भी निकाल दिया और इस प्रकार रामकथा को सुखात रूप दिया। लवकुश काण्ड के नाम से एक अष्टम अध्याय का समावेश रामचरितमानस के कतिपय सस्करणो में हुआ है किन्तु अब यह सर्वमान्य है कि यह अश प्रक्षिप्त है तथा मूल रामचरितमानस में सात काण्ड ही रखे गए थे और सीतानिर्वासन प्रसग छोड दिया गया था।

गोस्वामीजी का दूसरा प्रयास नररूप और हरिरूप के समन्वय मे यह रहा कि रामकथा का करुण, करुणाकरुण विलक्षण स्थिति को प्राप्त हो जाय। करुण भी हो अकरुण भी हो और इस प्रकार एक विलक्षण रूप प्रकट हो सके। भगवान् राम नररूप मे है तथा नररूप के अनुकूल वह मानव-शोकानुभूति का यथोचित अभिनय करते है किन्तु गोस्वामीजी इस सब को भगवान् की लीला बताकर अकरुण रूप दे देते है। सामाजिक जो करुण की मर्मस्पर्शी अनुभूति कर रहा था गोस्वामीजी की इस प्रकार की टिप्पणी को सुनकर भगवान के अविलब हाथ जोड लेता है, उनकी जय बोल देता है किन्तु मूल शोकानुभूति से विरत नही हो पाता क्योकि भगवान् का अभिनय जनमानस के सर्वथा अनुकूल होता है जिसके कारण रसपरिपाक मे कोई बाधा उपस्थित नही हो पाती। साथ ही रसानुभूति के पश्चात् ही गोस्वामीजी का यह समाचार प्रसारित होता है कि यह सब तो भगवान का अभिनयमात्र था, उनकी लीलामात्र थी। इस प्रकार करुणरस की अनुभूति जो इससे पूर्व ही रस-निष्पत्ति तक पहुँच चुकी है, अक्षुण्ण बनी रहती है। हाँ, यह अवश्य है कि गोस्वामीजी के इस प्रयत्न मे रामकथा के रसिक भक्त बन गए और रामचरितमानस के साहित्यिक अनुशीलन के साथ धार्मिक पारायण भी होने लगे। इस प्रकार भक्तिरस को, जिसकी अब स्वतत्र सत्ता सर्वमान्य हो चुकी है, बल मिला।

कथा के करुणप्रसगो मे कमी के साथ कथा के अन्त पक्ष मे अनुभूति के क्षेत्र मे विशेष विकास भी हुआ। वाल्मीकि के समय मे असह्य अभिव्यजको का विशद-वर्णन हुआ, शोकगत विभिन्न परिस्थितियो का दिग्दर्शन कराया गया किन्तु अनुभूतिगत पक्ष अपेक्षाकृत इतना विकसित न हो सका। हिन्दी-कवियो पर वाल्मीकि के काव्य का अमिट एवं विस्तृत प्रभाव होते हुए भी हिन्दी-साहित्यगत रामकथा मे प्रकट करुणरस के स्थलों मे अपनी मौलिकता है जो मनोविज्ञानाश्रित तथ्यो पर आधारित है। अनुभूतिगत पक्ष के अति सूक्ष्म तत्वो का उद्घाटन इन कवियो के द्वारा हुआ। इस रूप में रामकथा के करुणप्रसगो का विकास हुआ है।

मध्ययुगीत हिन्दी रामकाव्य के अन्तर्गत करुणरस का विकास—हिन्दी मे रामकथा को लेकर काव्यरचना करनेवाले लगभग चालीस कवि है जिनमे मध्ययुगीन हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ तथा मार्गदर्शक मुख्यत तीन कवि है -- सूर, तुलसी और केशव। इन तीनो कवियो की कला का करुणरस की दृष्टि से सविस्तर अध्ययन पृथक्-पृथक् प्रकरणो के अन्तर्गत किया जा चुका है। यहाँ उस अध्ययन के आधार पर करुणरस के प्रसंगों का विकास देखना अभीष्ट है।

करुणरस के प्रसंगो को एक-एक करके देखने से पूर्व यह उचित होगा कि तीनो कवियो के दृष्टिकोणो पर तुलनात्मक दृष्टि से प्रकाश डाल लिया जाय जिससे उनके दृष्टिकोणों के अन्तर्गत विकास की सकारणता प्रकट हो सके।

सूर आचार्यजी के आदेशानुसार "कछु भगवल्लीला" वर्णन कर रहे है और गोस्वामीजी "स्वान्त सुखाय" लिख रहे है तो आचार्य केशवदासजी "तिनके गुण कहिहौं सब सुख लहिहौं पापपुरातन भागै" लिखकर पुरातन पापो से मुक्ति तथा सब सुखो की प्राप्ति के लिए रामचन्द्रिका का "बहु छन्द" मे वर्णन करते है। इस प्रकार इन तीनो कवियो के दृष्टिकोणो के अनुकूल इनकी अभिव्यक्ति मे भी विशेषता आगई है। सूर की रामकथा तथा तुलसी का रामचरितमानस जहाँ हृदतन्त्री को झकृत करते है वहाँ केशव की रामचन्द्रिका मस्तिष्क के आह्लाद का विषय बनती है। एक ओर कला अनायास आ गई है तो दूसरी ओर स्वय कला के प्रदर्शन के लिए लेखनी उठाई गई है। सूर और तुलसी को अपने कुकवित्व का क्षोभ है तो केशव को अपने एव अपने कुल के पाण्डित्य का गर्व है। इसीलिए सूर और तुलसी की कृति जन-जन का हार है तो दूसरी ओर केशव की कृति विद्वन्मण्डली की शोभा है।

करुणरस के प्रसगो के अन्तर्गत तीनो कवियो के पृथक् दृष्टिकोण है, सूरदास तथा गोस्वामीजी भावपक्ष की ओर उन्मुख है तो आचार्य केशवदासजी कलापक्ष की ओर। इसी कारण रामचन्द्रिका के प्राय स्थल ऐसे है जहाँ रसपरिपाक सभव नही हुआ है। साथ ही आचार्यजी ने इन प्रसगो को सक्षिप्त भी कर दिया है जिससे वर्णनगत पूर्णता क अभाव भी खटकने लगता है।

दशरथ-मरण—रामवनवास-प्रसग मे दशरथ-मरण करुणरस का मर्मस्पर्शी प्रसग है जिसको रामकथा का प्रथम प्रसग कह सकते है[1]।

---

१. करुणमनोभाव के रू मे "विश्वामित्र के साथ राम-लक्ष्मण का वनगमन" प्रसग लिया जा सकता है और इसको प्रथम प्रसग कह सकते है। सूर ने इस प्रसग को साधारण कथन-मात्र के रूप मे लिया है तथा रसव्यजना का प्रश्न नही उठता। वह केवल इतना कहते है "दसरथ सौ रिषि आनि कह्यौ, असुरनि सौ जग होन न पावत; रामलषन तब सग दयौ।"

मानस मे विश्वामित्रजी की "अप्रिय बानी" को सुनकर महाराज दशरथ को विशेष दुख होता है जो उनके अनुभावो से प्रकट है—"हृदय कप मुख दुति कुमुलानी"। महाराज दशरथ इस प्रसग मे अपने उत्कृष्ट पुत्रस्नेह का भी प्रकटीकरण करते है; "देह प्रान ते प्रिय कछु नाही, सोउ मुनि देउँ निमिष एक माही" तथा "सब सुत प्रिय मोहि प्रान की नाई, राम देत नहि बनइ गोसाई।" किन्तु समझाने-बुझाने से महाराज दशरथ का मोह नष्ट होता है और वह राम-लक्ष्मण को विश्वामित्रजी को सौप देते है। मानस के इस प्रसग मे भी रसनिष्पति सभव नही हुई है। करुणमनोभाव पुत्रस्नेह की उत्कृष्टता मे सभव होता किन्तु वह भी वर्णनमात्र होने के कारण प्रभावोत्पादक

सूर ने दशरथ-मरण प्रसग मे कर्त्तव्य एव प्रेम के द्वन्द्व की पृष्ठभूमि देकर करुण की विशेष मर्मस्पर्शी अनुभूति की योजना की है। मरण-दशा को प्राप्त होने से पूर्व महाराज के शोक की निम्नलिखित तीन स्थिति विशेषरूप से अवलोकनीय है—

१. रामवनवास के लिए कैकेयी का वरदान मांगना तथा महाराज की विवशता। महाराज दशरथ अपने दुलारो को कर्त्तव्य की वेदी पर चढा देते है और फिर प्रेम से कातर होकर "चारि जाम विस्राम" करने की प्रार्थना करते है तथा "फिरि-फिरि" उनकी बात चलाते है।

२ राम-सीता-लक्ष्मरण का प्रयाण— महाराज उस दृश्य को देखकर अचेत हो जाते हैं।

३. सुमन्त्र वन से अकेले ही आते है। महाराज दशरथ को आशा थी कि वन से सुमन्त्र के साथ राम-सीता-लक्ष्मरण वापिस आजावेगे किन्तु ऐसा नही हुआ और उनक परम आशा घोर निराशा मे परिणत होगई। फलत उनकी मृत्यु होगई।

सूर के महाराज दशरथ सरल हृदय, विश्वासी तथा बालको के समान कल्पनाशील व्यक्ति है। इसी कारण उनकी मृत्यु साघातिक रूप मे दिखलाई गई है।

तुलसी के महाराज मे प्रेम के साथ विवेक तथा राजमर्यादा के अप्रत्यक्षरूप मे दर्शन होते है। यद्यपि तुलसी के महाराज दशरथ भी सूर के महाराज की भाँति कल्पना करते है, सुमन्त्र के साथ ही रामसीतालक्ष्मरण को वन भेजते है किन्तु उनकी कल्पना सूर के महाराज दशरथ की भाँति परम विश्वासपूर्ण नही थी। जब सुमन्त्र उनको राम के वापिस न आने की बात बतलाते है तो उनकी तत्काल मृत्यु नही हो जाती प्रत्युत उसके लिए गोस्वामीजी को अन्य उपादानो की भी योजना करनी पडती

नही होसका। केशव की रामचन्द्रिका मे इस प्रसग का सुन्दर चित्र उपस्थित हुआ है जिससे करुणमानोभाव मर्मस्पर्शी बन गया है तथा सक्षिप्त होते हुए भी यह प्रसग विशेषरूप से उल्लेखनीय है। उपर्युक्त दोनो प्रसगो मे राम-लक्ष्मरण की विदा के समय का चित्र चित्रित नही किया गया। विश्वामित्र के साथ जब राम-लक्ष्मरण जाते है तो ऐसा प्रतीत होता है कि उपर्युक्त प्रसगो मे महाराज दशरथ अविचलित खडे देखते रहते है जबकि वर्णन के अन्तर्गत वह राम-लक्ष्मरण को प्राणो से भी प्रिय बतलाते है। रामचन्द्रिका मे आचार्यजी ने इस कमी को दूर कर दिया है। विदा का सुन्दर चित्र यहाँ अवलोकनीय है जो परम पुत्रस्नेही महाराज दशरथ के लिए उपयुक्त एव अपेक्षित है—

"रामचलत नृप के युग लोचन, बारि भरित भये बारिद रोचन।
पायन परि ऋषि के सजि मौनहि, केशव उठि गये भीतर भौनहि।"

इस प्रसंग के सदर्भ मे महाराज दशरथ की पुत्रवियोग मे मृत्यु सभव प्रतीत होती है। इसी प्रकार के सदर्भ को पृष्ठभूमि मे देने का प्रयत्न यद्यपि गोस्वामीजी ने भी किया है। जिसका ऊपर उल्लेख किया जा चुका है किन्तु वह प्रयत्न इतिवृत्ति रूप मे ही रह गया है। आचार्य केशव की भाँति मर्मस्पर्शी चित्र उपस्थित नहीं हो सका है।

है। तापसअंधशाप की स्मृति के संदर्भ मे ही महाराज का देहावसान होता है। जहाँ तक वर्णन एव विवरण का सबध है, गो० तुलसीदासजी ने महाराज दशरथ की मृत्यु का बड़े विस्तार से वर्णन किया है। उनके वर्णन की भी उपर्युक्त तीन स्थितियाँ की जा सकती है। इन तीनो स्थितियो मे कवि की दृष्टि कदाचित् मनोवैज्ञानिक सकारणता की ओर रही है जबकि सूर की दृष्टि भावो के अतिरेक तथा सरल एव बालसुलभ मर्म-स्पर्शी अनुभूतियों के सघटन की ओर है। सूर के महाराज दशरथ के साथ इसी कारण अति आत्मीयता-सी अनुभव होती है और उनकी मरणासन्न दशा मे उनके समीप पहुँचने तथा विह्वल होकर रोने की इच्छा होती है तो तुलसी के महाराज की परम वेदना मे भी राजा-प्रजा का सम्बन्ध बना रहता है तथा कर्त्तव्यजन्य विवशता का ध्यान करके बड़ा कष्ट होता है, करुण आती है और यह देखकर आश्चर्य होता है कि राजा तक अपनी परिस्थितियो मे कितने विवश है! आचार्य केशवदासजी ने राम के प्रयाण ही महाराज की मृत्यु का कारण बना दिया है। प्रयाण की बात को सुनते ही महाराज दशरथ विकल हो जाते है और उनकी मृत्यु 'ब्रह्मरध्र फोरि जीव मिल्यो जुलोक जाय' हो जाती है, आचार्यजी ने मृत्यु के लिए जिस शब्दावली का प्रयोग किया है, वह सामान्यत बोधगम्य न होने के कारण प्रसग की मार्मिकता को प्रकट नही कर पाती। ऐसा लगता है मानो किसी योगी ने समाधि ली हो। इस प्रकार इस प्रसग का केशव की कृति मे विकास नही हो सका। सूर और तुलसी तो दो पृथक् दृष्टिकोण लेकर चले ही है।

भरत का शोक—सूर तथा गोस्वामीजी के भरत सरल हृदय तथा अबोध प्रतीत होते है। वह आत्मग्लानिगत मनोभावो के सघात मे बालक की भाँति किं-कर्त्तव्यविमूढ है। शपथ एव घोर परिताप के अन्तर्गत भरत की अधोगति की याचना करना स्वाभाविक प्रतीत होता है। उधर केशव के भरत को इस अवसर पर इसी बात की विशेष चिन्ता है कि कही माता कौशल्या तथा अन्य प्रियजन एव पुरजन कैकेयी-वरदान प्रसग मे माता कैकेयी के साथ उनकी सहमति न समझ बैठे। इस प्रकार उनकी आत्मग्लानि एव आत्मनिन्दा के पीछे सफाई देने की लालसा अधिक स्पष्ट दिखलाई देती है। साथ ही केशव के भरत मे अमर्ष के भी दर्शन होते है किन्तु सूर तथा गो-स्वामीजी के भरत परम सहनशील, दुख से अति कातर तथा असहाय ही दिखलाई देते है।

भरत का अमर्ष रामचन्द्रिका मे सीतानिर्वासन तथा लवकुश से रामदल के युद्ध-प्रसग मे भी प्रकट होता है। भरत अग्रज राम के सामने पग-पग पर विरोध करते हुए दिखलाई देते है। भरत की विवश एव असहाय दशा के दर्शन आचार्यजी नही करा सके। सीतानिर्वासन के समय विभिन्न प्रकार से समझाने-बुझाने पर भी जब राम नही मानते तो भरत के विवशतागत अमर्ष के दर्शन निम्नलिखित रूप मे होते है—

"और होइ तो जानिये, प्रभु सों कहा बसाय।"

इस प्रकार स्पष्ट है कि भरत के चरित्र में करुणरस का विकास संभव न हो सका अपितु सूर एव गोस्वामी जी के चरित्रचित्रण से कही अधिक संकुचित रूप आचार्य जी के वर्णन मे प्रकट हुआ है ।

रामवनवास प्रसग भी जिसके अन्तर्गत सूर तथा गोस्वामीजी ने करुण का बहुमुखी प्रसार दिखलाया है—पुरिजन, पुरजन, पशु, पक्षी आदि सभी इस वियोग मे विकल एवं संतप्त दिखलाए गए है, आचार्य जी की लेखनी द्वारा अति सूक्ष्म एवं संक्षिप्त रूप मे प्रकट हुआ है । आचार्यजी ने इस स्थल पर न अलकारो का वैभव ही प्रकट किया है जनव्यापी करुणपुकार को ही हृदयगम कराया है । स्पष्ट ही यह प्रसग सूर तथा उनसे अधिक गोस्वामीजी के मानस मे पूर्ण एव चरम रूप मे विकसित हो चुका था । उसके पश्चात् इस प्रसग का और अधिक विकास सभवत संभव न था ।

चित्रकूट में दशरथ-मरण की सूचना—सूर ने साधारण रूप से राम को इस दु:खद सवाद से सूचित करा दिया है—"तात मरन सुनि स्रवन, कृपानिधि धरनि परे मुरझाई" मानस मे गुरु वशिष्ठ दशरथ-मरण की सूचना निम्नलिखित रूप मे देते हैं—

"कहि जग गति मायिक मुनिनाथा ।
कहे कछुक परमारथ गाथा ।।
नृपकर सुरपुर गवनु सुनावा ।
मुनि रघुनाथ दुसहु दुखु पावा ।।"

आचार्य केशवदासजी ने इस प्रसग मे व्यजना को प्रश्रय दिया है और इस प्रसग की सुन्दर अभिव्यक्ति की है जो इस प्रसग के विकास को प्रकट करती है—

"तब पूछियो रघुराइ,
सुख है पिता तन माइ ।"

गोस्वामीजी के विस्तृत प्रसग मे ऐसा ज्ञात होता है मानो महाराज को विस्मृत ही कर दिया गया हो । यद्यपि मानस तथा रामचन्द्रिका मे सुहागचिह्नो के सम्बन्ध मे कोई सकेत नहीं है तथापि यह मानना कि उस समय सुहागचिह्नो का कोई प्रयोग ही नही होता था, भूल होगी ।[1] इन सुहागचिह्नो के अभाव मे माताओ का वैधव्य सहज ही स्पष्ट रहा होगा किन्तु इस ओर गोस्वामीजी का ध्यान अति विलम्ब के साथ गया

१. मीरा ने सुहागचिह्नो की ओर निम्नलिखित पद मे सकेत किया है—

"मैं जाण्यो नाही प्रभु को मिलन कैसे होइ री,
....
चुरियाँ फोरुं माँग वखेरुँ, कजरा मैं डारुँ धोइ री ।
....
मीरा के प्रभु हरि अविनासी, मिलि बिछरो मति कोइ री ।।"
—(चतु०—मीराबाई की पदावली, पद—४८, पृ० २०)

है। गोस्वामी जी रामभरत मिलाप, माता के चरणस्पर्श आदि सम्पूर्ण प्रसगों को समाप्त करने के पश्चात् महाराज के मरण की सूचना गुरुजी द्वारा दिलवाते है। पाठक की जिज्ञासा अतृप्त ही बची रहती है जब वह देखता है कि इस अवसर पर राम जैसे मर्यादा-पुरुषोत्तम माताओं की शोकमतप्त दशा को देखकर महाराज दशरथ के सम्बन्ध में कोई शका नही करते तथा आचार्य केशव के राम की भाँति स्वय नही पूछते—

"सुख है पिता तन माइ।"

इस प्रसग का मनोवैज्ञानिक चरम उत्कर्ष भी आचार्यजी की रामचन्द्रिका मे इस शोक-समाचार को प्राप्त करने के पश्चात् शोकानुभूति के अन्तर्गत प्रकट हुआ है।

सूर और गोस्वामी जी ने इस प्रसग को निम्नलिखित शब्दो मे प्रकट किया है। इन शब्दो मे 'राम' की शोकानुभूति किसी भी प्रकार कम मर्मस्पर्शी नही है किन्तु प्रसग को इतिवृत्तात्मक रूप मे ही प्रस्तुत किया है।

सूर —"तात मरन सुनि स्रवन कृपानिधि धरनि परे मुरझाइ।

... ...

दुरलभ भयौ दरस दसरथ कौ, सो अपराध हमारे।"

गोस्वामीजी—"नृप कर सुरपुर गवनु सुनावा, सुनि रघुनाथ दुसह दुखु पावा।
मरन हेतु निज नेहु बिचारी, भे अति बिकल धीर धुर धारी।"

सूर ने किन्तु अन्यत्र दूसरे पद मे शोकमत सहानुभूति तथा भावव्यजना की ओर सुन्दर सकेत किया है। हो सकता है इसी प्रसग से आचार्यजी को अपने प्रसग के लिए प्रेरणा मिली हो।

"भ्रातमुख निरखि राम बिलखाने।
मुडित केस-सीस, बिह्वल दोउ, उमँगि कठ लपटाने।"

रामचन्द्रिका मे इस प्रसग को उत्कृष्ट रूप मे प्रस्तुत किया गया है। यह प्रसग गिने-चुने शब्दो मे होने के कारण सक्षिप्त अवश्य है किन्तु है गागरमे सागर के रूप मे अति प्रभावशाली।

रामचन्द्रजी माताओ से पूछते है—"सुख है पिता तन माइ" मनोविज्ञान के आचार्य, आचार्य केशवदासजी समझते है कि इस अवसर पर कोई उत्तर नही दिया जा सकता। इसीलिए वह इस मनोवैज्ञानिक गुत्थी को मानस-कला के दिग्दर्शन के अन्तर्गत निम्नलिखित रूप मे सुलझाते है—

"तब पुत्र कौ मुख जोइ,
क्रम ते उठी सब रोइ।"

केशव के इस मौन चित्र ने कला के उत्कृष्ट उदाहरण की सृष्टि की है। गोस्वामीजी से सभवत. इस मौन-उत्तर की खोज न हो सकी। इसीलिए उन्होने इस

प्रसंग को राम की जिज्ञासा के अन्तर्गत न रखकर गुरुजी के कथन के अन्तर्गत रखा है।

माताएँ राम को पिता की कुशलक्षेम का क्या उत्तर देती? परम शोकानुभूति में क्या उत्तर सभव हो सकता था? इन सब तथ्यो से आचार्य जी भलीभाँति परिचित थे। साथ ही मनोविज्ञान के मर्मज्ञ आचार्य केशवदासजी यह भी जानते थे कि ऐसे प्रश्नो के उत्तर किस प्रकार दिए जा सकते है। ऐसे प्रश्नों के उत्तर शोकाभिभूत मूक वाणी नही दे सकती। इनका उत्तर हृदय देता है। शोकानुभूति का प्रबल वेग अश्रुमोचन की सृष्टि कर स्थिति का स्पष्टीकरण कर देता है। यह अश्रुमोचन किस समय संभव होता है इस मनोवैज्ञानिक तथ्य से भी आचार्यजी परिचित थे। पुत्रमिलन के सुख एव आनन्द मे पुत्र की शोकानुभूति के प्रति जिज्ञासा निश्चय ही अश्रुमोचन के लिए उपयुक्त अवसर था। इसीलिए आचार्यजी ने गिने-चुने शब्दो मे करुण की अनुभूति को उत्कृष्ट रूप मे प्रकट किया—

"तव पुत्र कौ मुख जोइ, क्रम ते उठी सब रोइ।"

इस शोकानुभूति का प्रभाव चराचर जगत पर समान रूप से प्रतिलक्षित होता है। सूर ने इस प्रभाव का कदाचित् वर्णन नही किया। तुलसी और केशव ने इस तथ्य की ओर स्पष्ट सकेत किया है।

गोस्वामीजी ने इस शोकानुभूति के दो अवसर रखे है—

१—भरत आगमन।

२—जनक आगमन।

इस शोकानुभूति की चरम व्यापकता का दिग्दर्शन जनक आगमन के अवसर पर कराया गया है। दूसरी बार महाराज जनक के आगमन पर यह शोकानुभूति द्विगुणित मर्मस्पर्शी बन गई है। आचार्यजी इस सर्वव्यापी शोकानुभूति मे चराचर जगत का अश्रमोचन दिखलाकर शोक एव सताप की दशा को प्रकट करते है—

"आँसुन सो सब पर्वत धोये जड जगम को सब जीवहु रोये।"

गोस्वामीजी आचार्यजी मे आगे बढकर खिन्नता तथा उदासीनता का दिग्दर्शन कराते हैं—

"सकल सोक संकुल नर नारी,
सो बासरु बीतेउ बिनु बारी।
पसु खग मृगन्ह न कीन्ह अहारू,
प्रिय परिजन कर कौन बिचारू।"

इस प्रसंग मे गोस्वामीजी ने शोकानुभूति के क्रमिक विकास को दिखलाते हुए "खिन्न" दशा को प्रकट किया है। उनका यह प्रयास करुणरस के इस प्रसंग मे अनुपमेय है। आचार्यजी ने संभवतः इसीलिए इस प्रसंग में संकेतमात्र वर्णन से ही संतोष कर लिया।

सीताहरण प्रसंग—सीताहरण प्रसग मे सीता का करुणक्रन्दन जन-जनव्यापी वह करुण पुकार है जिसके अन्तर्गत सीता की रक्षायाचना मुख्य रूप से व्याप्त है। सूर की सीता इस तथ्य का अपवाद कही जानी चाहिए। वह धैर्य धारण करती हुई दिखलाई देती है जब वह कहती है—

"सूर सीय पछितानि यहै कहि,
करमरेख मेटी नहि जाई।"

मानस के सीताहरण प्रसग मे सीता परम विवश एव असहाय तथा परम निराश है। उनको विश्वास नही होता कि उनकी इस करुण पुकार को कोई प्रभु तक पहुँचा देगा—

"विपति मोरि को प्रभुहि सुनावा,
पुरोडास चह रासभ खावा।"

इससे आगे आत्मनिरीक्षण एव आत्मग्लानि के फलस्वरूप अपने अपराध तथा अपने दोष को देखते हुए सीताजी अपनी दशा को अति दयनीय बना लेती है। जब देखती है कि इस आपत्ति का कारण वह स्वय ही है तो उनकी शोकानुभूति द्विगुणित गंभीर बन जाती है। उनकी मर्मस्पर्शी वेदना निम्नलिखित रूप मे प्रकट होती है—

"हा जग एक वीर रघुराया, केहि अपराध बिसारेहु दाया।
हा लछिमन तुम्हार नहि दोसा, सो फलु पायउँ कीन्हेउ रोसा॥"

आचार्य केशवदास जी ने इस प्रसग मे प्राय सकेतमात्र वर्णन का सहारा लिया है। रामचन्द्रिका की सीता की दशा इतनी निरसहाय एव विवश नही दिखलाई देती। अप्रत्यक्ष रूप मे उनको विश्वास है कि उनके प्रभु उनकी करुण पुकार को सुन रहे है। इसीलिए वह अपना पता बताकर सन्तोष कर लेना चाहती है—

"लकाधिनाथ वश जानहु मोहि वीर।'

लक्ष्मण की शक्ति एव सामर्थ्य मे सीता जी को विश्वास है। इसलिए वह उनसे शीघ्र ही बन्धन से मुक्त कराने की प्रार्थना करती है—

"हा पुत्र लक्ष्मण, छुडावहु वेगि मोही।"

इस प्रसंग मे आचार्य जी द्वारा सीता की करुण पुकार आदि पर प्रकाश नही डाला गया। इस प्रकार रामचन्द्रिका मे इस प्रसग का विकास सम्भव न हो सका।

अशोक वाटिका में सीता की करुणदशा—सूर की सीता की करुणदशा का दर्शन पहले गीध और बाद मे हनुमान करते है। तुलसी और केशव ने गीध द्वारा सीता की करुणदशा के दर्शन तथा वर्णन के प्रसग को छोड दिया है। मानस मे गीध अपनी अपार दृष्टि के बल पर सीता को अशोक वाटिका मे देख लेता है और उनका पता बतला देता है किन्तु उनकी करुणदशा का वर्णन नही करता। वह केवल इतना

कहता है "तहँ अशोक उपवन जहँ रहई, सीता बैठि सोच रत रहई।"

यहाँ सूर अति मर्मस्पर्शी चित्र उपस्थित करते है जिसको तुलसी और केशव कदाचित और अधिक विकसित न कर सके—"बिछुरी मनौ स ग तै हिरनी,'''रामनाम की सरनी ?"

सूर के हनुमान् अशोकवाटिका मे सीता को निम्नलिखित रूप मे देखते है—

"बहु निसाचरी ज्यौ राहु[1]।"

जबकि मानस के हनुमान सीता को निम्नलिखित रूप मे देखते है—

"कृस तनु सीस जटा एक बेनी,
जपति हृदय रघुपति गुन श्रेनी।
निज पद नयन दिए मन रामपदकमल लीन।"

उधर रामचन्द्रिका के हनुमान भी सीता के दर्शन इसी रूप मे करते है—

"धरे एक बेणी मिली मैल सारी,
मृणाली मनो पकते काढि डारी।
सदा राम नाम रटै दीन बानी,
चहूँ ओर है राकसी दु खदानी।"

आचार्य जी इस करुणापूर्ण दशा के दर्शन कराने के पश्चात् "चहूँ ओर है राकसी दुःखदानी" कहकर परिस्थिति की मर्मस्पर्शी अनुभूति को प्रकट करना चाहते हैं। सीता यदि अकेली होती तो उनकी दशा इतनी मर्मस्पर्शी न होती जितनी इस समय इन "राकसी दु खदानी" के बीच उनकी दशा मर्मस्पर्शी बन गई है। सूर ने भी इस तथ्य की ओर सकेत किया है "बहु निसाचरी मध्य जानकी।"

आचार्य जी इस परिस्थिति की समकक्ष कष्टकर दशाओ का वर्णन करते हुए इस विशेष परिस्थिति की दारुण अनुभूति का परिज्ञान कराते है—

१—मानो चित्त की चिन्ताओ मे भ्रमित बुद्धि हो।
२—मानो दाँतो के बीच जिह्वा हो।
३—मानों राहु की स्त्रियो से घिरी हुई चारु चन्द्रकला हो।
४—मानों जीव की ज्योति माया से आवृत हो।
५—मानो अविद्याओ के बीच विद्या हो।
६—मानो शवर असुर की स्त्रियो के बीच रति हो।

इस प्रकार आचार्यजी सीता की परम असहाय एव विवशतागत का चित्रण कर करुणरस की मार्मिक अनुभूति कराना चाहते है। उनकी सीता जितनी विरहाकुल

१. देखिए पूरे पद 'सूर की रामकथा मे करुणरस' प्रकरण के शीर्षक 'सीता की करुणापूर्ण दशा, के अन्तर्गत।

है उससे कही अधिक त्रसित तथा पीडित है। सूर के उपर्युक्त दोनो पदो की छाया केशवदास जी पर है किन्तु उन्होने विभिन्न उत्प्रेक्षाओ के साथ प्रसग को चित्रित करने का विशेष प्रयास किया है। "चद गह्यौ ज्यो राहु"—सूर की मूल उत्प्रेक्षा है जिससे केशवदास जी ने तत्त्वविवेचिनी प्रेरणा प्राप्त की है किन्तु अपनी सूक्ष्म बुद्धि के बल पर उन्होने इस उत्प्रेक्षा के रूप को परिमार्जन किया है। उन्होने "राहु" के स्थान पर "राहु की स्त्रियो" से घिरी हुई चारु चन्द्रकला कहा है और इस प्रकार प्रसग मे उल्लिखित राक्षसनियो के लिए समलिङ्ग शब्द को रखा है जिसकी ओर 'सूर' की दृष्टि नही गई और वह उनके लिए "राहु" शब्द प्रयोग कर गए। इस प्रसग मे कवि ने हनुमानजी की अनुभूति का दिग्दर्शन नही कराया। "हनूमान ऐसी लखी रामरामा" कहकर कवि मौन हो जाता है। हनुमान की दशा का अनुमान लगाने के लिए कवि ने पाठक को स्वतत्र छोड दिया है। इस प्रकार इस योजना द्वारा कवि ने एक ओर दु ख की अनिर्वचनीयता की प्रतिष्ठा की है तो दूसरी ओर पाठक की कल्पना के लिए सामग्री छोडकर कलामर्मज्ञता का सुन्दर परिचय दिया है।

गोस्वामीजी ने इस प्रसग को इतना महत्त्व नही दिया। उनकी सीता विरह-व्यथित ही दिखलाई देती है। उनका त्रसित रूप दिखलाकर यह प्रसग विशेष करुणा-पूर्ण बन सकता था इस तथ्य से गोस्वामी जी परिचित थे किन्तु कदाचित् प्रश्न की मर्यादा की रक्षा के लिए वह इस करुणापूर्ण प्रसग की कल्पना न कर सके। आचार्य जी की भाँति गोस्वामी जी त्रास योजना करते है किन्तु अविलम्ब प्रभु की शक्ति का दिग्दर्शन कराकर इस प्रसग पर पटाक्षेप कर देते है—

"कहेसि सकल निसिचरिन्ह बोलाई,
सीतहि बहुबिधि त्रासहु जाई।"

तथा इसके साथ ही त्रिजटा के स्वप्न की योजना कर इस त्रासप्रसग को समाप्त कर देते है—

"तासु बचन सुनि ते सब डरी,
जनकसुता के चरनन्हि परी।"

दूसरा प्रसग अशोकवाटिका मे रावण आगमन के समय प्रकट होता है। हनुमानजी इस प्रसग मे भी दर्शक के रूप मे रहते है।

इस प्रसग मे गोस्वामी जी मौन दिखलाई देते है। वह केवल रावण के आगमन की सूचनामात्र देकर आगे बढ जाते है। इस सूचना का सीता जी पर क्या प्रभाव पड़ा इस ओर वह सकेत नही करते। स्पष्ट ही उनकी सीता दृढ तथा निर्भीक हैं। रावण आगमन समाचार से सीता की करुणदशा में और कोई विशेषता नही आती, किन्तु आचार्य जी इस अवसर पर भी गिनेचुने शब्दों में करुणरस की अलौकिक अनुभूति कराते है। उनकी सीता त्रसित तथा भयभीत सीता है। वह एक सामान्य अबला की भाँति विवश एव असहाय है। इसीलिए रावण आगमन से उनकी साधारण

करुणापूर्ण दशा अति करुणापूर्ण तथा परम मर्मस्पर्शी बन जाती है। आचार्य जी ने इस प्रसंग मे करुण रस को मनोवैज्ञानिक प्रगति प्रदान की है जिससे अनुभूति की मार्मिकता अति स्वाभाविक रूप मे प्रकट हो सकी है—

१—रावण के आगमन को सुनकर महारानी जी को महान दु.ख होता है।

२—अपने सब अङ्गो को अपने शरीर मे छिपाती है। (नारीसुलभ लज्जा का सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक अध्ययन आचार्यजी की इस कल्पना का आधार है)।

३—नीचे दृष्टि किए हुए अश्रुधारा बहाने लगती है।[1]

कहना न होगा कि इस प्रसग मे आचार्य जी रावण आगमन के प्रभाव का क्रमिक विकास दिखलाते हुए महारानी जी की असहाय दशा का अति समीप से अध्ययन करते है।

केशव की सीता की विवश, असहाय तथा परम दु खी दशा का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि उनकी सीता रावण आगमन समाचार से ही इतनी त्रसित, भयभीत तथा दु खी है। गोस्वामी जी की सीता दूसरी ओर रावण का डटकर सामना करती है। वह निर्भीक होकर कटु उत्तर दे सकती है तथा रावण की कृपाण के सामने अपना सिर झुका सकती है।[2]

इस प्रकार स्पष्ट है कि आचार्य जी ने इस प्रसग को करुणरस की दृष्टि से विकसित रूप दिया है तथा मानस की इस कमी को पूरा किया है।

लक्ष्मणश-क्ति पर राम-विलाप—गोस्वामी जी के राम लक्ष्मण-शक्ति के समाचार तक ही नही प्रत्युत आधी रात व्यतीत होने तक धैर्य धारण किए रहते है। "अर्ध रात्रि गई कपि नहि आयउ" देखकर राम निराश एव अधीर हो जाते है। "उठाइ अनुज उर लाय" वह एक साथ प्रलाप करने लगते है। मानो शोक का पारावार जो अब तक किसी प्रकार रुका हुआ था एक साथ फूट पडा हो। इस विलम्ब के ही कारण गोस्वामी जी के राम की शोकानुभूति क्रमिक विकास के रूप मे प्रकट न होकर एक साथ प्रलाप से प्रारम्भ होती है। सामाजिक अथवा पाठक आश्रय को इस प्रकार विलब बिना शोकानुभूति के किस प्रकार देख सकता है। यह विलब उसको अखरने लगता

---

१. "तहाँ देव द्वेपी दसग्रीव आयो,
सुन्यो देवि सीता महादुःख पायो।
सबै अङ्ग लै अग ही में दुरायो,
अधोदृष्टि कै अश्रुधारा बहायो॥" —(लंका १३/५६)

२. "सठ सूने हरि आनेहि मोही, अधम निलज्ज लाज नहि तोही।
चन्द्रहास हरु मम परितापं, रघुपति विरह अनल सजातं॥"

है। इसीलिए आचार्य जी ने रामचन्द्र जी के धैर्य को सकुचित रूप देकर इस प्रसंग के अनुकूल शोकानुभूति को शीघ्र ही प्रकट करने की योजना की। उनके राम लक्ष्मण शक्ति का दुःखद समाचार सुनकर धैर्य धारण कर लेते है किन्तु जब लक्ष्मण को उनके सामने लाया जाता है तो वह धैर्य खो बैठते है—

"लक्ष्मण राम जही अवलोक्यो,
नैनन ते न रह्यौ जल रोक्यो।"

आचार्य जी द्वारा आयोजित इस परिवर्तन से पाठक को विशेष सतोष होता है। मनोवैज्ञानिक अध्ययन के आधार पर भी यह सभव नही कि लक्ष्मण को देखने के पश्चात् भी राम धैर्य धारण किए रहते। सूर ने भी इस तथ्य की ओर ध्यान दिया है और उनके राम भी "भूतल वधु पर्यौ" देखकर "करुना करत सूर कोमलपति, नैनिन नीर झरयौ" तथा दूसरे पद मे इसी भाव को और स्पष्ट करते हुए कहा है—

"निरखि मुख राघव धरत न धीर"
भए अति अरुन विमाल···
कमल-दल लोचन मोचन नीर।"

आचार्य जी ने सूर की छाया मे मनोवैज्ञानिक अध्ययन के आधार पर इस प्रसग का उपर्युक्त रूप मे विकास किया है।

राम के विलाप मे गोस्वामीजी ने प्रसगानुकूल लक्ष्मण को उठाकर हृदय मे लगाने का उल्लेख किया है जिससे इस प्रसग मे स्वाभाविकता तथा मार्मिकता आ गई है। इतनी देर तक धैर्य धारण किए हुए राम की शोकानुभूति का प्रारम्भ इस अनुभाव द्वारा दिखला कर गोस्वामीजी ने मनोवैज्ञानिक सपुष्टि प्राप्त की है। यद्यपि आचार्य जी ने इस अनुभाव की ओर कोई सकेत नही किया है तथापि यह प्रतिलक्षित होता है कि लक्ष्मण उनकी गोद मे है।

दोनो ही कलाकारो की दृष्टि शोकानुभूतिगत निम्नलिखित तथ्यो की ओर गई है—

१—शोकानुभूतिगत परम लालसा—

गोस्वामी जी –"अस विचारि जिय जागहु ताता।"
आचार्य जी—"बारक लक्ष्मण मोहि बिलोकी,
मोकहँ प्राण चले तजि रोको।"

२—लक्ष्मण के गुणो का वर्णन तथा उपकारो का कथन।

गोस्वामी जी के राम को केवल यही सोच है कि "जैहऊँ अवध कौन मुहु लाई" किन्तु आचार्य जी इससे कही आगे बढ जाते है तथा उनके राम को "भ्रातृहानि" से भी कही अधिक शंका "देन न पाई विभीषण लंका" की है। सूर ने भी इस तथ्य की ओर स्पष्ट संकेत किया है तथा राम के हृदय की इस चिन्ता का

दिग्दर्शन कराया है—

"बीचहि भई और की औरे, भयौ सत्रु कौ भायौ,
ह्वै है कहा बिभीषन की गति, यहै सोच जिय गुनिकै ।"

राम अपने प्रण को प्राणों की बाजी लगाकर निभाने वाले "धर्म धुरीन" पिता के योग्य पुत्र है तथा उनको भी प्रणनिर्वाह की विशेष चिन्ता है । इस प्रकार राम की आत्मा का तथ्यतः प्रकटीकरण आचार्यजी के निम्नलिखित शब्दो मे हुआ है—

"बोलि उठो प्रभु को पन पारौ,
नातरु होत है मो मुख कारो ।"

इस विशेषता के साथ आचार्यजी ने मानसगत अप्रिय प्रसग, नारी और भाई के तुलनात्मक अध्ययन को छोडकर इस प्रसग की स्वाभाविक शालीनता की रक्षा की है । कहा नही जा सकता गोस्वामी जी किस धुन मे भ्रातृशोक के अन्तर्गत नारी की मानमर्यादा को क्षतविक्षत करने के लिए उतारू हो गए । उनके राम एक अति साधारण एव अविवेकी मनुष्य की भाँति हेतु को ही अपनी कल्पना का आधार बना लेते हैं जो सामाजिक के अनुकूल नही पडता ।

राम की निम्नलिखित अभिव्यक्ति के अन्तर्गत सीता के लिए उनके हृदय मे कोई स्थान नही रहता—

"जैहउँ अवध कौन मुहु लाई,
नारि हेतु प्रिय भाई गँवाई ।
बरु अपजस सहतेउ जग माँही,
नारि हानि बिसेष छति नाही ।।"

पाठक के लिए जितने लक्ष्मण मान्य है उनसे कही अधिक महारानी सीता भी । अतएव महारानी जी की ओर लक्षित राम के यह शब्द पाठक के चित्त को उद्विग्न कर देते है । पाठक की मानस दशा का आचार्य जी ने समीप से अध्ययन किया तथा इस प्रसग को 'चन्द्रिका' मे स्थान न देकर एक ओर उन्होने लोक-भावना की रक्षा की तो दूसरी ओर ग्लानि एव घृणा से इस प्रसग को विरत कर करुण की प्राण-प्रतिष्ठा की।

गोस्वामी जी ने उपर्युक्त तथ्य की सकारणता का अनुभव किया और इसीलिए उन्होने भी गीतावली मे इस प्रसग को निकाल कर करुण की अनुकूल-अनुभूति की ओर ही विशेष ध्यान दिया—

"मो पै तो न कछू ह्वै आई ।
और निबाहि भली विधि भायप चल्यौ लखन सो भाई ।
पुर, पितुमातु, सकल सुख परिहरि जेहि बन बिपति बटाई ।
ता संग हौ सुरलोक सोक तजि सक्यो न प्रान पठाई ।
जानत हौं या उर कठोर तै कुलिस कठिनता पाई ।

सुमिरि सनेह सुमित्रा-सुत को दरकि दरार न जाई ।
तात मरन, तिय हरन, गीध-बध, भुज बाहिनी गँवाई ।
तुलसी मैं सब भाँति आपने कुलहि कालिमा लाई ॥"

तथा

"मेरो सब पुरुषारथ थाको ।
विपति बँटावन बंधु-बाहु बिनु करौं भरोसो काको ।
....
गिरि कानन जैहै साखामृग, हौ पुनि अनुज संघाती ।
ह्वै है कहा विभीषन की गति, रही सोच भरि छाती ।

विपक्षी पात्रों की शोकानुभूति

बालिवध पर तारा-विलाप—तारा की शोकानुभूति का प्रसग केवल मानस मे प्रकट हुआ है। रामचन्द्रिका मे इस प्रसग को स्थान नही मिला है। आचार्यजी विपक्षी पात्रो की शोकानुभूति के प्रति गोस्वामी जी से भी अधिक उदासीन थे । इसीलिए प्राय प्रसग अति सक्षिप्त रूप मे प्रकट हुए है तथा यह प्रसग छोड ही दिया गया ।

रावण-शोकानुभूति—रावण-शोकानुभूति तीन अवसरो पर प्रकट हुई है—

१—अक्षयवध ।
२—कुम्भकर्ण वध ।
३—मेघनाथवध ।

अक्षयवध तथा कुम्भकर्णवध अति सक्षिप्त रूप मे प्रकट हुए है ।

अक्षयवध—

गोस्वामी जी—"सो सुनि रावन भयउ दुखारा ।"
आचार्यजी—"मारो अक्ष सुनो जही रावण अति पछिताय ।"

कुम्भकर्णवध—

गोस्वामीजी—"बहु बिलाप दसकंधर करई,
बन्धु सीस पुनि-पुनि उर धरई ।"
आचार्यजी —"दशग्रीव शोक ग्रस्यो लोकहारी,
भयो लक के मध्य आतंक भारी ।"

इस प्रकार इन दोनो प्रसंगो मे रावण की शोकानुभूति संकेतमात्र रूप मे ही वर्णन की गई है । तब भी आचार्य जी की अपेक्षा गोस्वामी जी की दृष्टि शोकानुभूति के प्रकटीकरण की ओर अधिक है । आचार्य जी "पछिताय" तथा "शोकग्रस्यो" शब्दो द्वारा केवल शोकानुभूति की सूचनामात्र देते है किन्तु गोस्वामीजी ने रावण के दुखी होने तथा उसके "बहु बिलाप" की ओर संकेत किया है । "बहु बिलाप" के साथ "बन्धु सीस पुनि-पुनि उर धरई" लिखकर गोस्वामीजी ने करुण चित्र को स्पष्टरूप से चित्रित करने का प्रयत्न किया है। रावण राक्षस है यह ठीक है किन्तु उसको भी

"बन्धु बिछोह" पर अपार दुःख होता है तथा वह भी शोकानुभूतिगत उन्ही अनुभावों का अनुभव करता है जिनको मनुष्यमात्र अनुभव करते है। इस प्रकार रावण की शोकानुभूति के साथ सहानुभूति प्रकट कर गोस्वामी जी अपनी उदारता का परिचय देते हैं।

मेघनादवध पर गोस्वामी जी रावण की मूर्च्छा का तथा आचार्य जी विशेष विलाप का वर्णन करते है—

गोस्वामीजी—"सुत वध सुना दसानन जबही,
मुरछित भयउ परेउ महि तबही।"
आचार्यजी—"देख्यो सिर अंजुलि मे जबही,
हा हा करि भूमि परयो तबही।
....

कोलाहल मंदिर माँझ भयो,
मानो प्रभु को उडि प्राण गयो।
रोवे दसकठ विलाप करै।"

गोस्वामी जी रावण की मूर्च्छा के साथ रावण की शोकानुभूति के प्रसग को समाप्त कर देते है। वह आगे "मदोदरी रुदन कर भारी" तथा "नगर लोग सब व्याकुल सोचा" कहकर इस शोकानुभूति की व्यापकता की ओर सकेत करते है। इस शोकानुभूति मे मदोदरी का "भारी रुदन" तथा "उर ताडन बहु भाँति पुकारी" प्रकट करके मदोदरी की शोकानुभूति रावण की शोकानुभूति मे अधिक गम्भीर बन जाती है तथा रावण की शोकानुभूति का प्रसग किसी प्रकार पिछड जाता है।

रामचन्द्रिका मे रावण की शोकानुभूति का यह प्रसग उत्तरोत्तर मनोवैज्ञानिक आधार पर विकसित होता जाता है। रावण की शोकानुभूति के क्रमिक विकास मे कवि का सूक्ष्म अध्ययन तथा कलाकुशलता विशेषरूप मे अवलोकनीय है जो गोस्वामी जी द्वारा प्रकट प्रसंग मे किसी प्रकार सभव न हो सकी—

१—रावण हाहाकार करके भूमि पर गिर पडता है।
२—इस दुःखद समाचार से महल मे कुहराम मच जाता है।
३—रावण रोता है और विलाप करता है।
४—रावण की मनजल्पना प्रकट होती है—
अ—पुत्रशोक मे आज वह स्वय भी प्राण दे रहा है।
आ—अब उसके शत्रु देवता आदित्य, जल, पवन, पावक, चन्द्र आदि आनन्द मनावे.........।
इ—सीता राम को दे दी जाय।
ई—लंका विभीषण को दे दी जाय।
उ—ब्राह्मण पुण्य अनुष्ठान करे।

मेघनादवध प्रसंग को, इस प्रकार आचार्यजी ने मनोवैज्ञानिक अध्ययन के आधार पर विकसित रूप दिया है तथा मानसगत शोकानुभूति को प्राजल रूप मे प्रकट किया है।

रावण-वध—रावण-वध पर मंदोदरी तथा विभीषण दोनों की शोकानुभूतियों का मानस मे वर्णन हुआ है किन्तु रामचन्द्रिका मे केवल मदोदरी की शोकानुभूति का ही वर्णन किया गया है। मदोदरी की शोकानुभूति के अन्तर्गत गोस्वामीजी तथा आचार्यजी दोनो की दृष्टि विशेषकर गुणकथन की ओर रही है। गोस्वामीजी मदोदरी की मूर्च्छा, छूटे केश, शरीर की सभाल न होना तथा नाना प्रकार से छाती पीटने आदि अनुभावो का भी वर्णन करते है किन्तु आचार्यजी ने इन सबको छोड दिया है। रामचन्द्रिका की मदोदरी केवल रावण के बल-वैभव का वर्णन करती तथा "सेवित स्वान सियार सो रावण सोवत सेज परे अब चूकी" रूप मे रावण को देखती तथा दुखी होती है।

'मानस' की मंदोदरी भी रावण के वैभव वर्णन के साथ "सो तनु भूमि परेउ भरि छारा", "आजु परेहु अनाथ की नाई" तथा "अब तब सिर-भुज जंबुक खाही" आदि रूप मे रावण को देखती है तथा विलाप करती है किन्तु राम के प्रति उसकी श्रद्धा इस शोकानुभूति के साथ इस टिप्पणी को भी प्रकट करती है—"राम विमुख अस हाल तुम्हारा" एव "राम विमुख यह अनुचित नाही" तथा इन टिप्पणियो के साथ एक ओर मदोदरी की शोकानुभूति शान्त हो जाती है तो दूसरी ओर पाठक के लिए प्रभावशून्य बनकर लीक पीटना मात्र दिखलाई देने लगती है। इसी प्रकार का वर्णन सूर ने किया है जिसके अन्तर्गत विभीषण और मदोदरी रावण के कार्यों की निन्दा करते है जिससे करुणरस की निष्पत्ति सभव नही होती।[1]

पराभव, पराजय, वध, बन्धन—मानस मे पराभवगत प्रसग इस प्रकार हैं—सीतास्वयवर के अवसर पर राजाओ का पराभव, सेतुबन्ध पर तथा छत्रमुकुटताटक हनन पर रावण पराभव है जिनका सकेतमात्र रूप मे ही वर्णन हुआ है। चन्द्रिका मे "छत्रमुकुटहनन" प्रसग तथा मखविध्वस प्रसग मे मदोदरी पराभव का वर्णन हुआ है। इस प्रकार उभयनिष्ठ प्रसग केवल "छत्रमुकुटताटकहनन" है जिसके अन्तर्गत रावण के पराभव का वर्णन हुआ है। अतएव इसी एक प्रसग पर विकास की दृष्टि से विचार कर लेना अपेक्षित होगा।

मानव मे यह प्रसंग पराभवगत शोकानुभूति की ओर सकेतमात्र करता है, रसपरिपाक सभव नही होता।

छत्रमुकुटताटकहनन को रावण सभा "असगुन भयउ भयंकर भारी" समझती

---

१ "करुना करति मदोदरि रानी।
बार-बार बरज्यौ···त्यौ खोई अपनी रजधानी।"

है तथा भयभीत हो जाती है। इस अवसर पर कवि "दसमुख देखि सभा भय पाई" हेतु को ही प्रधानता देता है। रावण की पराभवगत शोकानुभूति का सकेतमात्र वर्णन निम्नलिखित शब्दों में हुआ है—

"दसमुख देखि सभा भय पाई,
बिहसि बचन कह जुगुति बनाई।"

इस संकेतमात्र वर्णन मे "जुगुति बनाई" शब्द पराभवगत शोकानुभूति को प्रकट नही कर पाते। इन वचनो मे इस अवसर को टालने की लालसा ही विशेष क्रियाशील है जिसका पराभवगत शोकानुभूति से कोई सम्बन्ध प्रकट नही होता।

रामचन्द्रिका मे भी यह प्रसग विकसित रूप मे प्रकट न हो सका। आचार्यजी रावण की पराभवगत शोकानुभूति की ओर निम्नलिखित रूप मे सकेत करते है—

"लज्जित खल तजि सुनहु भजि भवन मे गयो।"

रावण को 'खल' कहकर कवि शोकानुभूति की मार्मिकता को प्रभावहीन बना देता है। पाठक की सहानुभूति रावण के साथ नही हो पाती। इस प्रकार रामचन्द्रिका मे भी यह प्रसग सकेतमात्र रूप मे ही वर्णन किया गया है।

अन्य-प्रसंग

१. **पराजयगत प्रसंग**—मानस मे सुग्रीव तथा मेघनाद की ओर रामचन्द्रिका में लक्ष्मण की पराजय की ओर सकेत हुआ है। इन प्रसगो मे करुणरस की अभिव्यक्ति सम्भव नही हो सकी, इसलिए विकास का प्रश्न ही नही उठता।

२ **बन्धन**—सूर ने नागपाश बन्धन[1] का ही वर्णन किया है जबकि मानस तथा रामचन्द्रिका दोनो मे बन्धन के दो प्रसग प्रकट हुए है—

१—हनुमान बन्धन।
२—नागपाश द्वारा राम-बन्धन।

मानस मे बन्धन के दोनो प्रसंग सकेतमात्र रूप मे प्रकट हुए हैं। इसके अन्तर्गत बन्धनगत हनुमान अथवा राम की किसी शोकानुभूति की ओर सकेत भी नही किया गया है। अतएव यह प्रसग करुण के अन्तर्गत नही आ पाते।

रामचन्द्रिका मे हनुमान् बन्धन मानस की भाँति करुण की अनुभूति नही करा पाता। नागपाश बन्धन के अन्तर्गत आचार्य जी ने राम और लक्ष्मण दोनो का बन्धन दिखलाया है।

---

१. "हँसि-हँसि नाग-फाँस सर साँधत, बन्धु समेत बँधायो"

नागपाशबन्धन प्रसग मे आचार्यजी ने एक विशेषता भी रखी है। बन्धनगत राम-लक्ष्मण को दिखाने के लिए वायुयान द्वारा रावण सीता को लाता है तथा सीता को यह दृश्य दिखलाता है। इस योजना के अन्तर्गत कवि की दृष्टि बन्धनगत मार्मिक अनुभूति की ओर गई है। यद्यपि कवि ने केवल इस योजना का उल्लेख कर इस प्रसग को छोड दिया है तथापि यह दृश्य सामाजिक के चित्त को विकल करने के लिए पूर्ण समर्थ है—

"कै विमान अधिरूढित धायो,
जानकीहि रघुनाथ दिखायो ।"

प्रतिष्ठित आदर्शो के प्रतिकूल आचार्यजी न तो राम की बन्धनगत शोकानुभूति ही दिखला सकते थे तथा न राम को बन्धनगत देखकर सीता का विषाद ही प्रकट कर सकते थे। इसीलिए उन्होने इस दृश्य की कल्पना करके ही प्रसग को अपूर्ण ही छोड दिया। 'भूमिपुत्रि तरु-चन्दन लेख्यौ' कहकर कवि ने राम की दृढता की ओर भी सकेत किया है जिससे प्रतिष्ठित आदर्शो की मर्यादा स्थिर रही है। सूर तथा गोस्वामी तुलसीदास ने तो इस प्रसग को प्रभु की इच्छा बताकर करुण की सीमा मे ही नही रखा।

वध के प्रसंग—वध के प्रसग रावण शोकानुभूति के अन्तर्गत आ चुके है। यहाँ इनके पृथक् विवेचन की आवश्यकता नही है।

धर्मअपघात, शाप एव मोह आदि के प्रसग विशेषकर मानस मे ही प्रकट हुए है किन्तु इन प्रसगो के अन्तर्गत करुणरस की अनुभूति सभव नही हो सकी। रामचन्द्रिका मे इन प्रसगो को प्रकट नही किया गया। इसलिए विकासक्रम के खोजने का प्रश्न नही उठता।

विकासक्रम की इस संक्षिप्त रूपरेखा को दृष्टिगत रखते हुए कहा जा सकता है कि रामकथागत करुणरस के प्रसगो मे विकास का आधार मनोविज्ञान तथा मानस शास्त्र के सूक्ष्म तथ्य रहे है तथा इस महत्त्वपूर्ण आधार के कारण ही पदवर्ती सक्षिप्त रूप भी गागर मे सागर की भाँति प्रभविष्णु एव प्रशसनीय है। कुछ ऐसे स्थल भी है जिनमे करुणरस के प्रसग विकसित न होकर सकुचित हुए है। इन स्थलो के सम्बन्ध मे यह कहना असगत न होगा कि आगे आनेवाले कवियो के लिए इन स्थलों मे विकास के लिए वस्तुत कोई स्थान ही न रह गया था। इनका पूर्ण विकसित रूप पहले ही प्रकट हो चुका था।

रामकाव्य में करुण रस

रामकाव्यगत करुण रस का विभाजन निम्न प्रकार है—

१—रामकाव्यगत करुणरस के आलंबन विभाव ।
२—रामकाव्यगत करुणरस के उद्दीपन विभाव ।
३—रामकाव्यगत करुणरस के अनुभाव ।
४—रामकाव्यगत करुणरस के प्रतीक एवं शोक की समकक्ष अनुभूतियाँ ।
५—रामकाव्यगत करुणरस की विशेष अभिव्यक्तियाँ ।
६—रामकाव्यगत करुणरस का शब्दकोष ।
७—करुणरस के प्रसगो की परिसमाप्ति ।

टिप्पणी—उपर्युक्त शीर्षो मे यथास्थान निम्नलिखित सकेत प्रयुक्त हुए है इन्हे पाठकगण ठीक समझ ले—

संकेत (कोष्ठगत संख्या)	**अभिप्राय**
(१)	संस्कृत काव्य, वाल्मीकि रामायण, अध्यात्मरामायण तथा भवभूति का उत्तररामचरित के अन्तर्गत ।
(२)	सूरसागर की रामकथा के अन्तर्गत ।
(३)	रामचरितमानस तथा गीतावली के अन्तर्गत ।
(४)	रामचन्द्रिका के अन्तर्गत ।
(५)	लोकगीतो के अन्तर्गत ।

रामकाव्यगत करुणरस का आलंबन विभाव

आलंबन की स्थिति	**आलंबन**	**आश्रय**
मृत	क्रौंच नर	क्रौच मादा
मृत (इष्ट)	दशरथ	रनिवास की रानियाँ, भरत
इष्ट की मृत्यु का सदेश	शोक-सतप्त परिवार	राम-सीता-लक्ष्मण
मृत इष्ट (वध)	वालि, कुभकर्ण, मेघनाद, रावण	विपक्षी पात्र—तारा, रावण, मदोदरी
मृतइष्ट (माया योजना)	राम का कटा सिर	सीता
	सीता का वध	राम

मृत्यु की ग्राशका	लक्ष्मग	राम
ग्रनिष्ट की ग्राशका	कौशल्या के लिए	राम (वाल्मीकि)
	भरत के लिए	कौशल्या (मानस)
इष्ट वियोग	राम	दशरथ, कौशल्या
	सीता	राम
व्यग्य एव कटूक्तियाँ	कौशल्या	दशरथ
ग्रपवाद	सीता	लक्ष्मग, भरत
ग्रतिविनय	दशरथ	जनक

रामकाव्यगत करुणरस का उद्दीपन विभाव

मृत इष्ट—ग्र—१. निश्चेष्टता (न देखना, न बोलना)।

२ क्षत-विक्षत शव।

३ कटा हुग्रा सिर, भुजा (गोद मे रखकर रोना)।

४. मुकुट, ग्राभूषग ग्रादि ग्रस्तव्यस्त पडे हुए।

५. शव (की सुरक्षा के लिए) तैल के कढाव मे रखना।

६. शव का चिता पर रखना, चिता मे ग्राग लगाना, ग्रतिम दर्शन।

७ जलती चिता की परिक्रमा, फूल चुनना।

ग्रा—१ गुणकथन।

२ मृतइष्ट के साथ भोगे सुखो का स्मरग।

३ ग्रभाव—भविष्य की चिन्ता, सहयोग का ग्रभाव, लक्ष्य की ग्रपूर्ति की चिन्ता एव ग्रभाव मे ग्रसहायावस्था की चिन्ता।

प्रकृति— १ तेजवायु का चलना, ग्राकाश मेघाच्छादित, नगर मे भूकम्प, दशो दिशाग्रो मे ग्रधकार, श्रीहत सर-सरिता, बन-बाग, चन्द्रमा तथा तारो से रहित ग्रँधेरी रात, "जन पुर दहँ दिसि लागि दवारी।"

२. शून्यता—राजमार्ग, बाजार, नगर।

३. भयावनी, डरावनी।

४. उपमान—कमल, हिलती लता, मधुकर, खंजन, शुक, कपोत, मृग, मीन, कोकिल, कुदकली, दाड़िम, दामिनि, शरद, शशि, नागिन, कामदेव का धनुष, हस, गज, सिह, श्रीफल, कनक, कदलि, ग्रादि-ग्रादि।

ग्रपशकुन— १. रात को कुस्वप्न, "खर सिग्रार बोलहिं प्रतिकूला," "रटहि कुभाँति कुखेत करारा।"

ग्राशंका— २. पुरजनो का मौन ।

वियोग व्यथित पशु—"चरफराहि मग चलहि न घोरे,"
"अड़ुकि परहि फिरि हेरहि पीछे ।"

उक्तियां – १. व्यग्य एव कटूक्तियां ।
२. अपवाद ।

रामकाव्यगत करुणरस के अनुभाव

१—अचेत होना—मूर्च्छित (१) मुमोह (१) नष्टचेतन (१) विचेतन (१) अपसन्नांग (१) समूढ (१) अचेत (२) धरनि परे मुरझाई (२) मुरछित (३)

२—अधर सूखना— सूखहि अधर (३) शरीर सूखना—'महयिमूखि' (३

३—अश्रयुक्त नेत्र—वाष्पपर्याकुलईक्षगा (१) बारि भरनि भये बारिद लोचन (४) नयन सजल (३)

४—अकाश की ओर देखना —गगनासक्तलोचनः (१)

५—ओठ और नासापुट का फडकना—स्फुरदधरनासापुट (१)

६—काँपना—वेपमाना (१) तन थरथर काँपी (३)

७—चकित होकर इधर-उधर देखना—चकित भये दिसि-विदिसि निहारत (२)

८—दिखाई न देना—न त्वा पश्यामि साधु मा पाणिना स्पृश (१) दीठि भई थोरी (३)

९—दीर्घ श्वास लेना—नि श्वसन्त (१) निःश्वस्यायतमायतम् (२) लेति उसास (२) लेइउसास (३)

१०—नेत्र न खोल पाना—शशाक नेक्षितु (१) नैन न जात उघारे (२)

११—बाहें उठाकर विलाप करना—उद्यृत्य बाहू चुक्रोश (१) बाहूनुद्यम्य (१) प्रगृह्य बाहू (१)

१२—भूमि पर गिरना—पपात सहसा भूमौ (१) परेउ भूमि तल (३) परेउ धरनि (३) धरनि खसि परी (३) भूमि पर्यो (४)

१३—भूमि की ओर नेत्र किए—वसुधासक्त नयनः (१) अधोदृष्टि कै (४)

१४—भूमि को नाखून से कुरेदना—'महिनख लिखन लगी सब सोचन' (३)

१५—रोना—प्ररुरोद महास्वनम् १) तुमुलाक्रन्द (१) मृश रुदन्त्य ( ) नीर दृग मोचत (२) नैन नीर ढरकाए (२) लोचन जल धारा (२) उमाड़े नयन जल भरि-भरि डारत (२) अश्रुधारा बहायो (४) नैनन ते न रह्यौ जल गेरयौ (४) नैना नीर बहावै (५) तरर तरर चुवै (५)

१६—लोटना—लोटत सूर धरनि दोउ बधु (२)

१७—विवर्ण—बिबरन (३) निपट मलीना (३) मलाना (३)

१८—**विकलता**—इन्द्री सकल विकल (३) तलफत विषम मोह (३) बिकल सब ठाढे (३) सब व्याकुल भागी (३) जी अकुलावे (५)

१९—वाणी की मूकता—नाभिभाषितुम् (१) कहत कछू नहिं आई (२) न कछु कहि आवा (३) केशव उठि गए भीतर भौनहि (४)

२०—शरीर की शिथिलता—वपु न सँभारत (२) सोक सिथिल (३) छूटे केस नहि वपुष सँभारा (२) तन थरथर काँपी (३)

२१—सिर चकराना—घूर्णमान (१)

२२—सिर और छाती पीटना—शिरश्चोरश्च बाहुभ्या दुःखेन समभिघ्नती (१) धुनइ सिरु (२) उर ताडना करहि विधि नाना (३)

२३—(अ) सिर गोद मे रखना रोना—बार बार सिर लै लछिमन कौ निरखि गोद पर राखै (२) बधु सीस पुनिपुनि उर धरई (३) देख्यो सिर अजुलि (४)

(आ) भुजा पकड कर रोना—'प्रगृह्य बाहू व्यवलपन्ननाथवत्' (१)

२४—सिर ढोरना—सिर ढोर्‌यो (२)

२५—सहम जाना—गयउ सहमि (३)

२६—सुनाई न देना—सुनइ न स्रवन (३)

२७—हाथ मीडना—हाथ मीजि, मीजि हाथ (३)

२८—हाथ पृथ्वी पर पटकना—बाहू विक्षीप्य (१)

२९—हाथो से मुँह ढकना—पहितानन. (१) माथे हाथ मूँदि दोउ लोचन (३)

३०—हाहाकार करना—हाहाकार कृता—(१) त्राहि त्राहि कर (२) हाहा-करि (४)

३१—अग्नि प्रवेश या विषभक्षण का विचार करना—अग्नि प्रवेक्ष्यामि—विषवा मन्दयामि (१)

रामकाव्यगत करुणरस के प्रतीक एवं शोक की समकक्ष अनुभूतियाँ

प्रतीक—अश्रुप्रवाह—मुक्तामणिसरो (मोतियो की टूटी लडी)।

शून्यता—'समूढ निगमा स्तब्धा सक्षिप्त विपणापणाम्' (१) सूनौ भवन, सूनौ सिहासन (२) राम बिन सूनी अयोध्या (५) सूनो दरसावे (५)

शरीर की क्षीणदशा—जरिबरि भइली कोइलिया (५)

शोक समाचार की सूचना—पपइयो बोल्यो खावड रे खेत मे।

मरणासन्न—क्षीण स्नेहस्य दीपस्य ससक्ता रश्मयोयथा

मृत्यु का निर्देश—स्वर्ग गत (१) जीवतान्तमुपागमत् (१)

पश्चिमावस्था गत (१) विनिपातितः (१)

निहितः (१) मृतः (१)

पचत्वमापन्न (१) आतोऽसि यमसादनम्
महाप्रस्थानमेव (१) तनु त्यागौ (२)
(बर्फ मे गलने के लिए) या गतिर्धर्मशीलानामश्वमेधादियाजिनाम ।
ता गति गतवानद्य पिता ते पितृवत्सले । (५)
रबि अथयउँ (३) गयउ सुरधाम (३)
ब्रह्मरध्र फोरि जीव कौ मिल्यो जुलोक जाय (४)

शोक की समकक्ष अनुभूतियाँ

प्रकृति—वृक्ष—छिन्नस्तरुरिवपतन्, हतमूल इव द्रुम, पतिता कदली मिव (१)
दामिनि हनेहु मनहु तरुतालू (३) पेड काटिते पालउ खीचा (३)
लता—छिन्ना वन लता इव (१)
गजेन्द्रहस्तामिहतेव सल्लकी (१)
नदी—स सायमति वेगेन यथा कूल नदीरय (१)
चद्र—अमिय रहित जनु चद (३) चद गह्यौ ज्यौ राहु (२)
कमल—सरसरसिज बनु बिनु बारी (३)
सूल—एक सूल मोहि बिसर न काऊ
यमुना नीर—रोवे जइसे उमडे आबा जमुना के पनिया (५,
कालरात्रि—अवधि-भयावन भारी मानहु काल रात्रि अँधियारी
जुग सरिस सिराति न राती (३)
धेनु—धेनुविवत्सा (१) सुमिरि बच्छ जिमि धेनु लवाई (३)
मृगी—बिछुरी मनौ म ग तै हिरनी (२ व्याध बिवस जनु मृगी सभीता (३)
सिंह—सिहनाममिव नर्दताम् (१)
कौञ्ची—कौञ्ची नामिव नारीणा निनाद (१)
कुररी—क्रोशन्ती कुररीमिव (१)
सपाती—जरि पख परेउ सपाती (३) जनु बिनु पख बिहग अकुलाही (३)
सर्प—हृततेजायथासर्प (१) मनिबिहीनजनु व्याकुल व्यालू (३)
बिनु मनि फनिक बिकल जेहि भाँती (३)
मछली—माजा मनहुँ मीन कहुँ व्यापा (३)
खीन जिअन हित बारि उलीचा (३)

"हे पितृवत्सल ! अश्वमेधादि यज्ञ करनेवाले धर्मपरायण पुरुषों की जो गति होती है उसीको आज तुम्हारे पिता भी प्राप्त हुए है।" (अध्यात्म० रा०—अयो० ७/६५)

जनु जलचरगन सूखत पानी [३]
मराहिं मीना [३]

माखी—विकल मनहु माखी मधु छीने [३]

दीपक—क्षीणस्नेहस्य दीपस्य स सक्ता रश्मयो यथा [१]

व्रण—व्रणे तुवेन सूचिता [१]

केतुगृहीत—गात गह्यौ ज्यो केत [२]

विषपान—विष विषम पियौ [२]

दिवश्च्युतादेव—देवतेव दिवश्च्युता [१] सुरपुरते जनु खसेउ जजाती [३]

कृपण—कृपन धनराशि गॅवा [३]

मनहुँ बारिनिधि बूड जहाजू, भयउ विकल वड बनिक समाजू [३]

हत्या—मारिसि मनहु पितामहतारी]३]
जनि मारेसि गुरबाभन गाई [३]

वज्र---कुलिस धरि छाती [३] हृदय दीर्यते [१] हिय फाट्यो ज्यो वीरन दुकूल [४]

बालक का रोना---दीन बालजिमि रोई [२]

अवर्णनीय तथा मानवीकरण—महा बिपति किमि जाइ बखानी [३]
तनु धरि सोचुलागु जनु सोचन [३] दुखहू दुख लागा [३]
धीरज हू करि धीरज भागा [३] करुना वहु वेष बिसूरति [३]
करुनरस कटकई उतरी अवधि बजाइ [३]

जाति अपमान—सबते अधिक जाति अवमाना [३]
मदपान—बिप्र बिबेकी वेदबिद'''जिमि धोखे मद पानि कर [३]

रामकाव्यगत करुणरस की विशेष अभिव्यक्तियाँ

अन्देसा अथवा सोच—

अ—सुखसुविधा के अभाव का सोच

कृतिसकेत

[१] यः सुखेषूपधानेषु शेतेचन्दनरुषित ।
वीज्यमानो महार्हाभि॰ स्त्रीभिर्मम सुतोतम ।
स नून क्वचिदेवाद्य वृक्षमूलमुपाश्रित. ।
काष्ठं वा यदि वाऽश्मानमुधाय शयिष्यते ।

[२] बिन रथरुढ दुसह दुख मारग, बिन पद-त्रान चलै दोउ भ्रात ।
इहि विधि सोच करत अति ही नृप जानकी ओर निरखि बिलखात ।

[३] जौ पै इन्हहिं दीन्ह बनबासू, कीन्ह बादि बिधि भोग बिलासू ।
ए बिचरहिं मग बिनु पदत्राना, रचे बादि बिधि बाहन नाना ।

आ—घोड़ों की चिन्ता

[३] ए बर बाजि बिलोकि आपने बहुरो बनहि सिधावौ ।
....

तुलसी मोहि और सबहिनते इन्हको वडो अदेसो ।

इ—विभीषण को लंका-राज्य न दे सकने की चिन्ता

[२] बीचहि भई और की औरै,
ह्वै है कहा बिभीषण की गति, यहै सोच जिय गुनि कै ।
[३] ह्वै है कहा बिभीषण की गति, रही सोच भरि छाती ।
[४] मोहि रही इतनी मनशका, देन न पाई बिभीषण लका ।
बोलि उठौ प्रभुको पन पारौ, नातरु होत है मोमुख कारो ।

संवेदना

[१] "सीते मृतस्ते श्वशुरः पित्रा हीनोऽसि लक्ष्मण ।"
"ततः पर्णकुटीद्वारमामाद्य जगतीपति ।
परिजग्राह बाहुभ्यामुभौ भरतलक्ष्मणौ ।"
[३] व्याकुल भए निषाद रघुवर बाजि निहारि ।
[४] तब पुत्र कौ मुख जोइ,
क्रमते उठी सब रोइ ।

व्यंग्य उक्तियाँ—वनवास-प्रसग

[१] "इद ते राज्यकामस्य राज्य प्राप्तमकण्टकम्,
सम्प्राप्त वत कैकेय्या शीघ्र क्रूरेण कर्मणा ।"
[३] जाहु मुखेन बनहि बलि जाऊँ,
करि अनाथ जन परिजन गाऊँ ।
भे अति अहित रामु तेउ तोही ।

भरत की आत्मग्लानि का प्रसंग

[३] लखन रामसिय कहुँ बन दीन्हा, पठइ अमरपुर पति हित कीन्हा ।
लीन्ह विधवपन अपजसु आपू, दीन्हेउ प्रजहि सोक सतापू ।
मोहि दीन्ह सुखु सुजसु सुराजू कीन्ह कैकेई सबकर काजू ।
एहि ते मोर काह अब नीका, तेहि पर देन कहहु तुम टीका ।

सुमंत्र की आत्मग्लानि का प्रसंग

[३] पूछत उतरु देब मैं तेही गे बनु राम लखनु बैदेही ।

जोई पूंछिहि तेहि उतरु देबा जाइ अवध अब यह सुखु लेवा ।

सीता की उक्ति राम के मायाजनित सिर को देखकर

[१] सकामा भव कैकेयी हतोऽय कुलनदन ।

रावण की उदासीनता

[४] "आजु आदित्य जल पवन, पावक प्रबल चद अनद भय ।"
त्रास जग को हरौ, गान किन्नर करौ नृत्य गधर्व ।
......अभिषेक इन्द्रहि करौ ।
आजु सिय राम दै, लक कुलदूषणहि, यज्ञ को जाय सर्वज्ञ बिप्रहु बरौ ।

सीतानिर्वासन-प्रसंग

(१) "यथापवाद. पौराणा तथैव रघुनन्दन ।"
"यथाज्ञ कुरु सौमित्र त्यज्य मा दु खमागिनीम् ।"
'मामिकेयं तनुर्नूनं सृष्टा दु खाय लक्ष्मण ।"
"निरीक्ष्य मामद्यगच्छ त्वमृतुकालातिर्वर्तिनीम् ।"
[३] तापसी कहि कहा पठवति नृपनि को मनुहारि ।

लघनलाल कृपाल निपटहि डारिबी न बिसारि ।

रामकाव्यगत करुणरस की अभिव्यक्तियों का शब्दकोष

अकुलाय (४)	कोशन्ती (रामरामेति) (१)
अकुलानी (३)	गतचेतन (१)
अचेत (४)	गतबुद्धि (१)
अचेतन (१)	गरइ गलानि (३)
अदृष्टपूर्व व्यसन (१)	घूर्णमान [१]
अवसन्नांग (१)	चक्रतभई [२]
अस्वस्थ (१)	जी अकलावे [५]
आकुल (१)	जरि जरि भई कोयला [५]
आतुर (१)	तटस्थ [१]
आर्तना (१)	तुमुलाक्रन्द [१]
आर्तनाद (३)	तरर तरर चुवै [५]
आपतन (१)	थारे बिन सूनो दरसावै [५]
उरदारुनदाहू (३)	दारुण [१]
कहत कछू नहि आई (३)	दीन [५]

दुःखितः [१]
दुःखामि सन्तप्त. [१]
धर तन धीर [२]
धरनि खसि परी [३]
(न) धीर धरै (४)
धुनइ सिरु (३)
नष्ट चेत (१)
नि श्वसन्त (१)
निनाद (१)
नीर भरयौ (२)
नैन भरि आए (२)
नैणा नीर बहावै (५)
परमदीन (२)
परिताप (१)
प्रासरोद महास्वनम् (१)
पीडितानाम् (१)
पर्यदेवयन (१)
बाष्पपर्या कुलेक्षणः (१)
विकल (३)
बिलखाई (२)
बिलखाही (३)
बिलपत (३)
बिसूरि (२) बिसूरहि (५)
बिलाप करै (४]
बिहाल [४]
बैन उचारत [२]
भृशं सदन्त्य [१]
भृशंभश्रूणिवर्तयन [१]
मदमश्रूणियुञ्चति [१]
मूर्छितः [१]
मुमोह [१]
मोचत नीर [२]
महादुःख [३]
रोवत [३, ५]
विवेचनाम [१]
विलपन् [१]
व्यथिताकुलचेतमम [१]
वसुधर सक्त नयन [१]
विषण्णानां (१)
विव्यथे (१)
विमना (१)
विह्वल तनमन (२)
विषाद [३)
विलपना [१]
शोकेनसममिप्लुत [१]
शोककर्शिता [१]
सम्भ्रान्त [१]
सुस्वर दुरुबुः [१]
समूढ. [१]
सतप्त [१]
हानाचेति परिक्रुश्य [१]
हाहाकार कृता [१]
हृदयेनावदीर्णेन [१]
भग्न· [१]

करुणरस के प्रसंगों की परिसमाप्ति

करुणरस के प्रसगो की परिसमाप्ति शोकसतप्त मानस को शान्त करने के प्रयत्नो मे द्रष्टव्य है। शोक-शमन के लिए विवेक आवश्यक है। विवेक प्राप्त होते ही शोक की व्यर्थता स्पष्ट हो जाती है। इस तथ्य को गो०तुलसीदास जी ने एक

सुन्दर रूपक द्वारा प्रकट किया है।[1]

शोकानुभूति रुदन, प्रलाप, व्याधि, मोह, मरण आदि स्तरो मे उत्तरोत्तर उत्कृष्ट होती हुई शनैः शनैः उदासीनता एव वैराग्य मे परिणत एवं विकसित होती है। इन अवसरों पर सगे-सम्बन्धी एव गुरुजन आदि शोक-शमन के लिए आश्रय को समझाते-बुझाते तथा धैर्य बँधाते है। इन्ही प्रसगो का यहाँ विवेचन किया जावेगा।

(i) **औचित्य का ध्यान दिलाना**—आश्रय की समझदारी, योग्यता और क्षमता का ध्यान दिलाकर उसको धैर्य धारण करने का आग्रह किया जाता है तथा यथावसर अन्त्येष्टि आदि करने के लिए कहा जाता है।

वशिष्ट ने भरत को समझाते हुए कहा—

"हे महायशस्वी राजपुत्र! तुम्हारा कल्याण हो। बहुत हुआ, अब शोक मत करो। महाराज का समय आ चुका था। अब विधि-विधान से उनकी अन्त्येष्टि क्रिया करो।"[2]

मानस में भी इसी प्रकार वशिष्ट जी भरत को समझाते हुए कहते हैं—

"तात हृदयँ धीरजु धरहु, करहु जो अवसर आजु।
उठे भरत गुर बचन सुनि, करन कहेउ सबु साजु॥"

कुंभकर्ण की मृत्यु पर विलाप करते हुए रावण को इसी रूप मे समझाया गया है—

"हे प्रभो! निश्चय ही आप मे इतनी शक्ति है कि यदि आप चाहो तो तीनो लोको को भी नष्ट कर सकते हो। तब एक साधारण व्यक्ति की भाँति आप इस प्रकार शोक-सतप्त क्यों हो रहे हो।"[3]

मानस मे लक्ष्मण-शक्ति प्रसग का पर्यवसान उत्साह मे होता है—

"प्रभु प्रलाप सुनि कान बिकल भए बानर निकर,
आइ गयउ हनुमान जिमि करुना महँ बीर रस।"

(ii) **आलंबन की हित कामना का ध्यान दिलाकर शोक-शमन करना**—विश्वास है कि दिवगत आत्मा का शेष परिवार से मृत्यु के पश्चात् भी सबध रहता है। इसलिए परिवार के शेष प्रियजनो के शोक मनाने से उसको कष्ट एव अशान्ति होती है। इसलिए उसके हित मे यही है कि अधिक शोक न किया जाय।

---

१. शोक कनकलोचन मति छोनी। हरी बिमल गुन गन जग जोनी॥
भरत बिबेक बराहँ बिसाला। अनायास उधरी तेहि काला॥
—(अयो० २९६ २)

२ अल शोकेन भद्र ते राजपुत्र महायशः।
प्राप्तकाल नरपते कुरु सयाननुत्तमम्॥
—(अयो० ७६/२)

३. "न शोक परितापेन श्रेयसा युज्यते मृतः।
यदत्रानन्तर कार्य तत्समाधातुमर्हथ॥"

रामलक्ष्मण बालिवध के अवसर पर अंगद सुग्रीव और तारा को इसी रूप में समझाते हुए कहते है—

"शोक-संताप करने से मृत प्राणी का भला नही होता। इसलिए आगे जो काम अपेक्षित है उनको करो।"[1]

(iii) **आलंबन के यशस्वी जीवन की प्रशंसा करते हुए शोक करने के अयोग्य बताना और शोक शमन का आग्रह करना**—महाराज दशरथ के निधन पर शोक करते हुए आश्रयो से इसी रूप मे शोक-शमन के लिए आग्रह किया गया है। कैकेयी भरत से कहती है—

"तात राउ नहि सोचै जोगू। बिढइ सुकृत जसु कीन्हे भोगू॥
जीवत सकल जनम फल पाए। अंत अमरपति सदन सिधाए॥
अस अनुमानि सोच परिहरहू। सहित समाज राजपुर करहू॥"

वशिष्ट ने भी भरत को इसी प्रकार समझाया—

"तात बिचारु करहु मन माही। सोच जोगु दसरथु नृप नाही॥
× × ×
सोचिअ नृपति जो नीति न जाना। जेहि न प्रजा प्रिय प्रान समाना॥
× × ×
भयउ न अहइ न अब होनिहारा। भूप भरत जस पिता तुम्हारा॥
× × ×
सब प्रकार भूपति बड़भागी। बादि बिषादु करिअ तेहि लागी॥"

(iv) **आश्रय की शक्ति, सामर्थ्य के आधार पर क्षति का प्रतीकार करने के लिए आग्रह करना और शोक-शमन होना**— विपक्षी पात्रो द्वारा की गई क्षति के समय प्रायः ऐसे प्रसंग आते है। यहाँ करुणा का पर्यवसान प्रतीकार-भावना तथा रोष मे होता है। शोक शमन होकर प्रतीकार के लिए उत्साह जाग्रत हो जाता है मानो 'करुणा मे वीररस' का आविर्भाव हो गया हो—

शक्ति का ज्ञान कराना

"शूर लोग इस प्रकार विलाप नही करते जिस प्रकार आप कर रहे हैं"—यह उत्साहवर्धक शब्द कुंभकर्ण की मृत्यु पर विलाप करते हुए रावण से कहे गये हैं—'न तु सत्पुरुषा राजन्विलपन्ति यथा भवान्।'

(v) **आश्रय को ज्ञानविज्ञान और वैराग्य के उपदेश करना तथा प्राचीन पुराण और इतिहासों की कथा सुनाना और शोक-शमन करना**—दशरथमरण पर

१. "नून त्रिभुवनस्यापि पर्याप्तिस्त्वमसि प्रभो।
सकस्मात्प्राकृत इव शोचस्यात्मानमीदृशम्॥"

वशिष्ठ जी ने इसी रूप मे समझाया है—

"तब बसिष्ठ मुनि समय सम कहि अनेक इतिहास,
सोक नेवारेउ सबहि कर निज बिग्यान प्रकास ।"

भरत को माता कौशल्या का समझाना और माता कौशल्या को भरत का समझाना—[1]

"भाँति अनेक भरत समुझाए । कहि विवेकमय बचन सुनाए ।।
भरतहुँ मातु सकल समुझाँई । कहि पुरान श्रुति कथा सुहाई ।।"

वशिष्ठ का विदेह को समझाना—

"मुनि बहु भाँति भरत उपदेसे । कहि परमारथ बचन सुदेसे ।"
× × ×
"किए अमित उपदेश जहँ-तहँ लोगन्ह मुनिबरन्ह ।
धीरज धरिअ नरेस कहेउ बसिष्ठ विदेह मन ।।"

(vi) **नियति अथवा भाग्य-आधीन सब कार्यों को बताकर शोक-शमन करना**—अगद सुग्रीव व तारा को समझाते हुए रामलक्ष्मण ने कहा—

"नियति ही समस्त लोको की उत्पत्ति का कारण है । कर्मसाधन भी नियति है । नियति ही प्राणी मात्र का प्रेरक है ।"[1]

वशिष्ठ जी भी भरत को 'भावी प्रबल' बताकर उनके शोक का शमन करते हैं—

"सुनहु भरत भावी प्रबल, बिलखि कहेउ मुनिनाथ ।
हानिलाभु जीवनु मरनु, जसु अपजसु विधि हाथ ।।"

इस प्रकार शोक-शमन के प्रयत्न जिनके द्वारा करुण रस की परिसमाप्ति होती है निम्नलिखित रूपो मे प्रकट होते है जिनका आधार मनोवैज्ञानिक ही है—

(१) **परंपरागत लोकाचार का ध्यान दिलाना**—मनुष्य जन्म लेते आए है और मरते रहे है । उनके लिए शोक करना व्यर्थ है क्योकि मनुष्यमात्र की यह गति होने वाली है । इस अनिवार्यता का ध्यान दिलाकर शोक-शमन करना मनुष्य की परंपरा का स्मरण कराना है । मनोविज्ञान द्वारा इस प्रकार की परपराओ के लिए अपेक्षित सस्कार बन चुके होते है ।

(२) **नियति अथवा 'भावी प्रबल' का ध्यान दिलाना**—मृत्यु अवश्यभावी है । उसके समक्ष मानव-मात्र विवश और असहाय है । इस विवशता और असहायावस्था का परिज्ञान मनोवैज्ञानिक परितोष का कारण होता है जिससे शोक सह्य एव शमित हो जाता है । ज्ञान-विज्ञान वैराग्य के उपदेश एव पुराण इतिहास की कथा इसी

१. नियति कारण लोके नियतिः कर्मसाधनम् ।
नियतिः सर्वभूताना नियोगेष्विह कारणम् ।।
—(कि० २५।४)

विवशता एवं अनिवार्यता का परिज्ञान कराते है।

(३) **आलंबन की आत्मा की शान्ति के लिए कामना एवं उसके यशस्वी जीवन का वर्णन**—यह आश्रय के स्नेह एव मोह को जाग्रत करता है जिससे शोक की समूढावस्था रुदन एवं विलाप मे परिवर्तित हो जाती है और शोक सह्य हो जाता है। शोक के असह्य आघात को सध्य बनाने के लिए मनोवैज्ञानिक यही प्रयत्न किया जाता है। आलबन की प्रशसा एव आश्रय के प्रति किए गए उसके उपकारो का स्मरण कराने से आश्रय के आँखो से अश्रु मोचन होने लगता है और शोक सह्य हो जाता है।

(४) **करुण के आश्रय में प्रतिद्वन्द्वी के प्रतिकार-भावना जाग्रत करना**—ऐसा करना मनोविज्ञान की युद्ध-प्रवृत्ति को उत्साहित करना है जिससे वह वर्तमान शोक को भूलकर विपक्षी के नाश के लिए उद्यत हो जाता है।

परिशिष्ट—१

करुणरस तथा सुन्दरकाण्ड का पारायण एवं महत्त्व

रामायण के सुन्दरकाण्ड के पारायण की एक परपरा है। प्राय व्यक्ति सुन्दर-काण्ड का पारायण करते है। इस प्रसग मे, अतएव यह जिज्ञासा स्वाभाविक है कि इस काण्ड का नाम सुन्दरकाण्ड क्यो पडा तथा इसका पारायण क्यो किया जाता है। यहाँ यह विशेषरूप से अवलोकनीय है कि तुलसी के मानस का विभाजन काण्डो के रूप मे न होकर सोपानो मे है तथा सुन्दरकाण्ड नाम से मानस मे कोई काण्ड नही है। मानस मे इसको पचम सोपान कहा गया है। फिर भी बहुत कम व्यक्ति ऐसे है जो इस बात को जानते है। प्राय व्यक्ति इस पचम सोपान को सुन्दरकाण्ड ही कहते है और ऐसा ही समझते भी है। सस्कृत की कृतियो मे अवश्य रामायणो का विभाजन काण्डो के रूप मे है जिनमे से एक काण्ड सुन्दरकाण्ड भी है। इस प्रकार हिन्दी रामकाव्य प्रेमियो मे सुन्दरकाण्ड सबधी प्राचीन परपरा ही प्रचलित है और यह तथ्य इस काण्ड के नामकरण तथा पारायण दोनो दृष्टियो पर प्रकाश डालने के लिए अपेक्षित है। यहाँ सक्षेप मे विभिन्न रामायणी विद्वानो तथा अन्य व्यक्तियो के मत दिए जा रहे है।[1]

सुन्दरकाण्ड की विशेषता तथा नामकरण के कारण—१ त्रिकूटाचल के तीन शिखर है—नील, सुबेल और सुन्दर। नील पर लका बसी है, सुबेल मैदान है और सुन्दर पर अशोकवाटिका बसी है। सुन्दरकाण्ड मे अशोक वाटिकागत सीता की कथा है। इसीलिए इस काण्ड का नाम सुन्दर-काण्ड है। २ इस काण्ड मे वर्णनीय सब कुछ सुन्दर है, इसलिए इसका नाम सुन्दर-काण्ड है—

१ पं० रामकुमार, श्री रामदयाल मजूमदार, पं० वि० त्रिपाठी, स्वामी श्री प्रज्ञानानंद सरस्वती, श्री नर्मदाप्रसाद वर्मा।

(अ) "सुन्दरे सुन्दरी सीता सुन्दरे सुन्दरः कपिः ।
सुन्दरे सुन्दरी वार्त्ता अतः सुन्दरो च्यते ॥
... ...
सुन्दरो सुन्दरो रामः सुन्देरे सुन्दरी कथा ।
सुन्दरे सुन्दरी सीता, सुन्दरे किन्न सुन्दरम् ॥"

(आ) इस पार—'सिंधु तीर एक भूधर सुन्दर ।'
उस पार—'कनक कोटि बिचित्र मनिकृत सुन्दरायतना घना ।'
मुद्रिका—'तब देखी मुद्रिका मनोहर, राम नाम अ कित अति सुन्दर ।'
फलफूल—'सुनहु मातु मोहि लागी भूखा, लागि देखि सुन्दर फल रुखा ।'
कथा—'सावधान मन करि पुनि संकर, लागे कहन कथा अति सुन्दर ।'

(इ) "मनभावन काँचीपुरी हनुमत् चरित ललाम ।
सुन्दर सा नु कथा तथा, ताते सुन्दर नाम ।"

(ई) मनभावन से कथा का उपक्रम—

"जामवंत के बचन सुहाए,
सुनि हनुमंत हृदय अति भाए ।

(उ) मनभावन से उपसंहार—

निज भवन गवनेउ सिंधु श्री,
रघुपतिहि यह मत भायऊ ।"

(ऊ) कथा की दृष्टि से काण्ड में दो चरित्र—पूर्वार्द्ध में हनुमत् चरित तथा उत्तरार्द्ध में रामचरित (सीता राम के रूप मे) है ।

अतएव 'हरिहरात्मक' होने से इस काण्ड का नाम सुन्दर-काण्ड है । 'हनुमत् चरित्र ललाम' का वर्णन है । रामायण महामाला के रत्न हनुमान् के चरित का वर्णन है, इसलिए यह काण्ड सुन्दर है ।

(ए) "अमरकोष के अनुसार सुन्दर शब्द की व्याख्या इस प्रकार है—सुद्रियते =दृङ् आदरे । अतएव=बहुत आदरणीय—'यद्वा सु उनति, चित द्रवी करोति, उन्दी क्लेदने, सुन्दर'—जिससे चित्त द्रवित हो जाय ।

सुन्दर-काण्ड में कोई प्रसंग ऐसा नही है जिससे आदर न उत्पन्न होता हो । बहुत से प्रसंग ऐसे हैं जिनसे चित्त भी द्रवित होता है । आदरणीय और द्रवित करने वाली पूरी कथा के पूरे प्रसंग—हनुमान की बानरो से विनय, पर्वत से उड़ान, जलनिधि में मैनका-चरित, मैनका से हनुमान जी का व्यवहार, सुरसा-परीक्षा प्रसंग, छाया-ग्रह विनाश···लंकिनी की स्वकार्य निष्ठा और दक्षता, तुलसिका वृन्दादि से स्वभाव निश्चय, ·····त्रिजटा चरित्र, सीता-सान्त्वना आदि तो आदरणीय है ही, साथ ही

यह हृदय को पिघलाकर पानी कर देते हैं।"······अन्य काण्डों में ऐसा नही हैं। बालकाण्ड में सती की अश्रद्धा पतिवचन पर अविश्वास, असत्य भाषण, अयोध्या में कैकेयी-मंथरा चरित, भरत द्वारा माँ का अधिक्षेप, पतिशव घर में और कैकेयी—"सजि आरती मुदित उठि धाई ", अरण्य मे सीता के मर्म वचन, रावण चरित, किष्किन्धा में सुग्रीव चरित "जेहि अघ बधेउ व्याध जिमि बाली, फिरि सुकठ सोइ कीन्हि कुचाली।" लंका में मंदोदरी का पति को नीच निर्लज कहना, वानरों का "धरि केस नारि निकारि बाहेर···। "उत्तरकाण्ड मे गरुड मोह, भुशुण्डि मोह, रामराज्य, सीता निन्दा आदरोत्पादक नही है !"

सुन्दर-काण्ड के पारायण करने के कारण

१ हनुमान जिनके इष्ट है वे सुन्दरकाण्ड पढते हैं क्योंकि इस काण्ड में हनुमान-चरित का वर्णन है।

२ सुन्दरकाण्ड रामायण का हृदय है। अतएव महत्वपूर्ण है।

३ छोटा काण्ड है। पारायण मे समय कम लगता है।

(कदाचित् यह विचार भ्रमपूर्ण है। सबसे छोटा काण्ड किष्किन्धा है जिसमें ३० दोहे है जबकि सुन्दरकाण्ड में ६० दोहे हैं।)

४. कार्यसिद्धि एवं कष्टनिवारण के लिए इस काण्ड का पारायण किया जाता है। हनुमान के कार्य (रामकार्य) की सिद्धि इस काण्ड मे हुई है। इसलिए इस काण्ड का पारायण किया जाता है।

५. सुन्दर-काण्ड की शब्दयोजना अपेक्षाकृत सरल है तथा इस काण्ड से प्रारंभ करके रामायण पढना आ सकता है।

६. अन्य काण्ड दोहा या सोरठे से प्रारम्भ हुए है जबकि सुन्दरकाण्ड चौपाई से प्रारम्भ हुआ है। बालकाण्ड मे (३६ ३७) दी हुई प्रतीक योजना के अनुकूल "पुरइन सघन चारु चौपाई" तथा "छन्द सोरठा सुन्दर दोहा, सोइ बहुरंग कमल कुल सोहा" बताए गए हैं। दोहा कदाचित् विश्राम के लिए प्रयुक्त हुआ है। किष्किन्धा-काण्ड के अन्त तक हनुमान तथा अन्य वानरों को समुद्रतट पर संध्या हो गई। इसलिए कमल के स्थान में पुरइन को स्थान दिया गया है। इस काण्ड में सीता की कथा है, इसलिए भी पुरइन से प्रारम्भ करना उचित है। पुरइन कामनापूर्ति की भी द्योतक है (स्वयं पुरइन शब्द से)। इसलिए कामनापूर्ति के लिए इस काण्ड की योजना की गई है। एतदर्थ पारायण होता है।

७ इस काण्ड का फल "तरहिं भव सिंधु बिना जलजान" रखा गया है जबकि अन्य काण्डों का फल निम्नलिखित रूप मे इस आदर्श फल से निम्नश्रेणी का है। इस आदर्श फल की प्राप्ति के लिए ही इस काण्ड का पारायण किया जाता है।

बालकाण्ड—"तिन्ह कहुँ सदा उछाहु।"

अयो०—"अवसि होइ भव रस बिरति।"

अरण्य०—"राम भगति दृढ़ पावहिं बिनु बिराग जप जोग।"

किष्कि०—"तिन्ह कर सकल मनोरथ सिद्ध करहिं।"

लंका०—"बिजय बिबेक बिभूति नित तिन्हिहिं देहि भगवान।"

उतर०—"ते संसार पतंग घोर किरणैर्दह्यन्ति नो मानवाः।"

उपर्युक्त विवरण के विवेचन की न तो यहाँ आवश्यकता है न विवेच्य विषय से उसका सम्बन्ध ही है। यहाँ इन मतो का उल्लेख इसलिए किया गया है कि प्रस्तुत प्रसंग का महत्त्व स्पष्ट हो जाय। इन मतों की अपनी-अपनी विशेषता है किन्तु मैं समझता हूँ इन सब मतों की पृष्ठभूमि में करुणरस की प्रयोगात्मक महत्वपूर्ण प्रक्रिया ही विशेषरूप से उल्लेखनीय है जिसकी ओर अभी तक किसी प्रकार विद्वानों का ध्यान नहीं गया है।

सुन्दरकाण्ड में करुणरस की चरमावस्था के दर्शन होते है। महारानी सीता अपने कष्ट एवं यातना को असह्य देखकर मृत्यु की याचना ही नही करती प्रत्युत आत्मघात के लिए प्रयत्न भी करती हैं। हिन्दी रामकाव्य के कलाकारों की ऐसी सुन्दर योजना है कि हनुमान के परिचय से पूर्व तक महारानी जी को अपनी मुक्ति का विश्वास करने के लिए कोई आधार नही है। वह विश्वास नहीं कर सकती कि उनके हरण की सूचना प्रभु को मिल गई होगी तथा वह उनकी मुक्ति के लिए प्रयत्नशील होंगे। उनका यह समझना युक्तियुक्त समझा जा सकता है कि भगवान यह समझ रहे होंगे कि किसी वन्य जन्तु ने सीता को खा लिया होगा। इस प्रकार सीता की स्थिति उपर्युक्त परिस्थितियों मे पूर्णतया करुण की हैं विप्रलभ की नही है, विप्रलंभ की हनुमान के परिचय के बाद से हो जाती हैं।

रामायण में करुण की इस प्रकार की स्थिति अन्यत्र कही नही मिलेगी। महाराज दशरथ की व्यथा एवं वेदना का अन्त उनकी मृत्यु में हो जाता है। यदि कहीं कवि उनको जीवित रखते तो करुणरस की उत्कृष्ट अनुभूति संभव होती। फिर भी वह वात्सल्य का प्रसंग होता तथा करुण के क्षेत्र मे सुन्दरकाण्डगत सीता की करुणदशा के समकक्ष नही रखा जा सकता था। इसी प्रकार भरत की वियोग दशा का रामायण में अद्वितीय चित्रण है किन्तु यह प्रसंग भी प्रियप्रयतमा के वियोग की तुलना में करुण के क्षेत्र से दूर रहेगा। इस प्रकार सुन्दरकाण्डगत सीता का करुण-प्रसंग करुणरस के क्षेत्र की एकमात्र उत्कृष्ट उपलब्धि है जिसका प्रयोगात्मक प्रभाव विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है।

करुणरस के प्रयोगात्मक प्रभाव की चर्चा करुणरस के शास्त्रीय अध्ययन के अन्तर्गत कर चुके हैं। हृदय को द्रवित करने की बात उपर्युक्त मतों में से एक स्थान पर कही गई है। इस प्रकार इस मत का सकेत करुण की प्रभविष्णुता की ओर है। "मानव-शोक में देवताओं की सृष्टि होती है तथा शोक अपने ठोस रूप में मानव चरित्र है"—हेगल की टिप्पणी के ये भाव यहाँ पुनः दुहराते हुए कहा जा सकता है कि जीवन का लक्ष्य भवसागर से मुक्ति अथवा भगवान की प्राप्ति मानव-चरित्र पर ही

आधारित है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए करुणरस का प्रयोग अपेक्षित है।

अपने दो शब्दों में मैंने अपने दो छात्रों पर किए गए करुणरस के प्रयोग की चर्चा की है जिस मे मुझे पूर्ण सफलता मिली। इस प्रयोग को अन्य व्यक्ति भी कर सकते है तथा करुणरस के प्रयोग का महत्त्व देख सकते है। यही कारण है कि हिन्दू धर्म एवं सस्कृति मे विश्वास रखने वाले असख्य व्यक्ति सुन्दरकाण्ड का नित्य पारायण करते है और लाभ उठाते है। मेरा प्रयोग भी इसी प्रकार का है। व्यक्तित्त्व की दुहरी स्थिति अपशब्दो की बरबस स्मृति तथा मानसिक क्षोभ, मानस रोग आदि के लिए अन्य किसी उपचार के स्थान मे करुणरस के काव्य का पारायण, मनन तथा पठित काव्य की संक्षिप्ति प्रस्तुत करना मेरे प्रयोग की मोटी रूपरेखा है जिसका प्रयोग मैं कर चुका हूँ।

परिशिष्ट--२

रामसाहित्य की सूची

संस्कृत राम-साहित्य

प्राचीन राम-साहित्य १—प्राचीन रामसाहित्य का मूल स्रोत वाल्मीकि-रामायण कही जाएगी तथा वाल्मीकि प्राचीनतम स्रष्टा।

२—महाभारत मे वनपर्व के अन्तर्गत सक्षेप में वाल्मीकीय रामयण की कथा दी गई है।

३—अष्टादश पुराणों मे—पद्मपुराण, ब्रह्माण्ड पुराण, श्रीमद्भागवत्, नृसिहपुराण, विष्णुपुराण, अग्निपुराण, प्रभृति में प्राचीन रामसाहित्य सुरक्षित है।

४—पौराणिक रामायणो मे - ब्रह्माण्ड पुराण के अन्तर्गत "अध्यात्म रामायण" तथा अन्य पौराणिक ढग की रामायणे—महारामायण, आनन्द रामायण, भुशुण्डि रामायण, अद्भुत रामायण आदि है।

५—रघुवंश—कालिदास कृत।

६—रामचरित—अभिनव कृत।

७—रावण-वध—भट्टि कृत।

८—रावणार्जुनीय या अर्जुनरावणीय—भौमकभट्ट कृत।

९—जानकीहरण—कुमारदास कृत।

१०—रामायण मंजरी— क्षेमेन्द्र कृत।

११—रघुवीर चरित—मल्लिनाथ कृत।

नाटक

उत्तर रामचरित—भवभूति कृत, जनर्घराघव—मुरारि कृत, बाल-मायण—राजशेखर कृत, हनुमन्नाटक—मधुसूदन और दामोदर मिश्र कृत, प्रसन्नराघव—जयदेव कृत।

प्राकृत राम-साहित्य

सेतु-वन्ध—प्रवर सेन कृत।

अपभ्रंश राम-साहित्य

महापुराण—पुष्पदन्त कृत, रामायण—स्वयंभू कृत तथा अन्य फुटकर रचनाएँ।

मध्ययुगीन हिन्दी राम-साहित्य

कृति	लेखक
१—रामसीता चरित्र	मालचन्द जैन
२—भावार्थ रामायण	एकनाथ स्वामी
३—हनुमतमोक्ष कथा	ब्रह्मरायमल जैन
४—हनुमान चरित्र	राममल्ल पाण्डेय
५—रामचरित मानस	तुलसीदास
६—श्रीराम भजन मंजरी	अग्रदास
७—ध्यान मंजरी	अग्रदास
८—हनुमन्नाटक टीका	बलभद्र मिश्र
९—हनुमान जी का तमाचा	लक्ष्मीनारायण मिश्र
१०—मानस-प्रश्नावली	घनश्याम शुक्ल
११—सीता चरित्र	रायमल ब्रह्मचारी
१२—रावण मंदोदरी संवाद	मुनिलावन्य
१३—राम मुक्तावली	तुलसीदास
१४—तुलसीदास जी की बानी	—
१५—बालचरित्र	हृदयराम पंजाबी
१६—मलूक रामायण	मलूकदास
१७—रामावतार लीला	—
१८—रामायण	चिन्तामणि त्रिपाठी
१९—भावा रामायण	कपूरचन्द
२०—सीता स्वयंवर	गिरधर
२१—रामचरित्र कथा	बारहट नरसिंहदास
२२—जनक पचीसी	मंडन मिश्र
२३—जानकीजू का विवाह	—
२४—रामचरित्र	मानदास ब्रजबासी
२५—सीता चरित्र	रामचन्द्र
२६—रामायण	भगवानहित
२७—रामविलास रामायण	रामजी
२८—सीताराम ध्यान मंजरी	बालअली

२९—रामरहस्य कलेवा	परबते सोनार
३०—ध्यान मंजरी	बालकृष्ण नायक
३१—नेह प्रकाशिका	—
३२—अवधविलास	लालदास
३३—भरत की बारामासी	—
३४—रामाश्वमेध	मोहन
३५—रामरत्नावली	अनाथदास
३६—रामचरित्र	चतुर्भुजदास
३७—हनुमान चरित्र	सुन्दरदास जैन
३८—रामायण महानाटक	प्राणचन्द
३९—हनुमान-नाटक भाषा	हृदयराम पजाबी

परिशिष्ट--३

सहायक ग्रन्थों की सूची

संस्कृत—

भरतमुनि	नाट्य शास्त्र
जगन्नाथ	रस गंगाधर
विश्वनाथ	साहित्य दर्पण
वाग्भट्ट	काव्यानुशासन
मम्मट भट्ट	काव्य प्रकाश
दण्डी	काव्यादर्श
रूद्रट	काव्यालकार
धनजय	दशरूपक
श्रीभोज	सरस्वती कठाभरण
हेमचन्द्र	काव्यानुशासन
सोमेश्वर	मानसोल्लास
शारदातनय	भावप्रकाश
——	छाँदोग्य उपनिषद्
आनन्द वर्धन	ध्वन्यालोक
सीताराम चतुर्वेदी	कालिदास ग्रन्थावली
भवभूति	उत्तर रामचरित
वाल्मीकि	रामायण
——	श्रीमद्भागवत्-दशमस्कन्ध
बलदेव उपाध्याय	सस्कृत-साहित्य का इतिहास
सेठ कन्हैयालाल पोद्दार	सस्कृत-साहित्य का इतिहास ।

हिन्दी—

रामचन्द्र शुक्ल	चिन्तामणि प्रथम तथा द्वितीय भाग
रामचन्द्र शुक्ल	हिन्दी-साहित्य का इतिहास
रामचन्द्र शुक्ल	सूरदास
रामचन्द्र शुक्ल	तुलसीदास
आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी	हिन्दी-साहित्य की भूमिका
आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी	साहित्य का मर्म
आचर्य हजारीप्रसाद द्विवेदी	कबीर
आचर्य हजारीप्रसाद द्विवेदी	नाथ संप्रदाय
डा० रामकुमार वर्मा	हिन्दी सा० का आलोचनात्मक इतिहास
डा० रामकुमार वर्मा	कबीर का रहस्यवाद
इलाचन्द्र जोशी	आधुनिक हिन्दी-साहित्य मे मनोविज्ञान
सुधासु	जीवन के तत्व और काव्य के सिद्धात
जगदानन्द एम० ए०	मनोविज्ञान
डा० जॉन कैनेडी	चिन्ता
डा बल्देवप्रसाद उपाध्याय	भारतीय दर्शन
विश्वनाथप्रसाद मिश्र	वाङमय विमर्श
सेठ कन्हैयालाल पोद्दार	काव्यकल्पद्रुम-रसमजरी
गुलाबराय	नवरस
गुलाबराय	सिद्धान्त और अध्ययन
गुलाबराय	साहित्य और समीक्षा
गुलाबराय	रस और दोष
प्रसाद	काव्यकला तथा अन्य निबध
हरिशकर शर्मा	रस रत्नाकर
डा० भगवानदास	द्विवेदी अभिनन्दन ग्रन्थ—रसमीमासा
हरिऔध	रस कलश की भूमिका
डा० सत्येन्द्र	ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन
डा० सत्येन्द्र	ब्रज की लोक कहानियाँ
डा० ब्रजेश्वर वर्मा	सूरदास
सूरदास	सूरसागर
तुलसीदास	रामचरित मानस, गीतावली
केशवदास	रामचन्द्रिका

अंग्रेजी—

डा० भगवानदास	साइंस ऑफ द इमोशन्स
मैक डूगल	सोशल साइकलोजी
डारविन	एक्सप्रैसन ऑफ इमोशन्स इन मैन एण्ड एनीमल
क्रोसे	अएसैथैटिक
रिचार्ड	प्रिंसिपलस ऑफ लिटरेरी क्रिटिस्ज़िम
फ्राइड	इगो एण्ड इड
फ्राइड	इन्टरप्रिटेशन ऑफ ड्रीम्स
फ्राइड	फ्राइड हिज ड्रीम एण्ड सैक्स थ्योरीज़
अरिस्टोटल	पोइटिक्स
मारशल	पेन, प्लेजर एण्ड अएसथैटिक
ए० शंकरम्	सम ऑसपेक्ट ऑफ लिटरेरी क्रिटस्जिम् इन संस्कृत ।

पत्र-पत्रिकाएं

अमृत बाजार पत्रिका
माधुरी
सरस्वती संवाद
सम्मेलन-पत्रिका
साहित्य-संदेश
नागरी प्रचारिणी पत्रिका
साप्ताहिक हिन्दुस्तान
इण्डियन जनरल आफ साइकलोजी ।